

मासिक  
**अक्षर वार्ता**

RNI No. MPHIN/2004/14249

वर्ष - 21 अंक - 4  
( फरवरी - 2025 )  
Vol - XXI, Issue No - IV  
(February - 2025)

मूल्य: 100 /- रूपयें

अंक पंजीयन क्र. मालवा डिजीजन - L2/65/RNP/399/2024-2026

कला-मानविकी-समाजविज्ञान-जनसंचार-वाणिज्य-विज्ञान-वैचारिकी की अंतरराष्ट्रीय रेफर्ड एवं पियर रिव्यूड शोध पत्रिका

**I  
I  
F  
S**  
**9.0**  
Impact Factor  
2025

DOI 10.5281/zenodo.14599030

Indexed In International, Impact Factor Services (IIFS) Database and Indexed with IJIF  
Indexed In the International, Institute of Organized Research, (I2OR) Database  
Monthly International, Refereed Journal & Peer Reviewed

ISSN 2349 - 7521 , IMPACT FACTOR - 9.0

» aksharwartajournal@gmail.com » <https://www.aksharwartajournal.page/> » +918989547427

AKSHARWARTA IS registered MSME with Ministry of MSME, Government of India  
MSME Reg. No. UDYAM-MP-49-0005021

प्रधान संपादक  
प्रो. शैलेन्द्रकुमार शर्मा  
कुलानुशासक एवं हिन्दी विभागाध्यक्ष  
विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन, मप्र.

संपादक  
डॉ. मोहन बैरागी  
अक्षरवार्ता अंतरराष्ट्रीय शोध पत्रिका

### संपादक मंडल

प्रो. जगदीशचन्द्र शर्मा, प्राध्यापक  
विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन, मप्र.  
प्रो. राजश्री शर्मा, प्राध्यापक  
माधव महाविद्यालय, उज्जैन, मप्र.  
प्रो. डी. डी. बेदिया, विभागाध्यक्ष  
पं. जवाहर लाल नेहरू व्यवसाय प्रबंध  
संस्थान, एवं निदेशक, आईक्यूएसी,  
विक्रम युनिवर्सिटी, उज्जैन, मप्र.  
डॉ. शशि रंजन 'अकेला' जनसंपर्क

अधिकारी, आरजीपीवी, भोपाल, मप्र.  
प्रो. उमापति दिक्षित, प्राध्यापक  
केंद्रीय हिन्दी संस्थान, आगरा, उप्र.  
प्रो. मोहसिन खान, विभागाध्यक्ष  
शासकीय महाविद्यालय, रायगढ़, महाराष्ट्र  
डॉ. दिग्विजय शर्मा, सहायक प्राध्यापक  
केंद्रीय हिन्दी संस्थान, आगरा, उप्र.  
डॉ. भेरूलाल मालवीय, सहायक प्राध्यापक  
शा. नवीन महाविद्यालय, शाजापुर, मप्र.

डॉ. उपेन्द्र भार्गव, सहायक प्राध्यापक  
महर्षि पाणिनि विश्वविद्यालय, उज्जैन, मप्र.  
डॉ. रूपाली सारये, सहा. प्राध्यापक  
भाषा विभाग, देवी अहिल्या वि.वि., इंदौर  
डॉ. अवनीश कुमार अस्थाना, एसो. प्रोफेसर,  
डॉ. एपीजे अब्दुल कलाम वि.वि, इंदौर, मप्र.  
डॉ. पराक्रम सिंह, के.हि.सं., दिल्ली

### विशेषज्ञ समिति

डॉ. सुरेशचन्द्र शुक्ल 'शरद आलोक' (नार्वे), श्री शेर बहादुर सिंह (यूएसए), डॉ. रामदेव धुरंधर (मॉरीशस),  
डॉ. स्नेह ठाकुर (कनाडा) डॉ. जय वर्मा (यू.के.), प्रो. गुणशेखर गंगाप्रसाद शर्मा (चीन), डॉ. अलका धनपत (मॉरीशस),  
प्रो. टी. जी. प्रभाशंकर प्रेमी (बैंगलुरु), प्रो. अब्दुल अलीम (अलीगढ़), डॉ. सोहेल मो. यूसूफ (ओमान), डॉ. रवि शर्मा (दिल्ली),  
डॉ. सुधीर सोनी (जयपुर), डॉ. अनिल सिंह (मुंबई), डॉ. तुलसीदास परौहा, महर्षि पाणिनि संस्कृत विश्वविद्यालय, उज्जैन, मप्र.

### सह संपादक

डॉ. उषा श्रीवास्तव (कर्नाटक), डॉ. मधुकांता समाधिया (उत्तर प्रदेश), डॉ. अनिल जूनवाल (मप्र), डॉ. प्रणु शुक्ला (राजस्थान),  
डॉ. मनीष कुमार मिश्रा (मुम्बई/वाराणसी), डॉ. पवन व्यास (उड़ीसा), डॉ. गोविंद नंदाणिया (गुजरात), डॉ. रत्ना कुशवाह, (अंडमान निकोबाद),  
प्रो. डॉ. किरण खन्ना (अमृतसर, पंजाब)



विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन, मप्र. से शोध, प्रकाशन, सेमीनार, संगोष्ठी, अवार्ड आदि के लिए अक्षर वार्ता अंतरराष्ट्रीय शोध पत्रिका एवं संस्था कृष्ण बसंती शैक्षणिक एवं सामाजिक जनकल्याण समिति, उज्जैन, मप्र. एम ओ यू हस्ताक्षरित।

आवरण चित्र - इंटरनेट से सामार

नोट:- अक्षरवार्ता में सभी पद मानद व अवैतनिक है। शोध पत्रिका में प्रकाशित सभी लेखों में लेखकों के अपने विचार हैं, संपादक मंडल का इससे सहमत होना आवश्यक नहीं है।

Peer Review Board/Committee

1. Dr. Anamika Dwivedi, Associate Professor, Hindi, A.K.P (PG) College, Khurja, U.P.
2. Dr. Deepshikha, Assistant Professor, Sanskrit Manyawar Kanshiram Rajkiya Mahavidhyalaya, Gabhana, Aligadh, U.P.
3. Dr. Roshni, Guest Faculty, Hindi Maharana Pratap Govt. PG College, Gadawara, Narsinghpur, M.P.
4. Dr. Rashmi (Raikumar), Assistant Professor, English, Y.B.N. University, Namkum, Ranchi, Jharkhand
5. Dr. Arun Kumar Singh, Associate Professor DAV PG College, Azamgadh, U.P.
6. Dr. Neetu Tiwari, Professor M.B. Khalsa Law College, Indore, M.P.
7. Dr. Santosh Patidar, Lecturer Chameli Devi Institute of Law, Indore, M.P.
8. Dr. Sanjay Kumar, HoD, English Department Y. B. N. University, Ranchi, Jharkhand
9. Dr. Krishna Raj Singh, Assistant Professor Shrimati Gomati devi bind PG College, Prayagraj, U.P.
11. Dr. Meenu Shukla, Assistant Professor Navsamvat Law College, Ujjain, M.P.
12. Dr. Soniya Rani, Associate Professor Y. B. N. University, Ranchi, Jharkhand
13. Dr. Shahanaj Mahemudsha Sayyad, Associate Professor Balwant College, Vita, Distt - Sangli, Maharashtra
14. Dr. Umesh kumar Sharma, Assistant Professor, Hindi Department Shri Radha Krishna Goenka college, Sitamarhi (Bihar)
15. Dr. Dinesh Ram, Assistant Teacher LT Hindi Govt H. S.S, Kalakot, Uttarakhand
16. Dr. Nilamadhab Pradhan, Assistant Professor (Guest), Department of Sanskrit Rama Devi Women's University, Bhoi Nagar, Bhubaneswar, Odisha
17. Dr. Manju, Assistant Professor Govt. College, Kishangarh Renwal, Jaipur, Rajasthan
18. Dr. Manju Chouhan, Assistant Professor, Sanskrit, Govt. Girls College Shri Kolayat, Bikaner, Rajasthan
19. Dr. Priyanka Bhatewara Jain, Assistant Professor, (Guest Faculty) Govt. College, Manawar, Dhar, M.P.
20. Dr. Brajesh Kher, Ex. Assistant Professor Bhartiya College, Ujjain, M.P.
21. Dr. ShriKant Mishra, Assistant Professor Govt. Maharaja Martand College, Kotma, Distt-Anuppur, M.P.
22. Dr. Babita Yadav, Assistant Professor, HoD of Art's Department Navsamvat Law College, Ujjain, M.P.
23. Dr. Preeti, Assistant Professor, Hindi Department, Motihari Degree Evening College, Muzaffarpur
24. Dr. Rita Kumari, Assistant Professor Kishori Sinha Mahila College, Aurangabad, Bihar
25. Dr. Shaileshkumar Chhatrasingh Chaudhari, Teacher, Genius Educational Academy (CBSE) School, Mohani Village, Surat, Gujrat
26. Dr. Poonam Pandey, Ex. Research Scholar, English, Dr. Rammanohar Lohia avadh University, Faizabad Ayodhya, U.P

### शोध आलेख प्रकाशन संबंधी नियम

शोध आलेख 2000 से 3000 शब्दों का होकर यूनिकोड मंगल अथवा कृतिदेव 10 में 12 के फॉन्ट साइज में ही भेजे। शोध आलेख एपीए एमएलए फॉर्मेट में होना आवश्यक होकर फुटनोट व रिफ्रेंसेस के साथ भेजना आवश्यक है। अंग्रेजी माध्यम के शोध-पत्र टाइम्स न्यू रोमन (Times New Roman), एरियल फॉन्ट (Arial) में टाईप करवाकर माईक्रोसॉफ्ट वर्ड में अधिकतम 2000 की शब्द संख्या के साथ अक्षरवार्ता के ईमेल पर भेजने के बाद हार्ड कॉपी तथा शोध-पत्र मौलिक होने के घोषणा-पत्र के साथ हस्ताक्षर कर अक्षरवार्ता के कार्यालय को प्रेषित करें। शोध आलेख का प्रकाशन रिव्यू कमेटी द्वारा अनुसंशा के आधार पर किया जावेगा।

### पुस्तकों से संदर्भ देने के लिए क्रम

लेखक का अंतिम नाम (सरनेम), पहला नाम; पुस्तक का शीर्षक (इटैलिक्स में); प्रकाशक का नाम और पूरा पता (प्रकाशन का वर्ष) कोष्ठक में; पृष्ठ संख्या ....।  
*दिवेदी, हजारी प्रसाद, कबीर, नई दिल्ली, राजकमल प्रकाशन, चौदहवीं आवृत्ति, 2014, पृ. 108*

### पत्रिकाओं के संदर्भ

लेखक का अंतिम नाम (सरनेम), पहला नाम। लेख का शीर्षक। जर्नल का शीर्षक/नाम (इटैलिक्स में)। वॉल्यूम। संस्करण (महिना, वर्ष): पृष्ठ संख्या। प्रकाशन मीडिया।

### वेबसाइट के उद्धरण का प्रारूप

लेखक का अंतिम नाम (सरनेम), पहला नाम। ' ' पृष्ठ का शीर्षक। ' '।

क्षेत्र शीर्षक। (साईट) प्रकाशित करने वाली कंपनी। (युआरएल) तथा सर्व डेट (अभिगमन तिथि)।

पुस्तक, पत्रिका, आवधिक, वेबसाइट आदि के शीर्षक को इटैलिक में लिखें।

शोध आलेख के साथ प्लेगरिज्म रिपोर्ट / स्व घोषणा पत्र (आलेख की मौलिकता व अप्रकाशित होने के संदर्भ में) अवश्य भेजें।

आलेख की वर्ड और पीडीएफ दोनों फाइल अनिवार्य रूप से भेजें।

शोध आलेख प्रत्येक माह की 7 तारीख तक आगामी माह के अंक के लिए स्वीकार्य होंगे।

शोध आलेख का प्रकाशन रिव्यू कमेटी द्वारा अनुसंशा के आधार पर किया जावेगा।

*I/ We wish to subscribe the Journals. Total Amount : 1200/- (Twelve hundred only )(INR), (Normal Post) and/or 1800/- (Eighteen Hundres) for (Registerd Post) Registration Fee. All fee and Subscriptions are payable in advance and all rates include postage and taxes. Subscribers are requested to send payment with their order whenever possible. Issues will be sent on receipt of payment. Subscriptions are entered on an annual basis and are subject to renewal in subsequent years.*

*Subscription from:.....to.....SUBSCRIBER TYPE:(Check One) Institution( )/Personal ( )Date:.....Name/Institution and Address :.....City : .....State : .....PinCode..... Country ..... PhoneNo : ..... MobNo:..... Mail id.....*

### PAYMENT OPTION:

*DD in the favor of "AKSHARWARTA" payable at UJJAIN.*

*DD No.: .....Dated : .....for Rupees (in words) .....Drawn on .....Any other option Specify :.....*

### शोध-पत्र भेजने संबंधी नियम

शोध-पत्र 2000-3000 शब्दों से अधिक नहीं होना चाहिये। ०. हिन्दी माध्यम के शोध पत्रों को कृतिदेव 010 (Kruti Dev 010) या यूनिकोड मंगल फॉन्ट में टाईप करवाकर माईक्रोसॉफ्ट वर्ड में भेजें। ०. अंग्रेजी माध्यम के शोध-पत्र टाइम्स न्यू रोमन (Times New Roman), एरियल फॉन्ट (Arial) में टाईप करवाकर माईक्रोसॉफ्ट वर्ड में अक्षरवार्ता के ईमेल पर भेजने के बाद हार्ड कॉपी तथा शोध-पत्र मौलिक होने के घोषणा-पत्र के साथ हस्ताक्षर कर अक्षरवार्ता के कार्यालय को प्रेषित करें। ०. **Please Follow- APA/MLA Style for formatting** अक्षरवार्ता का वार्षिक सदस्यता शुल्क रुपये 1200/-रुपये साधारण डाक से एवं 1800/- रुपये रजिस्टर्ड डाक से एवं प्रकाशन पंजीयन शुल्क रुपये 1500/- का भुगतान बैंक द्वारा सीधे ट्रांसफर या जमा किया जा सकता है।

बैंक विवरण निम्नानुसार है-

**Union Bank of India,**

**Account Holder- Aksharwarta**

**Current A/c. No- 510101003522430**

**IFSC- UBIN0907626**

**Branch- Rishi Nagar, Ujjain, MP, India**

गुगल पे, फोन पे, पेटीएम, भीम आदि युपीआई से भुगतान के लिए मोबाईल नं. 9424014366 का अथवा स्केनर का उपयोग करें तथा भुगतान की मूल रसीद, शोध-पत्र एवं सीडी के साथ कार्यालय के पते पर भेजना अनिवार्य है।

**UPI**  
**Phone Pay,**  
**Google Pay**  
**PayTM, BHIM**  
**9424014366**



सदियों से भारतीय समाज-व्यवस्था वेदों, शास्त्रों, स्मृति ग्रन्थों एवं धर्म ग्रन्थों में बनाए गए नियम कायदों से संचालित होती रही है। इसकी जड़ में वर्ण-व्यवस्था है। इस विषमतापूर्ण, अमानवीय व्यवस्था को धर्म सम्मत एवं शास्त्र सम्मत प्रमाणित करने के लिए ऋग्वेद के पुरुष-सूक्त में व्यवस्था दी गई कि-

‘ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् बाहू राजन्यः कृतः

उरुतदस्य यद् वैश्यः पदोभ्याम् शूद्रो अजायतः।।’

(ऋग्वेदः मण्डल 10, पुरुष सूक्त 190, ऋषिनारायण)

अर्थात् एक विराट पुरुष की कल्पना कर उसके मुख से ब्राह्मण, भुजाओं से क्षत्रिय, जंघाओं से वैश्य तथा पैरों से शूद्रों की उत्पत्ति का मायाजाल रचा गया। वस्तुतः इस मुखस्थ संस्कृति ने पदस्थ संस्कृति को बुरी तरह कुचलने का एकाधिकार अपने पास सुरक्षित रख लिया। जो वैदिक व्यवस्था के शूद्र थे, वे ही कालान्तर में दलित के रूप में पहचाने गए। समाज का यह बहुसंख्यक समुदाय सदियों से मानवाधिकारों से वंचित रहा और यन्त्रणापूर्ण जीवन जीने को विवश हुआ। कालान्तर में चातुर्वर्ण व्यवस्था अनगणित जातियों में विभाजित हुई और आज भी भारतीय समाज में दलित जातियों की यह स्थिति है कि स्वाधीनता के सातवें दशक के पश्चात् भी उन पर अन्याय व अत्याचार कम नहीं हुए। प्रश्न उठता है कि ये दलित कौन हैं? ‘दलित’ का कोशीय अर्थ है-मसला हुआ, मर्दित दबाया, रौंदा या कुचला हुआ, खण्डित, विनिष्ट किया हुआ। दूसरे शब्दकोश के अनुसार ‘दलित’ शब्द का अर्थ हुआ- दल+क्त = टूटा हुआ, चीरा हुआ, फाड़ा हुआ, फटा हुआ, टुकड़े-टुकड़े हुआ। (संस्कृत-हिन्दी कोश, सं. वा. शि. आपटे, पृ. 45) दोनों शब्द कोशों के अर्थ से प्रतीत होता है कि ‘दलित वह है जिसका दलन हुआ है।’ भारतीय समाज व्यवस्था में निचले पायदान के वर्ण, शूद्र का ही दलन हुआ है। वस्तुतः ‘दलित वह व्यक्ति है, जो विशिष्ट सामाजिक स्थिति का अनुभव करता है। जिसके जीने के अधिकारों को छीना गया है। मात्र जन्म के आधार पर जिनको समाज में एक ही प्रकार का जीवन मिला है। मनुष्य के रूप में उनके मूल्यों को नकारा गया है। मानव के रूप में जिनके अधिकारों को टुकराया गया है।’ यहाँ यह भी स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि ‘विशिष्ट सामाजिक स्थिति’ से तात्पर्य वर्ण व्यवस्था से है, जिसमें जन्म से ही जाति व वर्ण तय कर दिए जाते हैं, यह व्यवस्था इसे बदलने का अधिकार नहीं देती। इस सम्बन्ध में डॉ. बी.आर. अम्बेडकर का वक्तव्य दृष्टव्य है- ‘हिन्दुस्तान देश केवल विषमता का आश्रय स्थान है। हिन्दू समाज उसकी एक मीनार है और प्रत्येक जाति उसकी एक मंजिल है। लेकिन ध्यान रखने की बात यह है कि इस मीनार में सीढ़ी नहीं लगी है। एक मंजिल से दूसरी मंजिल तक जाने के लिए उसमें मार्ग नहीं रखा गया है। जिस मंजिल में जन्मे, उसी मंजिल में मरे। नीचे की मंजिल में जन्मा व्यक्ति चाहे कितना ही लायक क्यों न हो, उसे ऊपर वाली मंजिल में प्रवेश नहीं और ऊपर की मंजिल में जन्मा व्यक्ति, चाहे वह कितना ही नालायक क्यों ना हो, उसे भी

मंजिल से ढकेलने का साहस, किसी में भी नहीं। सचेतन और अचेतन पदार्थ सारे ईश्वर के रूप हैं, ऐसा कहने वाले स्वधर्मियों को ही अपवित्र मानते हैं।’ (मूकनायक पाक्षिक में डॉ. बी.आर.अम्बेडकर के लेख से) डॉ. भीमराव अम्बेडकर ने भारतीय जाति व वर्ण व्यवस्था को स्पष्ट रूप से समझा दिया है, इसी कारण शूद्र कहे जाने वाले वर्ण को यन्त्रणापूर्ण जीवन जीने को विवश होना पड़ा। इस वर्ग की नियति उसके जन्म से ही निर्धारित हो जाती थी। मराठी साहित्यकार बाबूराम बागुल का मानना है कि ‘दलित शब्द से अनेक प्रकार का बोध होता है झू जैसे अपमान बोध, दुःख-बोध, दैन्य-दासत्व-बोध, जाति-वर्ण बोध, विश्व बन्धुत्व-बोध और क्रान्ति-बोध।’ (सारिका, मई 1976, सं. कमलेश्वर, पृ. 75) अर्थात् भारतीय समाज-व्यवस्था में जिन्होंने अपमान व तिरस्कार सहा है तथा अब उस व्यवस्था के विरुद्ध क्रान्ति को उद्यत हैं, वे दलित हैं। ‘दलित पैन्थर्स’ ने अपने घोषणा-पत्र में ‘दलित’ की परिभाषा दी है कि ‘दलित का अर्थ अनुसूचित जाति, बौद्ध, कामगार, भूमिहीन, मजदूर, गरीब किसान, खानाबदोश जाति, आदिवासी और नारी-समाज।’ दलित शब्द के सम्बन्ध में यह दृष्टि अति व्यापक है। इस दृष्टि से समाज के पचासी प्रतिशत से भी अधिक लोग दलित हैं। अर्थात् शूद्रों के साथ ही स्त्री भी दलित वर्ग की ही समझी जाती है। वस्तु-स्थिति यह है कि दलित शब्द को समझना बड़ा कठिन है। हमें इसके प्रचलित रूप पर ही विचार करना चाहिए। दलित शब्द आज साहित्य लेखन के सन्दर्भ में संकुचित अर्थ में प्रयुक्त हो रहा है, क्योंकि दलित से छिटककर आदिवासी व स्त्री ने अपनी पहचान अन्यत्र तलाशनी प्रारम्भ कर दी है। वे अपनी अस्मिता की लड़ाई अलग से लड़ रहे हैं। भारतीय वर्ण-व्यवस्था में सबसे नीचे शूद्र आते हैं, और शूद्रों में पिछड़ों की भी गिनती होती है, लेकिन दलित शब्द जिन लोगों के लिए प्रयुक्त हो रहा है, उनमें पिछड़ा वर्ग सम्मिलित नहीं है। अतः मेरी दृष्टि में दलित वे हैं, जिन्हें पंचम वर्ण मानकर अन्त्यज माना गया तथा जिनके साथ छुआछूत का व्यवहार किया गया व किया जा रहा है, जो गाँव व शहर की बस्ती से एकदम बाहर नारकीय जीवन जीने को विवश है तथा संविधान में जिन्हें ‘अनुसूचित जाति’ कहा गया है, वे दलित हैं।

इस वर्ग के लिए दलित शब्द का सम्बोधन भी आधुनिक युग की देन है। बाबा साहेब डॉ. अम्बेडकर इस वर्ग के लिए ‘पद दलित’ शब्द का प्रयोग करते हैं। साहित्य में दलित साहित्य शब्द का प्रयोग भी डॉ. अम्बेडकर के जीवित रहते होने लगा था। सन् 1950 के लगभग यह शब्द अंकुरित हो गया था। मराठी दलित लेखक राजा ढाले का मानना है कि सन् 1948 के आस-पास ‘दलित सेवक साहित्य संघ’ व ‘दलित साहित्य संघ’ की स्थापना हो चुकी थी, किन्तु इनके होने पर भी ‘दलित साहित्य’ शब्द प्रचलित नहीं था। जनता साप्ताहिक (12.9.1953) में श्री आ-रणगीसे का दलित साहित्य का समालोचना शीर्षक लेख पढ़ने को मिलता है- ‘और वह भी दलित साहित्य का समालोचन करने के लिए पर्याप्त दलित साहित्य था।’

»	मुंशी प्रेमचन्द और उनका उपन्यास साहित्य डॉ. संज्ञा सिंह	08	»	डॉ. मृदुला सिंह	53
»	वर्तमान भारतीय संसदीय लोकतंत्र में राजनीतिक अपराधीकरण का परिदृश्य मुकुल कुमार सिंह	12	»	प्रेमचंद नाम : उनका समय और वर्तमान समय अशोक कुमार प्रमाणिक	55
»	जनसंचार एवं जन माध्यमों में हिन्दी का स्वरूप निवेदिता स्वरूप, डॉ. रेखा चौधरी	16	»	महादेवी वर्मा के रेखा चित्र में पुरुष प्रधान समाज का संघर्ष	60
»	वर्तमान परिदृश्य में स्थानीय स्व-शासन से गरीबी और बेरोजगारी उन्मूलन कार्यक्रमों में पं. दीनदयाल उपाध्याय के विचारों की प्रासंगिकता डॉ. ब्रजेश खेर	20	»	प्रमोद कुमार सहनी, डॉ. मधुबाला श्रीवास्तव	62
»	वंचितों के लिए समावेशी शिक्षा : चिंताएं, चुनौतियां तथा उनकी भावी नीतियाँ कल्पेश व्यास, प्रो. ममता गुप्ता	23	»	गीतांजलि श्री के उपन्यासों में नारी बबीता	65
»	श्रीरामभद्राचार्य जी कृत 'श्रीनीराजनवल्लि' में देवत्व का चित्रण और उनकी आध्यात्मिक दृष्टि सुरेश चंद मीना, डॉ. दिनेश कुमार शुक्ल	26	»	जनकाव्य की चेतना के कवि त्रिलोचन डॉ. रुपाली सारये	67
»	हिंदी उपन्यासों में दलित जीवन की समस्याएँ डॉ. रोसी. पी. वर्गीस	28	»	मृणाल पाण्डे की नाट्य-भाषा संध्या राय	69
»	भारतीय ज्ञान परंपरा में योग-एक सनातन परंपरा मयूरी शिवहरे, डॉ. ज्योति गोयल	30	»	स्वच्छ भारत मिशन का ग्राम पंचायत स्तरीय आलोचनात्मक विश्लेषण (ग्राम पंचायत जमालपुर जिला बाँदा के सन्दर्भ में) डॉ. राजीव त्रिपाठी	73
»	'शिकंजे का दर्द' - दलित नारी के संघर्ष की गाथा डॉ. सनु थोमस	32	»	विद्यासागर नौटियाल की कहानियों में सामाजिक जीवन करूणा गायकवाड़, डॉ. जयपाल सिंह प्रजापति	76
»	भाषा का बालक की शैक्षिक उपलब्धि में भूमिका का अध्ययन अनिल कुमार कश्यप, प्रो. (डॉ.) तबस्सुम खान	34	»	स्वच्छता और स्वास्थ्य के प्रति समाज का अभिमुखीकरण फरहा नाज़, डॉ. राजेश कुमार सिंह	80
»	समतापरक भारत का सपना और दलित साहित्य की सर्जनात्मकता छोटी मीना	37	»	मध्यप्रदेश में नगरीय स्थानीय स्वशासन के विभिन्न आयाम : एक अध्ययन सोनेलाल लोधी	84
»	ब्रज क्षेत्र की लोक संस्कृति के विविध आयामों में शिक्षा मनोज कुमार, डॉ. अंजू लता	39	»	कमलेश्वर की कहानियों में स्त्री जीवन व विषमताएँ शीशराम मीणा	88
»	भारत में पंचायती राज व्यवस्था का विकास : ऐतिहासिक विश्लेषण डॉ. मुकेश कुमार यादव, ममता पाण्डेय	42	»	पुराख्यानों का स्वरूप एवं परम्परा पूजा सोनी, डॉ. राजकुमारी शर्मा	91
»	स्वतंत्रता आंदोलन की महान नायिका : अरूणा आसफ अली डॉ. जितेंद्र कुमार बरबड़	45	»	भारत में सूफीवाद के आगमन का ऐतिहासिक अध्ययन डॉ. अरूण कुमार सिंह	97
»	श्रीलाल शुक्ल की कहानियों में सामाजिक दर्शन : एक आलोचनात्मक विवेचन रमेश वसुनिया, डॉ. सी. एल. शर्मा	48	»	महानगर लखनऊ की स्वातंत्र्योत्तर प्रमुख महिला कवियत्रियों के पद्य-काव्य में 'बिम्ब प्रधान' सुश्री रश्मि संजय श्रीवास्तव, डॉ. महेश 'दिवाकर'	103
»	21वीं सदी के संस्मरण - साहित्य में चित्रित आधुनिक संस्कृति मलय नीरव	50	»	अर्तलाप की अनुगूँज : गगन गिल इन्दरजीत कौर	105
»	सरगुजांचल के जनजातीय लोक गीतों में स्त्री की स्थिति		»	म्यांमार का मुक्ति संग्राम डॉ. पप्पु कुमार	108
			»	सिक्का बदल गया : मानवीय संवेदना के धरातल पर सोनम सिंह	111
			»	सुर-काव्य में दार्शनिक और मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण डॉ. जयंती माला	
			»	ओमप्रकाश वाल्मीकि की कहानियों में दलित जीवन का यथार्थ मीनाक्षी, डॉ. संगीता राय	

»	‘जंगली कुलपति की कथा’ में टी वी कट्टीमनी के संघर्ष एवं सफलताएं दीपिका	115	»	A Case Study of the Pahadi Korava Tribe in Chhattisgarh Sumit Singh	161
»	ग्लोबल वार्मिंग : जलवायु का परिवर्तित इतिहास डॉ. वर्षा तिवारी	118	»	Exploring the Healing Potential of Yoga : Its Therapeutic Effects and Contribution to Better Quality of Life Shailendra Sharma	165
»	अयोध्या जनपद के ग्रामीण विकास में प्रधानमंत्री मुद्रा योजना का प्रभाव ऋचा पाण्डेय, प्रो. आशुतोष सिन्हा	120	»	Critical Social Issues in The Poetry of Derek Walcott, ALice Welker and June Jordan Dr. Akhilesh Kumar Singh	168
»	स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कहानी में भारतीय मुस्लिम समाज में स्त्रियों की दशा और दिशा श्वेता शर्मा, डॉ. मृदुला सिंह	122	»	Cultural Preservation in the Face of Modernization : An Ethnographic Study of the Pahadi Korava Tribe of Chhattisgarh, India Sumit Singh	171
»	हिंदी उपन्यासों में मजदूर वर्ग के संघर्ष का चित्रण प्रिंस कुमार	125	»	Managing Stress in Students : Enhancing Effective Learning Shailendra Sharma	176
»	डॉ. प्रभात कुमार ‘प्रभाकर’ की ग़ज़लों में प्रेम, मस्ती एवं सामाजिक संवेदना विश्वमोहन कुमार	129	»	Pramoting Green Practice Within and beyond School for a Sustainable Future Pradeep Kumar Paswan	180
»	विद्यावती ‘कोकिल’ के काव्य में अरविन्द दर्शन शगनप्रीत कौर	131	»	India’s Soft Power : A Strategic Asset in Shaping Global Diplomacy and International Politics Nandan Kumar	185
»	महात्मा गांधी एवं जयप्रकाश नारायण के समाजवादी और नेपाल के माओवादी आंदोलनों की लोकतंत्र, लोक स्वराज और लोकनीति की अवधारणा का तुलनात्मक अध्ययन जयदीप मोनू	134	»	Preservation of Mental Health : Role of a School Dr. Indu sharma	188
»	रंगेय राघव के ऐतिहासिक उपन्यास और भारतीय संस्कृति का समावेश रजनीश कुमार	137			
»	भारतीय लोक सांचे में कबीर की कविता डॉ. राम आशीष तिवारी	140			
»	सूर्य मन्दिर कोर्णाक डॉ. सूरज पाल साहू	143			
»	निराला के काव्य में प्रगतिशील चेतना श्रीमती चैताली सलूजा	145			
»	नरेश मेहता के काव्य में सामाजिक भावभूमि और मानववादी चेतना डॉ. अनामिका द्विवेदी	151			
»	Financial Independence in Women : Trends, Progress, and the Impact of COVID - 19 Dr. Sandeep Kumar Gupta	154			
»	Mental Health of Working and Non-Working Women in Tribal Areas Neeta Jain, Dr. Pubalin Das	158			
»	Socio-Economic Marginalization and Development Interventions :				

## मुंशी प्रेमचन्द और उनका उपन्यास साहित्य

डॉ. संज्ञा सिंह

असिस्टेंट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, स्व. श्यामता प्रसाद चौधरी महिला महाविद्यालय खरबौरा बस्ती, कटरा-श्रावस्ती

‘कलम की सिपाही: ‘उपन्यास सम्राट’ नाम से सुविख्यात ग्रामीण जीवन की साक्षात् प्रतिमूर्ति मुंशी प्रेमचन्द साहित्याकाश के दैदिप्यमान नक्षत्र हैं। साहित्य जगत में उनका आगमन एक नए युग का आगाज था। यह वह युग था जब हमारा देश भारत विदेशी दासता की बेड़ियों में जकड़ा हुआ कराह रहा था। आर्थिक सामाजिक, धार्मिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक परिदृश्यों पर उथल-पुथल मची थी। प्रेमचन्द एक ग्रामीण परिवार से थे उन्होंने अंग्रेजों की वरूरता को देखा भोगा और समझा था। कृषकों, श्रमिकों, स्त्रियों जमींदारों सबकी परिस्थितियों का धरातल के यथार्थ पर साक्षात् अध्ययन किया था। उसका यथार्थ चित्रण उन्होंने अपनी विविध साहित्यिक विधाओं में किया। यद्यपि वे अच्छे कहानीकार थे तथापि उपन्यास लेखन में जो ख्याति उन्होंने पाई वह अवर्णनीय है, अकथनीय है। साहित्य सृजन का समारम्भ उन्होंने 1901 ई0 में किया। 1901 ई0 में उन्होंने ‘प्रेमा’ नामक उपन्यास उर्दू में लिखा। जल्दी ही उनकी लेखनी की धूम मच गई। उन्होंने भारत के किसानों की दशा-दुर्दशा का चित्रण कर जनमन की आत्मा को झकझोर दिया। स्त्री विमर्श भी उनके प्रणयन का प्रमुख हिस्सा रही। मजदूर वंचित, पारिवारिक, समस्याएँ, अनमेल-विवाह विधवा-विवाह, अछूतोद्धार, घूसखोरी, वैश्या उद्धार, मद्यनिषेध राष्ट्र-प्रेम, अंग्रेजों के विरोध के स्वर उनकी लेखनी से प्रस्फुटित हुए हैं। उन्होंने अपनी रचनाओं के माध्यम से जन-जागृति का महान कार्य किया। हिन्दी की पत्र-पत्रिकाओं में भी उन्हें सम्मानीय स्थान प्राप्त हुआ। उनमें एक सच्चे साहित्यकार की आत्मा निवास करती है।

**बीज शब्द:-**सुविख्यात-प्रसिद्ध, दासता-गुलामी, ख्याति-प्रसिद्धि, सृजन-सर्जना करना, अछूतोद्धार- अपृश्यों का उद्धार, स्त्री विमर्श-स्त्रियों की चर्चा।

**उद्देश्य:-**प्रेमचन्द जी का आविर्भाव एक ग्रामीण परिवार से थे। अतः कृषक जीवन के भोगे हुए यथार्थ को उन्होंने अपने साहित्य के पात्रों में उकेरा है। वे मानवतावादी, सुधारवादी गाँधी के सत्य से प्रभावित उनकी रामराज्य की कल्पना से प्रेरित, स्वामी दयानन्द की हिन्दी के प्रति आस्था और आजादी के विगुल से प्रभावित तथा राजाराम मोहन राय से प्रभावित साहित्य शिल्पी थी। इन तीनों महापुरुषों के व्यक्तित्व की छाप उनके हृदय में पड़ चुकी थी। महात्मा गाँधी की भांति वे भी ‘राम राज्य की कामना करते हैं। उनकी कृतियों के माध्यम से जन-जन को यह अवगत कराना इस लेख का उद्देश्य है कि यथार्थ और आदर्श की स्थापना ही उनकी रचनाओं का उद्देश्य है।

**प्रस्तावना:-**

डॉ0 हजारी प्रसाद द्विवेदी के मतानुसार-‘‘ प्रेमचन्द शताब्दियों से पद-दलित, अपमानित और उपेक्षित कृषकों की आवाज थे पर्दे में कैद और

पद-पद पर लाञ्छित और असहाय नारी जाति की महिमा के जबरदस्त वकील थे, गरीबों और बेकारों की महत्व को समझते थे।’’

प्रेमचन्द जी के हिन्दी साहित्य में आगमन से कथा साहित्य को एक नया संसार मिला है, जिसमें भूतों-प्रेतों परियों, योगिनियों और राजा-रानी की कहानियों नहीं बल्कि व्यवस्था के विरुद्ध बगावत का विगुल फूँकने वाले शोषितों दलितों, मजदूरों तथा कृषकों जैसे अभिशास संतप्त श्रमजीवियों के कष्टों की करुणार्द कहानियाँ हैं। प्रेमचन्द जी का कथा साहित्य महात्मा गाँधी, स्वामी दयानन्द एवं राजा-राम मोहन राय-इन तीनों विभूतियों की त्रिवेणी है। उक्त तीनों युग प्रवर्तकों के समन्वित दृष्टिकोणों को अपनी साहित्यिक कृतियों में प्रस्तुत करने के कारण ही वे युग-प्रतिनिधि कलाकार माने जाते हैं। समस्त राष्ट्रीय एवं सामाजिक आन्दोलन उनके साहित्य में मुखर है। इससे स्पष्ट है कि प्रेमचन्द के अकेले व्यक्तित्व में उनका सारा युग समाविष्ट है और निस्सन्देह उन्हें युग प्रतिनिधि व्यक्तित्व मिला है। उनकी साहित्यिक कृतियाँ जितनी तत्कालीन समाज में महत्वपूर्ण और प्रासंगिक थीं उतनी ही आज भी प्रासंगिक है और आगे भी रहेंगी।

**प्रेमचन्द का साहित्यिक परिचय:-**जैसा कि सर्वाविदित है कि उपन्यास सम्राट प्रेमचन्द का जन्म एक गरीब घराने में काशी से चार मील दूर लमही नामक गांव में 31 जुलाई 1880 ई. को हुआ था। इनके पिता अजायब राय डाक मुंशी थे उन्हें 15-20 रूपए वेतन मिलता था गाँव में उनके पास थोड़ी सी कृषि भूमि थी। आर्थिक कठिनाइयों के कारण वह प्रेमचन्द को उचित पैसे भी न दे पाते थे। प्रेम चन्द जी ने ‘जीवनसार’ नामक आत्मकथा में लिखा है कि- ‘‘जब तक पिताजी जीवित रहे तब तक उन्होंने मेरे लिए बारह आने से अधिक का जूता कभी न खरीदा और चार आने गज से अधिक का कपड़ा नहीं खरीदा।’’ आठ वर्ष की उम्र में माता का निधन हो गया। पिता ने दूसरा विवाह कर लिया। अतः बचपन से दरिद्रता, मातृहीनावस्था, सौतेली मां का दुर्व्यवहार के साथ पिता के स्नेह बिना ही व्यतीत हुआ। जब उनके पिता की बदली गोरखपुर हुई तो वे गोरखपुर के एक स्कूल में दाखिल कराए गए। उसी उम्र में उन्होंने उर्दू साहित्य का अध्ययन किया। तिलिस्मी होशरूबा नामक एक विशालकाय ग्रन्थ (उपन्यास) उन्होंने पढ़ डाला। अभी 15 वर्ष की ही हुए थे कि उनका विवाह हो गया, परन्तु विवाह पश्चात् 16 वर्ष की आयु के ही अभी थे कि पिता भी दुनिया से चल बसे। अब घर में रह गई विमाता उनके दो पुत्र, स्वयं प्रेमचन्द और उनकी पत्नी।

प्रेमचन्द को गढ़नेवाले यही प्रारम्भिक तत्व थे। विपरीत परिस्थितियों से वे घबराए नहीं। किसी तरह मैट्रिक पास कर ली। इण्टरमीडिएट पास करने के पश्चात् शहर में 5 रु. मासिक पर एक ट्यूशन

पढ़ाने लगे। जिसमें से 3 रु. घर भेजते और दो रु. अपने पास रख लेते। जहाँ ट्यूशन पढ़ाते थे उन्हीं के यहां अस्तबल के ऊपर बनी एक छोटी सी कोठरी में टाट बिछाकर मिट्टी के तेल के लैम्प से पढ़ते थे। एक बार खिचड़ी पकाकर खाते थे। संयोग से वहां सहकारी अध्यापक की नौकरी मिल गई वेतन 18रु. मासिक मिलने लगा और जीवन आगे चल पड़ा।

भोगे हुए दारुण दुःख हृदय में लेकर साहित्य सृजन की ओर प्रवृत्त हुए। आरम्भ में 'नवाब राय' के नाम से उर्दू भाषा में कहानियाँ और उपन्यास लिखते थे। इसके अतिरिक्त इन्होंने 'माधुरी' तथा 'मर्यादा' पत्रिकाओं का सम्पादन किया वे सच्चे अर्थों में 'कलम के सिपाही' हैं। प्रेमचन्द की पत्नी शिवरानी देवी ने जो पुस्तक 'प्रेमचन्द घर में लिखी तथा प्रेमचन्द की आत्मकथा 'जीवनसार' से यह तथ्य उद्धाटित होता है कि वे एक उदार, सहनशील संतोषी व्यक्ति ही नहीं थे उपितु निर्लिष्ट मानवीय पक्ष के अध्येता भी थे। इन्हीं गुणों के कारण एक साधारण घर के बालक होते हुए भी महान व्यक्तित्व बने।

डॉ० राम विलास शर्मा ने कहा है- 'प्रेमचन्द को जो वास्तविक शिक्षा मिली वे शिक्षा विद्यालय दूसरे ही थे। उनके अध्यापक लमही के किसान, बनारस के महाजन और किताबों के नोट्स बिकनेवाले बुकसेलर थे। भले ही वे गणित पढ़ाने योग्य न रहे हों। वह हिन्दुस्तानी समाज का बीज गणित अच्छी तरह समझ गए थे और उपन्यासों में बहुत प्रश्नों के हल करने की तैयारी में थे।'<sup>2</sup>

**एक महत्वपूर्ण उपन्यासकार: प्रेमचन्द:-** भोगे हुए दारुण दुःख हृदय में लेकर साहित्य सृजन की ओर प्रवृत्त हुए। आरम्भ में 'नवाब राय' के नाम से उर्दू भाषा में कहानियाँ और उपन्यास लिखते थे। इसके अतिरिक्त इन्होंने 'माधुरी' तथा 'मर्यादा' पत्रिकाओं का सम्पादन किया। वे सच्चे अर्थों में कलम के सिपाही थे। भारत के राजनैतिक, सामाजिक जीवन का यथार्थ चित्र प्रेमचन्द जी ने जिस प्रकार जनता के मस्तिष्क पर उकेरा था वह अद्भुत है। उनके उपन्यासों में आदर्शान्मुख यथार्थ के द्वारा जीवन संघर्ष और चेतना जगत का सुन्दर समन्वय हुआ है। उनका 'गोदान' भारत के समाज का यथार्थ और सम्पूर्ण चित्र उपस्थित करने वाला महाकाव्य है। प्रेमचन्द के महत्व के व्यक्त करते हुए कहा गया है- 'गोदान के रचयिता प्रेमचन्द जी हिन्दी के वर्तमान और भविष्य के निर्देशक हैं। प्रेमचन्द उस शिखर के समान हैं जिसके दोनों ओर पर्वत के दोनों भागों के उतार चढ़ाव है।'<sup>3</sup>

**उपन्यास किसे कहते हैं?**

उपन्यास शब्द अंग्रेजी के नावेले का पर्यायवाची है। नॉवेल का अर्थ है नया। फ्रांस में नोवास शब्द का प्रयोग होता था जिसका तात्पर्य यथार्थ चित्रण प्रस्तुत करने वाली कथा है। इटली में इसको नॉवेल शब्द दिया गया है। उपन्यास को फिक्शन भी कहते हैं जिसका अर्थ गल्प माना जाता है, जो जीवन की रंगीनियों से युक्त यथार्थ से सम्बद्ध होता है। कुछ लोग इसे रोमांस भी कहते हैं। इस विषय में क्लारारीव कहते हैं-

'उपन्यास अपने युग का चित्रण करता है। रोमांस उदान्त भाषा में उसका वर्णन करता है, जो न घटित है न घटायमान। उपन्यास दैनिक जीवन में घटित होने वाली घटनाओं का वर्णन करता है जिनका हमारे या हमारे मित्र के जीवन में घटित होना सम्भव है।'<sup>4</sup>

उपन्यास दो शब्दों से मिलकर बना है- उप+न्यास = उप का अर्थ है 'सामने', न्यास का अर्थ है- स्थापना अर्थात् विषय की स्थापना करना उपन्यास है। उपन्यास जीवन की गुत्थियों तथा आन्तरिक ग्रन्थियों को स्पष्ट

रूप से पाठकों के समक्ष बोल देता है। प्रेमचन्द उपन्यास को मानव चित्रण का चित्र मानते हैं। यथा 'मानव चरित्र पर प्रकाश डालना और उसके मूल रहस्यों को खोलना ही उपन्यास है।'<sup>5</sup>

आइए प्रगतिशील साहित्य संघ के संस्थापक, लेखक, मानवीय भावनाओं के अध्येता अपने लेखन क्षेत्र के एक मात्र सम्राट पुरुष मुंशी प्रेमचन्द की रचनाओं का अवलोकन करते हैं।

1. **सेवासदन-** प्रेमचन्द जी ने यह उपन्यास महावीर प्रसाद पोद्दार की प्रेरणा से लिखी। यह मुंशी जी का तीसरा उपन्यास है। जिसे गोरखपुर में 1916 ई. में प्रकाशित किया गया सेवा सदन का उर्दू रूप 'बाजार हुस्न' नाम से 1911 ई. के मध्य में दो किशतों में प्रकाशित किया गया। इस उपन्यास में स्वाभाविक और मनोवैज्ञानिक घटनाओं की अधिकता है। इसमें लगभग 56 पात्र हैं, जिनमें 39 पुरुष और 17 स्त्री पात्र है। इस उपन्यास में उन्होंने तत्कालीन धार्मिक, आर्थिक समस्याओं पर भी दृष्टिपात किया है। उन्होंने समाज में फैली दहेज प्रथा, अनमेल विवाह और वैश्या प्रथा को कथा क्षेत्र का प्रमुख आधार बनाया है। यह कथा सुमन नामक महिला पात्र की है। जिस तरह उन्होंने सुमन को वैश्यागृह भेजा है। वह कुछ अस्वाभाविक होते हुए भी इसलिए नहीं अखरता क्योंकि आगे उन्हें वैश्याओं की समस्याओं का समाधान सुझाना है। कथा में यह विद्वलदास और पद्मसिंह के आदर्श वैश्या सुधार की भावना की प्रतिरूप बनकर उभरी है। इस कथा में महाजनी प्रथा और ग्रामीण जीवन का चित्र भी महत्वपूर्ण स्थान रखता है।

2. **प्रेमाश्रम-** यद्यपि इस उपन्यास का रचनाकाल 1918ई. है किन्तु इसका प्रकाशन वर्ष 1922ई. कोलकाता में हुआ। उपन्यास की सम्पूर्ण कथा ज्ञानशंकर और प्रेमशंकर नामक दो बिन्दुओं से संचालित होती है। प्रेमशंकर अपने भाई से भिन्न उदारमना और राष्ट्रीय आन्दोलन से जुड़े व्यक्ति हैं गाँधीवादी विचारधारा का उनपर पूर्ण प्रभाव है। इस उपन्यास में पात्रों की संख्या 80 के लगभग है। प्रेमचन्द ने पात्रों की मुद्रा, मनः स्थिति, मन के रहस्यों, पात्र के स्वभाव, विचारधारा आदि में परिवर्तन को भी अपने शब्दों में प्रकट किया है। प्रेमाश्रम के पात्रों के संवादों में देशकाल और चरित्रचित्रण की वृत्ति आद्योपान्त देखने को मिलती है। इसकी भाषा में अंग्रेजी के लगभग 200 शब्दों का प्रयोग हुआ है। इस उपन्यास में जमींदारी और अफसरसाही के नीचे पिंसते हुए गरीब किसानों की दशा पर अच्छा प्रकाश डाला है। इस कथा में नगर के शिक्षित वर्ग भी समस्या से असंपृक्त नहीं हैं। जमींदारी प्रथा को शोषण का मूल कारण माना गया है। ज्ञानशंकर एक कूर जमींदार का प्रतिनिधि है। इस उपन्यास में उन्होंने कृषकों की जागृति और विद्रोहात्मक स्वर को भी दर्शाया है। यहां वह इस आन्दोलन को फ्रंस की क्रांति के सहारे उठाते हैं। शायद यही कारण है कि साम्यवादियों ने साम्यवाद का समर्थक तथा मान्यता देनेवाला मानकर उनका इसी रूप में प्रचार किया। उन्होंने दरोगा, चपरासी, तहसीलदार आदि छोटे-बड़े अफसरों को झूठे मुकदमों बनाकर व्यक्तियों को फँसानेवाला, रिश्वत लेनेवाला और प्रजापीड़न करनेवाला बताया है। यहाँ तक कि डॉ. श्री जन शोषक है।

3. **रंगभूमि:-**रंगभूमि का प्रकाशन 1924-25 ई. में हुई। यह प्रेमचन्द का एक महत्वपूर्ण उपन्यास है। इस उपन्यास में उन्होंने स्वतंत्रता आंदोलन की झलक दिखाई है। रंग भूमि प्रेमचन्द का सबसे बड़े आकारवाला उपन्यास है। इसका वर्तमान उपलब्ध संस्करण दो खण्डों में प्रकाशित है। उपन्यास के शीर्षक रंगभूमि के द्वारा उपन्यासकार इसकी प्रमुख कथा को रेखांकित करना चाहता है। यह कथा है पाण्डेपुर ग्राम के निवासी अंधे भिखारी सूरदास द्वारा

खाली पड़ी चारागाह के काम आनेवाली पैतृक जमीन को पूंजीपति जानसेवक के चंगुल से बचाने के अवरत संघर्ष और असफलता की। उस जमीन पर सिंगरेट बनाने का कारखाना बन जाने पर गाँव के मकानों की जमीन की नारी आती है। सूरदास पुनः संघर्ष छेड़ता है और मारा जाता है। रंग भूमि के सूरदास का महत्व इस बात में नहीं है कि वह व्यवस्था के लिए संघर्ष करता है, वरन इस बात में है कि वह अन्याय न सहकर उसका सक्रिय विरोध करता है। एक निर्बल व्यक्ति में उपन्यास के प्रतिरोध की शक्ति देकर प्रेमचन्द जी ने भारत के किसान जैसे निर्बल व्यक्तित्व एक बल और प्रेरक शक्ति दी है। प्रेमचन्द जी ने अंग्रेजों के साम्राज्यवादी नीति को भी इस कथा में स्थान दिया है। वे तत्कालीन भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन को इसी जागृति का संदेश देते हैं कि 'साम्राज्यवादी शासन शोषण और आतंक के आधार पर कायम है।'

4. कायाकल्प:-कायाकल्प उपन्यास का प्रकाशन 1930ई. में हुआ। यह मुंशी प्रेमचन्द का प्रथम उपन्यास है। जिसकी पाण्डुलिपि हिन्दी में प्राप्त होती है। कायाकल्प उपन्यास में 6 परिवारों की कथा है, जिसमें यशोदानन्दन और ख्वाजा महमूद के परिवारों को छोड़कर शेष चार परिवारों का मुख्य कथा से सीधा सम्बन्ध है। उपन्यास में मुख्य कथा चन्द्रधर की है जो अद्योदान्त चलती है। उपन्यास में लगभग 15 प्रमुख पात्र हैं। इसमें रानी देवप्रिया। यौगिक और वैज्ञानिक क्रियाओं द्वारा दो बार पुनः यौवन प्राप्त करती है। हंसराज रहवर कायाकल्प के विषय में कहते हैं- 'प्रेमाश्रम में प्रेमचन्द यथार्थ के मार्ग पर जितना बढ़े थे 'कायाकल्प' में उतना ही पीछे लौट गए मालूम होते हैं।'<sup>6</sup>

इस उपन्यास में लेखक विधर्मियों के चंगुल में पड़ जाने वाली स्त्रियों की दशा और रूढ़िवाद के दृष्टिकोण के सुधार के लिए प्रेमचन्द के चक्रधर जैसे आदर्शवादी चरित्र प्रस्तुत किए हैं।

5. प्रतिज्ञा- जनवरी 1927 में प्रतिज्ञा उपन्यास का धारावाहिक रूप से चाँद पत्रिका में प्रकाशन हुआ। प्रतिज्ञा एक समस्या प्रधान कहानी है। विधवाओं की समस्या इसका मुख्य विषय है। इसके अन्तर्गत प्रेमा और पूर्णा की कथाएँ आती हैं। प्रेमा और पूर्णा की कथा को अनुस्यूत करने के लिए प्रेमचन्द ने जिस कौशल का परिचय दिया है वह अद्भुत है। आदर्शवादी विचारधारा होने के कारण उन्होंने इसमें आदर्शात्मक प्रस्तुतिकरण किया है। यह वह काल था जब आर्यसमाज और स्वामीदयानन्द ने विधवाओं का समर्थन किया। आर्यसमाज का पूर्ण प्रभाव मुंशी प्रेमचन्द पर दृष्टिगोचर होता है।

6. निर्मला- इस उपन्यास का प्रणयन 1923ई. में हुआ। यह लखनऊ से प्रकाशित हुआ। निर्मला में मध्यवर्गीय समाज का चित्रण है। नारी भावनाओं, समस्याओं प्रवंचनाओं का उन्होंने मार्मिक चित्र प्रस्तुत किया है। इस उपन्यास में अनमेल विवाह और दहेज प्रथा को उजागर किया गया है। इस उपन्यास में कमलाचरण, प्रताप और माधवी ऐसे पात्र हैं तो भारतीय नारी के आदर्श पतिव्रत परम्परा को अधिक महत्व देते हैं।

7. गबन:- गबन उपन्यास का प्रकाशन 1930ई. में हुआ। इसमें मध्यवर्गीय समाज की नारी के सामाजिक आर्थिक स्थिति पर दृष्टिपात किया गया है। इस उपन्यास में प्रेमचन्द जी ने पुलिस विभाग की कार्य प्रणाली पर प्रहार करते हुए निर्भीकता से पर्दाफ़ाश किया है। इसमें मध्यवर्गीय रमानाथ का झूठा दिखावा और जालपा की आभूषण प्रियता का वर्णन है। आभूषण प्रियता की प्रवृत्ति किस प्रकार समाज के लिए बुरी है उसी का वर्णन उन्हीं के शब्दों में अंकित है-

'बुरा मरज है, बहुत ही बुरा। वह धन जो भोजन में खर्च होना चाहिए बाल-बच्चों का पेट काटकर गहनों की भेंट दिया जाता है।'

आभूषण प्रियता के कारण और दिखावे की लालसा के कारण जालपा और रमानाथ को अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ा। रमानाथ ने भी आभूषणों के लिए चोरी रूपयों की चोरी तक कर डाली। और पुलिस के चंगुल में फँसा दिया।

8. कर्मभूमि:- कर्मभूमि का प्रणयन गाँधी जी के सविनय अवज्ञा आन्दोलन और उत्तर प्रदेश के किसानों के लगानबंदी आन्दोलन की पृष्ठभूमि पर हुआ है। इसका प्रकाशन सन् 1932 ई. में हुआ। कर्मभूमि की रचना से पूर्व ही 1928ई. में वारदोली के किसानों का आन्दोलन सफलतापूर्वक समाप्त हुआ था। उपन्यास पर इसका भी प्रभाव पड़ा है। युगीन यथार्थ के वस्तुवादी चित्रण और उसके सीधे उद्घाटन का प्रयास इस उपन्यास को महत्वपूर्ण बना देता है। इस उपन्यास में आर्थिक विषमता के प्रतिपादन के साथ ही पारिवारिक समस्या, पतित स्त्रियों की समस्या तथा अस्पृश्यता की समस्या को दर्शाया गया है। कर्मभूमि उपन्यास में धार्मिक पाखण्ड पर भी कूटाराघात किया गया है। शिक्षण संस्थाओं की अर्थनीति का भी यथार्थ चित्रण है। जनहित की दृष्टि से इस उपन्यास में म्यूनिसिपैलिटी जैसी संस्थाएँ भी समर्थन और सम्पन्न व्यक्ति के स्वार्थी को अग्रसर करने का साधन बन गई है यह दर्शाया गया है। इसमें यह भी बताया गया है कि पिता द्वारा पुत्र को और पति द्वारा पत्नी को अपने अधीन रखने के लिए कृत्रिम साधनों का प्रयोग नहीं करना चाहिए।

9. गोदान:- गोदान में कृषक जीवन का यथार्थ और बड़ा ही मार्मिक वर्णन मिलता है। यह भारतीय कृषक जीवन का महाकाव्य कहा जा सकता है। इसमें नगर और ग्रामीण जीवन की समस्याओं का विवेचन हुआ है। एक और पाश्चात्य संस्कृति से प्रभावित भारत की नागरिक संस्कृति आन्दोलित हो रही थी, दूसरी और ग्रामीण संस्कृति जो भारत की सांस्कृतिक निधि की तरह गाँवों में आश्रय लिए हुए थी। मध्यवर्गीय समाज भी पाश्चात्य संस्कृति के प्रति उत्कण्ठित होकर ललचायमान था। इस उपन्यास में किसानों की ऋण समस्या को केन्द्र में रखा गया है।

इस उपन्यास का महत्वपूर्ण और मुख्य पात्र होरी है जो समस्त भारतीय कृषक वर्ग का प्रतिनिधि है। आरम्भ में होरी की अपने घर में गाय रखने की तीव्र इच्छा होती है। वह किसी तरह गाय लेकर आता है किन्तु उसे रखने में वह असमर्थ हो जाता है। उसे अनेक परेशानियों का सामना करना पड़ता है अन्त में वह मर जाता है, जब वह मरता है परिवार के पास न गाय होती है, न पैसा। उसकी पत्नी धनिया बीस आने का गोदान करती है। अपनी छवि को किसानों की बेगार से चमकाने वाले राय साहब का भी ढोंग सबको नजर आता है। वह कभी राष्ट्रवादी होने का ढोंग करते हैं कभी राजभक्त बनकर उल्लू सीधा करते हैं। पूँजीवादी शोषण का भी चित्रण बड़ी गम्भीरता पूर्वक किया गया है। शहर का पूँजीपति गाँव में महाजनी करता है। गाँव में उसके एजेन्ट भी काम करते हैं। मजदूरों की मामूली मजदूरी भी पूरी नहीं मिलती है, उनकी पुलिस से मिली भगत है। मजदूरों का शोषण, अनाचार, अत्याचार उनका शौक है। गाँवों के पंचों ने भी कृषकों को दबाने कुचलने का कोई मौका नहीं छोड़ा है। होरी का पुत्र गोबर अहीर की कन्या से विवाह कर लाया इससे समाज की नाक कट गई और बिरादरी की मौत हो गई। झिंंगुरी सिंह पचास साल के हैं दो पत्नियाँ रखे हैं। पर उन्हें कोई नही पूछता। पैसेवाले हैं उच्चकुल के हैं, परन्तु होरी को सौ रूपए नकद और तीन मन अनाज का ढण्ड लगाकर लूट लेते हैं। गाँवों में अशिक्षा के कारण किसानों में अन्धविश्वास, छुआछूत, जाति-पाति, विधवा की विडम्बना, सास-बहू, ननद-भौजाई, पिता-पुत्र, पति-पत्नी, देवरानी-जेठानी के पारिवारिक झगड़े आदि

बुराई पाई जाती है। प्रेमचन्द जी का उद्देश्य इन सबबुराइयों के प्रति हमारी घृणा जगाकर समाज की इस कुरुपता को बदलने की प्रेरणा देता है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी का मुंशी प्रेमचन्द के सम्बन्ध में वक्तव्य दृष्टव्य है- 'प्रेमचन्द शताब्दियों से पद-दलित, अपमानित, निरपेक्षित कृषकों की आवाज थे पर्दे में कैद, पद पर लाछित और असहाय नारी जाति की महिमा के जबरदस्त वकील थे, गरीबों और बेबसों के प्रचारक थे। अगर आप उत्तर भारत की समस्त जनता के आचार विचार, रहन-सहन आशा-आकांक्षा, दुख-सुख व सूझ-बूझ जानना चाहते हैं तो प्रेमचन्द से उत्तम परिचायक आपको नहीं मिल सकता।

10. मंगल सूत्र :- मंगलसूत्र प्रेमचन्द जी का अन्तिम उपन्यास है। यह उपन्यास अपूर्ण है। मंगलसूत्र वर्तमान सामाजिक और आर्थिक व्यवस्था के प्रति उपन्यासकार का बढ़ता असंतोष व्यक्त करता है। इसमें नारी समस्या का चित्रण केन्द्र बिन्दु है।

11. मंगलाचरण- कुछ अनुपलब्ध प्रारम्भिक उपन्यास मंगलाचरण शीर्षक से प्रकाशित हुए मंगलाचरण में उनके चार प्रारम्भिक उपन्यास 'असरारे मआविद' उर्फ देवस्थान रहस्य', हम खुर्मा, हमअवसाद, प्रेमी तथा रूठी रानी संकलित है। असरारे मआविद और रूठी रानी दोनों ही उर्दू पत्रिका में छपे थे। असरारे मआविद उनका सबसे पुराना उपन्यास हैं और प्रेमा हिन्दी में प्रकाशित होने वाला प्रथम उपन्यास है। यह बाबू नबावराय बनारसी नाम से प्रकाशित हुआ था।

12. किशाना (कृष्णा)- इसका प्रकाशन 1908ई. में बनारस में हुआ। रूठी रानी का प्रकाशन उर्दू साप्ताहिक जमाना में अप्रैल 1907ई. में प्रकाशित हुआ। वरदान का प्रकाशन 1905ई. में हुआ। इसके शिल्प विधान के अवलोकपरान्त यह एक साधारण कथाकार का असाधारण उपन्यास है।

अन्ततः प्रेमचन्द के उपन्यासों के अध्ययनोपरान्त यह स्पष्ट होता है कि उन्होंने जन-जीवन की समस्याओं को गहन अध्ययन किया था उनके चित्रण का चित्रपट बहुत विशाल था। यह बात उनकी कहानियों और उपन्यासों के समग्र कलेवर को पढ़ने से मालूम होती है और वह सभी को आदर्श बनाना चाहते थे। उनका जीवन दम्भ-रहित था। उन्हे राष्ट्र से प्रेम था। नारियों के उत्थान महाजनी का दोष, अछूतों का उद्धार समग्र दृष्टिकोण उनकी लेखनी में समाहित हैं। वे एक सच्चे उपन्यासकार हैं।

सन्दर्भ सूची :-

1. मुंशी प्रेमचन्द, मुंशी प्रेमचन्द एवं उनका उपन्यास गवन समीक्षा एवं व्याख्या, हरीश विश्वविद्यालय प्रकाश, 17-ए, प्रभूनगर, प्रताप नगर के पास आगरा-282010 (उ.प्र.), नवीन संस्करण, पृ. 26
2. मुंशी प्रेमचन्द, मुंशी प्रेमचन्द एवं उनका उपन्यास गवन समीक्षा एवं व्याख्या, हरीश विश्वविद्यालय प्रकाशन 17-ए, प्रभू नगर, प्रताप नगर के पास आगरा-282010 (उ.प्र.), नवीन संस्करण, पृ.28
3. मुंशी प्रेमचन्द, मुंशी प्रेमचन्द एवं उनका उपन्यास गवन समीक्षा एवं व्याख्या, हरीश विश्वविद्यालय प्रकाशन 17ए, प्रभू नगर, प्रताप नगर के पास आगरा-282010 (उ.प्र.), नवीन संस्करण, पृ. 18
4. मुंशी प्रेमचन्द, मुंशी प्रेमचन्द एवं उनका उपन्यास गवन समीक्षा एवं व्याख्या, हरीश विश्वविद्यालय प्रकाशन 17ए, प्रभू नगर, प्रताप नगर के पास आगरा-282010 (उ.प्र.), नवीन संस्करण, पृ. 5
5. मुंशी प्रेमचन्द, मुंशी प्रेमचन्द एवं उनका उपन्यास गवन समीक्षा एवं

व्याख्या, हरीश विश्वविद्यालय प्रकाशन 17ए, प्रभू नगर, प्रताप नगर के पास आगरा-282010 (उ.प्र.), नवीन संस्करण, पृ. 6

6. मुंशी प्रेमचन्द, मुंशी प्रेमचन्द एवं उनका उपन्यास गवन समीक्षा एवं व्याख्या, हरीश विश्वविद्यालय प्रकाशन 17ए, प्रभू नगर, प्रताप नगर के पास आगरा-282010 (उ.प्र.), नवीन संस्करण, पृ. 50

7. मुंशी प्रेमचन्द, मुंशी प्रेमचन्द एवं उनका उपन्यास गवन समीक्षा एवं व्याख्या, हरीश विश्वविद्यालय प्रकाशन 17ए, प्रभू नगर, प्रताप नगर के पास आगरा-282010 (उ.प्र.), नवीन संस्करण, पृ. 51

# वर्तमान भारतीय संसदीय लोकतंत्र में राजनीतिक अपराधीकरण का परिदृश्य

मुकुल कुमार सिंह

शोधार्थी, राजनीति विज्ञान विभाग, जय प्रकाश विश्वविद्यालय, छपरा, बिहार

**शोध सार:-** वर्तमान भारतीय संसदीय लोकतंत्र में राजनीतिक अपराधीकरण एक ज्वलंत और गंभीर चिंता का विषय बन चुका है। सुशासन की अवधारणा को कमजोर बनाने में भारत की राजनीति में अपराधीकरण का बढ़ना सत्ता के दुरुपयोग से सीधे जुड़ा हुआ है। 2024 के आम चुनाव में यह स्पष्ट देखा गया कि राजनीतिक अपराधीकरण का प्रभाव बढ़ा है। एसोसिएशन फॉर डेमोक्रेटिक रिफॉर्मर्स ने अपने विश्लेषण में दावा किया है कि वर्तमान लोकसभा के 543 निर्वाचित सदस्यों में से 251 यानी 46 प्रतिशत के खिलाफ क्रिमिनल केस दर्ज हैं। राजनीतिक अपराधीकरण का खतरा समाज हेतु एक बड़ी समस्या बन गया है जो लोकतंत्र के बुनियादी सिद्धांतों को प्रभावित कर रहा है। जिससे लोकतांत्रिक प्रक्रियाओं की सुचिता, चुनावों में निष्पक्षता, कानून का पालन, नैतिकता एवं जवाबदेही का प्रश्न खड़ा होता है। राजनीतिक भ्रष्टाचार और सत्ता के दुरुपयोग की प्रभावी ढंग से जांच करने तथा मुकदमा चलाने के लिए भ्रष्टाचार विरोधी एजेंसियों एवं न्यायपालिका को सशक्त बनाना, चुनाव आयोग जैसे निरीक्षण निकायों की स्वतंत्रता एवं प्रभावशीलता सुनिश्चित करना, स्वतंत्र मीडिया पर बल देना ही संसदीय लोकतंत्र में राजनीतिक अपराधीकरण को कम कर सकता है।

**मुख्य शब्द:-** लोकतंत्र, राजनीतिक अपराधीकरण, सुशासन, सत्ता, राजनीतिक भ्रष्टाचार।

**प्रस्तावना:-** भारतीय संसदीय लोकतंत्र विश्व के सबसे बड़े लोकतंत्र के रूप में अनेक चुनौतियों और समस्याओं का सामना करता है। इनमें से एक गंभीर और व्यापक समस्या है राजनीतिक अपराधीकरण। इसका अर्थ है राजनीति में अपराधी तत्वों का प्रवेश और सत्ता में उनकी भागीदारी। यह प्रवृत्ति न केवल भारतीय लोकतंत्र के मूल्यों और आदर्शों को कमजोर करती है बल्कि समाज में भ्रष्टाचार, कानून की अवमानना और सामाजिक असमानता को भी बढ़ावा देती है। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारत में लोकतांत्रिक संस्थाओं की स्थापना और विकास का कार्य प्रारंभ हुआ। इस दौरान कुछ दशकों तक राजनीतिक शुचिता और आदर्शों का पालन किया गया लेकिन जैसे-जैसे राजनीति में धनबल और बाहुबल का प्रभाव बढ़ा वैसे-वैसे आपराधिक प्रवृत्तियों वाले व्यक्तियों का राजनीति में प्रवेश होना शुरू हो गया। यह समस्या धीरे-धीरे इतनी गंभीर हो गई कि यह अब भारतीय राजनीति का एक अभिन्न हिस्सा बन चुकी है। राजनीतिक दल जिनका मुख्य उद्देश्य सत्ता प्राप्त करना होता है वे अक्सर चुनाव जीतने के लिए आपराधिक पृष्ठभूमि वाले उम्मीदवारों का चयन करते हैं। ऐसे उम्मीदवार धनबल और बाहुबल के आधार पर चुनाव जीतने की क्षमता रखते हैं जिससे राजनीतिक दलों को तात्कालिक लाभ मिलता है। किन्तु दीर्घकालिक दृष्टिकोण से यह

प्रवृत्ति लोकतंत्र की नींव को कमजोर करती है और विधायी प्रक्रिया की पवित्रता को दूषित करती है। भारतीय राजनीति में अपराधियों का प्रवेश और राजनीतिक अपराधीकरण का विकास एक लंबी और जटिल प्रक्रिया का परिणाम है। इस प्रवृत्ति की जड़ें भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के बाद के वर्षों में पाई जा सकती हैं जब भारतीय लोकतंत्र ने अपनी प्रारंभिक अवस्था में कदम रखा।

**स्वतंत्रता के बाद का दौर:-** 1947 में स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारतीय संविधान ने लोकतांत्रिक शासन की स्थापना की जिसका उद्देश्य लोक चुनावों के माध्यम से जनता के प्रतिनिधियों का चयन था। प्रारंभिक वर्षों में राजनीति में नैतिकता और आदर्शों को उच्च स्थान था। महात्मा गांधी, जवाहरलाल नेहरू और सरदार वल्लभभाई पटेल ने लोक हित में अपनी नैतिक मूल्यों को प्रस्तुत किया। हालांकि 1960 और 1970 के दशक में सामाजिक और आर्थिक परिवर्तनों के कारण राजनीति में धनबल और बाहुबल का प्रभाव बढ़ा। राज्य स्तर पर जातीय और सांप्रदायिक आधार पर दलों ने चुनावी प्रक्रिया में आपराधियों को प्रवेश दिया। बिहार और उत्तर प्रदेश में अपराधियों ने राजनीति में प्रभाव बढ़ाया और अपराधी लोगों ने चुनाव जीतकर शासन में महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त किया। 1980 के दशक में यह धार्मिक और सामाजिक समुदायों के बीच आंदोलन का आधार बन चुकी। 1990 के दशक में अपराधियों का राजनीति में प्रवेश एक अत्यंत महत्वपूर्ण घटना थी। अपराधियों का यह प्रवेश राष्ट्रीय स्तर पर भी फैल चुका था। मंडल आयोग की सिफारिशों और सामाजिक आंदोलनों ने इस स्थिति को और बढ़ावा दिया। विभिन्न दलों ने प्रभावशाली व्यक्तियों को स्वामित्व दिया जिनकी छवि आपराधिक थी और राजनीति में यह प्रयोग बढ़ता ही गया।

आज के समय में राजनीतिक अपराधीकरण भारतीय लोकतंत्र की एक जटिल और गंभीर समस्या बन चुका है। 21वीं सदी में भी चुनावी प्रक्रिया में बाहुबल और धनबल का प्रभाव बना हुआ है। राजनीतिक दल अभी भी आपराधिक पृष्ठभूमि वाले व्यक्तियों को टिकट देते हैं और ऐसे कई व्यक्ति संसद और विधानसभाओं में महत्वपूर्ण पदों पर काबिज हैं। भारत के चुनाव आयोग और न्यायपालिका ने इस समस्या से निपटने के लिए कुछ कदम उठाए हैं। जैसे कि आपराधिक पृष्ठभूमि वाले उम्मीदवारों के लिए अपने रिकॉर्ड की घोषणा करना अनिवार्य करना। हालांकि राजनीतिक अपराधीकरण की जड़ें इतनी गहरी हैं कि इसे पूरी तरह से समाप्त करना अब भी एक बड़ी चुनौती बना हुआ है।

**राजनीतिक अपराधीकरण के कारण:-** भारतीय राजनीति में अपराधीकरण की समस्या का उद्भव और विस्तार कई जटिल सामाजिक,

आर्थिक और राजनीतिक कारकों का परिणाम है। इन कारकों ने मिलकर एक ऐसा माहौल तैयार किया जिसमें आपराधिक पृष्ठभूमि वाले व्यक्तियों के लिए राजनीति में प्रवेश और सत्ता का हिस्सा बनना संभव हो गया। नीचे राजनीतिक अपराधीकरण के प्रमुख कारणों का विश्लेषण प्रस्तुत है:

1. **राजनीतिक संरक्षण और समर्थन**:-राजनीतिक दलों द्वारा अपराधियों को दिए जाने वाले संरक्षण ने राजनीतिक अपराधीकरण को बढ़ावा दिया है। राजनीति में अपराधियों का प्रवेश अक्सर राजनीतिक दलों की ओर से मिलता है जो अपने चुनावी लाभ के लिए इनका उपयोग करते हैं। ऐसे अपराधी नेता अपने बाहुबल और धनबल के जरिए चुनावों में जीत हासिल करते हैं और बदले में राजनीतिक दल उन्हें संरक्षण प्रदान करते हैं। यह एक प्रकार की परस्पर लाभकारी व्यवस्था बन जाती है। जब राजनीतिक और प्रशासनिक संस्थाएं भ्रष्ट हो जाती हैं तो वे अपराधियों को कानूनी प्रक्रिया से बचाने और राजनीति में प्रवेश करने में मदद करती हैं।

2. **चुनावी प्रणाली में खामियां**:-भारतीय चुनाव प्रणाली में कुछ ऐसी खामियां हैं जो अपराधियों को राजनीति में प्रवेश करने का अवसर प्रदान करती हैं। चुनावों में जीतने के लिए धनबल, बाहुबल और प्रभावशाली नेटवर्क की आवश्यकता होती है। आपराधिक पृष्ठभूमि वाले व्यक्तियों के पास अक्सर यह सब कुछ होता है और वे चुनाव जीतने के लिए इन संसाधनों का प्रयोग करते हैं। इसके अलावा चुनावी प्रणाली में पारदर्शिता की कमी और राजनीतिक दलों द्वारा उम्मीदवारों के चयन में आपराधिक रिकॉर्ड की अनदेखी भी इस समस्या को और बढ़ावा देती है।

3. **कानूनों की कमजोरी और निष्प्रभावी कार्यान्वयन**:-वर्तमान कानून और उनका कार्यान्वयन इस दिशा में काफी कमजोर साबित हुआ है। भारत में आपराधिक पृष्ठभूमि वाले उम्मीदवारों को चुनाव लड़ने से रोकने के लिए कड़े नियम और कानून हैं लेकिन इनका कार्यान्वयन प्रभावी ढंग से नहीं हो पाता। इसके अलावा कानून की प्रक्रियाएं धीमी होती हैं जिससे आपराधिक मामलों का निपटारा होने में वर्षों लग जाते हैं और इस बीच अपराधी चुनाव लड़ते रहते हैं। कई बार राजनीतिक दबाव के कारण पुलिस और न्यायपालिका निष्क्रिय हो जाती हैं और अपराधी नेताओं के खिलाफ सख्त कार्रवाई नहीं कर पाती।

4. **सामाजिक और आर्थिक कारक**:-भारत की सामाजिक संरचना जिसमें जाति, धर्म, सांप्रदायिक ध्रुवीकरण और आर्थिक असमानता महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं जो राजनीतिक अपराधीकरण को बढ़ावा देती है। गरीबी और बेरोजगारी जैसी समस्याएं नेताओं को चुनावी राजनीति में मदद करते हैं क्योंकि आश्वासन देकर वंचित समुदायों को अपने पक्ष में कर लेते हैं।

5. **राजनीतिक दलों की चुनावी रणनीतियां**:-चुनाव जीतने के लिए राजनीतिक दलों द्वारा अपनाई गई रणनीतियां भी राजनीतिक अपराधीकरण का एक प्रमुख कारण हैं। अक्सर राजनीतिक दल ऐसे उम्मीदवारों को मैदान में उतारते हैं जिनकी आपराधिक पृष्ठभूमि होती है और जो जातीय या धार्मिक आधार पर मजबूत समर्थन प्राप्त करते हैं।

6. **जनता की उदासीनता और असहायता**:-कई बार जनता की उदासीनता और राजनीतिक अपराधीकरण के प्रति असहायता भी इस समस्या को बढ़ावा देती है। जब जनता इस बात को स्वीकार कर लेती है कि आपराधिक पृष्ठभूमि वाले नेता ही उन्हें सुरक्षा और सुविधाएं प्रदान कर सकते हैं तो वे ऐसे नेताओं का समर्थन करने के लिए मजबूर हो जाते हैं।

**राजनीतिक अपराधीकरण के प्रभाव**:-राजनीतिक अपराधीकरण

का भारतीय लोकतंत्र, समाज और विधायी प्रक्रियाओं पर व्यापक और गंभीर प्रभाव पड़ा है। यह प्रवृत्ति न केवल राजनीतिक प्रणाली को कमजोर करती है बल्कि देश की समग्र प्रगति और सामाजिक न्याय पर भी नकारात्मक असर डालती है। नीचे राजनीतिक अपराधीकरण के प्रमुख प्रभावों का विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है।

1. **विधायी प्रक्रिया की गुणवत्ता में गिरावट**:-राजनीतिक अपराधीकरण का सबसे प्रत्यक्ष प्रभाव विधायी प्रक्रिया पर पड़ता है। जब आपराधिक पृष्ठभूमि वाले व्यक्ति संसद और विधानसभाओं में प्रवेश करते हैं तो कानून निर्माण की गुणवत्ता पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है। ऐसे नेता अक्सर अपने निजी स्वार्थों को प्राथमिकता देते हैं और कानूनों का दुरुपयोग कर सकते हैं। इसके परिणामस्वरूप समाज के हितों की उपेक्षा होती है और केवल एक विशिष्ट वर्ग या समूह को लाभ पहुँचाने वाले कानून पारित किए जाते हैं।

2. **लोकतांत्रिक मूल्यों का ह्रास**:-लोकतंत्र की आधारशिला है कानून का शासन और नैतिकता पर आधारित राजनीति। जब राजनीति में आपराधिक तत्व शामिल होते हैं, तो लोकतांत्रिक मूल्यों का ह्रास होने लगता है। जनता का लोकतांत्रिक संस्थानों और प्रतिनिधियों पर विश्वास कम होने लगता है क्योंकि वे देखते हैं कि आपराधिक प्रवृत्ति वाले लोग सत्ता में हैं। यह स्थिति समाज में राजनीतिक निराशा और अस्थिरता को जन्म देती है।

3. **अपराध और भ्रष्टाचार में वृद्धि**:-जब आपराधिक प्रवृत्ति वाले नेता सत्ता में आते हैं, तो वे अपने आपराधिक नेटवर्क का विस्तार करते हैं और सरकारी संसाधनों का दुरुपयोग करते हैं। इससे न केवल अपराध दर बढ़ती है, बल्कि भ्रष्टाचार भी संस्थागत स्तर पर फैलता है। ऐसे नेता अपने प्रभाव का उपयोग करके न्यायिक प्रक्रिया में हस्तक्षेप करते हैं और अपने खिलाफ मामलों को दबाने का प्रयास करते हैं। आपराधिक प्रवृत्ति वाले नेता अक्सर न्यायपालिका और पुलिस तंत्र पर अपने प्रभाव का उपयोग करते हैं, जिससे निष्पक्षता और पारदर्शिता को खतरा होता है।

4. **आर्थिक विकास पर नकारात्मक प्रभाव**:-अपराधियों द्वारा नियंत्रित क्षेत्रों में निवेश की कमी होती है क्योंकि वहां कानून-व्यवस्था की स्थिति खराब होती है। इसके अलावा भ्रष्टाचार के कारण सरकारी योजनाओं का सही ढंग से कार्यान्वयन नहीं हो पाता जिससे आर्थिक विकास की गति धीमी हो जाती है। सरकारी ठेकों और परियोजनाओं में घोटाले बढ़ जाते हैं जिससे सार्वजनिक धन का दुरुपयोग होता है और विकास कार्यों में बाधा आती है।

5. **सामाजिक न्याय और समानता में बाधा**:-राजनीतिक अपराधीकरण सामाजिक न्याय और समानता के लक्ष्यों को भी कमजोर करता है। जब आपराधिक पृष्ठभूमि वाले नेता सत्ता में होते हैं तो वे समाज के कमजोर और वंचित वर्गों के अधिकारों का हनन कर सकते हैं। ये नेता जातीय, धार्मिक और क्षेत्रीय आधार पर समाज को विभाजित करते हैं और अपने प्रभाव को बनाए रखने के लिए हिंसा और धमकी का सहारा लेते हैं।

6. **नैतिकता और राजनीतिक संस्कृति में गिरावट**:-राजनीतिक अपराधीकरण ने भारतीय राजनीति की नैतिकता और संस्कृति में भी गिरावट लाई है। राजनीति जो कभी सेवा और समर्पण का माध्यम मानी जाती थी अब सत्ता और धन के लालच का प्रतीक बन गई है। इससे समाज में नैतिकता का ह्रास होता है और युवा पीढ़ी के लिए गलत उदाहरण प्रस्तुत होता है।

7. **जनता की राजनीतिक सहभागिता में कमी**:-राजनीतिक

अपराधीकरण के कारण जनता की राजनीति में सहभागिता और विश्वास में कमी आ जाती है। लोग यह मानने लगते हैं कि राजनीति केवल बाहुबल, धनबल और अपराध का खेल है जिसमें उनके जैसे सामान्य नागरिकों के लिए कोई जगह नहीं है। इससे मतदान में कमी और राजनीतिक उदासीनता बढ़ जाती है जो लोकतंत्र के लिए हानिकारक है।

**8. समाज में हिंसा और अस्थिरता:-**आपराधिक पृष्ठभूमि वाले नेताओं के सत्ता में आने से समाज में हिंसा और अस्थिरता का माहौल बनता है। ये नेता अपने विरोधियों को डराने और चुप कराने के लिए हिंसा का सहारा लेते हैं। इसके अलावा इनकी वजह से स्थानीय स्तर पर आपराधिक गतिविधियों में वृद्धि होती है जिससे समाज में असुरक्षा और अस्थिरता का वातावरण पैदा होता है।

**कानूनी संस्थाएं और प्रतिक्रियाएं:-**भारतीय राजनीतिक प्रणाली में अपराधीकरण के बढ़ते प्रभाव को रोकने के लिए विभिन्न कानूनी संस्थाओं और संगठनों ने समय-समय पर महत्वपूर्ण पहल की हैं। इन कानूनी संस्थाओं की प्रतिक्रियाओं का उद्देश्य राजनीति में शुचिता बनाए रखना, लोकतंत्र की पवित्रता की रक्षा करना और आपराधिक तत्वों को राजनीति से दूर रखना है। इस खंड में हम प्रमुख कानूनी संस्थाओं और उनकी प्रतिक्रियाओं का विश्लेषण करेंगे:

**1. भारतीय चुनाव आयोग:-**भारतीय चुनाव आयोग एक स्वतंत्र संवैधानिक संस्था है जिसका मुख्य कार्य देश में स्वतंत्र और निष्पक्ष चुनाव सुनिश्चित करना है। राजनीतिक अपराधीकरण के खिलाफ चुनाव आयोग ने कई महत्वपूर्ण कदम उठाए हैं:

सर्वाच्च न्यायलय के 2002 (भारत सरकार बनाम एडीआर वाद) के ऐतिहासिक फैसले के बाद आपराधिक रिकॉर्ड का खुलासा चुनाव आयोग ने 2003 में सुप्रीम कोर्ट के निर्देश के बाद उम्मीदवारों के लिए अपने आपराधिक रिकॉर्ड का खुलासा करना अनिवार्य कर दिया। अब उम्मीदवारों को नामांकन के समय अपने खिलाफ लंबित आपराधिक मामलों की जानकारी देनी होती है। इस कदम का उद्देश्य मतदाताओं को यह जानकारी देना है कि वे किस प्रकार के उम्मीदवार को वोट दे रहे हैं।

**अनिवार्य शपथ पत्र:-**चुनाव आयोग ने उम्मीदवारों को शपथ पत्र दाखिल करने के लिए भी अनिवार्य किया है, जिसमें उन्हें अपनी शैक्षिक योग्यता, संपत्ति, और आपराधिक पृष्ठभूमि का विवरण देना होता है। यह पहल चुनाव प्रक्रिया में पारदर्शिता लाने की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम है।

**कड़ी निगरानी:-**चुनाव आयोग चुनावों के दौरान कड़ी निगरानी रखता है ताकि चुनाव में धनबल और बाहुबल का दुरुपयोग न हो। इसके लिए चुनाव आयोग विशेष निगरानी टीमें बनाता है और निष्पक्ष चुनाव सुनिश्चित करने के लिए सुरक्षा बलों की तैनाती करता है।

**2. सुप्रीम कोर्ट और उच्च न्यायालय:-**भारतीय न्यायपालिका विशेष रूप से सुप्रीम कोर्ट ने राजनीतिक अपराधीकरण के मुद्दे पर कई ऐतिहासिक फैसले दिए हैं। न्यायपालिका की ये पहलें राजनीति में आपराधिक तत्वों को नियंत्रित करने और लोकतांत्रिक मूल्यों की रक्षा करने में महत्वपूर्ण रही हैं।

लिली थॉमस बनाम भारत संघ (2013): इस ऐतिहासिक मामले में सुप्रीम कोर्ट ने फैसला दिया कि दोषी ठहराए गए सांसदों और विधायकों को उनकी सजा के तुरंत बाद अयोग्य घोषित किया जाएगा। इस निर्णय ने उन राजनेताओं के लिए एक कड़ा संदेश दिया जो आपराधिक मामलों में दोषी थे।

इससे पहले ऐसे नेता अपनी अपील लंबित रहने तक पद पर बने रह सकते थे।

**3. भारत का विधि आयोग:-**विधि आयोग ने राजनीतिक अपराधीकरण के मुद्दे पर समय-समय पर सरकार और न्यायपालिका को सिफारिशें दी हैं। 2014 में 244वें रिपोर्ट में विधि आयोग ने सुझाव दिया कि जिन उम्मीदवारों के खिलाफ गंभीर आपराधिक मामले चल रहे हैं उन्हें चुनाव लड़ने से रोका जाए। इस सुझाव का उद्देश्य चुनाव प्रक्रिया को शुद्ध करना और आपराधिक तत्वों को राजनीति से बाहर करना था।

**4. जनता और मीडिया की भूमिका:-**हालांकि जनता और मीडिया कानूनी संस्थाएं नहीं हैं, लेकिन राजनीतिक अपराधीकरण के खिलाफ जन जागरूकता बढ़ाने और जवाबदेही सुनिश्चित करने में इनकी भूमिका महत्वपूर्ण रही है। मीडिया ने समय-समय पर आपराधिक पृष्ठभूमि वाले नेताओं को उजागर किया है, जिससे जनता को सही जानकारी मिल सके। इसके अलावा, गैर-सरकारी संगठन और सिविल सोसाइटी ने भी राजनीतिक अपराधीकरण के खिलाफ आंदोलन चलाए हैं और न्यायपालिका और सरकार पर दबाव बनाया है।

**सफलताएं:-**भारतीय लोकतंत्र में राजनीतिक अपराधीकरण को रोकने के लिए कई कानूनी और संस्थागत प्रयास किए गए जिनमें कुछ उल्लेखनीय सफलताएं मिली हैं।

**1. चुनाव प्रक्रिया में पारदर्शिता:** सुप्रीम कोर्ट और चुनाव आयोग ने उम्मीदवारों के लिए आपराधिक रिकॉर्ड का खुलासा अनिवार्य किया जिससे मतदाता सूचित निर्णय ले सकते हैं। आर्थिक स्थिति का खुलासा, संपत्ति और देनदारियों का खुलासा भी पारदर्शिता को बढ़ावा देता है और भ्रष्टाचार के खिलाफ एक ठोस कदम है।

**2. सुप्रीम कोर्ट के ऐतिहासिक फैसले:** दोषी नेताओं की अयोग्यता: 2013 के फैसले ने दोषी नेताओं को तुरंत अयोग्य ठहराने का प्रावधान किया जो आपराधिक तत्वों को राजनीति से दूर रखने में सहायक रहा।

**3. जन जागरूकता:** मीडिया और सिविल सोसाइटी की भूमिका ने आपराधिक पृष्ठभूमि वाले नेताओं के खिलाफ मतदाताओं को जागरूक किया। मतदाता अब अधिक सतर्क हैं और चुनाव में आपराधिक पृष्ठभूमि वाले नेताओं को हराने का प्रयास करते हैं।

इन प्रयासों ने राजनीति में पारदर्शिता बढ़ाई है और अपराधीकरण को नियंत्रित करने में प्रभावी भूमिका निभाई है।

**समाधान और सिफारिशें:-**इस समस्या का समाधान एक व्यापक और दीर्घकालिक दृष्टिकोण की मांग करता है, जिसमें कानूनी सुधार, राजनीतिक दलों की नैतिकता में सुधार और जनता की राजनीतिक जागरूकता बढ़ाना शामिल है। जब तक इन सभी मोर्चों पर ठोस प्रयास नहीं किए जाएंगे तब तक राजनीतिक अपराधीकरण की समस्या से पूरी तरह से निपटना मुश्किल होगा।

**कानूनी और संवैधानिक सुधार:-**

**दोषी उम्मीदवारों पर चुनाव लड़ने की पूर्ण पाबंदी:-**जो उम्मीदवार गंभीर आपराधिक मामलों में दोषी ठहराए गए हैं उन्हें चुनाव लड़ने से पूरी तरह रोकने के लिए सख्त कानून बनाए जाने चाहिए। वर्तमान में केवल सजा सुनाए जाने के बाद ही अयोग्यता लागू होती है लेकिन इसे विस्तारित किया जाना चाहिए ताकि जिनके खिलाफ गंभीर आपराधिक मामले दर्ज हैं वे भी चुनाव नहीं लड़ सकें।

**तेजी से न्यायिक प्रक्रिया:** राजनीति से जुड़े आपराधिक मामलों को

तेजी से निपटाने के लिए विशेष अदालतों की स्थापना की जानी चाहिए। सुप्रीम कोर्ट के निर्देशों का पालन करते हुए, इन मामलों का निपटारा 6 महीने के भीतर किया जाना चाहिए।

**चुनाव सुधार:** चुनाव सुधारों के तहत राजनीतिक दलों को आपराधिक पृष्ठभूमि वाले उम्मीदवारों को टिकट देने से रोकने के लिए कानूनी प्रावधान किए जाने चाहिए। इसके लिए आवश्यक है कि राजनीतिक दल अपने उम्मीदवारों के चयन प्रक्रिया में पारदर्शिता लाएं और जनता को बताएं कि उन्होंने किसी उम्मीदवार को क्यों चुना है।

**2. राजनीतिक दलों में सुधार:-**

**आंतरिक लोकतंत्र का संवर्धन:-** राजनीतिक दलों के भीतर आंतरिक लोकतंत्र को मजबूत किया जाना चाहिए। दलों को अपने उम्मीदवारों के चयन में पारदर्शिता और लोकतांत्रिक प्रक्रिया को अपनाना चाहिए। इसके लिए कानूनी उपाय भी किए जा सकते हैं। इससे राजनीतिक दलों के नेतृत्व में जवाबदेही बढ़ेगी और आपराधिक पृष्ठभूमि वाले उम्मीदवारों को टिकट मिलने की संभावना कम हो जाएगी। राजनीतिक दलों पर यह जिम्मेदारी डाली जानी चाहिए कि वे अपने किसी सदस्य के आपराधिक गतिविधियों में शामिल होने पर उसे तुरंत निष्कासित करें। इसके लिए राजनीतिक दलों के लिए एक आचार संहिता बनाई जा सकती है जिसका अनुपालन अनिवार्य हो।

**3. मतदाता जागरूकता और शिक्षा:-** मतदाताओं को अपने अधिकारों और कर्तव्यों के प्रति जागरूक करने के लिए व्यापक अभियान चलाए जाने चाहिए। इसके लिए मीडिया, सिविल सोसाइटी और शैक्षिक संस्थानों की मदद ली जा सकती है। जागरूक मतदाता ही राजनीति में शुचिता ला सकते हैं। इससे मतदाता आपराधिक पृष्ठभूमि वाले नेताओं को वोट देने से बचेंगे और साफ-सुथरे छवि वाले उम्मीदवारों को चुनने में सक्षम होंगे।

यह मुद्दा केवल कानूनी और न्यायिक सुधारों तक सीमित नहीं है, बल्कि इसके समाधान के लिए समाज के हर वर्ग, राजनीतिक दलों, मतदाताओं, मीडिया और सिविल सोसाइटी की भागीदारी आवश्यक है।

**निष्कर्ष:-** राजनीतिक अपराधीकरण के खिलाफ लड़ाई केवल एक कानूनी या राजनीतिक मुद्दा नहीं है बल्कि यह हमारे लोकतंत्र की मूलभूत संरचना की रक्षा का सवाल है। इसे समाप्त करने के लिए हर नागरिक, हर राजनीतिक दल और हर संस्था को एकजुट होकर काम करना होगा। यदि हम इस दिशा में ठोस कदम उठाते हैं तो हम एक स्वस्थ, सशक्त और न्यायसंगत लोकतंत्र का निर्माण कर सकते हैं जो न केवल वर्तमान पीढ़ी के लिए बल्कि आने वाली पीढ़ियों के लिए भी एक आदर्श उदाहरण बनेगा।

**संदर्भ सूची:-**

- पुस्तकें और लेख**  
गुहा, रामचंद्र इंडिया आफ्टर गांधी  
मिलिंद वैश्य, क्रिमिनल पॉलिटिक्स इन इंडिया  
शाह, के.टी, डेमोक्रेसी एंड डिसकॉन्टेंट्स  
कुमार, धीरेंद्र, पॉलिटिकल क्रिमिनलाइजेशन एंड ज्यूडिशियल एक्टिविज्म
- शोध पत्र और लेख**  
पॉलिटिकल क्रिमिनलाइजेशन इन इंडिया: ए थ्रेट टू डेमोक्रेसी द जर्नल ऑफ पॉलिटिकल स्टडीज  
द इम्पैक्ट ऑफ क्रिमिनल पॉलिटिशियन्स ऑन पॉलिटिकल पार्टीज

द इंडियन पॉलिटिकल साइंस रिव्यू  
क्राइम एंड पॉलिटिक्स द इंडियन एक्पीरियंस द एशियन जर्नल  
ऑफ पॉलिटिकल साइंस

- न्यायिक फैसले**  
लिली थॉमस बनाम यूनिन ऑफ इंडिया, 2013  
लोक प्रहरी बनाम यूनिन ऑफ इंडिया, 2018  
जन चौक समिति बनाम भारत संघ, 2002
- सरकारी रिपोर्ट और दस्तावेज  
सातवीं केंद्रीय चुनाव आयोग रिपोर्ट, 2019  
सचिन पायलट कमेटी रिपोर्ट, 2017  
नेशनल क्राइम रिकॉर्ड ब्यूरो रिपोर्ट
- समाचार पत्र और पत्रिकाएं  
द हिंदू,  
द पॉलिटिकल माफिया ए डेथ ऑफ डेमोक्रेसी  
इंडियन एक्सप्रेस  
क्राइम इन पॉलिटिक्स: अ नेशन इन डेंजर  
फ्रंटलाइन,  
पॉलिटिक्स एंड क्राइम: द इटिमेंट लिंक

# जनसंचार एवं जन माध्यमों में हिन्दी का स्वरूप

निवेदिता स्वरूप

डॉ. रेखा चौधरी

1. शोधार्थी, हिन्दी विभाग, ए. क. पी. (पी.जी.) कॉलेज, खुर्जा, बुलंदशहर, उ. प्र.
2. एसोसिएट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, ए. क. पी. (पी.जी.) कॉलेज, खुर्जा, बुलंदशहर, उ. प्र.

मनुष्य की प्रकृति अकेले रहने की नहीं है। यह विशेषता केवल मनुष्य की ही नहीं है, अपितु पशु, पक्षी आदि भी अपने समूह के साथ रहते हैं। मनुष्य अपने समाज के प्राणियों के साथ संवाद करता है, जिनके साथ वह नहीं रह पाता है, उनकी जानकारी रखने की उत्सुकता रखता है। उनकी सूचना प्राप्त करने के लिए विभिन्न माध्यमों का प्रयोग करता है। कभी कबूतरों का इस्तेमाल, कभी पत्रों या संदेश दूतों का प्रयोग करता है। वह ये सब इस लिए करता है ताकि अपने बारे में दूसरों को बता सके व दूसरों का हाल-चाल जान सके। अपनी इसी प्रवृत्ति के कारण मानव ने भाषा का माध्यम बनाया।

“अपनी इस प्रवृत्ति के कारण मनुष्य ने भाषा का सहारा लिया, आंगिक चेष्टाओं से अपनी बात कही, कभी स्तंभों पर संदेश खुदवाया, भोजपत्रों पर लिखा, संगीत और चित्रकलाओं को माध्यम बनाया। इन सबके मूल में अपनी अभिव्यक्ति व्यक्त करना और अन्य की अभिव्यक्ति प्राप्त करना ही रहा है। विचारों के आदान-प्रदान की यह प्रवृत्ति सम्प्रेषण की यह सम्पूर्ण प्रक्रिया ही संचार के नाम से जानी जाती है।”

संचार भाषा या विचारों को बाँटने और प्राप्त करने की प्रक्रिया है। यह एक ऐसा प्रयास है, जिसके द्वारा एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति के विचारों भावों और मनोवृत्तियों में सहभागी होता है। ‘जनसंचार माध्यम’ का सामान्य अर्थ है-‘जनता के भावों या विचारों को सम्प्रेषित करने वाला साधन या उपकरण।’ जो जनता के विचारों को आदान-प्रदान करने में सहायक होता है, वह जनसंचार माध्यम कहलाता है। अर्थात् जनता के बारे में, जनता की बात, जनता तक पहुँचाना।

जिस प्रकार मानव का शारीरिक विकास भोजन पर निर्भर करता है, उसी प्रकार मानसिक विकास के लिए संचार की प्रक्रिया की आवश्यकता होती है। यह मानव के बहुमुखी विकास में सहयोगी होती है और भविष्य में भी रहेगी। “यदि यह कहा जाए कि संचार एक व्यावहारिक विज्ञान है संचार एक कला है और संचार एक आवश्यकता है, तो इसमें अतिशयोक्ति न होगी।”<sup>1</sup> जनसंचार का अर्थ विस्तृत आकार के बिखरे हुए समूह तक संचार माध्यमों द्वारा संदेश पहुँचाना है। संचार में किसी माध्यम की आवश्यकता होती है। जैसे-रेडियो, टेलीविजन, टेपरिकार्डर, विलप, वीडियो कैसेट, सीडी0 के अलावा पत्र-पत्रिकाएँ, विभिन्न पुस्तकें, पोस्टर, पेम्प्लेट इत्यादि। इसको किसी सीमित परिधि में रखना उचित नहीं है। इसका उद्देश्य बहुत विशाल है। वर्तमान समय में जनसंचार का कार्य, सूचना सम्प्रेषण, ज्ञान मूल्यों का प्रसार और मनोरंजन करना है। जनसंचार की भूमिका मानव जीवन के लिए अत्यंत

व्यापक और महत्वपूर्ण है। यह स्रोत और स्रोता के बीच सेतु का काम करता है। यह अंग्रेजी शब्द मीडिया का पर्याय है। मीडिया का भी अर्थ होता है, दो बिन्दुओं को जोड़ने वाला। स्रोत और स्रोता दो बिन्दु हैं। इन दोनों को जोड़ने के लिए सेतु की भूमिका जनसंचार ही निभाता है।<sup>2</sup>

जनसंचार माध्यम का स्वरूप और प्रकार:-स्रोत और श्रोता तक जो संचार प्रक्रिया संप्रेषित होती है, उसमें माध्यम की भूमिका भी महत्वपूर्ण होती है। बिना किसी माध्यम के संचार का अस्तित्व संभव नहीं है। संचार माध्यम द्वारा निम्नलिखित कार्य सम्पन्न होते हैं-

1. सूचना-संकलन एवं प्रकार
2. सूचना का विश्लेषण
3. सामाजिक मूल्य एवं ज्ञान का संचारण
4. मनोरंजन<sup>3</sup>

यह सही है कि संचार प्रक्रिया मानव के जन्म से ही आरम्भ हो जाती है। असभ्य व्यक्ति के पास भाषा और लिपि नहीं होती तो वह संकेतों के माध्यम से अपनी बात दूसरों तक पहुँचाता है। मानव का विकास जैसे-जैसे होता गया उसकी संचार माध्यमों में वृद्धि होती गयी। संचार माध्यमों के दो प्रकार हैं- 1. परम्परागत माध्यम, 2. आधुनिक माध्यम

जनसंचार के परम्परागत माध्यम:-जनसंचार के परम्परागत माध्यम वे हैं, जो हमारी परम्परा की देन हैं, जोकि पीढ़ी-दर-पीढ़ी विकसित होते चले गए हैं और इस आधुनिक युग में भी किसी-न-किसी रूप में इस्तेमाल होते रहे हैं। ऐसे परम्परागत माध्यमों की पहचान निम्नलिखित रूपों में की गई है-

1. वार्ता, 2. कथा, 3. मेला, 4. उत्सव तथा पर्व, 5. लोकनाट्य (रासलीला, रामलीला, कठपुतली, तमाशा, नौटंकी, स्वांग इत्यादि), 6. लोकगीत, 7. लोक कलाएँ (गोदना, मधुबनी पेन्टिंग, राजस्थानी चित्र कलाएँ, ब्रज की माँझी, काँगड़ा शैली इत्यादि), 8. लोक कथाएँ, 9. लोकगाथाएँ, 10. मूर्तिकला, 11. वास्तुकला, 12. ललित कलाएँ (गीत संगीत), 13. संदेश के लिए पक्षियों का प्रयोग। इन परम्परागत माध्यमों का प्रयोग संदेश सम्प्रेषण के लिए किया जाता रहा है। मनुष्य और देवताओं के बीच नारद मुनि संदेश संप्रेषण के माध्यम के रूप में चर्चित रहे हैं। पौराणिक युग में यत्र तत्र देवों द्वारा आकाशवाणी की चर्चा भी संवाद प्रेषण का ही रूप है।<sup>4</sup>

यदि हम संस्कृति विशेष की लोक कलाओं, लोकगीतों, लोकवाद्यों, लोकनृत्यों, लोकनाट्यों और लोक भाषा का प्रयाग अपने संदेशों को उन तक पहुँचाने के लिए करें, तो उस संदेश द्वारा अभिष्ट उद्देश्य की प्राप्ति

निश्चित है, क्योंकि यही लोक संस्कृति की पहचान है। यदि हम उनकी पहचान का सम्मान करते हैं, वो हमारे संदेश का सम्मान करते हैं। उनकी बुद्धि हमारे संदेश को आत्मसात करने के मार्ग में बाधा नहीं बनती और विवाद की सारी संभावनाएं समाप्त हो जाती हैं।<sup>7</sup>

(1). विविध परम्परागत माध्यम:-पर्व त्योहारों में कथा-बांचने की अनिवार्य परम्परा आज तक भी कायम है। मेले में, उत्सवों में, शादी-विवाहों में, श्राद्ध-संस्कारों में एक ही जगह जनसमुदाय की उपस्थिति से संचार की प्रक्रिया पूरी होती है। अवसर विशेष पर लोक नाट्यों के आयोजन से लक्ष्यपरक संवाद का प्रेषण होता है। लोकगीतों, लोक कथाओं, लोकगाथाओं में भी कोई न कोई संदेश स्रोत वर्ग तक सम्प्रेषित होता ही है। मूर्तिकला हो या वास्तु कला अथवा ललित कला इन सबों के माध्यम से हजारों-हजार वर्ष से संचार का कार्य किया जाता रहा है।

' लोकगीत, ' लोकनाटक, ' नोकनृत्य, ' लोककथा और ' लोकगाथा।

**लोकनाट्य:-**लोक में प्रचलित कथाओं पर आधारित और लोगों द्वारा स्वीकृत, नाटक लोकनाट्य कहलाता है। यह किसी सुव्यवस्थित मंच की मांग नहीं करता। ये मुक्त आकाश के नीचे अपने पांव जमाता है आया है। ये अवसर के अनुसार अस्थायी मंच निर्मित करता है और स्थायी मंच की अनिवार्यता से खुद को बचा लेता है। ' 'ये जननाटक पर्वों, धार्मिक उत्सवों एवं अनुष्ठानों के बवसरों पर खेले जाते रहे हैं। पारम्परिक लोकनृत्यों में कठपुतली (राजस्थान, गुजरात, महाराष्ट्र), बहुरुपिया, चारबैत (राजस्थान), कीर्तन (गोवा), स्वांग (उत्तर प्रदेश) में प्रसिद्ध है।<sup>8</sup>

हास्य व व्यंग्य शैली में लोकनाट्य हिन्दी भाषा के माध्यम से सामान्य जन में संदेश पहुँचाने का कार्य करते हैं। कठपुतली हो या स्वांग सभी का कोई न कोई उद्देश्य अवश्य होता है। ' 'भूमि, चबूतरे, मुंडेर, वृक्ष की शाखा दर्शकों का आसन होते हैं। स्वांग कहीं नकल, भगत, नौटंकी, तमाशा व मंच कहलाता है तो कहीं भंवई, मॉड, पार्थर, जात्रा, विदेशया, मंडौती, नृत्य कीर्तिनिया व यज्ञगान। ' ' इनका समान उद्देश्य है-मनोरंजन करना। श्रय, परिहार, प्रेम संचार और कोई गुदगुदाने वाली सिरहन पैदा करना।

स्वांग लोक नाट्यों में सबसे पुरानी कला है। लम्बे तथा कथाप्रधान लोकगीतों में वर्णन जब अभिनय की मांग करने लगा तब नाटक का सूत्रपात हुआ। आरंभ में नाटक का स्वरूप गीतात्मक ही रहा करता था। हिन्दी की बोलियों के पूर्व भी लोक नाट्य की परम्परा थी और अपभ्रंश तथा प्राकृत में तो यह परम्परा पूर्ण प्रभावी थी। इन्हीं अपभ्रंश तथा प्राकृत लोक नाट्यों से छाया ग्रहण करके ही हिन्दी बोलियों का लोक नाट्य रूपादित हुआ है।<sup>10</sup> स्वांग उन विरल लोक नाट्यों में है जो सीधे अपभ्रंश और प्राकृत से आयत हुआ है। स्वांग जीवन की अनुभूति है और हास्य व्यंग्य से परिपूर्ण भी। गीत और गद्य का यह चम्पू नाटक है। रामलीला और रासलीला में पात्रों को सुरूप ही कहा जाता है। स्वांग अनेक रूपों प्रदर्शित किया जाता है। विवाह, नाटक नौटंकी, उत्सव आदि के अवसर पर स्वांग का आयोजन होता है।<sup>11</sup>

' 'लोकनाट्य संवादों के माध्यम से किसी रोचक कथा प्रसंग को प्रस्तुत करके सामान्य जनता का मनोरंजन करता है। इसके संवाद गीतात्मक होते हैं। लोकनाट्य के कितने ही रूप हमें मिलते हैं। स्थूल रूप में कुछ नाम उदाहरणार्थ हैं- 1. रास, 2. स्वांग, 3. भंडैती या नकल, 4. भगत या नौटंकी, 5. संगीत स्वांग, 6. खोइया, 7. शारीरिक या कायिका।'<sup>12</sup>

**लोकगीत:-**लोकगीत निश्चल हृदय से सहज स्वाभाविक रूप से

उद्भूत वह भाव है, जो जनवाणी पाकर अपनी व्यस्था-कथा कह जाते हैं। विभिन्न अवसरों पर स्त्रियाँ अपने कोकिल कण्ठ से गीत कागर अपने हार्दिक उल्लास और आनन्दानुभूति को प्रकट करती हैं। लोकगीत लोकमानस के व्यक्तिगत और सामूहिक सुख, दुख की लयात्मक अभिव्यक्ति होते हैं।

' 'प्राचीनकाल में मनुष्य के जीवन से सम्बन्धित 16 संस्कारों का विधान था, जो सभी शास्त्रीय थे, जिनका सम्बन्ध जीवन के आरम्भ से लेकर अन्त तक के काल से है।'<sup>13</sup> लोकगीत किसी क्षेत्र विशेष में गाये गीत होते हैं। यह लोगों में घनिष्टता बढ़ाने का एक उत्तम साधन है। विकासात्मक कार्य या किसी समस्या के समाधान करने के लिए लोक जन सामान्य की वाणी बन जाते हैं। जिसे लोक रूचिपूर्ण ग्रहण करते हैं, जैसे- ' 'बाबुल निबिया जन कटे व निबिया चिरैया बसेर', यहाँ दरवाजे की नीम पर बैठी चिड़िया प्रकृति व्यापार न होकर घर की बिटिया बन जाती है। लोकगीतों को निम्न प्रकार से वर्गीकृत किया जा सकता है- (1) संस्कार गीत, (2) व्रत गीत, (3) श्रम गीत, (4) ऋतुगीत, (5) जाति गीत।<sup>14</sup>

डॉ. उपाध्याय ने लोककथाओं को वर्णय विषय की दृष्टि से निम्न भागों में विभाजित किया है- (1) उपदेश कथा, (2) व्रतकथा, (3) प्रेमकथा, (4) मनोरंजन कथा, (5) सामाजिक कथा, (6) पौराणिक कथा।<sup>15</sup>

**लोककथा व लोकगाथा:-**लोक कथाएँ लोक में प्रचलित वे कहानियाँ हैं, जो मनुष्य की कथा प्रवृत्ति के साथ चलकर विभिन्न परिवर्तनों के साथ वर्तमान में प्राप्त होती है। लोकगीतों की भांति लोककथाएँ भी हमें मानव की परम्परागत विरासत के रूप में प्राप्त होती हैं। ये मौखिक कहानियों की वह श्रृंखला है जिसमें हम मानव जीवन के विभिन्न पहलुओं को साकार होते हुए देखते हैं। ये कहानियाँ किसी व्यक्ति विशेष की सम्पदा न होकर जनमानस में एक मुख से दूसरे मुख द्वारा सुनी-सुनाई जाती है। वही लोकगाथाएँ किसी अज्ञात रचयिता द्वारा रचित होती है। यह समाज की ऐसी धरोहर होती है, जो गेय होने के साथ-साथ कलात्मकता का भी निर्वाह करती हैं। इनमें ' 'लोरकी, विजयमल, नयकवा व वनजारा, भरथरी, गोपीचंद, सोरठी, हीर-रौंझा, ढोला-मारु, राजा रसालू आदि हैं। डॉ. उपाध्याय ने प्रथम प्रकार के गीतों को लोकगीत और द्वितीय प्रकार के गीतों को लोकगाथा का नाम दिया है।'<sup>16</sup> जनसंचार माध्यमों में लोककथाएँ, लोकगाथाएँ, लोकगीत, लोकनाट्य आदि परम्परागत माध्यम हैं। इन परम्परागत माध्यमों का प्रभाव अभूतपूर्व है क्योंकि शिक्षा के अभाव में रेडियो, टी0वी0, समाचार पत्र पत्रिकाएँ न तो ग्राम्यांचलों की पहुँच में है न वे सभी को लाभान्वित कर सकते हैं। इसलिए अधिकांश ग्रामवासी इन्हीं परम्परागत माध्यमों पर निर्भर हैं, जिनके सकारात्मक प्रभाव हमें समय-समय पर देखने को मिलते हैं। चूँकि ये परम्परागत संचार माध्यम स्थानीय बोली भाषा अथवा स्थान विशेष की सांस्कृतिक सभ्यता के अनुरूप होते हैं, इसलिए भी इन माध्यमों का प्रभाव सीधी साधी, ग्रामीण, अशिक्षित और आदिवासी जनता पर शीघ्र व गहरा पड़ता है।<sup>17</sup> परम्परागत माध्यमों का रूप कोई भी हो सकता है चाहे शास्त्रीय (जिन्हें आसानी से समझा नहीं जा सकता) या फिर लोकगीत, लोक संगीत किसी भी क्षेत्र विशेष से सम्बन्ध रखने वाले ये सभी अपना संदेश जनता तक पहुँचाने में सक्षम होते हैं तथा अपने सामाजिक मूल्यों को जीवित रखते हैं। प्रत्येक समुदाय के सामाजिक मूल्य अलग-अलग होते हैं। पारसी समुदाय के अलग तथा यहूदी समुदाय के अलग। लेकिन परम्परागत माध्यमों में अन्य लोगों की आस्था, विश्वास तथा मूल्यों की भी कद्र की जाती है तथा उन्हें एक स्वरूप प्रदान किया जाता है। ये माध्यम सामाजिक परिवर्तन लाने की दिशा में भी

सकारात्मक भूमिका अदा करते हैं।<sup>18</sup>

**आधुनिक जनसंचार माध्यम:-**आधुनिक जनसंचार माध्यमों के तीन रूप या प्रकार हैं, जिनमें मुद्रण माध्यम, इलेक्ट्रॉनिक माध्यम एवं नव इलेक्ट्रॉनिक माध्यम में विभाजित किया जाता है। मुद्रण माध्यम में समाचार पत्र, पत्रिकाएँ, पैम्फ्लेट, पोस्टर, जर्नल पुस्तकें इत्यादि आते हैं। इलेक्ट्रॉनिक माध्यम के अन्तर्गत रेडियो, टेलीविजन एवं फ़िल्में आती हैं। कम्प्यूटर और इंटरनेट जनसंचार के नव-इलेक्ट्रॉनिक माध्यम हैं। इनमें से रेडियो, टेलीविजन एवं इंटरनेट वेब तरंगों के माध्यम से कार्य करते हैं। इन्हीं वेब तरंगों की सहायता से सूचना का आदान-प्रदान करने में मोबाइल भी काफ़ी सुगम व सशक्त साधन बन गया है।

आधुनिक जनसंचार माध्यम के अनेक रूप हैं, लेकिन सूचना देने और मनोरंजन आदि की दृष्टि से जो जनप्रिय संचार माध्यम है, उनमें मुख्य हैं-प्रेस, समाचार-पत्र, पत्रिकाएँ, रेडियो, टी0वी0, फ़िल्म, इंटरनेट एवं कम्प्यूटर इत्यादि।

**मुद्रण माध्यम - प्रेस (पत्र-पत्रिकाएँ):-**मुद्रित माध्यम के रूप में पुस्तकें, विज्ञापन, पोस्टर आदि आते हैं तथा प्रेस में छपने के कारण पत्र-पत्रिकाओं को भी इस वर्ग में रखा जाता है, लेकिन पत्रकारिता और संचार माध्यम के रूप में सर्वमान्य पत्र-पत्रिकाएँ ही हैं। इसलिए पत्रकारिता की भाषा में प्रेस का जो सर्वमान्य अर्थ ग्रहण किया जाता है, वह पत्र-पत्रिकाएँ ही हैं।

सूचना प्रौद्योगिकी की सुविधा और कम्प्यूटर के उपयोग से समाचार पत्रों व पत्रिकाओं का मुद्रण जहाँ काफ़ी सरल हो गया है। हिन्दी टंकण भी बहुत सुगम हो गया है। हिन्दी में टंकण व फ़ाण्ट होने से प्रेस या मुद्रण-माध्यम की उपयोगिता अब और अधिक बढ़ गई है। सामान्य जनता तक सूचना पहुँचाना मुद्रित पत्रकारिता की जिम्मेदारी है।

“आधुनिक जनसंचार माध्यमों के उपयोग में विभिन्न विधाओं से सम्बन्धित सामग्री का प्रकाशन होता है। इनमें राजनीतिक पत्र-पत्रिकाएँ, सांस्कृतिक पत्रिकाएँ, धार्मिक पत्रिकाएँ, बाल पत्रिकाएँ, आर्थिक पत्रिकाएँ, कृषि पत्रिकाएँ, शिक्षा पत्रिकाएँ, विज्ञान पत्रिकाएँ, महिलोपयोगी पत्रिकाएँ, फ़िल्म पत्रिकाएँ, स्मारिकाएँ इत्यादि आते हैं।”<sup>19</sup>

“हिन्दी पत्रों एवं पत्रिकाओं का सिलसिलेवार अध्ययन किया जाए तो ‘उदंत मार्तंड’ के बाद 1845 को ‘बनारस अखबार’ प्रकाशित हुआ जो हिन्दी प्रदेशों का पहला समाचार पत्र था। हिन्दी साहित्य में भारतेन्दु का नाम बड़े आदर के साथ लिया जाता है। हिन्दी जगत में हिन्दी को प्रतिष्ठित कराने का श्रेय भारतेन्दु जी को जाता है। हिन्दी गद्य एवं पद्य दोनों को ही भारतेन्दु जी ने आगे बढ़ाया।”<sup>20</sup>

**रेडियो: एक श्रव्य माध्यम:-**रेडियो इनमें पहला माध्यम है, जिसमें इलेक्ट्रॉनिक तकनीक का प्रयोग हुआ है। यह श्रव्य माध्यम है। ध्वनि तरंगों के सहायता से दूर दराज के क्षेत्रों तक सूचना-समाचारों का संप्रेषण रेडियो द्वारा ही संभव हो सका। इस माध्यम ने समाज में एक नई सूचना क्रांति उपस्थित की है। जनता में लोकप्रिय रेडियो स्टेशनों में से पहला स्थान ‘विविध-भारती’ को ही दिया जाता है। ‘विविध-भारती’ रेडियो ने अनेक प्रेरक प्रसंग के माध्यम से लोगों का न केवल मनोरंजन किया है बल्कि जनता को सही ज्ञान से परिचित भी करवाया है। “इलेक्ट्रॉनिक मीडिया ने हमें बहुत सारी अंधविश्वासों और नए-नए ज्ञान से अवगत करवाया है और इसी तले इलेक्ट्रॉनिक मीडिया के अवगुण दब गए। विद्वानों का यह कहना कि आज टीवी चैनल और पत्र-पत्रिकाओं से बच्चों की कल्पनाएँ प्रायोजित व

अनुकूलित छवियों के चपेट में आ जाती हैं। उनकी कल्पना से प्रकृति लुप्त रहती है। विकसित राष्ट्रों और नव-धनिक परिवारों में यह रोग बुरी तरह से फैला हुआ है। यह सही है पर पूर्ण नहीं है।”<sup>21</sup> “रेडियो पर साहित्य, कृषि, स्वास्थ्य, शिक्षा, समाज कल्याण, युवा, विश्वविद्यालय, पत्रकारिता, इतिहास, खेलकूद, महिला कल्याण, समाज सुधार इत्यादि से सम्बन्धित कार्यक्रमों (साक्षात्कार, विचार गोष्ठी, काव्य पाठ, नाटक, रूपक, न्यूजरील, रेडियो रपट इत्यादि) का प्रसारण होता है। जनमाध्यम के रूप में प्रसारित कार्यक्रमों को सुनकर, केवल सुनकर ग्रहण किया जा सकता है।”<sup>22</sup> “भारत गाँवों का देश है, जिसकी लगभग अधिसंख्यक जनता आज भी गाँवों में ही निवास करती है। भारत विविधता में एकता वाला एक ऐसा देश है, जिसके प्रत्येक प्रान्त एवं हिस्से में भिन्न भाषा एवं भिन्न-भिन्न संस्कृति पायी जाती है। ऐसी स्थिति में पूरे देश को एक सूत्र में बांधने का काम रेडियो के अतिरिक्त अन्य किसी माध्यम से संभव नहीं दिखाई देता। क्योंकि भारत की भौगोलिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक स्थिति को देखते हुए भारत के गाँवों में उनकी विभिन्न जरूरतों के अनुरूप केवल रेडियो ही उनकी आवश्यकता की पूर्ति पूरी तरह से कर सकता है।”<sup>23</sup>

“इसी प्रकार मजदूरों, रिक्शा चालकों, फैक्ट्री के वर्करों या घर पर खाली वक्त में स्वेटर आदि बनाने का काम करने वाली घरेलू महिलाओं के मनोरंजन के लिए रेडियो पर दिन में काफ़ी समय तक फ़िल्मी गीतों या गाँवों में प्रचलित गीतों का प्रसारण किया जाता है। जिसमें फ़िल्मी धुन गुन गुनाकर काम करने वाले मजदूरों का उत्साह दोगुना हो जाता है।”<sup>24</sup>

**टेलीविजन: जनसंचार का दृश्य-श्रव्य माध्यम:-**“दूर तक चित्रों को प्रसारित करने की कला यद्यपि सन् 1890 में ही प्रकाश में आ चुकी थी, लेकिन जे.एल. बेयर्ड ने सन् 1925 में पहली बार एक ऐसा उपकरण बनाने में सफलता पाई, जिसके माध्यम से प्रभावशाली ढंग से चित्र प्रसारित करना संभव हुआ।”<sup>25</sup> “दूर-दर्शन ने समाचार पत्रों और आकाशवाणी का स्थान ले लिया है। यह सूचना, समाचार, मनोरंजन और विज्ञापन का माध्यम बन गया है। संप्रति भारत की 80 प्रतिशत आजादी इसकी परिधि में है। 834 प्रसार केंद्र तथा 41 कार्यक्रम निर्माण केंद्रों की सहायता से 19 चैनलों पर कार्यक्रम प्रसारित किए हैं। 583 ट्रांसमीटरों की सेवा ने इसकी प्रसारण-क्षमता में बेतहाशा वृद्धि की है। यह जनमत-निर्माण में महत्वपूर्ण सहभागी है।”<sup>26</sup> “फ़िल्म निर्माता ढुढ़राज गोविंद फालके (दादा साहब फालके) ने प्रथम भारतीय हिन्दी फिल्म ‘राजा हरिश्चंद्र’ बनायी, जिसे 3 मई 1913 को प्रदर्शित किया गया। यह मूक फिल्म थी। इसके पूर्व ‘पुंडलीक’ फिल्म का भी निर्माण जरूर हुआ, लेकिन इसमें आधा निर्माण ब्रिटिश पैटर्न पर ही हुआ था। भारतीय की विशुद्ध झलक ‘राजा हरिश्चंद्र’ में होने के कारण भारतीय सिनेमा का जनक दादा साहब फालके को ही माना जाता है।”<sup>27</sup>

भारतीय फ़िल्म-निर्माण का दौर आरंभ हुआ तो वह कभी रूका नहीं। फ़िल्मों के माध्यम से सामाजिक विसंगतियों, संस्कृति का संरक्षा और अंग्रेजों के विरुद्ध आवाज उठने लगी। ‘दुनिया न माने’, ‘पड़ोसी’, ‘आदमी’, ‘देवदास’, ‘मुक्ति’, ‘विद्यापति’, ‘सीता’, ‘अछूत कन्या’, ‘संत तुकाराम’, ‘वतन’, ‘एक ही रास्ता’ आदि फिल्मों के माध्यम से जन-जागरण का प्रयास आरंभ हो गया। “भारत में बनने वाली फ़िल्मों में ऐतिहासिक, पौराणिक, देश-भक्ति, सामाजिक विषयों को आत्मसात् किया गया है। फिल्मों की सकारात्मक भूमिका और आम जन-जीवन पर उसके सकारात्मक प्रभाव को अनदेखा नहीं किया जा सकता है।”<sup>28</sup> “भारतीय संस्कृति संदर्भ में हिन्दी

और हिंदीतर भाषा में जो फिल्में बनी हैं उनमें प्रमुखतः आठ प्रकार हैं- (1) फीचर फिल्म, (2) बाल फिल्म, (3) वृत्तचित्र फिल्म, (4) टेलीविजन फिल्म, (5) न्यूज फिल्म, (6) विज्ञापन फिल्म, (7) इंस्ट्रक्शन फिल्म व (8) पब्लिक रिलेशंस फिल्म।<sup>29</sup>

**जनसंचार के नवीनतम माध्यम (कम्प्यूटर एवं इंटरनेट):-**कम्प्यूटर में हिन्दी का भविष्य सुनहरा एवं उम्मीदों से युक्त परिलक्षित होता है। संभव है कि आज जिसकी कल्पना नहीं की जा सकती, जल्द ही वह संभव हो जाए तथा आने वाले समय में कम्प्यूटर पर हिन्दी का अधिकार हो। वर्तमान समय में कम्प्यूटर, लैपटॉप, स्मार्टफोन तथा टैबलेट आदि डिजिटल उपकरण हमारे दैनिक जीवन का हिस्सा बन चुके हैं। वर्तमान समय में लगभग इन सभी उपकरणों में हिन्दी में काम करना संभव है। भाषाई समर्थन ने तकनीकी विभाजन की दूरी को कम करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी है। कम्प्यूटर पर भारतीय भाषाएँ अब केवल टाइपिंग तक सीमित न रहकर शॉर्टिंग, इंडेक्सिंग, सर्च, मेल मर्ज, हेडर-फुटर, फुटनोट्स, टिप्पणियाँ आदि सब कम्प्यूटरी कार्यों में सक्षम हो गयी हैं। यहाँ तक कि अब फाइलों के नाम हिन्दी में दिए जा सकते हैं। संचार माध्यमों के क्षेत्र में सबसे बड़ी वैज्ञानिक उपलब्धि है-‘इंटरनेट’ का आविर्भाव। लगभग 22 लाख कम्प्यूटर एक-दूसरे से जुड़कर पारस्परिक सूचनाओं का आदान-प्रदान दूर-दर्शन या किसी प्राइवेट चैनल का दर्शक टी0वी0 सेट पर कार्यक्रम देखने की सुविधा ही उठा पाता है। मल्टीमीडिया सिस्टम भी कम्प्यूटर की भांति सभी सूचनाओं का अंकन, प्रोसेसिंग, एक्जीक्यूशन एवं डिलीवरी बाइनरी कोड में करता है और इसके कारण यह कई सुविधाएँ प्रदान करने में समर्थ होता है। प्रकाशन, मनोरंजन, दूरसंचार, शिक्षण, प्रशिक्षण, खेल, निर्माण, अभियंत्रण, औद्योगिक उपक्रमों में प्रक्रिया परिवीक्षण इत्यादि क्षेत्रों में यह उपयोगी सिद्ध हुआ है।<sup>30</sup>

‘‘सूचना प्रौद्योगिकी की सुविधा का इस्तेमाल समाचार-पत्रों में भी हो रहा है। इसमें कम्प्यूटर की सुविधा का इस्तेमाल हो रहा है। सम्पादन और साज-सज्जा का कार्य कम्प्यूटरों पर हो रहा है। समाचार पत्रों की सामग्री इंटरनेट पर पढ़ने की सुविधा भी उपलब्ध हो गई है।<sup>31</sup> वर्तमान दौर में तकनीकी के आगमन के बाद जनसंचार के विभिन्न माध्यमों में हिन्दी का वर्चस्व तेजी से बढ़ने लगा है। जनसंचार के इन माध्यमों की हिन्दी सामान्य बोलचाल के निकट होती है। लेकिन मानकता की दृष्टि से वह भी निर्धारित मापदण्ड पर सही नहीं ठहरती। इसका कारण है कि जनसंचार का मुख्य उद्देश्य समाज के विशाल वर्ग तक सामाजिक जीवन के विभिन्न क्षेत्रों की सूचना को सम्प्रेषित करना है और भारत जैसे विशाल राष्ट्र में सरल एवं सुबोध भाषा के द्वारा ही विशाल जनसमुदाय तक अभिव्यक्ति सम्भव हो सकती है। इसलिए जनसंचार के माध्यमों में हिन्दी के अतिरिक्त अन्य भाषाओं के शब्दों का व्यावहारिक प्रयोग उसे मानकता से परे करता है।

**निष्कर्षतः** कहा जा सकता है कि जनसंचार के जनमाध्यमों में परम्परागत व आधुनिक दोनों ही माध्यमों का विशेष महत्व है। जहाँ जनसंचार के सशक्त माध्यम के रूप में सभी आधुनिक माध्यमों ने देश की समस्याओं व चुनौतियों को सुलझाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है, वहीं परम्परागत माध्यम आज भी संचार का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है। इन सभी माध्यमों में हिन्दी का अपना एक महत्वपूर्ण स्थान है। जनसंचार माध्यम भाषा, समाज और संस्कृति के साथ सकारात्मक पक्षों को लेकर चलता है। हिन्दी का एक मजबूत पक्ष यह है कि यह बाजार की भाषा बन गयी है, जो इसकी उपयोगिता सिद्ध करने के लिए पर्याप्त है।

**संदर्भ सूची:-**

1. डॉ0 जितेन्द्र वत्स - हिन्दी पत्रकारिता और जनसंचार माध्यम, निर्मल पब्लिकेशन्स, पृष्ठ-17 ।
2. वही, पृष्ठ-18 ।
3. सरोजनी नांदल - भारतीय मीडिया: अंतरंग पहचान, डॉ0 स्मिता मिश्र, पृष्ठ-213 ।
4. डॉ0 जितेन्द्र वत्स - हिन्दी पत्रकारिता और जनसंचार माध्यम, निर्मल पब्लिकेशन्स, पृष्ठ-19 ।
5. वही, पृष्ठ-19 ।
6. वही, पृष्ठ-20 ।
7. मीडिया विमर्श, पृष्ठ-263 ।
8. डॉ0 राजेश श्रीवास्तव ‘शम्बर’ - लोकसाहित्य, कैलाश पुस्तक सदन, भोपाल, पृष्ठ-78
9. लेखक सुरिम्ता बाला - समकालीन संचार सिद्धान्त, सम्पादक अम्बरीष, डी0पी0एस0 पब्लिकेशन, पृष्ठ-75 ।
10. डॉ0 राजेश श्रीवास्तव ‘शम्बर’ - लोक साहित्य, कैलाश पुस्तक सदन, भोपाल, पृष्ठ-91
11. वही, पृष्ठ-91 ।
12. डॉ0 सत्येन्द्र-लोक साहित्य विज्ञान, राजस्थानी ग्रन्थागार, पृष्ठ-134 ।
13. डॉ0 राजेश श्रीवास्तव ‘शम्बर’ - लोक साहित्य, कैलाश पुस्तक सदन, भोपाल, पृष्ठ-19
14. कृष्णदेव उपाध्याय - लोक साहित्य की भूमिका, लोकभारती प्रकाशन, पृष्ठ-131 ।
15. वही, पृष्ठ-131 ।
16. वही, पृष्ठ-94 ।
17. लेखक सुरिम्ता बाला- समकालीन संचार सिद्धान्त, सम्पादक अम्बरीष सक्सेना, पृष्ठ-76 ।
18. वही, पृष्ठ-77 ।
19. नवीन चन्द्र पंत - पत्रकारिता के मूल सिद्धान्त, कनिष्ठ पब्लिशर्स, पृष्ठ-151-156 ।
20. लेखक सुरिम्ता बाला - समकालीन संचार सिद्धान्त, सम्पादक अम्बरीष सक्सेना, पृष्ठ-82 ।
21. मीडिया विमर्श - जुलाई दिसम्बर 2019 ।
22. शोधश्री - जनवरी मार्च 2021, पृष्ठ-74 ।
23. लेखक सुरिम्ता बाला - समकालीन संचार सिद्धान्त, सम्पादक अम्बरीष सक्सेना, पृष्ठ-86 ।
24. वही, पृष्ठ-88 ।
25. जितेन्द्र वत्स - हिन्दी पत्रकारिता और जनसंचार माध्यम, निर्मल पब्लिकेशन, पृष्ठ-26
26. वही, पृष्ठ-27 ।
27. वही, पृष्ठ-28 ।
28. वही, पृष्ठ-29 ।
29. वही, पृष्ठ-31 ।
30. वही, पृष्ठ-35-36 ।
31. वही, पृष्ठ-24 ।

# वर्तमान परिदृश्य में स्थानीय स्व-शासन से गरीबी और बेरोजगारी उन्मूलन कार्यक्रमों में पं. दीनदयाल उपाध्याय के विचारों की प्रासंगिकता

डॉ. ब्रजेश खेर

पुर्व शोधार्थी, मध्यप्रदेश सामाजिक विज्ञान शोध संस्थान, उज्जैन, मप्र.

**प्रस्तावना:-** भारतीय राजनीति को नया वैचारिक धरातल देने वाले पं. दीनदयाल उपाध्याय समाज में साधारण मानव की गरिमा को स्थापित करने के लिए लगातार प्रयास करते रहे। साथ ही दर्शनशास्त्र के क्षेत्र में उनकी सबसे बड़ी विचारधारा 'एकात्म मानववाद' का मकसद था स्वदेशी, सामाजिक, आर्थिक मॉडल को अपनाना और उन्होंने अपने विचार सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक परिदृश्य में रखे। साथ ही पं. दीनदयाल उपाध्याय जी का जीवन सामाजिक समरसता का अनुपम उदाहरण है। राष्ट्र निर्माण और समाज सेवा को ही अपना लक्ष्य मानकर जीवन पर्यन्त उसके लिए कार्य करते रहे और पूरी दुनिया को एकात्मक मानववाद की प्रगतिशील विचारधारा से परिचित कराने वाले उपाध्याय जी का जन्म 25 सितम्बर 1916 को हुआ तथा उन्होंने भारतीय जनसंघ के नेता होने के साथ ही भारतीय चिन्तन को वैचारिक दिशा प्रदान की और अपना पूरा जीवन लोकतंत्र को मजबूत और शक्तिशाली बनाने में समर्पित कर दिया। जीवन में व्यक्तिगत सुचिता और गरिमा के उच्चतम आयाम स्थापित किए तथा वे वर्ष 1937 में राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ में शामिल हुए तथा इनकी जनसंघ में महत्वपूर्ण भूमिका थी और उन्होंने पूरे देश में जनसंघ के माध्यम से राष्ट्रनिर्माण की दिशा में कार्य किए तथा राष्ट्र एवं समाज सेवा के लिए 21 सितम्बर, 1951 को लखनऊ में राजनीतिक सम्मेलन का आयोजन से देश में एक नये राजनीतिक दल भारतीय जनसंघ की राज्य इकाई की स्थापना की और इसके एक माह बाद 21 अक्टूबर, 1951 में श्यामाप्रसाद मुखर्जी ने जनसंघ की स्थापना की और प्रथम सम्मेलन की अध्यक्षता की। स्थापना के बाद से ही उपाध्याय जी का जीवन दो भागों में समर्पित हो गया जिसमें पहला एक राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ और दूसरा जनसंघ तथा भारतीय जनसंघ को राजनीति में स्थापित करने का श्रेय पं. दीनदयाल उपाध्याय को जाता है और वर्ष 1952 में उन्हें जनसंघ का महामंत्री नियुक्त किया और 1952 से 1967 तक जनसंघ के नीति-निर्धारक और पथप्रदर्शक की भूमिका निभाते रहे। दिसम्बर, 1967 में उपाध्यायजी को राष्ट्रीय अध्यक्ष जनसंघ का बनाया तथा 1965 में भारतीय जनसंघ ने 'एकात्मक मानववाद' को स्वीकार्य किया भारत की आजादी से पहले और (भारत की आजादी) के बाद कई ऐसे महापुरुष हुए जिन्होंने अपने बुते समाज को बदलने की कोशिश की साथ ही समाज और देश की सेवा करते हुए खुशी से मौत को गले लगालिया उन्हीं में से एक है। पं. दीनदयाल उपाध्याय, जो सादगी और ईमानदारी की मिसाल के रूप में जीवन भर जनता और राष्ट्र की सेवा करते रहे वह बहुआयामी व्यक्तित्व के धनी थे तथा कुशल, अर्थचिन्तक, संगठन शास्त्री, शिक्षाविद, राजनीतिज्ञ, वक्ता, लेखक और पत्रकार जैसे अनेक प्रतिभा उनमें छिपी थी। तथा एकात्मक मानववाद का

विचार देकर मानव के कल्याण का मार्ग समाज के सामने रखा जिसकी प्रासंगिकता समय के साथ धीरे-धीरे बढ़ती गई तथा उपाध्याय जी का सम्पूर्ण जीवन आज भी हमारी प्रेरणा के स्रोत है।

पं. दीनदयाल उपाध्याय के विचारों की वर्तमान प्रासंगिकता में भारतीय जनता पार्टी उनके राष्ट्र को समर्पित, सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक 'एकात्मक मानववाद' की विचारधारा से प्रभावित होकर देश के प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदीजी ने इनके विचारों को आत्मसात करके पूरे देश में इनके योगदान व बलिदान को ध्यान में रखकर आज देश में उनके नाम से व उनके विचारों पर आधारित बहुमुखी विकास योजनाएँ निरन्तर संचालित की जा रही है जिससे आज देश में स्थानीय स्तर पर विकासात्मक आमूल चूल परिवर्तन हुए हैं, विशेषकर गरीबी की दिशा में शासन द्वारा संचालित योजना-''गरीबी और बेरोजगारी उन्मूलन कार्यक्रम'' के क्रियान्वयन के कारण पं. दीनदयाल उपाध्याय जी का अपना समाज के अन्तिम छोर पर खड़े गरीबों का कल्याण करना चाहते थे जो वर्तमान में पूरा होता दिखाई दे रहा है, इसके लिए स्थानीय स्वशासन पंचायतों के माध्यम से गाँवों का बहुमुखी विकास व अधोसंरचनात्मक रूप से भी ग्रामीणों को आत्मनिर्भर किया जा रहा है, जो कि मौजूदा सरकार की आत्मनिर्भरता योजना से संबंधित है। वर्तमान में स्थानीय स्तर पर परिलक्षित होता है कि पं. दीनदयाल उपाध्याय के विचारों को विभिन्न योजनाओं के द्वारा साकार किया जा रहा है, तथा ग्रामीण जनों के जीवन स्तर, गरीबी एवं बेरोजगारी सुधार में अपेक्षाकृत निरन्तर वृद्धि हो रही है। जिससे वे अपना एवं समाज का सर्वांगीण विकास कर रहे हैं, एवं राष्ट्रनिर्माण में उनकी भूमिका बहुत ही महत्वपूर्ण है। इसी दिशा में हमारे देश के माननीय प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी ने कहा कि- 'हम सब पं. दीनदयाल उपाध्याय के दिखाए मार्ग पर चले और मिलकर एक ऐसे विकसित और न्यायपूर्ण भारत के उनके सपने को पूरा करें जहाँ समाज के सर्वाधिक वंचित व्यक्ति की परवाह की जाती है।

**उद्देश्य:-**

1. वर्तमान परिदृश्य में स्थानीय स्वशासन:-वर्तमान में स्थानीय स्व. शासन प्रजातंत्र के बुनियादी मूल्यों समानता, स्वतंत्रता एवं बंधुत्व पर आधारित राजनैतिक निर्णयों में सत्ता के विकेन्द्रीकरण एवं जन सहभागिता के पारस्परिक घनिष्ठ संबंधों पर आधारित है। प्रजातंत्र की मूल मान्यता, सर्वोच्च सत्ता का जनता में निहित होना तथा सर्वोच्च शक्ति का अधिक से अधिक विकेन्द्रीकरण कर उसमें व्यक्ति की प्रत्यक्ष सहभागिता को शासन कार्यों में प्रमुख स्थान देना और इन संस्थाओं को जहाँ प्रजातंत्र की आधारशीला कहा जाता है, वही जनता को जागरूक कर लोकतंत्र के विश्वास का पाठ पढ़ाती

है।<sup>1</sup> भारत जैसे विकासशील देश में लगभग 2/3 से अधिक जनसंख्या, गाँवों में निवास करती है, वहाँ पर स्थानीय स्व-शासन की भूमिका और भी अधिक महत्वपूर्ण हो जाती है। टी. टाकविले के अनुसार—“स्वतंत्र राष्ट्रों की शक्ति स्थानीय संस्थाएँ होती हैं। एक देश स्वतंत्र शासन की स्थापना कर सकता है, लेकिन स्थानीय संस्थाओं के बिना स्वतंत्रता की भावना नहीं हो सकती है।

स्थानीय स्वशासन के प्रजातांत्रिक महत्व को देखते हुए हमारे देश के संविधान में 73 वां (ग्रामीण स्थानीय स्वशासन) 74 वां (शहरी स्थानीय स्वशासन) संविधान संशोधन करते हुए, संवैधानिक दर्जा प्रदान किया गया, तथा 24 अप्रैल 1993 को लागू किया। यह देश में केन्द्र तथा राज्य सरकार के बाद वर्तमान में तीसरे स्तर की सरकार बन गई।<sup>1</sup>

**2. गरीबी और बेरोजगारी उन्मूलन कार्यक्रमों में पं. दीनदयाल उपाध्याय का योगदान:-** स्वतंत्रता के पूर्व से ही पं. दीनदयाल उपाध्याय एकात्मक भारत तथा स्वदेशी एवं गरीब व पिछड़े वर्गों के उत्थान के लिए निरंतर प्रयास करते रहे, इस हेतु उन्होंने—अंत्योदय शब्द दिया जिससे इन लोगों का विकास हो सके। आजादी के बाद उनके सम्मान में प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी ने 98वीं जयंती के अवसर पर 25 सितम्बर 2014 को अंत्योदय दिवस की घोषणा की। साथ ही वर्तमान में इन क्षेत्रों में निवासरत लोगों के सर्वांगीण विकास तथा आत्मनिर्भर बनाने के लिए केन्द्र सरकार द्वारा विभिन्न अंत्योदय योजनाएँ चलाई जा रही हैं जिनमें दीनदयाल अंत्योदय योजना को आवास एवं शहरी गरीबी उपशमन मंत्रालय (एच.यू.पी.ए.) के तहत शुरू किया था। यह योजना राष्ट्रीय शहरी आजीविका मिशन और राष्ट्रीय ग्रामीण आजीविका मिशन का एकीकरण है। इस योजना में अभी शहरी गरीबी उन्मूलन कार्यक्रमों में केवल 790 शहरों एवं कस्बों की कवर किया है, जिससे इन क्षेत्रों के लोगों के जीवन स्तर में सुधार व मूलभूत आवश्यकताओं की आसानी से पूर्ति हो सके इसके लिए भारत सरकार निरन्तर प्रयासरत है।

**साहित्य समीक्षा:-** जोशी एण्ड भारद्वाज (2000) में अपनी पुस्तक; ‘भारत में स्थानीय प्रशासन’ के संदर्भ में लेखक ने देश के सभी राज्यों के वित्त आयोग तथा कार्मिक प्रशासन का सूक्ष्म एवं विश्लेषणात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया साथ ही ग्रामीण क्षेत्रों में व्याप्त समस्याओं जैसे भूखमरी, बेरोजगारी के समाधान हेतु केन्द्र सरकार की अंत्योदय योजनाओं के क्रियान्वयन की दिशा में ध्यान नहीं दिया गया।

जोशी आर.पी. (1998), ने “पंचायती राज के नवीन आयाम” में लेखक के द्वारा सम्पूर्ण देश की पंचायती राज व्यवस्थाओं की ऐतिहासिक, सैद्धान्तिक पृष्ठभूमि का उल्लेख के साथ ही वर्तमान पंचायत राज व्यवस्था का भी विवरणात्मक उल्लेख प्रस्तुत किया तथा केन्द्र राज्य संबंधों के टकराव से पंचायतों के विकास कार्यों में उत्पन्न बाधाओं का उल्लेख विस्तार से किया।

नरेन्द्र शिवाजी पटेल, (2016) ने अपनी पुस्तक “दीनदयाल उपाध्याय” “एकात्मक मानव दर्शन” - में दीनदयाल उपाध्याय के जीवन संघर्ष और एकात्मक राष्ट्र के प्रयासों का उल्लेख किया तथा उन्होंने कभी भी प्रसिद्धि की कामना नहीं रखी और हमेशा मानव जाति के उत्थान के लिए निरन्तर प्रयास करते रहे। साथ ही राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ से सम्पर्क व अटूट संबंध, जनसंघ स्थापना, विकास और विस्तार में भी महत्वपूर्ण योगदान दिया। साथ ही सांस्कृतिक पुनरोत्थान, चुनाव नियमों में संशोधन, भारत में स्थित विदेशी निवेश, कर नीति तथा बहुसूत्रीय बिक्री कर, पुर्नवास तथा पंचवर्षीय योजना, उक्त विषयों पर विस्तृत प्रस्ताव प्रस्तुत किए जिनका उल्लेख लेखक ने बहुत ही काल खण्डों में विश्लेषणात्मक रूप से प्रस्तुत किया है।

यतीन्द्र सिंह सिसोदिया (2001) द्वारा संपादित पुस्तक—“मध्यप्रदेश में पंचायती राज व्यवस्था के विविध आयाम” में भारत के मध्यप्रदेश राज्य की पंचायत राज व्यवस्था के सभी पहलुओं का बहुत ही विस्तारपूर्वक अध्ययन किया है साथ ही गाँवों के विकास के लिए ग्राम सभा एवम् संरपच की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। और ग्रामीण स्तर पर जो निर्णय लिए जाते हैं उसकी स्थिति आज भी सशक्त नहीं हो पाई है, जिस कारण आज भी ग्रामीण स्तर पर स्वीकृत कार्यों में ग्रामीणों की भूमिका का अभाव दिखाई देता है तथा प्रमुखता से ग्राम सभों की वास्तविक स्थिति का सूक्ष्म एवं विवेचनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया।

**शोध प्रविधि:-** वर्तमान परिदृश्य में स्थानीय स्वशासन से गरीबी और बेरोजगारी उन्मूलन कार्यक्रमों में पंडित दीनदयाल उपाध्याय के विचारों की प्रासंगिकता को जानने के लिए प्राथमिक तथा द्वितीयक स्रोतों का अध्ययन किया गया तथा शोध प्रपत्र के शीर्षक और उद्देश्य को ध्यान में रखकर उद्देश्यात्मक पद्धति का प्रयोग किया गया है।

उपर्युक्त में, स्थानीय स्व-शासन से गरीबी और बेरोजगारी उन्मूलन कार्यक्रमों में पंडित दीनदयाल उपाध्याय के योगदान को भुलाया नहीं जा सकता क्योंकि उन्होंने अपना सम्पूर्ण जीवन मानव सेवा एवं एकात्मक राष्ट्र को बनाने में समर्पित कर दिया। साथ ही ‘राष्ट्रीय स्वयं संघ’ से भी बहुत अधिक प्रभावित थे और उन्होंने इस संगठन को मजबूती प्रदान की तथा गरीब और वंचित वर्गों के उत्थान के लिए निः स्वार्थ भाव से सफल कार्य किए इस कारण देश के वर्तमान प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी भी उपाध्याय के विचारों से प्रभावित होकर निरन्तर अंत्योदय विकास योजनाएँ तथा आत्म-निर्भरता की दिशा में बहुत ही उल्लेखनीय व सराहनीय कार्य कर रहे हैं जिससे पिछड़े, गरीब व वंचित वर्गों की सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक स्थिति में आमूल चूल परिवर्तन आया है, जिससे आज इन क्षेत्रों में सड़क बिजली, पानी, स्वास्थ्य सुविधाएँ जैसी मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति संभव हो पाई है जिससे आज आम व्यक्ति भी अपने परिवार को उचित सुख-सुविधाएँ व निःशुल्क शिक्षा के माध्यम से अपना सर्वांगीण विकास कर पा रहा है। साथ ही वर्तमान परिदृश्य में केन्द्र सरकार के द्वारा सम्पूर्ण देश में निरन्तर विकासात्मक कार्यों का संचालन किया जा रहा है, जिससे देश के पिछड़े हुए राज्यों में शासकीय योजनाओं के माध्यम से लोगों के जीवन स्तर को सुधारने के प्रयास किए जा रहे हैं।<sup>1</sup> प्रमुखता से गरीबी और बेरोजगारी उन्मूलन कार्यक्रमों पर अधिक बल दिया जा रहा है ताकि पं. दीनदयाल उपाध्याय के उद्देश्यों को पूरा किया जा सके और आम जनता एकात्मक मानववाद की विचारधारा से ग्रामीण लोगों को आर्थिक रूप से आत्म-निर्भर बनाना चाहते थे। इस दिशा में निरन्तर प्रयासरत है जिसके लिए केन्द्र सरकार तथा राज्य सरकारों द्वारा संचालित विभिन्न विकास योजनाएँ जो इस प्रकार हैं:-

1. दीनदयाल अंत्योदय योजना - राष्ट्रीय आजीविका मिशन (NRLM) (2016) द्वारा जून 2011 में स्वर्ण जयंति ग्राम स्वरोजगार योजना (SGSY) शुरू की गई।
2. दीनदयाल अंत्योदय उपचार योजना।
3. दीनदयाल उपाध्याय ग्राम ज्योति योजना।
4. अन्नपूर्णा योजना।
5. राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा मिशन।
6. प्रधानमंत्री आवास योजना।
7. अत्याचार निवारण अधिनियम के तहत आर्थिक सहायता।

8. रिकल इंडिया मिशन (28, अगस्त 2014) युवाओं में कौशल विकास ।
9. स्वच्छ भारत मिशन (2 अक्टूबर 2014)
10. बेटी बचाओ, बेटी पढ़ाओ (22 जनवरी 2015) – इस योजना का लक्ष्य लड़कियों को पढ़ाई के माध्यम से सामाजिक तथा वित्तीय तौर पर आत्म-निर्भर बनाना है ।
11. अमृत योजना (25 जून 2015)
12. ग्रामोदय से भारत उदय (14 अप्रैल 2016) देश में सही विकास के लिए गाँवों का विकास करने पर बल देना ।
13. प्रधानमंत्री सुरक्षा बीमा योजना (9 मई, 2015)
14. उक्त शासन की योजनाओं के माध्यम से गरीब व वंचित वर्गों के सामाजिक और आर्थिक उत्थान में सर्वाधिक भागीदारी सुनिश्चित हो रही है, जिसके कारण यह लोग अपना व अपने समाज तथा देश के विकास में भी बहुत महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन कर रहे हैं, जिससे आज देश लगातार बहुमुखी विकास की ओर बढ़ रहा है।<sup>10</sup>

5. [www.ajtak.com](http://www.ajtak.com)
6. <http://www.jagran.com>
7. कलवार सुगनचन्द्र एवं तेजराम मीणा (2001); निर्धनता उन्मूलन एवं ग्रामीण विकास
8. नई दुनिया 25 सितम्बर 2022
9. कुरुक्षेत्र (मार्च 2021)
10. पत्रिका: 25 सितम्बर, 2022

उक्त तथ्यों के आधार पर वर्तमान परिदृश्य में स्थानीय स्वशासन से गरीबी और बेरोजगारी उन्मूलन कार्यक्रमों के क्रियान्वयन में पं. दीनदयाल उपाध्याय के उद्देश्यों की प्रासंगिकता का पता चलता है तथा स्वतंत्रता के बाद से भारतीय राजनीति का केन्द्र बिन्दु ग्रामीणों का आर्थिक विकास रहा है जिसमें गरीबी और बेरोजगारी दूर करने के लिए कार्यक्रमों को उच्च प्राथमिकता दी गई है और सरकार द्वारा ग्रामीणों के उत्थान के लिए बेरोजगारी उन्मूलन कार्यक्रमों के क्रियान्वयन पर विशेष ध्यान दिया जा रहा है। इस दिशा में पं. दीनदयाल उपाध्याय एक मजबूत और सशक्त भारत चाहते थे। वे एक समावेशी विचारधारा के समर्थक थे जो एकात्मक मानववाद की विचारधारा से ग्रामीण लोगों से आर्थिक रूप से आत्म-निर्भर बनाना चाहते थे। आज इन्हीं विचारों को आगे बढ़ाते हुए सरकार द्वारा ग्रामीण क्षेत्रों में सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक तरीके से भारतीय संस्कृति का एकीकरण पर बल दिया जा रहा है साथ ही वर्तमान में ग्रामीण क्षेत्रों में स्थानीय स्व-शासन से गरीबी और बेरोजगारी उन्मूलन कार्यक्रमों में विशेष रूप से ग्रामीण क्षेत्रों की आर्थिक कमजोरियों को दूर करते हुए अपनी मजबूत कृषि की दिशा में विकास कार्य निरंतर किए जा रहे हैं विशेषकर पंचायतों ने बहुत ही महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन किया है जैसे गाँवों में तालाब सड़क, बिजली की पर्याप्त व्यवस्था, स्वास्थ्य, स्वच्छता, शिक्षा, कुटीर उद्योग, राशन व्यवस्था, मनरेगा जैसे महत्वपूर्ण कार्यों के माध्यम से ग्रामीण जनों को रोजगार भी दिया जा रहा है जिससे ग्रामीण जनों का सर्वांगीण विकास सम्भव हुआ है और वे वर्तमान में भारत शासन के आत्मनिर्भरता अभियान में सक्रिय भूमिका का निर्वहन कर रहे हैं।

संदर्भ सूची:-

1. द्विवेदी संजय – 'भारतीयता का संचारक' (पं. दीनदयाल उपाध्याय)
2. दीनदयालय उपाध्याय (2016) – "सम्पूर्ण वाङ्मय", प्रभात प्रकाशन नई दिल्ली
3. दीनदयालय उपाध्याय (2015) दो योजनाएँ (P.B.); प्रभात प्रकाशन नई दिल्ली।
4. दैनिक भास्कर समाचार पत्र 25 सितम्बर 2016

# वंचितों के लिए समावेशी शिक्षा : चिंताएं, चुनौतियां तथा उनकी भावी नीतियाँ

कल्पेश व्यास

प्रो. ममता गुप्ता

1. शोधार्थी, जे. एस. विश्वविद्यालय, शिकोहाबाद, उ. प्र.
2. डीन (शिक्षाशास्त्र), जे. एस. विश्वविद्यालय, शिकोहाबाद, उ. प्र.

**सारांश:-** परिवर्तन की किसी की प्रक्रिया को मिश्रित प्रयासों या जाति/जनजाति, लिंग और अंतर-वर्गीयता पर सावधानी से गौर करना होगा। दलित और जनजातीय लड़कों व लड़कियों के लिए, विद्यालय ऐसा होना चाहिए, जो उन्हें उनके ऐतिहासिक पूर्ववृत्तों और किसी समुदाय विशेष जन्म लेने की वजह से मिले अभावों से मुक्ति दिलाए। विद्यालय और समाज, दोनों को इन समुदायों के बच्चों के प्रति समावेशी, न्यायोचित और निष्पक्ष रवैया अपनाने की आवश्यकता है, ताकि भारतीय समाज सही मायनों में ऐसा लोकतांत्रिक समाज होने का दावा कर सके, जहां सभी नागरिकों से बराबरी का व्यवहार होता है

**प्रस्तावना:-** देश नई शिक्षा नीति को अपनाकर आगे बढ़ने के लिए तत्पर है। विशेषज्ञों से लेकर आम जनता तक सबसे महत्वपूर्ण सुझाव मांगा गया। मन में स्वाभाविक ही प्रश्न खड़ा होता है कि ऐसा क्यों करना पड़ रहा है? क्या अभी तक की हमारी जो शिक्षा नीति थी, वह गलत थी या क्या वह नीति आज के समय के अनुकूल नहीं रही? क्या समय बदलने से शिक्षा नीति का बदलना भी आवश्यक हो जाता है? क्या शिक्षा समय सापेक्ष होती है? प्रश्न यह भी है कि क्या शिक्षा का स्वरूप समय के साथ परिवर्तनीय है? इन प्रश्नों का उत्तर ढूंढने जाएं तो एक और प्रश्न मिलता है कि आखिर हम शिक्षा कहते किसको हैं?

सबसे पहले भारत सरकार के शिक्षा मंत्रालय से यदि शिक्षा की परिभाषा जानने की कोशिश की जाए तो उसकी वेबसाइट पर प्रारंभिक शिक्षा के बारे में पहली ही पंक्ति में कहा गया है कि, हमारे गणतंत्र के आरंभ से ही हमने हरेक को समान अवसर प्रदान करने की बात कही है। लोकतंत्र के सामाजिक तंतुओं को मजबूत बनाने में वैश्विक प्रारंभिक शिक्षा का महत्व स्वीकार किया था। इस पंक्ति में दो-तीन बातें महत्वपूर्ण हैं। पहली बात है कि शिक्षा के लिए एक विशेषण प्रयोग किया गया है वैश्विक। यानि कि जो शिक्षा भारत में दी जा रही है, वह वैश्विक शिक्षा है। वैश्विक शब्द का प्रयोग एक अर्थ में यह सुनिश्चित करता है कि वह चीज भारत की न हो, विदेश से आयातित हो। जो जो शिक्षा हम अपने देश में देना चाहते हैं, उसका मूल स्वर ही भारतीय नहीं है। वह आयातित है। दूसरी बात कही गई है, लोकतंत्र को मजबूत बनाने में शिक्षा की सामाजिक भूमिका के बारे में। यानि देश के बच्चों को दी जाने वाली शिक्षा केवल लोकतंत्र को मजबूत बनाने के लिए है। अंत में तीसरी बात कही गई है शिक्षा हर किसी को समान अवसर दिए जाने की।

इसी वेबसाइट पर दो-तीन और भी स्थानों पर इस बात को दोहराया गया है कि देश में दी जा रही शिक्षा का मूल उद्देश्य संविधान में वर्णित समाजवाद, सेकुलरवाद और लोकतंत्र के लक्ष्य को पाने के लिए लोगों की राष्ट्रीय एकात्मता, वैज्ञानिक स्वभाव और स्वाधीन मस्तिष्क तैयार करना है। साथ ही सामाजिक आर्थिक संतुलन स्थापित करना भी इस शिक्षा का एक उद्देश्य है। इस प्रकार हम पाते हैं कि आज देश में दी जाने वाली शिक्षा का उद्देश्य पूरी तरह राजनीतिक है। इस अर्थ में यदि हम कहें कि आज हमें अपनी शिक्षा नीति की समीक्षा करने की आवश्यकता है, तो यह बिल्कुल ही सुसंगत बात है। दुर्भाग्यवश यह बात सच नहीं है।

शिक्षा वह साधन है, जिसके माध्यम से हमारे जैसे आधुनिक समाज में व्यक्ति और वर्ग सामाजिक परिवर्तन लाते हैं। यह सामाजिक व्यवस्था के पुनर्निर्माण का भी माध्यम है, जो सामान्यतः पदानुक्रम रूप से व्यवस्थित है और जहां सर्वत्र असमानताएं व्याप्त हैं। भारतीय समाज में, जो अनिवार्य और ऐतिहासिक रूप से जातीय आधार पर संरचित है, जहां सामाजिक असमानताएं प्राथमिक तौर पर जातीय आधार पर बनती और नए सिरे से पनपती रहती हैं। आर्थिक साधनों, सामाजिक हैसियत, राजनीतिक भागीदारी और शैक्षिक अवसरों के संदर्भ में कुछ जातियां विशेषाधिकार प्राप्त हैं और कुछ नहीं हैं। अनुसूचित जातियां जैसी जातियां, जो विशेषाधिकारों से बंचित हैं, वे परंपरागत पेशेवर वर्गीकरण के सबसे निचले पायदान पर हैं और उन्हें विशेषकर ग्रामीण समाज में आमतौर पर समाज की स्थानिक एवं सामाजिक सीमाओं भी से दूर रखा जाता है। इसी तरह, मोटे तौर पर भारतीय समाज में हाशिए पर रहा एक अन्य वर्ग अनुसूचित जातियां हैं, जो भौगोलिक रूप से अलग-थलग, तथाकथित 'व्यवस्थित', 'मुख्यधारा', 'सभ्य' समाज से दूर जंगलों, पहाड़ों और दुर्गम इलाकों में अपनी अनोखी संस्कृतियों, धार्मिक पद्धतियों, भाषाओं और जीवन शैलियों के साथ रहती हैं। जहां एक ओर इन वर्गों का जीवन भारतीय समाज के अन्य सामाजिक वर्गों से भिन्न है, वहीं उनके जीवन में आस-पास की प्रकृति के साथ एक अनोखी समकालिकता भी है। हालांकि भौगोलिक अलगाव के कारण विकसित समाज के सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक एवं शैक्षिक क्षेत्रों में इन वर्गों की भागीदारी भी असमान रही है।

इसके परिणामस्वरूप, ये जातियां और जनजातियां कई दशकों और सदियों तक सामाजिक-आर्थिक विकास के हाशिए पर रही हैं और

पराधीन व वंचित जीवन बिताने को बाध्य रही हैं। हालांकि स्वाधीनता के पश्चात, भारत को लोकतांत्रिक समाज बनाने, सभी नागरिकों को उनको सामाजिक पहचान और उनके वर्ग की परवाह किए बगैर, समान अधिकार प्रदान करने से, जाहिर तौर पर शिक्षा सहित सामाजिक जीवन के सभी क्षेत्रों में उनकी भागीदारी की स्थिति में सचमुच आमूलचूल बदलाव आया है। हालांकि ऐतिहासिक रूप से विशेषाधिकार प्राप्त वर्गों की तुलना में समाज और शैक्षिक क्षेत्र में इन वर्गों की समावेशिता का स्तर भिन्न रहा है।

**मुद्दे:-**जहां एक ओर, इन वर्गों ने शिक्षा के क्षेत्र में कुछ हद तक प्रगति हासिल की है, वहीं वे कुछ अन्य संदर्भों में पीछे छूट गए हैं, जिसकी वजह से वे शैक्षणिक, विकासात्मक और सामाजिक प्रक्रिया में परिवर्तन की प्रक्रियाओं में निरंतर हाशिए पर बने हुए हैं, इस तरह मुख्य धारा में लाने के लिए समाज में बराबरी पर लाने की दिशा में काफी काम करना बाकी है। शिक्षा के सभी स्तरों में से एक क्षेत्र में, जहां इन वर्गों ने जबरदस्त प्रगति दर्शाई है वह है दाखिला लेने के संदर्भ में।

प्राथमिक शिक्षा में, सुनियोजित और औपचारिक शिक्षा की प्रथम कक्षा के स्तर पर, नामांकन विशेषाधिकार प्राप्त लोगों के समान ही है लेकिन पांचवीं कक्षा तक आते-आते, इनकी संख्या सिकुड़ती प्रतीत होती है। उदाहरण के तौर पर राष्ट्रीय शैक्षिक योजना एवं प्रशासन विश्वविद्यालय (एनयूईपीए) द्वारा प्रकाशित भारत सरकार की रिपोर्ट सबके लिए शिक्षा: गुणवत्ता और समानता की ओर दर्शाती है कि प्राथमिक शिक्षा में दाखिला लेने वाले अनुसूचित जाति के बच्चों की संख्या एक दशक में 24.1 प्रतिशत वृद्धि दर्ज की गई। इसी तरह, इसी दशक में प्राथमिक शिक्षा में दाखिला लेने वाले अनुसूचित जनजातियों के बच्चों की संख्या 33.6 प्रतिशत वृद्धि दर्ज की गई। उच्च प्राथमिक स्तर पर भी अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों दोनों ने महत्वपूर्ण प्रगति शिक्षा में नामांकन के रूप में हुआ।

दिलचस्प बात यह है कि रिपोर्ट में अनुसूचित जातियों में लड़कियों के सकल नामांकन अनुपात (जी0ई0आर0) में लड़कों की तुलना में वृद्धि दर्शायी गई है, जो अनुसूचित जाति की लड़कियों के लिए अनुसूचित जाति के लड़कों से काफी अधिक है (अनुसूचित जाति की लड़कियों के लिए 48.6 और अनुसूचित जाति की लड़कियों के लिए 18.8 प्रतिशत)। इसका आशय है कि अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के माता-पिता और समुदाय लड़के और लड़कियों दोनों का दाखिला प्राथमिक स्कूल (प्राथमिक और उच्चतर प्राथमिक दोनों) कक्षाओं में करवा रहे हैं और उनमें बच्चों को साक्षर एवं शिक्षित बनाने की बेताबी प्रदर्शित हो रही है। इस तरह, दाखिलों, सकल नामांकन अनुपात और प्राथमिक शिक्षा के स्तर पर विशेषकर दाखिला लेने वाली लड़कियों की संख्या में वृद्धि सचमुच स्वागत योग्य घटना है और हम सभी के लिए खुशी की बात है।

कुछ विश्लेषक यह दावा कर सकते हैं कि पढ़ाई अधूरी छोड़ने वालों की तादाद इतनी ज्यादा होने के बावजूद, बीते वर्षों में इस रुझान में सचमुच कमी आई है। हालांकि इस दलील और स्पष्टीकरण से, प्राथमिक शिक्षा के सार्वभौमिकरण का समग्र लक्ष्य प्राप्त करने में कोई मदद नहीं मिलेगी, इस प्रकार यह देश के लिए, अपने समस्त बच्चों के लिए बुनियादी शिक्षा के प्रावधान का दावा करने की दिशा में एक प्रमुख रुकावट बना रहेगा। बच्चों के स्कूली पढ़ाई अधूरी छोड़ने और पढ़ाई जारी रखने का मामला तब और ज्यादा ध्यान आकृष्ट करता है, जब वे शिक्षा के उच्चतर स्तरों पर पहुंच चुके होते हैं। इसका आशय यह है कि बच्चे और उनके माता-पिता स्कूल में

दाखिला लेने तक तो उत्साहित रहते हैं लेकिन शिक्षा के उपयुक्त स्तर पर पहुंचने तक स्कूल में पढ़ाई जारी रखने को लेकर वे ज्यादा उत्साहित नहीं होते।

अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजातीय घरों से आने वाले बच्चों के लिए, इसका आशय है वे ज्यादातर ऐसे परिवारों से होते हैं, जो निरक्षर अथवा बहुत कम पढ़े लिखे होते हैं और इस तरह वे शिक्षा और देश में हो रहे विकास से लाभान्वित होने के संदर्भ में हाशिए पर अथवा सुविधाहीन स्थिति में बने रहेंगे। दरअसल, अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजातियों के लोगों की तकलीफें और सुविधाहीनता संभवतः और बढ़ जाएं। क्योंकि अन्य सामाजिक वर्ग साक्षरता और शिक्षा के क्षेत्र में ऐतिहासिक रूप से लाभ की स्थिति में होने के कारण शिक्षित रोजगार बाजार में खुल रहे नए क्षेत्रों से लाभ उठाने के लिए पहले से ही काफी तेज रफ्तार से आगे बढ़ रहे हैं। इस प्रकार, एक तरह से, सुविधाहीनों के शिक्षा प्राप्त करने की स्थिति में मामूली अथवा नगण्य सुधार होने के परिणामस्वरूप समाज में असमानताएं गहरी गई हैं।

**चुनौतियां:-**अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजातियों के बच्चों के लिए, ऑपरेशन ब्लैकबोर्ड (ओबीबी), राष्ट्रीय साक्षरता अभियान (एनएलसी), जिला प्राथमिक शिक्षा कार्यक्रम (डीपीईपी) और सर्व शिक्षा अभियान (एसएसए) जैसे कदमों की बढौलत स्कूलों तक पहुंच वास्तविक और सामाजिक रूप से काफी हद तक संभव हो सकी है लेकिन स्कूल उन्हें अपनी पढ़ाई जारी रखने और कम से कम शिक्षा के बुनियादी स्तर तक की पढ़ाई पूरी करने के लिए आकर्षित नहीं कर पाते। निश्चित रूप से अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजातियों के बच्चों को स्कूलों तक वास्तविक पहुंच पहले से कहीं ज्यादा अब कायम हुई है लेकिन स्कूल के सभी बच्चों, खास तौर पर अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजातियों के बच्चों के लिए समान शैक्षिक अनुभव की जगह होने की स्थिति में ज्यादा बदलाव नहीं आया है। गरीबी, सामाजिक वर्ग, जाति और सामाजिक पहचान के ढांचे ऐसे रूप से फिर से निर्मित हुए हैं कि उन्होंने विभिन्न सामाजिक पृष्ठभूमि के बच्चों, शिक्षकों और बच्चों तथा शिक्षकों और बच्चों के माता पिता के बीच असमानताओं की खाई को और चौड़ा कर दिया है। इसके साथ-साथ शिक्षक की उदासीनता और भेदभावपूर्ण रवैया इन समुदायों के बच्चों को स्कूल से दूर रखता है और स्कूल को सीखने के लिए प्रतिकूल जगह बनाता है।

अध्ययनों से यह प्रतीत होता है कि शिक्षक इन समुदायों के बच्चों के प्रति भेदभावपूर्ण और उन्हें बहिष्कृत रखने का रवैया अपनाते हैं और वे समझते हैं कि इन समुदायों के बच्चे सीखने और शिक्षा प्राप्त करने की दृष्टि से बेवकूफ अयोग्य और अनुपयुक्त हैं और वे परंपरागत तुच्छ कार्यों को अंजाम देने अथवा जंगलों और पहाड़ों के आसपास रहने के लिए ही उपयुक्त हैं। कुछ शोधकर्ताओं ने तो यहां तक प्रदर्शित किया है कि समझा जाता है कि जनजातीय बच्चे आलसी, गंदे और असभ्य हैं और इसलिए वे सीखने के लायक नहीं हैं। अध्ययनों ने यह भी प्रमाणित किया है कि अस्पृश्यता और सामाजिक एवं भौगोलिक अलगाव के विचार सामान्य तौर पर समाज में ही नहीं, बल्कि स्कूलों में भी फिर से पनप चुके हैं। अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति समुदायों के बच्चों के प्रति सामाजिक भेदभाव और उन्हें बहिष्कृत रखने के स्वैये के अनुभव, इन वर्गों और अन्य गरीब और सुविधाहीन वर्गों के बच्चों की पढ़ाई जारी रखने के उद्देश्य से बनाई गई मध्याह्न भोजन योजना के कार्यान्वयन के समय बखूबी दर्ज किया जा चुका है।

दिलचस्प बात यह है, कि भेदभावपूर्ण व्यवहार की रिपोर्ट्स सिर्फ

ग्रामीण क्षेत्रों तक ही सीमित नहीं है, बल्कि ऐसे मामले शहरों में भी सामने आते रहे हैं। शोधों से यह स्पष्ट हो चुका है कि सामाजिक अलगाव सामान्य तौर पर शहरी समाज में और खासतौर पर शहरी स्कूलों में भी मौजूद है। इस तरह, सामाजिक भेदभाव गुमनाम और अवैयक्तिक सामाजिक क्षेत्रों में मोटे तौर पर फिर से उभर चुका है। हालांकि इसकी प्रकृति और स्वरूप ग्रामीण क्षेत्रों में होने वाले भेदभाव से भिन्न है।

**भावी योजना:-**बच्चों की स्कूली शिक्षा जारी रखने और उन्हें स्कूली पढ़ाई अधूरी छोड़ने से रोकने के लिए, सरकारों, स्कूलों और समुदायों के लिए यह बहुत आवश्यक है कि वे समस्त बच्चों, विशेषकर अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजातीय पृष्ठभूमि से आने वाले बच्चों को स्कूल में भेदभावरहित वातावरण उपलब्ध कराएं। यदि स्कूल इन बच्चों के अरुचिकर और प्रतिकूल स्थान बना रहेगा, तो ऐसे में स्कूली शिक्षा में इन बच्चों की समग्र शैक्षिक भागीदारी की दिशा में बहुत करना बाकी रह जाएगी, जिससे असमानताओं की खाई और भी चौड़ी हो जाएगी, जैसा कि पहले उल्लेख किया जा चुका है।

इसलिए अब जरूरत इस बात की है कि महज शिक्षा के प्राथमिक और बाद के स्तरों पर दाखिला लेने तक सीमित न रहकर उनसे आगे बढ़ा जाए। स्कूल जैसे ही उल्लास और व्यापक रूप से सीखने की जगह बनेगा, वह इन वर्गों के बच्चों को शिक्षा के उच्च स्तरों तक पहुंचने में सहायक होगा, जिससे उनका शिक्षित श्रम बाजार में समावेश सुनिश्चित हो सकेगा। हम पहले ही देख चुके हैं कि है।

दिव्यांग, पिछड़े और अनुसूचित जनजातियों के लोग पहले से कहीं अधिक तादाद में सीमाएं तोड़कर उच्च शैक्षिक संस्थानों में प्रवेश कर रहे हैं और काफी अधिक मांग वाले विविध विषयों में कदम रख रहे हैं, जिससे आखिरकार भारतीय समाज की पेशेवर और आर्थिक संरचनाओं में बदलाव आएगा, जिसकी बंदौलत देश के समग्र विकास में योगदान दे सकने वाला कुशल और शिक्षित व्यवसायियों का समूह तैयार होगा।

समावेशी शिक्षा के लिए लड़कियों को साथ जोड़ने और उनकी स्कूल तक पहुंच संभव बनाने के लिए विशेष प्रयास करना एक महत्वपूर्ण चुनौती है, क्योंकि अपने वर्ग के लड़कों की तुलना में ये लड़कियां जाति/जनजाति, जेंडर और सामाजिक वर्ग के संदर्भ में दोगुना या तीन गुना ज्यादा सुविधाहीन हैं।

इन समुदायों की लड़कियां जाति/जनजाति और सामाजिक वर्ग के संदर्भ में सुविधाहीन हैं, जिससे उनका शिक्षा से बहिष्कृत रहना और ज्यादा बढ़ जाता है। इसलिए परिवर्तन की किसी की प्रक्रिया को मिश्रित प्रयासों या जाति/जनजाति, जेंडर और सामाजिक वर्ग की अंतर-वर्गीयता पर सावधानी से गौर करना होगा। दलित और जनजातीय दोनों के लड़कों व लड़कियों के लिए, स्कूल ऐसा होना चाहिए, जो उन्हें उनके ऐतिहासिक पूर्ववृत्तों और किसी समुदाय विशेष जन्म लेने की वजह से मिले अभावों से मुक्ति दिलाए। स्कूल और समाज, दोनों को इन समुदायों के बच्चों के प्रति ज्यादा समावेशी, न्यायोचित और निष्पक्ष रवैया अपनाने की आवश्यकता है, ताकि भारतीय समाज सही मायनों में ऐसा लोकतांत्रिक समाज होने का दावा कर सके, जहां सभी नागरिकों से बराबरी का व्यवहार होता है।

**संदर्भ सूची:-**

1. भारत की जनगणना-2011, प्रकाशन विभाग, भारत सरकार,

नई दिल्ली, 2012

2. शर्मा, राकेश, भारत में महिला साक्षरता - एक परिदृश्य (लेख), प्रतियोगिता दर्पण, आगरा, 2007
3. पालीवाल, सुभाषिणी, भारत में महिला शिक्षा और साक्षरता, कल्याणी, शिक्षा परिषद्, दिल्ली।
4. पांथरी, प्रो० शैलेन्द्र व सिंह, डॉ० अमरेंद्र प्रताप, आधुनिक भारत का सामाजिक इतिहास, मिश्रा ट्रेडिंग कारपोरेशन, वाराणसी, 2000
5. योजना आयोग अंक जून 2016

# श्रीरामभद्राचार्य जी कृत 'श्रीनीराजनवल्लि' में देवत्व का चित्रण और उनकी आध्यात्मिक दृष्टि

सुरेश चंद मीना

डॉ. दिनेश कुमार शुक्ल

1. शोधार्थी, राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, बूंदी, संबंद्ध - कोटा विश्वविद्यालय, कोटा, राजस्थान
2. आचार्य, शोधार्थी, राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, बूंदी, संबंद्ध - कोटा विश्वविद्यालय, कोटा, राजस्थान

**परिचय:-** इस शोध पत्र का उद्देश्य श्रीरामभद्राचार्य की रचनाओं के माध्यम से उनके दृष्टिकोण और भगवान् के विभिन्न रूपों के चित्रण को समझना है। श्रीरामभद्राचार्य का काव्य भक्ति साहित्य का अद्वितीय उदाहरण है, जिसमें उन्होंने भगवान श्रीराम, शिव, कृष्ण और अन्य देवताओं के दिव्य रूपों का विस्तृत वर्णन किया है। उनकी रचनाओं में न केवल इन देवताओं के गुणों और स्वरूप का व्याख्यान किया गया है, बल्कि भक्ति, धर्म और आध्यात्मिकता के उच्चतम आदर्शों का भी उद्घाटन किया गया है। उनका लेखन भक्तिपंथ के संदर्भ में अत्यंत महत्वपूर्ण माना जाता है, जो भावनात्मक, धार्मिक और आध्यात्मिक दृष्टिकोण से एक गहरी समझ प्रदान करता है।

**1. श्रीराम का चित्रण:-** श्रीरामभद्राचार्य की रचनाओं में श्रीराम का चित्रण केवल एक आदर्श पुरुष के रूप में नहीं किया गया, बल्कि उन्हें जीवन के प्रत्येक पहलू में धर्म, सत्य और न्याय का प्रतीक माना गया है। श्रीराम का जीवन संघर्षों और बलिदानों से भरा हुआ था, लेकिन उन्होंने कभी भी अपने कर्तव्यों से मुंह नहीं मोड़ा। उनके प्रति भक्ति का संदेश इस रचना में अत्यधिक गहरे भाव से व्यक्त किया गया है। श्रीराम को 'नवमेघश्याम' के रूप में प्रस्तुत किया गया है, जो परमात्मा का आदर्श रूप है और उनके जीवन में कोई भी दोष नहीं है।

(श्रीराम का आदर्श जीवन):

वन्दे भागवतं प्रभु वन्दे भागवतम्। वेदकल्पतरुसुफलं, वेदव्यासकृतम्।

प्रणमामि त्वां प्रणमामि॥

इस श्लोक में श्रीराम के आदर्श जीवन की नींव, वेदों और धर्म के उच्चतम सिद्धांतों पर आधारित है। यहाँ भगवान श्रीराम को आदर्श रूप में देखा गया है, जो वेदव्यास द्वारा रचित वेदों के अनुरूप होते हुए सत्य, धर्म और आदर्शों के पालनकर्ता थे। उनका जीवन सम्पूर्ण संसार के लिए एक आदर्श था। वे हर कार्य में सत्य, न्याय और धर्म का पालन करते हुए सच्चे नेतृत्व की मिसाल प्रस्तुत करते थे।

**2. श्रीराम के जीवन के सिद्धांत:-**

विशद भगवदावतारं, रामगुणारामम्। प्रभु रामगुणारामम्,

पुण्यश्लोक सुकीर्त्या, पूरितजनकामम्। प्रणमामि त्वां प्रणमामि॥

यह श्लोक श्रीराम के जीवन में उनके गुणों और उनके नेतृत्व का उत्सव है। श्रीराम को 'रामगुणाराम' के रूप में प्रस्तुत किया गया है, जो उनके हर कार्य और विचार में गुण और आदर्श का प्रतीक है। वे पुण्य प्रतीक हैं, उनका हर कार्य सत्य, धर्म और अच्छाई का संवर्धन करता था। वे न केवल आदर्श राजा थे, बल्कि उन्होंने समाज को एक दिशा दी, जिसमें हर व्यक्ति को अपने कर्तव्यों

का पालन करते हुए धर्म का पालन करना था।

**2. शिव का दिव्य रूप:-** 'श्रीनीराजनवल्लि' शिव के रूप में श्रीरामभद्राचार्य ने न केवल भगवान् शिव के गुणों का वर्णन किया, बल्कि उनके द्वारा दी जाने वाली शरण और मुक्ति को भी महत्वपूर्ण माना। शिव को 'गौरीशं' और 'नीलकण्ठ' जैसे शब्दों से व्यक्त किया गया है, जो उनकी दिव्यता और अतुलनीय रूप को दर्शाते हैं। शिव को ऋभवनिधिपतितमनीशं के रूप में चित्रित किया गया है, जो उनके सभी भक्तों के लिए शरणदाता और दुखों का नाश करने वाले हैं। यथा:-

वन्दे गौरीशं प्रभु वन्दे गौरीशम्। नीलकण्ठबिबुधेशं गुणगणवारीशम्॥

जय देव जय महादेव॥ गंगाधरशशिशेखरशङ्करकामारे।

प्रभु शंकरकामारे व

यहाँ भगवान् शिव के अद्वितीय रूप का विस्तृत वर्णन है। यहाँ पर भगवान् शिव को 'गौरीशं' के रूप में पूजा जा रहा है, जिसका अर्थ है, 'गौरी के पति' या 'शिव'। उन्हें 'गंगाधर', 'शशिशेखर' और 'नीलकण्ठ' के रूप में प्रस्तुत किया गया है, जो उनके दिव्य रूपों का प्रतीक हैं। भगवान् शिव को 'गुणगणवारीशं' कहा गया है, अर्थात् वे गुणों के अधिपति हैं। उनका जीवन शरणागत वत्सल और समस्त देवताओं का रक्षक है। यह श्लोक भगवान् शिव के विविध रूपों, उनके दिव्य गुणों और उनके ब्रह्मांडीय महत्व को प्रदर्शित करता है।

**2. शिव के शक्तिशाली रूप का चित्रण**

भवनिधिपतितमनीशं मामव त्रिपुरारे। जय देव जय महादेव।

रजतकुन्दशशिसुन्दर गौरसतीस्वामिन्॥ प्रभु गौरसतीस्वामिन्॥

श्रीनीराजनवल्लि के इस उद्धरण में भगवान् शिव की असीम शक्ति और उनके महिमाओं का गान करता है। उन्हें 'त्रिपुरारे' के रूप में संबोधित किया गया है, जो 'त्रिपुरासुरों के संहारक' के रूप में जाने जाते हैं। 'गौरसतीस्वामिन्' से उनका नाम लिया गया है, जो दर्शाता है कि वे देवी गौरी के स्वामी हैं। श्लोक में भगवान् शिव के रजत, चन्द्रमणि की सुंदरता और उनके शक्तिशाली रूप का जिक्र किया गया है। यहाँ भगवान् शिव की महिमा और उनकी अपार शक्ति का स्पष्ट चित्रण किया गया है।

**3. कृष्ण का दिव्य स्वरूप:-** 'श्रीनीराजनवल्लि' में भगवान् कृष्ण के रूप में, श्रीरामभद्राचार्य ने उनके जीवन और उनके कार्यों को प्रेम, करुणा और आध्यात्मिकता के रूप में प्रस्तुत किया है। कृष्ण को 'गोपीजनस्वामिन्' और 'वृन्दावनचारिन्' के रूप में वर्णित किया गया है, जो केवल प्रेम और आनंद के प्रतीक हैं। कृष्ण का जीवन एक अनंत प्रेम की लीला है, जो उनके भक्तों के हृदय

में स्थायी रूप से निवास करती है। उनके द्वारा किए गए कार्यों को भक्ति और प्रेम का सर्वोत्तम रूप माना गया है। यथा:-

वन्दे गोपालं प्रभु वन्दे गोपालम् । नन्दयशोदाबालं कंसासुरकालम् ।  
जय कृष्ण जय श्रीकृष्ण ॥

‘श्रीनीराजनवल्लि’ के इस उद्धरण में भगवान श्री कृष्ण के बाल रूप को दर्शाता है। यहाँ श्री कृष्ण को ‘गोपाल’ (गोपों के स्वामी) और ‘नन्दयशोदाबाल’ (नन्द और यशोदा के पुत्र) के रूप में पूजा जा रहा है। उनका रूप बालक रूप में निर्दोष और नटखट है, जो कंस जैसे असुरों को भी परास्त करता है। ‘कंसासुरकाल’ का उल्लेख उनके शत्रु कंस के विनाश के संदर्भ में है, जो श्री कृष्ण के सामर्थ्य और धर्म की रक्षा के प्रतीक हैं। और:-

वासुदेव मधुसूदन, गोपीजनस्वामिन् । प्रभु गोपीजनस्वामिन् ।  
सजल पयोद मनोहर, हृदयान्तर्यामिन् ॥ जय कृष्ण जय श्रीकृष्ण ॥

यहाँ श्री कृष्ण के उच्चतम रूपों का वर्णन करता है। ‘वासुदेव’ और ‘मधुसूदन’ के रूप में श्री कृष्ण ब्रह्मा के अवतार और असुरों के संहारक हैं। ‘गोपीजनस्वामिन्’ उन्हें गोपियों के स्वामी के रूप में सम्मानित करता है, जो उनकी प्रेम और समर्पण के प्रतीक हैं। ‘सजल पयोद मनोहर’ के माध्यम से श्री कृष्ण के रूप में सुंदरता और आनंद का प्रतिबिंब प्रस्तुत किया गया है, जो मनुष्य के हृदय में शांति और प्रेम का संचार करते हैं। इस श्लोक में उनके दिव्य रूप की ओर संकेत किया गया है, जो सबको आनंदित और पवित्र करता है।

यह श्लोक कृष्ण की प्रेममूर्ति को प्रकट करता है, जो जीवन के कष्टों से पार करने के लिए भक्ति का सर्वोत्तम मार्ग है। कृष्ण के चरणों में समर्पण से जीवन में सुख और शांति की प्राप्ति होती है।

4. श्रीरामभद्राचार्य की भक्ति और आध्यात्मिक दृष्टि:-  
‘श्रीरामभद्राचार्य’ जी की भक्ति न केवल भक्ति साहित्य का एक अंग है, बल्कि यह एक गहरे आध्यात्मिक संबंध का परिणाम है। उनके स्तोत्र काव्य में भक्ति के रूप में भगवान् के प्रति पूर्ण समर्पण की भावना व्यक्त की गई है। उनका विश्वास था कि भगवान् केवल हमारे आराध्य नहीं हैं, बल्कि हमारे जीवन के हर पहलू में उनका अस्तित्व है। उन्होंने भक्ति को केवल पूजा और अनुष्ठान तक सीमित नहीं रखा, बल्कि इसे एक आंतरिक यात्रा के रूप में देखा, जिसमें आत्मा भगवान् से जुड़ने की कोशिश करती है।

भक्ति और समर्पण:-

1. श्रीराम के प्रति भक्ति और समर्पण:- श्रीरामभद्राचार्य जी ने भगवान् श्रीराम की भक्ति को सर्वोपरि माना है। वे श्रीराम को पूर्ण ब्रह्म, निष्काम, और भक्तों के शोक और दुःख को समाप्त करने वाला मानते हैं।

भक्ति: ‘वन्दे श्रीरामं प्रभु वन्दे श्रीरामम्’ - श्रीराम के प्रति उनकी गहरी श्रद्धा और समर्पण को दर्शाता है। वे श्रीराम के गुणों का बखान करते हैं, जैसे ‘पूर्णब्रह्मनिष्कामं पूरितजनकामम्’, और इसे एक भक्तिपथ के रूप में प्रस्तुत करते हैं।

समर्पण: ‘निजजनशोकविरामं ब्रीडितशतकामम्’ में श्रीराम के प्रति पूर्ण समर्पण और श्रद्धा का स्पष्ट रूप से उल्लेख है। यह दिखाता है कि भक्त अपने दुखों और इच्छाओं को भगवान् श्रीराम के चरणों में समर्पित करते हैं।

2. श्रीकृष्ण के प्रति भक्ति और समर्पण:- श्रीकृष्ण की भक्ति का उल्लेख ‘वन्दे गोपालं प्रभु वन्दे गोपालम्’ में हुआ है, जिसमें भगवान् श्रीकृष्ण की दिव्यता और प्रेममय व्यक्तित्व का वर्णन किया गया है। श्रीकृष्ण के प्रति समर्पण का मुख्य स्वर उनके लीलाओं, गुणों और उनके भक्तों से प्रेम को दर्शाता है।

भक्ति: ‘गोपीजनस्वामिन्’ और ‘मुरलीधर’ जैसे शब्दों में श्रीकृष्ण की आकर्षक लीलाओं और उनके प्रेम का वर्णन किया गया है। उनका जीवन और प्रेम सदैव भक्तों को मोहक बनाता है।

समर्पण: भगवान् श्रीकृष्ण के प्रति प्रेम और भक्ति में कोई शर्त नहीं होती। भक्त श्रीकृष्ण के चरणों में समर्पण कर पूर्ण रूप से शांति और सुख प्राप्त करते हैं, जैसे ‘गोवर्धनधारिन्’ और ‘रासप्रिय’ में उनका अपूर्व रूप दर्शाया गया है।

3. शिव के प्रति भक्ति और समर्पण:- शिव की भक्ति ‘वन्दे गौरीशं प्रभु वन्दे गौरीशम्’ में प्रकट हुई है, जिसमें भगवान् शिव के परम और दिव्य रूप का वर्णन किया गया है। शिव के प्रति भक्ति में उनके शांति और विनाशक गुणों का उल्लेख किया गया है।

भक्ति: ‘शंकरहिय में प्रगटानी’ और ‘नीलकण्ठबिबुधेश’ जैसे श्लोक शिव की असीम शक्ति और महानता को प्रकट करते हैं। शिव का रूप अर्धनारीश्वर, विनाशक, और संहारक के रूप में देखा जाता है।

समर्पण: शिव के प्रति समर्पण का भाव भी विशेष है। भक्तों का मानना है कि भगवान् शिव ही उनके दुखों का निवारण करते हैं और जीवन को शिवत्व की ओर मोड़ते हैं। ‘गौरसतीस्वामिन्’ और ‘शिवशङ्कर’ में शिव के भव्य रूप और दिव्यता का उल्लेख है, जो भक्तों के लिए सदैव प्रेरणास्रोत होता है।

5. काव्य की शैली और प्रभाव:- श्रीरामभद्राचार्य की रचनाएँ काव्यशास्त्र में गहरी और संगीतमय शैली में रची गई हैं। उनके द्वारा प्रयुक्त शब्दावली, छंद और भावनाएँ, सभी एक अद्वितीय संयोजन बनाती हैं जो पाठकों के मन में स्थायी प्रभाव छोड़ती हैं। उनके काव्य में भगवान् और भक्त के बीच गहरे संबंध का चित्रण किया गया है, और यह समर्पण और भक्ति के महत्व को उजागर करता है। उनका काव्य न केवल धार्मिक दृष्टिकोण से, बल्कि साहित्यिक दृष्टिकोण से भी अत्यंत महत्वपूर्ण है। वे भक्तों को जीवन के उच्चतम सत्य की ओर मार्गदर्शन करते हैं और उन्हें आत्मा की पवित्रता और शांति के लिए प्रेरित करते हैं।

उपसंहार:- श्रीरामभद्राचार्य की रचनाएँ न केवल धार्मिक दृष्टिकोण से महत्वपूर्ण हैं, बल्कि उन्होंने भक्ति साहित्य को भी एक नई दिशा दी है। उनकी रचनाओं में भगवान् के विभिन्न रूपों का चित्रण भक्तों को उनके वास्तविक स्वरूप को समझने और उनकी भक्ति में विलीन होने के लिए प्रेरित करता है। उनकी भक्ति और आध्यात्मिक दृष्टि का विश्लेषण यह सिद्ध करता है कि भक्ति केवल पूजा और अनुष्ठान तक सीमित नहीं है, बल्कि यह एक गहरी आंतरिक प्रक्रिया है जो आत्मा के परम सत्य तक पहुँचने का मार्ग है।

संदर्भ सूची:-

1. श्रीरामभद्राचार्य के भक्ति गीत और श्लोक
2. भक्ति साहित्य और धार्मिक दृष्टिकोण
3. भगवान् के विभिन्न रूपों का चित्रण
4. श्रीरामभद्राचार्य के जीवन और कार्य
5. श्रीशतस्तोत्री सम्पादक डॉक्टर सुरेन्द्र शर्मा ‘सुशील’ (श्रीतुलसीमंडल)
6. श्रीरामस्तवराजस्तोत्रम् प्रकाशक श्रीतुलसीपीठ सेवान्यास आमोदवन चित्रकूट
7. श्रीजानकीजीवनशतकम् श्रीतुलसीपीठ सेवान्यास आमोदवन चित्रकूट
8. श्रीरामचरितमानस सम्पादक श्रीरामानन्दाचार्य प्रकाशक अन्ताराष्ट्रिय श्रीरामचरितमानस अनुसंधान केन्द्र जगद्गुरु रामभद्राचार्य विकलांग विश्वविद्यालय चित्रकूट, 30600, भारत
9. दिनकर, डॉ० वागीश (2008). श्रीभार्गवराघवीयम् मीमांसा. दिल्ली, भारत: देशभरती प्रकाशन.

## हिंदी उपन्यासों में दलित जीवन की समस्याएँ

डॉ. रोसी. पी. वर्गीस

असिस्टेंट प्रोफेसर, हिंदी विभाग, केथोलिकेट कॉलेज, पतनम्बिताट्टा, केरल

‘दलित’ शब्द का अर्थ भगवद् गोमंडल शब्दकोश में इस प्रकार दिया गया है- ‘दलित, चूर्णित, कुचला हुआ, तोड़ा हुआ, फाड़ा हुआ, कचरा हुआ, नष्ट किया गया, पीड़ित, पीसा हुआ, दबाया हुआ, भिखारी, गरीब, विकसित, खिला हुआ, हल्का, अधम।’ हमारे धर्म तथा सामाजिक व्यवस्था के अंतर्गत चतुर्थ वर्ण-ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र यह वर्ण विभाजन किया गया है। दलित साहित्य के संदर्भ में श्रीमती उर्मिला राजपूत ने बहुत ही सटीक बात कही है- ‘वर्णव्यवस्था द्वारा नकारे गये लोगों के प्रति मानवीय संवेदना, करुणा से द्रवित होकर उनकी विषम स्थितियों का चित्रण करना उपेक्षित, शोषित, दलित, पीड़ित और जंजीरों से जकड़ी स्थिति के प्रतिकार, प्रतिरोध और प्रतिशोध की भावना की आंदोलनात्मक सृजन शक्ति ही दलित साहित्य है।’<sup>2</sup> हिंदी में ‘दलित साहित्य’ शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम डॉ. भीमराव आंबेडकर द्वारा संचालित ‘दलित साहित्य सेवक संघ’ के द्वारा किया गया। साहित्य में उपन्यास विधा लोकप्रिय रही है। उपन्यास ऐसी विधा है, जिसमें जीवन का व्यापक फलक प्रस्तुत होता है। उपन्यास को आधुनिक काल में मानवी जीवन का महाकाव्य माना है। उपन्यास को ‘समकालीन इतिहास’ भी कहा गया है। हिंदी उपन्यास साहित्य में दलित जीवन त्रासदी पर लिखने का श्रेय प्रेमचंद को दिया जाता है। प्रेमचंद की ‘कर्मभूमि’ और ‘रंगभूमि’ के पात्र जातीयता के खिलाफ लड़ते हैं। ‘शेखर एक जीवनी’ में छुआछूत और वर्णभेद का मार्मिक वर्णन है। मधुकर सिंह के ‘सहदेवराम का इस्तीफा’ में सहदेवराम चमार जमींदार माधोसिंह से संघर्ष करता है। सप्लाइ विभाग का अफसर बनकर हरिजन वार्ड में रेशन की दुकान खुलवाकर दलितों को संगठित करता है, परंतु दफ्तरों में सवर्णों द्वारा उनकी फाइलें दबाना, अपमानित करना अंत में इस्तीफा देकर व्यवस्था के खिलाफ संघर्ष करना ही उसका श्रेय है। पांडेय बेचन शर्मा उग्र की ‘बंधुआ की बेटे’ और ‘मनुष्यान्द’, निराला के ‘बिल्लेसुर बकरिहा’, ‘निरुपमा’ और ‘चतुरी चमार’, चतुरसेन की ‘गोली’ और ‘उदमस्त’, अज्ञेय का ‘शेखर एक जीवनी’ और यादवेंद्र शर्मा का ‘हजार घोड़े का सवार’ आदि दलित जीवन की व्यथा कथा है।

मधुकर सिंह के ‘सहदेवराम का इस्तीफा’ में सहदेवराम चमार जमींदार माधोसिंह से संघर्ष करता है। शिवशंकर शुक्ल के ‘मोंगरा’ का चमार चरणदास परंपरागत धंधा छोड़कर सरकारी कर्ज लेकर मुर्गी पालने का व्यवसाय करता है। ‘खारे जल का गांव’ का अरविंद चमार क्रांतिकारी मोर्चा बनाकर सरपंच का चुनाव लड़ता है तथा उपभोक्ता भंडार का उद्घाटन चमार के हाथों कराता और उचित मजदूरी की मांग करता है। ‘सुबह की तलाश’ का सोमेश्वर हरिजनों के लिए मंदिर खुलवाता और पाठशाला शुरू करता है। मदन दीक्षित का ‘मोरी का ईंट’ मेहतर जनजीवन का दस्तावेज है जिसमें

उनकी सामाजिक, सांस्कृतिक झांकी चित्रित है।

अंधविश्वास<sup>3</sup>-मानव सामाजिक प्राणी होने के साथ-साथ संस्कृति की रक्षा करने के लिए उसका जीवन धर्मनिष्ठ बना है। इस प्रकार धर्म मनुष्य की जीवन पद्धति बनी। धर्म और अंधविश्वास का संबंध रहा है। धर्म उदात्त गुणों की शिक्षा देता है, परंतु अज्ञान, अंधश्रद्धा के कारण उस धर्म का रूप विकृत बन गया है। प्रकृति का भय, अज्ञान, कमजोर मानसिकता, जिज्ञासा के कारण अंधविश्वास बढ़ रहे हैं। उपन्यासों में दलित जीवन में स्थित अंधविश्वास पर प्रकाश डाला गया है। निराला के ‘निरुपमा’ में चमार, मोची जाति में स्थित राजा को भगवान का अवतार मानना, भगवतीचरण वर्मा के ‘भूले बिसरे चित्र’ में भगवान का प्रसाद खाने से कक्षा में अवल आना, ब्राह्मणों को दान देने से मुक्ति पाना, भोलेनाथ की अंगूठी पहनने से गड़ा हुआ धन मिलना जैसी अंधश्रद्धा है। गुरुदत्त के ‘बनवासी’ में नागाजाति की अंधश्रद्धा चित्रित है। साधु के शब्द को भगवान का आदर्श मानना, पति के हाथ से माँग भरनेवाली को स्वर्ग मिलना, शिवशंकर शुक्ल के ‘मोंगरा’ में छींक आने पर काम सफल न होना, बीमारी में बड़ी माता से प्रार्थना करना, आंख फड़कने को बुरी घटना का संकेत मानना, ‘सुबह की तलाश’ में पुत्रप्राप्ति के लिए महादेव को जल चढ़ाना, तालाब में भूत - प्रेत का होना, ‘खारे जल का गांव’ में मटके का गिरना अपशकुन मानना, ‘कगार की आग’ में बाबा की कृपा से पुत्रप्राप्ति होना, ‘जंगल के आसपास’ देवता का नाखुश होने से संकट आना, ओझाकी सहायता लेना, नारी की पवित्रता सिद्ध करने के लिए अग्नि परीक्षा लेना, झाड़-फूँक से बीमारी हटाना आदि अंधश्रद्धाएँ दिखाई देती हैं।

जातीय भेदाभेद:- भारतीय समाज का आधार जाति संस्था रही है। दलितों में जातीय भेदाभेद उच्च नीचता का भाव दिखाई देता है। भारतीय समाज व्यवस्था में दलितों का जीवन हीनमानकर पशुतुल्य बनाया है। इस व्यवस्था के लिए सवर्ण और हीन एक जैसे जिम्मेदार है। निराला के ‘निरुपमा’ में चमारों का पनघट अलग होना, चमार कुमार को होटल में जगह न मिलना, वर्णव्यवस्था के कारण नौकरी का त्याग करना, शिवशंकर शुक्ल के ‘मोंगरा’ में ब्राह्मण मंगलू के घर चमार चरणदास रहता है, तब मंगलू को बिरादरी खारिज करती है, जाति बाह्य कर्म करने से हल चलाने से उसे पापी माना जाता है। रामदरश मिश्र के उपन्यास ‘जल टूटता हुआ’ की हरिजन कन्या लवंगी के तेवरों में भी हमें दलित चेतना के संकेत मिलते हैं। लवंगी का भाई हतिया पार्वती नामक एक उच्च जाति की लड़की के साथ सहवास करते हुए पकड़ा जाता है, तब उच्च जाति के लोग उसकी खूब पिटाई करते हैं, तब लवंगी अपने भाई को बचाते हुए कहती है, ‘क्या हुआ अगर मेरे भाई ने ब्राह्मण लड़की से भला बुरा किया? चमार का खून-खून नहीं है? ब्राह्मण

का खून ही खून है। हमारी कोई इज्जत नहीं होती क्या? बामनों की ही इज्जत होती है?'<sup>3</sup> 'सुबह की तलाश' में अछूत का नामकरण भगवान के नाम से करने को मना करना, अछूत बच्चे को पाठशाला में पीछे बिठाना, 'नाच्यो बहुत गोपाल' में धार्मिक व्यक्तियों का मेहतरानियों के साथ रात में संबंध रखना, इसके बारे में वेदवती का कथन है- 'यह छुआछूत का आडंबर जो हमारे समाज पर लादा गया है वह ढोंगियों और स्वार्थ लोलुप पंडे, पुरोहितों ने लादा है।'<sup>4</sup> यह कथन सवर्णों की मनोवृत्ति पर प्रकाश डालता है।

**जाति पंचायत:**- भारतीय समाज व्यवस्था का संबंध राजनीतिक व्यवस्था से भी रहा है। न्याय देनेवाली जाति पंचायत महत्वपूर्ण संस्था है। गांव के सभी जातियों के मुखिया गांव के बाहर, मंदिर या चौक में इकट्ठा होते और विवाह, चोरी, शोषण, कत्ल, डाका, अनैतिक, अवैध संबंध आदि पर फैसला देते, इसके कानून अलिखित परंपरागत होते हैं। प्रमुख को 'मुखिया' कहा जाता है। इसका फैसला सभी को मानना पड़ता है। आलोच्य उपन्यासों में जाति पंचायत का वर्णन मिलता है। गुरुदत्त के 'वनवासी' में नागा जाति पंचायत का वर्णन है, पुरोहित की हत्या और बिंदु के विवाह को लेकर पंचायत बुलाना, अपराधी चौधरी को 500/- रु. दंड और कबीले को भोज देना, सभी की स्वीकृति मिलना आदि। 'खारे जल का गांव' में मंदिर के पिछवाड़े में 20-22 गांवों के मुखिया अपनी समस्याएँ सुलझाने के लिए इकट्ठा होते हैं। केसरवानी जातिपंचायत 'केसरवानी महाविद्यालय' की स्थापना करती है, जो एक आदर्श कार्य कर रहा है। 'जल टूटता हुआ' में 'हरिजन की समस्या पर चर्चा करने के लिए पंचायत में ब्राह्मण, चमार, हरिजन शामिल होते हैं।'<sup>5</sup> यहाँ न्याय व्यवस्था के रूप में जाति पंचायत कार्य करती है। प्रारंभ में इसके फैसले मानते थे परंतु 1990 के पश्चात लिखे उपन्यासों में इसके दर्शन नहीं होते।

**आर्थिक स्थिति:**- भारतीय समाज की आर्थिकता का प्रमुख स्रोत खेती और कुटीर उद्योग है। ग्राम व्यवस्था इसकी नींव है। दलित समाज ग्राम या बस्ती से जुड़ा है। जूते बनाना, अवैध धंधे करना आदि जीविका एवं अर्थ प्राप्ति के साधन हैं। निराला के 'निरुपमा' का चमार कुमार द्वारा डी. लिट होने पर भी मोची का काम करना, 'भूले बिसरे चित्र' में भीखू द्वारा मजदूरी करना, 'वनवासी' में नागा द्वारा शिकार करना, 'जल टूटता हुआ' में फटे कुर्ते धोतियाँ पहनकर बच्चों का स्कूल जाना, 'मोंगरा' में चमारों द्वारा खेती करना, जूते बनाना, 'खारे जल का गांव' में चमार द्वारा डाका डालना, 'कंगार की आम' में बेनजो बजाना, 'नाच्यो बहुत गोपाल' में मेहतरों द्वारा डोलियाँ, चटाई बुनना, 'परिशिष्ट' में बाबनराम का फैवट्टी में काम करना, ये सभी घटनाएँ परिवर्तित दलित जीवन को दर्शाती हैं।

**पारिवारिक स्थिति:**- परिवार सर्वकालिक, सार्वजनिक एवं आवश्यक संस्था है। दलित समाज ग्रामों का निवासी है। धन और धर्म से प्रभावित परिवार है। डॉ. महाजन मानते हैं 'आज के परिवार में रूढ़ अर्थ नहीं है।'<sup>6</sup> कुंवरपाल का मानना है कि 'आज कोई दीवार संयुक्त परिवार को बिखरने से नहीं रोक सकती।'<sup>7</sup> यहां स्पष्ट है कि आज के युग में परिवार का कार्य सीमित बना है। भारतीय समाज जीवन में परिवारविहीन की कल्पना नहीं हो सकती। अतः उसमें परिवर्तन होगा, परंतु यह संस्था नष्ट नहीं होगी। 'निरुपमा' में विजातीय विवाह परिवार, 'भूले बिसरे चित्र' में पितृसत्तात्मक परिवार, 'वनवासी' में मातृसत्ता परिवार, 'आठवीं भांवर' में बहुपरिवार, 'जाने कितनी आंखें' में बहुपति-बहुपत्नी परिवार, 'शैलूष' में पितृवंशीय परिवार, 'नाच्यो बहुत गोपाल' में मातृसत्तात्मक परिवार का चित्रण हुआ है। दलित

परिवार पर पुरुष प्रधान संस्कृति का प्रभाव दिखाई देता है। वंश रक्षा, नारी सौन्दर्य- भोग आदि के कारण बहुविवाह, बहुपत्नी परिवार बने हैं

**शिक्षा व्यवस्था:**- व्यक्ति और समाज के विकास में शिक्षा महत्वपूर्ण तत्व रहा है। शिक्षा प्रसार से देश की प्रगति का पता चलता है। आजीविका पूर्ति यही शिक्षा का सीमित लक्ष्य था। गति धीमी रही परंतु दलित समाज साक्षर बन रहा है। आंबेडकर के 'शिक्षित बनो, संघटित बनो, संघर्ष करो' इसका प्रभाव रहा। भगवतीप्रसाद शुक्ल के 'खारे जल का गांव' का अरविंद चमार हाटी में प्रौढ़ शिक्षा केंद्र खोलकर 15 लोगों को पढ़ाता है। इस कार्य में चमार विरोध करते हैं। स्वयं अरविंद लॉ परीक्षा पास हो चुका है। केसरवानी जाति पंचायत शिक्षा प्रसार का कार्य करती है। 'निरुपमा' का कुमार लंदन विश्वविद्यालय में डी. लिट उपाधि प्राप्त कर लखनऊ में आकर कॉलेज में नौकरी करता है। परंतु जाति व्यवस्था से नौकरी चली जाती है, तब वह परंपरागत मोची का धंधा करता है। 'वनवासी' में ईसाई लोग धर्म प्रसार के साथ शिक्षा प्रसार के लिए पाठशाला खुलवाते हैं।

नरेंद्र वर्मा के 'सुबह की तलाश' में अमोलिडिह में कौसल्या देवी माध्यमिक स्कूल खुलवाना-बुनियादी, बागवानी शिक्षा देना, तकली चलाना आदि रूप में शिक्षा दी जाती है। 'नाच्यो बहुत गोपाल' की निर्गुनिया मेहतरों के उद्धार के लिए पाठशाला खोलने का प्रस्ताव रखती, स्वयं अध्यापिका बनकर 500/- रु. की सहायता देती है। वह कहती है 'अछूतों के उन्नति के लिए स्कूल खोलना चाहिए।' 'जंगल के आसपास' का दिनेश हरिजन बच्चों के मन में शिक्षा के प्रति रुची बढ़ाता है। 'शैलूष' की सावित्री नटों से कहती है- 'बच्चों के शिक्षा का सारा खर्च सरकार करती है, बच्चों को पढ़ाना चाहिए।' 'परिशिष्ट' में आई.आई. टी जैसे उच्च शिक्षा संस्थान में शिक्षा लेनेवाला राम उजागर नए शिक्षित दलित युवा का प्रतीक है। कुल मिलाकर दलितों में शिक्षा के प्रति चेतना बढ़ रही है।

**निष्कर्ष:**- दलितों के जीवन तथा आर्थिक स्थिति में अब धीरे-धीरे परिवर्तन आ रहा है। परम्परागत व्यवसाय करनेवाले ग्रामीण अज्ञानी दलित हैं तो शहरों की ओर बढ़नेवाला, पढ़ा लिखा दलित सरकारी आरक्षण से लाभान्वित है हिंदी उपन्यासों में दलित जीवन का समग्र रूप दिखाई देता है। दलित जीवन की समस्याएँ, दलितों का शोषण, दलितों के साथ किए जानेवाले अमानवीय व्यवहार आदि बातों की अभिव्यक्ति और इसके खिलाफ दलित में हुई जागृति के कारण संघर्ष करने के लिए चिंतित दलितों का भी चित्रण हिंदी उपन्यासों में प्रकट हुआ है।

**संदर्भ सूची:-**

1. भगवद् गोमंडल शब्दकोश, पृ. 4333
2. प्रज्ञा पत्रिका - डॉक्टर रामकृष्ण राजपूत, मार्च जून 1995, पृ. 91
3. रामदरश मिश्र, जल टूटता हुआ, पृ. 48
4. अमृतलाल नागर, नाच्यो बहुत गोपाल, पृ. 3
5. रामदरश मिश्र, जल टूटता हुआ, पृष्ठ 10
6. एस. बी. महाजन, आधुनिक हिंदी कहानी साहित्य में काममूलत्र संवेदना, पृ. 17
7. डॉक्टर कुंवरपाल सिंह, हिंदी उपन्यास सामाजिक चेतना, पृ. 90

## भारतीय ज्ञान परंपरा में योग-एक सनातन परंपरा

मयूरी शिवहरे

डॉ. ज्योति गोयल

1. शोधार्थी, दर्शनशास्त्र विभाग, प्रधानमन्त्री कॉलेज ऑफ एक्सीलेंस, शासकीय माधव महाविद्यालय, उज्जैन, मप्र.
2. शोध निर्देशक व सहायक प्राध्यापक, दर्शनशास्त्र विभाग, प्रधानमन्त्री कॉलेज ऑफ एक्सीलेंस, शासकीय माधव महाविद्यालय, उज्जैन, मप्र.

योग एक आध्यात्मिक प्रक्रिया है जिसका अर्थ अनेक शब्दों में किया गया है। महर्षि पतंजलि ने योगसूत्र के समाधिपाद के द्वितीय सूत्र में कहा है - योगश्चित्तवृत्ति निरोधः<sup>1</sup> अर्थात् चित्त की वृत्तियों का निरोध ही योग है। योग शब्द की उत्पत्ति 'युज्' धातु से मानी जाती है। जिसका शाब्दिक अर्थ है 'जोड़ना'। यह एक ऐसी विधा है जिसको प्रत्येक व्यक्ति अपने जीवन में उतार सकता है। योग का महत्व व्यापक रूपों में मिलता है। इसका क्षेत्र बहुत विस्तृत है। यह हठयोग, राजयोग, ज्ञानयोग, भक्तियोग, कर्मयोग, मन्त्रयोग, लययोग को अपने अन्दर समेटे हुए है। गीता में योग की महिमा का वर्णन इस प्रकार से है -

तपस्विभ्योऽधिको योगी ज्ञानिभ्योऽपि मतोऽधिकः ।

कर्मिभ्यश्चिधिको योगी तस्माद्योगी भावार्जुन ।<sup>2</sup> - श्रीमद्भगवद्गीता

अर्थात् :- योग की महिमा के बारे में क्या कहे। यहा पर श्रीकृष्ण अर्जुन से कहते हैं, हे अर्जुन ! एक योगी के अन्तर्गत ज्ञानी, कर्मी, तपस्वी के श्रेष्ठ गुण होते हैं। अतः तु योगी बन जा।

योग के जरिए हम मोक्ष तक पहुँच सकते हैं मोक्ष प्राप्ति के लिए योग साधक को योग की समस्त विधाओं का पालन करना होता है। योग साधना करते समय साधक को अपने मन को नियन्त्रित, संयमित करना होता है जिससे कि वह परमात्मा को प्राप्त कर सके। इस प्रकार आत्मा का परमात्मा से मिलन होता है। महर्षि व्यास समाधि को योग मानते हैं। योग का वर्णन वेदो, उपनिषदो, स्मृति, पुराणों में भी किया गया है। ऋक्संहिता मण्डल 1. सूक्त 16. मन्त्र 6 में बताया गया है -

यस्मादृते न सिध्यति यज्ञो विपश्चिन ।

स धीनां योगमिन्वति ।<sup>3</sup> - ऋक्संहिता

अर्थात् : योग के बिना किसी भी विद्वान का कोई यज्ञकर्म सिद्ध नहीं होता। चित्तवृत्तियों के निरोध से व्यक्ति स्वयं को कर्मयोगी बनाता है। यहा पर यज्ञ के तीन प्रकार बताए गए हैं जो कर्म, उपासना एवं ज्ञानभेद कहलाते हैं। यह योग के बिना सफल नहीं होते हैं पुराणों एवं स्मृतियों में भी योग के लिए कहा गया है कि यज्ञों की सिद्धि के लिए योग परम आवश्यक है।

योग की उत्पत्ति वेदों के अनुसार हिरण्यगर्भ से मानी जाती है। हिरण्यगर्भ को जगत की अन्तरात्मा कहा जाता है। यह विष्णु के अवतारी माने जाते हैं। श्रुति परम्परा के अनुसार भगवन शिव को योग का आदि गुरु माना जाता है। श्रीकृष्ण ने गीता में योग परंपरा का वर्णन करते हुए बतलाया कि मेने यह योग सूर्य को, सूर्य ने मनु एवं मनु ने राजा इच्छवाकु को योगविद्या का ज्ञान दिया। इस प्रकार श्री कृष्ण ने योग का उपदेश अर्जुन को दिया। चित्तवृत्तियों के निरोध के लिए मन्त्रयोग, लययोग, हठयोग, राजयोग एवं शिवयोग को प्रमुख माना गया है।

“एकाक्षरं द्वयक्षरं वा षडक्षरमथापि वा ।

अष्टाक्षरं वा मोक्षाय मन्त्रयोगी जपेत् सदा ।<sup>4</sup> (योगांक कल्याण)

अर्थात् :- एकाक्षरत्मक 'ऊँ' मन्त्र को या द्वयक्षरत्मक 'हंसः'

अथवा 'सोऽयम्' मन्त्रो को, अथवा षडक्षरत्मक

'ऊँ नमः शिवायः' मन्त्र को अथवा अष्टाक्षरत्मक

'ऊँ हाँ हीं नमः शिवाय' मन्त्रो को मन्त्र क्रम के अनुसार

मोक्ष प्राप्ति के लिये अपना मन्त्रयोग कहलाता है ।<sup>5</sup>

योग की उत्पत्ति के लिए कहा जाता है कि जब सभ्यता का उदय हुआ था तभी से योग अभ्यास का प्रारम्भ हुआ था। 200 ईसा पूर्व से 500 ई. में पतंजलि योग को पहली बार समग्ररूप में प्रस्तुत किया था। इससे पहले योगविद्या का स्वरूप अलग-अलग ग्रंथों के माध्यम से प्राप्त था जिसे महर्षि पतंजलि ने अपने 'योगसूत्र' में बहुत ही सुन्दर शब्दों में संकलित किया। इन्होंने योग के 195 सूत्रों को संकलित किया। जिसमें राजयोग के माध्यम से आठ अंगों का यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि। यहां पर शारीरिक आसन, प्राणायाम कोई नाम नहीं बताए गए हैं। योगसूत्र के अन्तर्गत मुद्राओं और धसन को भी बतलाया गया है इसके अतिरिक्त यहा पर ध्यान एवं समाधि को विशेष महत्व दिया गया है।

योग का महत्व आस्तिक दर्शनों में तो मिलता है परन्तु नास्तिक दर्शनों में भी योग का महत्व बतलाया गया है। न्याय, वैशेषिक, सांख्य, योग दर्शनों के साथ जैन एवं बौद्ध दर्शनों में योग स्वरूप बतलाया गया है।

“प्रकृति पुरुषं चैव क्षेत्रं क्षेत्रज्ञमेव च ।

एतद्देदितुमिच्छामि ज्ञानं श्रेयं च केशव ॥1॥<sup>6</sup> - श्रीमद्भगवद्गीता

अर्थात् :- श्रीकृष्ण से अर्जुन के द्वारा प्रकृति, पुरुष, क्षेत्र, क्षेत्रज्ञ, ज्ञान तथा ज्ञेय के बारे में पुछना। इस प्रकार श्रीकृष्ण का अर्जुन को यह ज्ञान देना कि शरीर को क्षेत्र कहा जाता है एवं शरीर को जानने वाला क्षेत्रज्ञ कहलाएगा।

वेदन्त दर्शन (ब्रह्मसूत्र) के पहले पाद में प्राण के बारे में बतलाया

गया है यहा पर 'प्राणगतेश्च ।।3 ।।13 ।।17 के द्वारा यह कहा गया है कि प्राण एक शरीर को छोड़कर दुसरे शरीर कैसे जाता है इस बात का उल्लेख यहा पर किया है। जैन दर्शन में मोक्ष के लिए कैवच्य शब्द का प्रयोग किया गया है। बौद्ध दर्शन में मोक्ष को विनिर्वाण कहा गया है। जैन दर्शन में कहा गया है 'बन्धहेत्वभावनिर्जरायाम्'<sup>7</sup> एवं बौद्ध दर्शन में कहा गया है।

“दीपनिर्वाणगन्धयः ।<sup>8</sup> दोनो में कैवल्य एवं निर्वाण प्राप्ति का उल्लेख किया है। जैन दार्शनिको का मानना है कि जिस जीवन को मोक्ष मिल जाता है वह अपने शुद्ध रूप को प्राप्त कर लेता है। बौद्ध दर्शन को मानना है मन के अन्दर काम की आग का बुझ जाना ही निर्वाण है।

आधुनिक समय में योग का महत्व बहुत ही चरमोत्कर्ष पर पहुँच गया। 1700 से 1900 ई. का समय आधुनिक युग कहलाता है। इस समय के महान योगचार्यों ने राजगोय के विकास में योगदान दिया। इन महान

योगाचार्यों में रमण महर्षि, रामकृष्ण, परमहंस, परमहंस योगानंद एवं विवेकानंद का बहुत योगदान रहा। इस समय हठयोग, वेदांत भक्ति योग एवं नाथ योग बहुत उन्नत हुआ।

महात्मा गांधी ने नैतिकता के लिए योग साधना को अपने जीवन में उतारा। इन्होंने सत्य-अहिंसा को योग का साधन बतलाया। अष्टांग योग के द्वारा गांधीजी ने सत्य-अहिंसा का पालन किया। डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन एक अद्वैतवादी विचारक थे इन्होंने अपने दर्शन में मानव के असीम एवं ससीम पक्ष पर महत्व दिया। इन्होंने ज्ञान के मार्ग के लिए अन्तर्दृष्टि को महत्व दिया। श्री अरविन्द ने योग का महत्व बतलाते हुए तीन शब्दों का प्रयोग किया - The Philosophy of Sri Aurobindo My aptly be described as Integral Non-duacism (पूर्ण अद्वैत), or internal Idialism (पूर्ण विज्ञान) or Just integralism (पूर्णवाद) अंग्रेजी के 'Integral' शब्द का अर्थ है जिसमें सभी विभिन्नताये अपनी विभिन्नताओ को खोकर एकरूप हो जाये।<sup>9</sup>

प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी ने 27 सितम्बर 2014 को संयुक्त राष्ट्र महासभा में अपने भाषण द्वारा विश्व समुदाय से अंतर्राष्ट्रीय योग दिवस की अपील की मोदीजी ने कहा -

“योग भारत की प्राचीन परम्परा का एक अमूल्य उपहार है यह दिमाग और शरीर की एकता का प्रतीक है: मनुष्य और प्रकृति के बीच सामंजस्य है; विचार, संयम और पूर्ति प्रदान करने वाला तथा स्वास्थ्य और भलाई के लिए एक समग्र दृष्टिकोण को भी प्रदान करने वाला है। यह केवल व्यायाम के बारे में नहीं है, लेकिन अपने भीतर एकता एकता की भावना, दुनिया और प्रकृति की खोज के विषय में है। हमारी बदलती जीवन-शैली में यह चेतना बनकर, हमें जलवायु परिवर्तन से निपटने में मदद कर सकता है तो आये एक अंतर्राष्ट्रीय योग दिवस को अपनाने की दिशा में काम करते हैं।

- नरेन्द्र मोदी, संयुक्त राष्ट्र महासभा<sup>10</sup>

इस प्रकार 11 दिसम्बर 2014 को अमेरिका के संयुक्त राष्ट्र महासभा में अंतर्राष्ट्रीय योग दिवस के प्रस्ताव को मंजूरी मिल गई। इसे 21 जून 2015 को पुरे विश्व में अंतर्राष्ट्रीय योग दिवस के नाम से मनाया गया। (इंटरनेशनल डे ऑफ योग)।<sup>11</sup>

सन्दर्भ सूची:-

1. 'पतंजलि योगसूत्र'
2. श्रीमद्भगवद्गीता यथारूप (स्वामी प्रभुपाद) पृ. 46
3. योगांक (कल्याण) गीताप्रेस, गोरखपुर। पृ. 131
4. 3योगांक (कल्याण) गीताप्रेस, गोरखपुर। पृ. 280
5. योगांक (कल्याण) गीताप्रेस, गोरखपुर। पृ. 280
6. श्रीमद्भगवद् गीता यथारूप/स्वामी प्रभुपाद। पृ. 563
7. समकालीन भारतीय दर्शन। बसन्त कुमार लाल। पृ. 199
8. समकालीन भारतीय दर्शन। बसन्त कुमार लाल। पृ. 199
9. 'Un declares June 21 as 'International Day 'द टाइम्स आफ इण्डिया, 11 दिसंबर 2014.
10. "International Yoga Day Hindi : पुरातन भारत में कैसा था योग का प्रारूप?" (अंग्रेजी में) 2020-06-20 अभिगमन तिथि 2020-06-20
11. "International Yoga Day Hindi : पुरातन भारत में कैसा था योग का प्रारूप?" (अंग्रेजी में) 2020-06-20 अभिगमन तिथि 2020-06-20

## ‘शिकंजे का दर्द’ - दलित नारी के संघर्ष की गाथा

डॉ. सनु थोमस

असिस्टेंट प्रोफेसर, कथालिकेट कॉलेज, पथनमथिता, केरल

आधुनिक साहित्य के इतिहास में दलित साहित्य एक ऐसा इतिहास है जो क्षेत्र और भाषा की सीमाओं को लांघकर राष्ट्रीय संवेदना एवं सामूहिकता का बोध कराता है। दलित साहित्य जाति प्रथा और श्रेष्ठताबोध को तोड़कर बहुता और स्वतंत्रता की संस्कृति का बीजारोपण कर रहा है। हिंदू धर्म की वर्णाश्रम व्यवस्था, पुनर्जन्म और कर्मफल पर टिकी हुई है। इसके अनुसार पूर्व जन्म में किए गए कर्म के आधार पर ऊंची या नीची जातियों में जन्म होता है अर्थात् जाति स्वयं भगवान का निर्णय है। इसलिए दलितों के लिए निर्विकार भाव से सेव करना अवश्यक बना दिया गया, यही उनकी मुक्ति का मार्ग माना जाता रहा है। जो अभी भी अवचेतन में गुलामी का पर्याय बना हुआ है। दलित साहित्य इस मानसिक गुलामी की सोच को बेनकाब करता है। भारतीय समाज व्यवस्था की भेदभावपूर्ण ऋरु प्रणाली ने धार्मिक चोंगा पहनकर और मर्यादा का आवरण ओढ़कर ब्राह्मणवाद का रूप धारण किया जिसने धार्मिक कर्मकांड, अंधविश्वास और जन्मना ऊँच-नीच की भावना को वैधता प्रदान किया। आज भी तमाम नियमों, कानूनों के बावजूद परंपरागत रूप में यह अमानवीय कुरीतियाँ भयानकता के साथ हमारे समाज में विद्यमान हैं। दलित लेखन में इन्हीं विषयों का वर्णन है। दलित विमर्श की अनिवार्य शर्त बन चुकी है कि दलित साहित्य का लेखक केवल दलित ही हो सकता है।

समाज में स्त्री की स्थिति हमेशा मानवीय से परे रही है, या तो उसे लोक से परे रखकर देवी मूल्यों के कारण शोषित है तो बाहर समाज में जातिगत कारणों से पीड़ा सहती है। एक ओर जहाँ वह स्त्री होने के नाते सामाजिक जीवन की मुख्यधारा में अपने आपको असुरक्षित महसूस करने लगी, वहीं दूसरी ओर अपनी जातीय स्थिति के कारण वे दोहरे अत्याचार, शोषण और अपमान का पात्र बनी। वह वर्तमान समाज में तिहरा अभिशाप जाति, लिंग और गरीबी झेल रही है। इसी स्थिति का विवरण श्रीमती सुशीला टाकभौरे ने अपनी आत्मकथा ‘शिकंजे का दर्द’ में किया है।

जीवन की सच्ची कथाओं को वाणी देने का दायित्व आत्मकथा को है। ऐसी सच्ची कथाओं को लिखना साहसिक एवं चुनौतीपूर्ण है। दलित समाज की निम्नतम पायदान में आते हैं भंगी या वाल्मीकि, जिनका पैतृक पेशा सफाई करना है। इसी वर्ग से ‘शिकंजे का दर्द’ की लेखिका सुशीला टाकभौरे आती हैं। यह एक आत्मकथा है जिसमें छटपटाती दलित स्त्री का चित्र उभरकर सामने आता है। उन्होंने अपनी भूमिका में स्वीकार किया है- ‘जिस तरह किसी ताकतवर को शिकंजे में जकड़कर उसकी पूरी ताकत को नगण्य बना दिया जाता है, उसी तरह मुझे भी सामाजिक जीवन की मनुवादी विषमता ने वर्णवादी, जातिवादी समाजव्यवस्था ने शिकंजे में जकड़कर रखा जिसका परिणाम पीड़ा, दर्द, छटपटाहट के सिवा कुछ नहीं है।’<sup>1</sup>

सुशीला का बचपन अभाव, अछूत के दर्द से ग्रसित था, जिसका वर्णन उन्होंने इस आत्मकथा में बड़ी बेबाकी के साथ किया है। उन्होंने इस बात पर जोर दिया है कि अछूतोंद्वारा के प्रेरणा तहत शिक्षण संस्थाओं के द्वारा दलितों के लिए खुल गए थे। लेकिन जनसामान्य की मानसिकता में कोई बदलाव नहीं आया था। इन संस्थाओं में मिलनेवाली प्रताड़ना से परेशान दलितों को अपने पैतृक पेशे में लगने के सिवा कोई रास्ता दिखाई नहीं देता था। शिक्षार्थी ही नहीं शिक्षकों का भी व्यवहार भेदभावपूर्ण होता था। कक्षा में विद्यार्थियों के बैठने का काम हिंदू समाज व्यवस्था के अनुरूप है। सबसे आगे सवर्ण, फिर पिछड़ी जाति के अंत में दलित जाति के बच्चे फर्श पर बैठते थे। लेखिका को अपने पति के घर में जिन प्रताड़नाओं को सहना पड़ता है उसका भी बड़े विस्तार से वर्णन किया है। शिक्षित नौकरीपेशा होने के बावजूद लेखिका को वह सम्मान नहीं मिल पाता है, जिसकी वह हकदार है। सास, ननद और पति के व्यवहारों की उन्होंने कटु आलोचना की है। उच्च शिक्षित एवं कॉलेज की अध्यापिका होने के बावजूद उन्हें सवर्ण समाज में किराए पर आवाज नहीं मिल पाता है। सुशील जी की माँ और नानी खुद अनाज पीसती हैं क्योंकि चक्कीवाले दलितों का अनाज पीसकर नहीं देते। लेकिन अंग्रेजों के विषय में उनके माँ, नानी और पिता का कहना है ‘सबको समानता की एक नजर से देखते थे। उन्होंने हमसे कभी भेदभाव नहीं किया। अपने देश के लोगों के मन में हमारे लिए कभी ऐसी भावना नहीं रही। अंग्रेजों के आने से ही हमारे बच्चों को पढ़ने-लिखने का मौका मिल सका है।’<sup>2</sup> दलित जातियों में उभर रही सवर्णवादी मानसिकता और उच्च नीच की भावना से अति दलित आहत होते हैं। दलित जाति के भीतर भी ऊँच नीच की भावना बरकरार है और जिनकी जड़ें गहरी हैं। लेखिका ने उनमें ब्याप्त पूजा, आडंबर, अंधविश्वास और धार्मिक ढकोसलों का विरोध किया है। गरीब होने की अपेक्षा गरीबों का अपमान सहना ज्यादा कष्टदायक है। भूख, अभाव, अपमान आदि उनकी प्रतिदिन की समस्या है। इन सबके साथ अनमेल विवाह का दर्द भी झेल रही है। संयुक्त परिवार में रहते हुए पति के अत्याचार का उल्लेख साहसिक है। उन्होंने संयुक्त परिवार में बहू के शोषण को बेपर्दा किया है यह भी देखा गया है कि इस समाज की पढी-लिखी महिलाएं परंपरागत और पुरुषवादी विचारधारा से मुक्त नहीं हो पाती हैं। भौतिक सुख साधन जुटाकर अंधविश्वास के घेरे में हैं। इस प्रकार कहा जा सकता है कि लेखिका आर्थिक शोषण, सामाजिक प्रताड़ना और घरेलू हिंसा की शिकार है।

आज दलित महापुरुषों के नाम पर मूर्ति, पार्क एवं मार्ग बनाए जा रहे हैं। ऐसी योजनाओं पर सुशीलाजी कहती हैं ‘वाल्मीकि मार्ग और वाल्मीकि पार्क वाल्मीकि जाति की समस्याओं और अपमान का निराकरण

कैसे करेंगे।<sup>13</sup> दलित समस्या का समाधान वास्तविकता को समझे बगैर किया जा रहा है। इन योजनाओं में दिखावा और बाह्याडंबर अधिक है वास्तविक समाधान कम। उत्तर आधुनिक युग में मध्ययुगीन समाधान प्रस्तुत किया जा रहा है। इस आत्मकथा में लेखिका का कवि हृदय उभर कर हमारे सामने आया है। यहाँ वहाँ प्रकृति सौंदर्य का वर्णन है। इसमें लेखिका पढी-लिखी नौकरीपेशा दलित नारी की प्रतिनिधित्व कर रही है। इसके द्वारा उन्होंने दलित समाज के विसंगतियों को प्रस्तुत करने में कामयाब हुए हैं। जाति व्यवस्था और पितृसत्ता के शिकंजे में तड़पती सुशीलाजी धैर्य नहीं छोड़ती है बल्कि सधैर्य आगे बढ़ती जा रही है और उन्होंने अपने भोगे हुए यथार्थ और झेले हुए पीड़ा को इस आत्मकथा में प्रस्तुत किया है।

संदर्भ सूची:-

1. सुशीला टाकभोरे- शिकंजे का दर्द ,राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली ( भूमिका से )
2. वहीं ,पृष्ठ 69
3. वहीं ,पृष्ठ 253

# भाषा का बालक की शैक्षिक उपलब्धि में भूमिका का अध्ययन

अनिल कुमार कश्यप

प्रो. (डॉ.) तबस्सुम खान

1. शोधार्थी, शिक्षा शास्त्र विभाग, साईनाथ विश्वविद्यालय, राँची, झारखण्ड
2. शोध निर्देशक, सामाजिक विज्ञान एवं मानविकी संकाय, शिक्षा शास्त्र विभाग, साईनाथ विश्वविद्यालय, राँची, झारखण्ड

न चोर हार्य न राज हार्य न भ्रतु भाज्यं न च भारकारि।

व्यये कृते वर्धति एव नित्यं विद्या धनं सर्वधन प्रधानम्॥

अर्थात् ऐसा धन जिसे चुराया नहीं जा सकता, जिसे कोई भी छीन नहीं सकता, जिसका भाईयों के बीच बंटवारा नहीं किया जा सकता, जिसे संभालना बिलकुल भी मुश्किल नहीं है, और जो खर्च करने पर और अधिक बढ़ता है, वह धन विद्या है। विद्या (शिक्षा) सबसे श्रेष्ठ धन है। अतः यह उक्ति भी सही प्रतीत होती है- 'विद्या ददाति विनयम्'

सारांश:-

मेकेन्जी के अनुसार- व्यापक अर्थ में शिक्षा एक ऐसी प्रक्रिया है, जो जीवन पर्यन्त चलती है तथा जो जीवन के प्रत्येक अनुभव से आगे बढ़ती है। शिक्षा को सदैव से ही राष्ट्र एवं समाज की प्रगति के एक महत्वपूर्ण एवं शक्तिशाली साधन के रूप में स्वीकार किया जाता है। मानव को अपने विचारों को अभिव्यक्त करने के लिए भाषा की आवश्यकता होती है। भाषा विचार विनियम का एक सशक्त माध्यम है भाषा का प्रयोग केवल विचारों या भावनाओं के आदान प्रदान के लिए ही नहीं किया जाता अपितु भाषा का प्रयोग शिक्षा के क्षेत्र में भी किया जाता है। भाषा बालकों की शिक्षा को स्पष्ट आकार देने में सहायता करती है। प्रस्तुत शोध पत्र में भाषा के विकास तथा महत्व का शिक्षा पर क्या प्रभाव पड़ता है इस पर विचार किया गया है।

शब्द कुंजी:-अभिव्यक्ति, भावमुद्रा, आडिटरी, वाक्, इष्टतम्।

प्रस्तावना:-मानव अपने विचार विनियम में भाव मुद्राओं संकेतो, तथा भाषा का प्रयोग करता है। भाषा ही सबसे सरल सुगम एवं सर्वव्यापी शाब्दिक भाषा माध्यम है। क्योंकि भावमुद्राओं एवं संकेतो का क्षेत्र सीमित होता है। सामान्यतः छः प्रकार की भाषाओं अर्थात्-मातृभाषा, क्षेत्रीय भाषा, राष्ट्र भाषा, प्राचीन भाषा, विदेशी भाषा तथा राष्ट्रीय भाषा तथा अन्तर्राष्ट्रीय भाषा की चर्चा की जाती है। तथा जिस भाषा को बालक जन्म के पश्चात माता-पिता परिवार के सदस्यों से सीखता है उसे मातृभाषा कहते हैं। मातृभाषा में व्यक्ति का सर्वोत्तम अधिकार होता है। भाषा शब्द वस्तुतः संस्कृत शब्द (भाष) धातु से बना हुआ है। जिसका अर्थ (बोलना) होता है।

वेस्टर (Webster)-ने भाषा की परिभाषा देते हुए कहा कि 'भाषा भाव या विचार की अभिव्यक्त करने या संचारित करने का मौखिक या अन्यथा कोई साधन है।'

महर्षि पतंजलि- ने अपने (महाकाव्य) में भाषा को परिभाषित करते हुए कहा है- 'व्यक्ता वाचि वर्णां मेषां त इमं व्यक्तवान' अर्थात् भाषा वह व्यवहार है जिसमें हम वर्णात्मक अथवा व्यक्त शब्दों के द्वारा अपने विचारों

को प्रकट करते हैं।

स्वीट के अनुसार-ध्वन्यात्मक शब्दों द्वारा विचारों का प्रकटीकरण भाषा है। भाषा एक सतत चलने वाली प्रक्रिया है। भाषा शिक्षण में मौखिक अभिव्यक्ति के शिक्षण का विशेष महत्व होता है। मौखिक अभिव्यक्ति से अर्जित कुशलताये अन्य भाषायी कौशल के विकास में सहायक होती है। भाषा का शैक्षिक उपलब्धि में महत्वपूर्ण योगदान होता है। यदि बालक का भाषा विकास अच्छा होता है तो वह अन्य विषय जैसे- गणित, विज्ञान, सामाजिक विज्ञान, साहित्य जैसे विषयों को बड़ी आसानी से समझ एवं सीख लेता है।

उपरोक्त परिभाषाओं के विश्लेषण से यह स्पष्ट होता है कि भाषा का सम्बन्ध सीखने को प्रक्रिया से होता है। बालक का भाषा ज्ञान किसी भी विषय की उपलब्धि के परिणाम को इष्टतम् बनाने का प्रयास करता है।

भाषा विकास-मनोवैज्ञानिक ने बालक के भाषा विकास की प्रक्रिया को दो भागों में बांटा है:-

1. पूर्व वाक् भाषा विकास
2. पश्च वाक् भाषा विकास

जन्म के प्रथम पन्द्रह महीने में होने वाले भाषा विकास को पूर्व वाक् भाषा विकास कहा जाता है। इसमें बालक अपनी अभिव्यक्तियों को हावभाव अथवा अभिव्यक्तात्मक वाचकता आदि के द्वारा व्यक्त करता है। इसमें बालक अपनी संचार आवश्यकताओं को निम्न चार प्रकार से व्यक्त करता है।

- रुदन-इसमें शिशु रुदन (Crying) द्वारा बालक अपनी इच्छाओं को अभिव्यक्त करता है।

- बड़बड़ाना-भाषा विकास को दूसरी अवस्था है इसमें शिशु जब सात आठ माह का होता है तो वह बार-बार ध्वनि उच्चारित करता है जो अर्थपूर्ण हो जाता है। जैसे-दा दा, मा मा, ना ना, पा पा आदि।

- हावभाव-हावभाव का प्रयोग बालक जब करता है जब तक की वह शब्द को वाक्यों के रूप में बोलने में सक्षम नहीं हो जाता है।

- सांवेगिक अभिव्यक्ति-सांवेगिक अभिव्यक्ति में बालक विभिन्न संवेगों को मूल प्रवृत्तियों के सापेक्ष प्रस्तुत करता है। एक वर्ष के बालक में सांवेगिक अभिव्यक्ति के गुण प्रदर्शन होने लगते हैं। पश्च वाक् भाषा विकास लगभग पन्द्रह माह की आयु के उपरान्त होने वाला भाषा विकास है। इसमें बालक पाँच प्रकार की सामर्थ्य विकसित करता है।

- भाषा अवबोध-भाषा अवबोध में बालक परिवार में बोले गये शब्दों वाक्यों को समझना सीखता है।

- शब्दावली निर्माण-शब्दावली निर्माण में सामान्यतः बालक उसकी

जैविकीय जरूरत से जुड़े शब्द पहले सीखते हैं उसके पश्चात परिवेश में प्रमुखता से बोले जाने वाले शब्दों को सीखता है।

● **वाक्य संगठन-** वाक्य संगठन में प्रारंभ में वाक् के वाक्य अस्पष्ट व भाषा विज्ञान की दृष्टि से अपूर्ण होते हैं। ढाई तीन वर्ष की आयु के बालक छोटा वाक्य बनाने का प्रयास करते हैं। जब बालक पाँच साल के हो जाते हैं तो शब्दों को मिलाकर वाक्य बनाना व बोलना सीख जाते हैं। सात आठ वर्ष की आयु में बालक सुगमता से वाक्य बनाने व बोलने लग जाते हैं।

**सही उच्चारण-** इसमें बालक भाषा का उच्चारण सीखते हैं पहले बालक परिवार के सदस्यों की भाषा सुनता है, और उसकी नकल करता है। प्रारंभ में बच्चे अशुद्ध उच्चारण करते हैं, उनके अशुद्ध उच्चारण को दूर किया जाना चाहिए। जिससे वे सही उच्चारण करना सीख सकें।

**भाषा स्वामित्व-** भाषा विकास के इस अन्तिम चरण में बालक शब्दों वाक्यों को वाक्य विन्यास की दृष्टि से सही-सही बोलना व बनाना सीख लेता है। जिसके परिणाम स्वरूप वह लिखित भाषा तथा मौखिक भाषा दोनों में नियन्त्रण अर्जित कर लेता है। भाषा विकास का स्वरूप वैयक्तिक होता है एवं विभिन्न बालकों में भाषा विकास की गति, दिशा व दशा भिन्न-भिन्न होती है। भाषा विकास को प्रभावित करने वाले कारकों की विशेष भूमिका होती है।

● **स्वास्थ्य** का बालकों की भाषा विकास में अहम भूमिका होती है। बीमार बालक का किसी भी बीमारी के कारण उसका भाषा विकास अवरूढ़ हो जाता है।

● **बालकों की बुद्धि स्तर** का प्रभाव भाषा सीखने पर पड़ता है। कुशाग्र बुद्धि के बालकों का भाषा विकास तीव्र गति से होता है। जबकि कम बुद्धिलब्धि वाले बालकों का भाषा विकास धीमी गति से होता है।

● **सामाजिक आर्थिक स्तर** का प्रभाव भी भाषा सीखने में देखने को मिलता है। प्रायः देखा जाता है कि उच्च आय वर्ग वाले घरों में रेडियो, टीबी, तथा अन्य संसाधन तथा साथ ही पढ़ने लिखने तथा प्रशिक्षण आदि के लिए प्रेरित किया जाता है वहीं इसके विपरीत निम्न आय वर्ग में इन सब चीजों का अभाव देखने को मिलता है, जिससे ऐसे बालक जो निम्न आय वाले परिवार से आते हैं उनका भाषा विकास उच्च वर्ग के बच्चों की अपेक्षा कम देखने को मिलता है।

● **ऐसे परिवार जहाँ बहुभाषा का प्रयोग होता है।** प्रारंभ में ऐसे परिवार के बालकों को एक भाषा भ्रान्ति उत्पन्न हो जाती है। और यदि बालक को एक ही भाषा सिखायी जाती है तो बालकों का भाषा विकास अच्छा होता है।

● **अभिभावकों की प्रेरणा** एक महत्वपूर्ण कारक है जो बालकों को भाषा सीखने बोलने में नहीं वरन प्रत्येक क्षेत्र में उनकी सहायता प्रदान करता है। उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट है कि बालकों का भाषा विकास अनेक कारकों द्वारा निर्धारित होता है बालका का जन्म क्रम, आर्थिक सामाजिक स्थिति शैक्षिक स्थिति सभी बालक की भाषा को प्रभावित करते हैं।

● **बालकों में भाषा विकास के साथ-साथ कुछ बाधाएँ भी आती हैं** जिसे परिवार तथा शिक्षकों के माध्यम से इनको दूर करने का प्रयास किया जा सकता है। बाधाये निम्न प्रकार हैं -

● **वाक् विकार** - दोषपूर्ण वाणी को वाक् विकास कहा जाता है, इसमें अशुद्ध उच्चारण स्त्रीलिंग, पुल्लिंग में भेद न करना आदि समस्याये देखने को मिलती हैं। वाक् विकास को दूर करने के लिए छात्रों के समक्ष शुद्ध भाषा को प्रस्तुत किया जाना चाहिए।

● **उच्चारण विकास-उच्चारण विकास में अस्पष्ट भाषा उच्चारण व हकलाना तुतलाना भी वाणी दोष वा भाषा भाषा विकृति के कारण होते हैं।** इसमें बालक के आडटरी सिस्टम का संतुलित विकास न होने से ऐसा देखने को मिलता है।

भाषा विकास में कई प्रकार की प्रविधियों का प्रयोग होता है।

● **बालकों में अनुकरण की जन्मजात प्रवृत्ति पायी जाती है।** परिवार में बालक बड़ों का अनुकरण कर भाषा को सीखते हैं। इसके अतिरिक्त खेल मैदान में तथा विद्यालयी पाठ्यचर्या के दौरान बालक कहानी, वार्तालाप, प्रश्नोत्तर पढ़ना लिखना आदि क्रियाओं द्वारा भी भाषा सीखने, बोलने, पढ़ने में प्रवीण होते हैं। जिससे बालकों का भाषा विकास बेहतर होता है।

**शैक्षिक उपलब्धि:-** शैक्षिक उपलब्धि किसी भी व्यक्ति या समूह के द्वारा शिक्षा के क्षेत्र में प्राप्त की गई सफलता या उन्नति है। यह किसी शिक्षार्थी, शिक्षक या शैक्षिक संस्था द्वारा प्राप्त किये गये परिणामों और उपलब्धियों को इंगित करती है। अर्थात् शिक्षा के क्षेत्र में जो ज्ञान अर्जित किया जाता है उसे ही शैक्षिक उपलब्धि कहते हैं। शैक्षिक उपलब्धि अच्छी होने पर कार्य में गुणवत्ता आती है तथा कार्य के प्रति उत्साह बढ़ता है। इसके विपरीत शैक्षिक उपलब्धि संतोष जनक न होने पर हताशा हाथ आती है। शैक्षिक उपलब्धियों की कुछ प्रमुख विशेषाये - 1. उत्तम शैक्षिक परिणाम- जैसे परीक्षा में अच्छे अंक प्राप्त करना, उच्च श्रेणी में उत्तीर्ण होना।

2. नई शैक्षिक तकनीकी का विकास - जैसे शिक्षण में नवाचार, तकनीकी सुधार, और नये शैक्षिक तरीकों को अपनाना।

3. शैक्षिक संस्थाओं का विकास - जैसे स्कूल या विश्वविद्यालयों द्वारा शैक्षिक कार्यक्रमों में सुधार करना और छात्रों को बेहतर शिक्षा प्रदान करना।

बालकों की भाषा विकास की प्रक्रिया तथा उनकी शिक्षा व्यवस्था के बीच अत्यन्त धनिष्ठ संबंध पाया जाता है। भाषा विकास में तीन तरह की शिक्षा अर्थात् औपचारिक शिक्षा, अनौपचारिक शिक्षा तथा निरौपचारिक शिक्षा की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। औपचारिक शिक्षा में विद्यालय में नियोजित व व्यवस्थित शिक्षा प्रदान की जाती है। वहीं अनौपचारिक शिक्षा में विद्यालय के बाहर घर, परिवार तथा अन्य स्थलों से शिक्षा प्राप्त होती जिसका कोई निश्चित पाठ्यक्रम या प्रेमवर्क नहीं रहता है। तथा निरौपचारिक शिक्षा में शिक्षा सीखने वाले के सुविधानुसार दी जाती है। इसमें खुली शिक्षा, दूरस्थ शिक्षा, सतत् शिक्षा, पौढ़ शिक्षा शामिल किये जाते हैं। विद्यालय में अलग-अलग कक्षाओं में विद्यार्थी साल भर विभिन्न विषयों पर ज्ञान प्राप्त करते हैं। सभी विद्यार्थियों के ज्ञानार्जन की सीमा समान नहीं होती है। मूल्यांकन की प्रक्रिया के परिणाम स्वरूप विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि का पता चलता है। शिक्षा अपने आप में सभी प्रकार से विद्यार्थी के व्यवहार में परिवर्तन लाने का एक साधन है। इसका उद्देश्य विद्यार्थी के व्यवहार में परिवर्तन कर उसके व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास करना है। संक्षेप में शैक्षिक उपलब्धि किसी भी शैक्षिक क्षेत्र में प्राप्त की गई सफलता उन्नति और प्रभाव को दर्शाती है। जो व्यक्तियों या संस्थाओं की शिक्षा के प्रति प्रतिबद्धता और कठिन परिश्रम का परिणाम होती है।

**निष्कर्ष:-** निःसन्देह बालकों के भाषा विकास कई कारणों से प्रभावित होते हैं जिनमें बुद्धि, स्वास्थ्य, यौन विभिन्नता, सामाजिक-आर्थिक स्तर, परिवार का आकार, बहुजन्म, एक से अधिक भाषा का उपयोग, साथियों के साथ संबंध तथा माता-पिता द्वारा प्रेरणा प्रधान है। बालकों को शैक्षिक

उपलब्धि में भाषा के महत्व का पता चलता है। बालको का जैसा भाषा पर अधिकार होता है वैसी ही उपलब्धि देखने को मिलती है। मातृभाषा तथा अन्य भाषा की भिन्नता भाषा अधिगम को विविध रूपों में प्रभावित करती है। भाषा न केवल बालकों के संज्ञानात्मक तथा संचार कौशल में परिमार्जन करती है, बल्कि उनके रचनात्मक सोच एवं समस्या समाधान क्षमता भी बढ़ाती है। भाषा शक्तिशाली उपकरण है जो बच्चों के समग्र विकास और शैक्षिक उपलब्धि में सहायता होती है।

**सन्दर्भ सूची:-**

1. गुप्ता एस0पी0/गुप्ता अल्का उच्चतर शिक्षा मनोविज्ञान सिद्धान्त एवं व्यवहार शास्त्र पुस्तक भवन, प्रयागराज, उत्तर प्रदेश, संस्करण- 2019, पृष्ठ सं0- 198, 199, 200, 201, 203, 206 और 207
2. सिंह, अरुण कुमार, शिक्षा मनोविज्ञान, भारती भवन एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स दरियागंज, नई दिल्ली- 110002, संस्करण 2010, पृष्ठ सं0- 182
3. भाई योगेन्द्रजीत भाषा का शिक्षण शास्त्र, अग्रवाल पब्लिकेशन्स संस्करण, प्रथम 2014- 15, पृष्ठ सं0 1, 2
4. एस0 के मंगल, शिक्षा मनोविज्ञान, संस्करण- 2013, पृष्ठ सं0 22
5. अस्मिता ''भाषा और शिक्षा एक महत्वपूर्ण सम्बन्ध'' शिक्षा समीक्षा, 2022
6. शर्मा र भाषा का महत्व बच्चों के मानसिक विकास में बाल विकास पत्रिका, 2021

# समतापरक भारत का सपना और दलित साहित्य की सर्जनात्मकता

छोटी मीना

शोधार्थी, हिंदी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

सदियों से भारत की सामाजिक संरचना वर्ण एवं जाति आधारित रही है। शुरुआत के समय को जब हम देखते हैं तो पाते हैं कि समाज के प्रत्येक वर्ण के अलग-अलग कार्य निर्धारित थे और एक तरह से यह बंद व्यवस्था थी। इस संबंध में डॉ. बी आर अम्बेडकर का वक्तव्य दृष्टव्य है- 'हिन्दुस्तान देश केवल विषमता का आश्रय स्थान है। हिन्दू समाज उसकी एक मीनार है और प्रत्येक जाति उसकी एक मंजिल है। लेकिन ध्यान रखने की बात यह है कि इस मीनार में सीढ़ी नहीं लगी है। एक मंजिल से दूसरी मंजिल तक जाने के लिए उसमें मार्ग नहीं रखा गया है। जिस मंजिल में जन्में, उसी मंजिल में मरे। नीचे की मंजिल में जन्मा व्यक्ति चाहे कितना ही लायक क्यों न हो, उसे ऊपर वाली मंजिल में प्रवेश नहीं और उपर की मंजिल में जन्मा व्यक्ति, चाहे वह कितना ही नालायक क्यों न हो, उसे भी मंजिल से ढकेलने का साहस, किसी में नहीं। सचेतन और अचेतन पदार्थ सारे ईश्वर के रूप हैं, ऐसा कहने वाले स्वधर्मियों को ही अपवित्र मानते हैं।'

-मूकनायक पाक्षिक में डॉ. बी आर अम्बेडकर के लेख से

किसी भी देश व समाज के विकास में सभी नागरिकों को हिस्सेदारी अनिवार्य होती है। अगर किसी कारणवश कुछ लोगों की हिस्सेदारी शामिल नहीं हो पा रही है तो यह निश्चित है कि उस देश समाज का विकास उस प्रकार से नहीं होगा जिस तरह से होना चाहिए। जब हम भारत के विकास के संबंध में यह देखते हैं तो पाते हैं कि समाज में असमानता और गैर-बराबरी व्याप्त है जिसके कारण देश के विकास में सभी नागरिकों का योगदान संभव नहीं हो सका है। इस गैर-बराबरी ने कुछ समाज के मनुष्यों के विकास को रोका है जिससे देश के विकास पर भी नकारात्मक प्रभाव पड़ा है। इसी के कारण भारत के लोगों का एकता जैसे सूत्र में बने रहना आज भी एक सपना है। देश के विकास का वास्तविक अर्थ है सभी लोगों का प्रतिनिधित्व और हिस्सेदारी। इसलिए सामाजिक बराबरी और भारत के विकास का गहन अंतर्संबंध है।

हिंदी में दलित साहित्य की चर्चा और उस पर उठे विवादों ने हिंदी साहित्य को ही कटघरे में खड़ा किया है। हम पाते हैं कि जब शुरुआत में दलित साहित्य अपने आरंभिक चरण में था तो हिंदी साहित्य के मठाधीस, समीक्षक, आलोचक दलित साहित्य के अस्तित्व को ही नकार रहे थे किंतु दलित साहित्य ने भाषा, बिम्ब, प्रतीक और परम्परा के स्तर पर पुरानी अताकिंक मान्यताओं को खारिज किया और साहित्य में अभिव्यक्ति के नये आयामों को शामिल किया।

दलित साहित्य समाज सापेक्ष है। साहित्य की मूल संवेदना के साथ-साथ दलित साहित्य मनुष्य की स्वतंत्रता, समता और बंधुत्व की भावना को सर्वोपरि मानता है। यही सब विचार दलित साहित्य को सर्जनात्मक रूप प्रदान करते हैं। दलितों पर हिंसा, दमन और अत्याचार को मार्मिकता के साथ अपने साहित्य में उभरना इसकी सर्जनात्मकता का पहला उदाहरण है। ओमप्रकाश

वालमीकि ने इस सामूहिक अनुभव को अपनी एक कविता में इस प्रकार से चित्रित किया है-

'मैं जानता हूँ  
मेरा दर्द तुम्हारे लिए चींटी जैसा  
और तुम्हारा अपना दर्द पहाड़ जैसा  
इसलिए  
मेरे और तुम्हारे बीच,  
एक लंबा फासला है  
जिसे लंबाई से नहीं  
समय से नापा जाएगा।'

दलित साहित्य ने उस वर्ग की पीड़ा और वेदना को अपने साहित्य में उठाया जिसका चेहरा अभी तक के परंपरावादी साहित्य में नहीं दिखता है। हिंदी साहित्य के अधूरे, अनछुए और अनुत्तरित प्रश्नों को दलित साहित्य ने अपने माध्यम से प्रस्तुत किया है जिससे हिंदी साहित्य के विकास में उत्तरोत्तर वृद्धि देखने को मिलती है। दलित साहित्य में सदियों के उस दमन का चित्रण है जो अब तक कि साहित्य में नजर नहीं आता है। दलित कविता के उद्भव को भी हम इसी तरह से देख सकते हैं कि-

'हजारों वर्षों का अंधेरा  
छिपा बैठा है मेरी सांसों में  
कांपता है दिये की लौं-सा  
और तब्दील हो जाता है कविता में।'

दलित साहित्य की वैचारिकी में उस वर्णवादी मानसिकता को चुनौती दी है जिसने दलित समाज को सदियों तक अपना गुलाम बनाकर रखा था। हम देखते हैं कि हिंदी साहित्य की परंपरागत काव्य परंपरा में अब तक जाति को प्रश्रोकित नहीं किया गया है। वर्ण और जाति की श्रेणीबद्धता पर प्रहार दलित साहित्य की अनूठी विशेषता है। वर्चस्वशाली सभ्यता एवं संस्कृति के हजारों सालों के इतिहास, संस्कृति, धर्म एवं साहित्य का आलोचनात्मक विश्लेषण हमें दलित साहित्य में ही देखने को मिलता है। दलित साहित्य तार्किक ढंग से उस सच को समाज एवं साहित्य के समक्ष प्रस्तुत करता है जो अभी तक कहीं छुपा हुआ था। इस तरह की परम्परावादी मानसिकता को दलित कविता इस प्रकार से प्रश्रोकित करती है-

'चूहड़े या डोम की आत्मा  
ब्रह्म का अंश क्यों नहीं है  
मैं नहीं जानता  
शायद आप जानते हो।'

हिंदू संस्कृति द्वारा निर्मित धर्मशास्त्र, पुराण, स्मृतियाँ, मिथक,

कर्मकाण्ड और अंधविश्वास की परंपरा को बदलने की अनुगुंज दलित साहित्य में प्रमुखता से नजर आती है। साथ ही हिंदू सभ्यता और संस्कृति की हिंसा और षड्यंत्रों को बेनकाब भी किया है। दलित साहित्यकारों ने यह स्पष्ट किया है कि हिंदू-व्यवस्था की जो क्रूरताएँ थी उन्हें जानबूझकर अनदेखा और अनसूना कर दिया गया था। ईश्वर और देवता के अस्तित्व पर संदेह भी दलित साहित्य की मुख्य प्रवृत्ति है क्योंकि सदियों से दलित वर्ग भाग्य-भगवान के सहारे टगा जाता रहा है। अंधविश्वास और आस्था के नाम पर उस डराया सताया जाता रहा है। इसको लेकर दलित साहित्य में लिखा है-

‘सच बोलने से नहीं रोक पाएंगे

अब शांति देवता भी

फड़फड़ाएंगे इतिहास पृष्ठ

कहेंगे आओ, दर्ज कर दो

किसी भी पन्ने पर,

अपने अंगूठे का निशान।’

दलित साहित्य ने पारंपरिक साहित्य के प्रतिमान एवं परंपराओं को नकारते हुए अपने अनुसार सौन्दर्यशास्त्र के नये प्रतिमान गढ़े हैं। उन्होंने मिथकों, प्रतीकों और बिंबों को अपने अनुसार गढ़ा है और भाषा को उसी रूप में व्यक्त किया है जिस रूप में वह समाज में बोली जाती है। दलित साहित्य पर अक्सर यह आरोप भी लगते हैं कि उनकी भाषा में वह संस्कार नहीं हैं जो कि पहले के साहित्य में नजर आता है, उनकी भाषा पर असभ्य, गाली-गलौच से युक्त और अनगढ़पन का भी आरोप लगता है किंतु ये आरोप निराधार हैं। दलित साहित्य अपने अनगढ़पन में ही नवीन बिम्ब विधान सृजित करता है और समता की भाषा में रचना करता है। ओमप्रकाश वाल्मीकि की ‘पेड़’ कविता सामान्य और सहज भाषा के साथ हिंदी साहित्य के समानान्तर बिम्बार्थ का नया संसार रचती है-

‘पेड़

तुम उसी वक्त तक पेड़ हो

जब तक कि ये पत्ते

तुम्हारे साथ हैं

पत्ते झरते ही

पेड़ नहीं ढूँढ कहलाओगे

जीते जी मर जाओगे।’

दलित साहित्य की वैचारिकी का मुख्य आधार फूले-अम्बेडकर के विचार हैं जिसमें बुद्ध के अहिंसक और समतावादी विचारों को भी अपनाया है। रजनी तिलक लिखती है-

‘हम जंग नहीं चाहते

जीना चाहते हैं

हम विनाश नहीं सर्जन चाहते हैं

बुद्ध चाहते हैं।’

दलित साहित्य ने स्त्री की परंपरागत छवि को तोड़ा है और उसके अधिकारों की लड़ाई को प्रमुखता से उठाया है। हम देखते हैं कि दलित एवं आदिवासी समाज की स्त्रियाँ तो पहले से ही कंधे से कंधा मिलाकर घर की चारदीवारी से बाहर के विभिन्न कार्यों में सहायता करती थीं किंतु तथाकथित उच्च वर्ण की स्त्रियों को घर की चारदीवारी के अंदर ही रहना पड़ता था जिसके कारण उनको वह स्वतंत्रता और आजादी नहीं मिली जो कि मिलनी चाहिए थी। किंतु दलित साहित्य सभी मनुष्यों की बराबरी एवं पक्षधरता की बात करता है। रजनी अनुरागी लिखती है-

‘मैं वैसी नहीं हूँ

जैसी तुम मुझे देखते हो

मैं वैसी हूँ

जैसी मैं खुद को देखती हूँ

तुम देख नहीं सकते मुझको

मेरी ही तरह।’

दलित साहित्य में स्त्री मुक्ति का भिन्न स्वर इसी कारण नजर आता है क्योंकि उसमें स्त्रियाँ संघर्षशील समाज में रहकर उसे बेहतर बनाना चाहती हैं। स्त्रियों को वस्तु या देवी की तरह नहीं बल्कि एक मनुष्य की तरह ही चित्रित किया गया है। दलित साहित्य नकार का साहित्य है जो संघर्ष से उपजा है तथा जिसमें समता, स्वतंत्रता और बंधुत्व का भाव है और वर्ण व्यवस्था से उपजे जातिवाद का विरोध है। बहुजन हिताएँ, बहुजन सुखाएँ इसके मूल में हैं। डा. एन सिंह का कहना है कि ‘इस धारा के रचनाकार गाँव और छोटे कस्बों में रहकर आम आदमी की सारी दिक्कों को झेलते हुए, समय मिलते ही अपनी लहुलुहान चेतना को इस प्रतिबद्धता के साथ अभिव्यक्त करते हैं कि आसपास बिखरा गूँगा बहरा जनसमूह मेरी आवाज सुनकर जाग जाए। दलित साहित्यकार पसीने में डूबकर पसीने की बातें करते हैं। शायद त्रासदियों में कुछ परिवर्तन आए।’

दलित साहित्य ने संविधान, समता, स्वतंत्रता और बंधुत्व को अपने यहाँ से जगह दी है। डॉ. अम्बेडकर के जीवन दर्शन से दलित साहित्य को जो वैचारिक परिपक्वता और बौद्धिकता मिलती है वह दलित साहित्य को बहुआयामी और विस्तृत भूमि प्रदान करती है। साथ ही जाति के अछुतपन और गैरबराबरी से मुक्ति का आह्वान इस साहित्य ने किया है। दलित साहित्य ने शिक्षा और न्याय को भी अपने लेखन में प्रमुख जगह दी है। इस तरह की वैचारिक प्रतिबद्धता से ही समतापरक समाज का निर्माण संभव हो सकता है जिसमें मनुष्य की पक्षधरता को केन्द्र में रखा है। दलित साहित्य हमें एक नये समाज, जिसमें सभी का प्रतिनिधित्व हो, का रास्ता प्रदान करता है। इसे संदर्भ में दलित रचनाकार लिखता है कि जिस तरह पेड़ का हर पत्ता हरा होने से पेड़ के वजूद का पता चलता है उसी प्रकार भारतीय समाज की सही पहचान तब होगी जब समाज की सभी जातियों को समान अवसर मिले। कुल मिलाकर दलित साहित्य भविष्य का साहित्य है। राजेन्द्र यादव का यह कहना कि ‘अगली सदी दलित रचनाकारों की होगी’ सच लगता है।

संदर्भ सूची:-

1. दलित साहित्य, साहित्य का सौंदर्यशास्त्र, ओमप्रकाश वाल्मीकि, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली
2. दलित चेतना की कविताएँ (डॉ. रामचन्द्र/स.डॉ. प्रवीण कुमार)
3. मूकनायक पत्रिका (डॉ. अम्बेडकर के लेख)
4. हंस पत्रिका (राजेन्द्र यादव)
5. युद्धतर आम आदमी पत्रिका
6. हिंदी दलित कविता, पश्यन्ति, अंक अप्रैल-जून, 1998 (डॉ. एन. सिंह)

# ब्रज क्षेत्र की लोक संस्कृति के विविध आयामों में शिक्षा

मनोज कुमार

डॉ. अंजू लता

1. शोधार्थी, शिक्षाशास्त्र विभाग, बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय, झाँसी
2. एसोसिएट प्रोफेसर, शिक्षाशास्त्र विभाग, राजकीय महिला महाविद्यालय, झाँसी

सारांश:- ब्रज की लोक संस्कृति अत्यन्त प्राचीन है। इस लोक संस्कृति की अजस्र अमृतधारा युगों-युगों से ब्रज प्रदेश में प्रवाहित होती रही है। इस संस्कृति ने जहाँ ब्रज के लोगों को उत्साही और कर्मठ बनाया है, वहीं उनके हृदय में आनन्द की अनुभूति, सादगी, सरलता और सहिष्णुता का बीजारोपण किया है। ब्रज लोक संस्कृति का दर्शन उसके लोक साहित्य में मिलता है, जो ब्रज के लोकगीतों, लोक कथाओं, लोक नाट्यों आदि से समृद्ध है तथा ब्रज भूमि के लोक नृत्यों, तीर्थों, आराध्य की आराधनाओं, परिक्रमाओं, पर्व-उत्सवों और मेलों आदि ने उसकी सम्पन्नता में कई गुना अभिवृद्धि की है। यद्यपि ब्रज लोक संस्कृति की परम्परा में वो पहले जैसा आनन्द प्रायः देखने को नहीं मिलता। भौतिकवादी संस्कृति के उदय ने आज के लोगों को एकाकी बनाने का प्रयास किया। पुरानी परंपरायें कुछ शिथिल होती दिखाई पड़ रही हैं। परन्तु कुछ ब्रज लोक संस्कृति प्रेमी, लेखक और साहित्यकार ब्रज के लोक साहित्य और लोक संस्कृति का रक्षण करने के लिये कटिबद्ध हैं। उन्होंने ब्रज की लोक संस्कृति के आधार स्तम्भ लोक साहित्य को लिपिबद्ध करने का प्रयास किया है।

ब्रज की लोक संस्कृति की इसी समृद्ध परंपरा को बचाये रखने में शिक्षा महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन करती है क्योंकि शिक्षा और संस्कृति एक-दूसरे को गहराई से प्रभावित करते हैं। इतिहास इस बात का प्रमाण है कि प्राचीन काल से आज तक शिक्षा के कारण ही संस्कृति में परिवर्तन एवं परिवर्द्धन संभव हुआ। शिक्षा समाज के जीवन को नये मानदण्डों के अनुसार अनुशासित करती है। शिक्षित व्यक्ति अपने ज्ञान, कौशल, मूल्य एवं आदर्श के आधार पर संस्कृति निर्माण, सुधार एवं विकास में सहायता देता है। इसी कारण समय-समय पर शिक्षा नीतियों में परिवर्तन करके वर्तमान परिप्रेक्ष्य के अनुसार शिक्षा को और अधिक प्रासंगिक बनाने का प्रयास किया जाता है। इस सम्बन्ध में डॉ० जाकिर हुसैन ने कहा है, "शिक्षित व्यक्ति की विशेष निशानी यह होनी चाहिये कि उसमें अपनी संस्कृति के पति एक धनात्मक दृष्टिकोण हो।"

लोक संस्कृति की अपनी अलग पहचान व विशेषता है जिसका सम्बन्ध किसी देश व क्षेत्र विशेष के सामान्य जन समुदाय से होता है। समाज में प्रचलित विभिन्न क्रिया-कलाप, आचार-विचार, संस्कार, प्रथायें, कर्मकाण्ड, आस्था एवं विश्वास लोक संस्कृति के आधारभूत तत्व हैं।

किसी क्षेत्र की लोक संस्कृति उस क्षेत्र को अलग पहचान दिलाती है। लोक संस्कृति के द्वारा समाज की आर्थिक, राजनैतिक, सामाजिक व धार्मिक व्यवस्था का प्रवाह सामाजिक रूप से निरन्तर गतिशील रहता है।

संस्कृति व्यक्ति एवं समाज के विकास का परिचायक होती है। लोक जीवन इसी संस्कृति का अक्षय भण्डार है। लोक संस्कृति, लोक परम्पराओं, लोक साहित्य, लोक नाट्य, लोकगीत एवं लोककला में सहज आत्मीयता के साथ उल्लसित है। लोक परम्पराओं के अन्तर्गत विभिन्न प्रकार के व्रत-त्यौहार, प्रथायें, मेले, रुढ़ियाँ एवं संस्कार आते हैं जिसके कारण समाज में एकनिष्ठता व एकरूपता बनी रहती है। इसकी भाषा लोक भाषा होती है। लोक साहित्य के अन्तर्गत लोक गाथा, लोकगीत, पहेलियाँ एवं लोकोक्तियाँ आती हैं। लोक-नाट्य का लोक जीवन से घनिष्ठ सम्बन्ध है।

ग्रामीण समाजशास्त्र के अन्तर्गत एक व्यवस्थित अवधारणा के रूप में लोक संस्कृति को प्रतिपादित करने का श्रेय मुख्य रूप से रॉबर्ट रेडफ़ील्ड को जाता है। आरम्भ में लोक संस्कृति की अवधारणा के लिये कृषक संस्कृति शब्द का प्रयोग इन्होंने ही किया। लोक संस्कृति का वास्तविक अर्थ उस संस्कृति से है जो ग्रामीण और विशेषकर कृषक समाज में उदय होती है और उसी समाज में विकसित होती है, विभिन्न विद्वानों ने लोक संस्कृति की परिभाषा निम्न रूप में दी है-

रेडफ़ील्ड के अनुसार-"यह एक ऐसा समाज है जिसका आकार छोटा होता है, जिसमें अकेलापन, अशिक्षा, समानता, समूह दृढ़ता की भावना एवं जीवन का रुढ़िगत ढंग पाया जाता है।"

डॉ. सम्पूर्णानन्द के अनुसार-"लोक संस्कृति वह जीती-जागती वस्तु है जिसके द्वारा लोक की संस्कृति बोलती है।"

उपर्युक्त परिभाषाओं से स्पष्ट है कि लोक समाज की संस्कृति ही लोक संस्कृति कहलाती है। इस संस्कृति में रुढ़ियों का प्रभाव अधिक होता है इसमें परिवार, नातेदारी, धर्म, पड़ोस आदि का अधिक महत्व होता है। लोक संस्कृति का कोई लिखित स्वरूप नहीं होता है बल्कि यह मौखिक रूप से ही अगली पीढ़ी को हस्तान्तरित होती है। लोक संस्कृति किसी व्यक्ति विशेष की निधि नहीं है, यह सम्पूर्ण समाज के सहयोग से उत्पन्न हुई है। लोक संस्कृति में सामूहिक प्रेरणा, सामूहिक हिस्सा लेने की भावना पाई जाती है, लोक संस्कृति अव्यवसायिक होती है। इसकी अभिव्यक्ति व प्रदर्शन का उद्देश्य मुनाफ़ कमाना नहीं होता है। लोक समाज में व्यक्तियों के व्यवहार कानून से उतने प्रभावित नहीं होते जितने कि परम्पराओं तथा धार्मिक नियमों से प्रभावित होते हैं। यहाँ बुद्धिजीवी जैसा न तो कोई पृथक वर्ग होता है और न ही वैज्ञानिक चिन्तन का प्रभाव होता है। इस दृष्टिकोण से लोक समाज की सांस्कृतिक विशेषताओं से समन्वय का नाम ही लोक संस्कृति है। इसमें प्रमुख-प्रमुख प्रथायें, परम्परायें, लोकाचार, कर्मकाण्ड और अनुष्ठान आदि सामान्यतः

मौखिक रूप से ही प्रचलित होते हैं। लोक संस्कृति में विविधता भी निहित होती है। चूँकि लोक संस्कृति का क्षेत्र अपने-अपने स्थानीय समूहों तक ही सीमित रहता है इसलिये विभिन्न क्षेत्रों में थोड़ी-थोड़ी सी दूरी पर भी इसके स्वरूपों में विविधता पाई जाती है।

**ब्रज क्षेत्र एवं संस्कृति:**—वस्तुतः जहाँ-जहाँ ब्रज भाषा बोली जाती है, जहाँ पर ब्रज संस्कृति फल-फूल रही है और ब्रज लोक साहित्य का विकास हो रहा है। वह क्षेत्र ब्रज क्षेत्र के नाम से जाना जाता है। आधुनिक ब्रज भाषा लगभग एक करोड़ तेईस लाख जनता के द्वारा बोली जाती है तथा इसकी परिधि लगभग अड़तीस हजार वर्गमील में फैली हुई है, ब्रज क्षेत्र की सीमा केवल चौरासी कोस नहीं है, यह उत्तर प्रदेश ही नहीं मध्यप्रदेश, राजस्थान, हरियाणा आदि के उन क्षेत्रों तक फैली हुई है जो ब्रज प्रदेश के समीप पड़ते हैं। कानपुर, ग्वालियर, धौलपुर, करौली, सवाई माधौपुर, पलवल, एटा, इटावा, मैनपुरी, बुलन्दशहर, अलीगढ़, खुर्जा आदि ब्रजभाषी स्थान हैं, इन स्थानों पर हमें उसी लोक संस्कृति के दर्शन होते हैं जो ब्रज चौरासी कोस में मिलते हैं, यहाँ की लोक परम्पराओं, लोक गाथाओं और लोकोत्सवों में काफी हद तक समानता पायी जाती है। भाषा भी लगभग एक जैसी है।

ब्रज क्षेत्र की संस्कृति अपने वैशिष्ट्य के चलते हमारी अमूल्य धरोहर है, राधा और कृष्ण ब्रज के लोकजीवन तथा संस्कृति के केन्द्र हैं, कृष्ण नटखट, लीलाधारी, लुभावने, सौन्दर्य व प्रेम के साक्षात् रूप, कोमलता के आकार और लोकरक्षक है। ब्रज की लोक संस्कृति मूलतः कृषि समाज से जुड़ी है, ग्रामीण समाज के अधिकांश कार्य उत्सव, मेले और हाट, पूजा-पाठ, लोकनृत्य, लोकगीत, लोकनाट्य आदि कृषि से सम्बन्धित हैं।

**ब्रज क्षेत्र की प्राचीन एवं वर्तमान लोक संस्कृति:**—प्राचीन काल में ब्रज लोक संस्कृति का स्वरूप वर्तमान स्वरूप से काफी हद तक भिन्न था, पहले कलाकार अपनी कला को जीवन के आनन्द के लिये और जीवन की सम्पूर्णता के लिये बिना किसी लोभ के प्रस्तुत करता था लेकिन आज का कलाकार अपनी कला का प्रदर्शन लोभ और स्वार्थ के वशीभूत होकर करता है। आज के भौतिकवादी युग में धन, वैभव, व्यक्तिगत स्वार्थ आदि ने कलाकार को व्यावसायिक बना दिया है। आजकल लोक कलाएँ, लोक परम्पराएँ, उत्सव, पर्व, लोक गीत आदि के स्वरूप में भी थोड़ा बहुत परिवर्तन देखने को मिलता है। आजकल लोक कला का प्रदर्शन औपचारिक सा लगने लगा है। इसी कारण लोक संस्कृति के संरक्षण हेतु कई साहित्यकार एवं विद्वानों ने संस्कृति के संरक्षण के अनेकानेक प्रयास किये हैं। इस दौरान विभिन्न संस्थाओं का भी निर्माण हुआ है जैसे- ब्रज संस्कृति शोध संस्थान वृन्दावन जिसकी स्थापना 18 अप्रैल 2010 को हुई। ब्रज लोक संस्कृति एवं सेवा संस्थान मथुरा आदि भी इसके उदाहरण हैं। प्राचीन समय में लोग स्वांग, कठपुतली, नाच, आल्हा, श्रवण आदि से मनोरंजन करते थे, आजकल ग्रामीण समुदाय में लोकगीतों और लोक कथाओं के स्थान पर फ़िल्मी गानों की धुन सुनाई पड़ती है। प्राचीन काल में लोक संस्कृति की सरलता उसकी मुख्य विशेषता थी परन्तु आज लोक संस्कृति में जटिलता आ गयी है।

**ब्रज की लोक संस्कृति में शिक्षा:**—संस्कृति के अभाव में शिक्षा निस्सार और निष्प्रयोज्य है। यदि किसी समाज की शिक्षा में कोई विशेषता मिलती है तो उसका एकमात्र कारण उस समाज की संस्कृति है। वस्तुतः प्रत्येक समाज अपनी संस्कृति के अनुरूप ही शिक्षा की व्यवस्था करता है। संस्कृति के हस्तान्तरण में शिक्षा महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। यह सत्य है कि संस्कृति की शिक्षा समाज को अध्यापक द्वारा दी जाती है। इस प्रकार हम

कह सकते हैं कि संस्कृति को हस्तान्तरित करने का कार्य शिक्षक को सौंपा गया है। संस्कृति के माध्यम से व्यक्ति का बौद्धिक, चारित्रिक, संवेगात्मक और आध्यात्मिक विकास होता है। लोक संस्कृति किसी भी समाज के इतिहास का विशुद्ध सार है। यह उन रीतियों और परम्पराओं से मिलकर बनती है जिसमें उस समाज के लम्बे समय के अनुभवों का निचोड़ होता है। अतः कोई समाज अपनी संस्कृति से अलग होकर अपना नुकसान ही करता है। सही अर्थ में शिक्षा के अन्तर्गत कला और मानव अभिव्यक्तियों के अन्य सांस्कृतिक रूपों का समावेश किया जाना चाहिये। ब्रज की लोक संस्कृति में शिक्षा अपना महत्वपूर्ण योगदान देती है जिसके फलस्वरूप आज भी ब्रज की लोक संस्कृति अपने आप में विशिष्ट बनी हुयी है और ब्रज को एक अलग पहचान देती है। शिक्षा को अगर हम ज्ञान, कल्पनाशक्ति एवं रचनाशीलता के विकास का माध्यम मानें तो इनके विकास में हर समाज की अपनी संस्कृतियों के प्रगतिशील तत्वों की बड़ी भूमिका होती है। ब्रज की लोक संस्कृति के विविध आयामों में शिक्षा का स्वरूप निम्न है—

1. **ब्रज के लोकोत्सव में शिक्षा:**—ब्रज की लोक संस्कृति में विभिन्न प्रकार के उत्सव मनाये जाते हैं जैसे-बांसुरी वादन, स्वांग, ब्रज की होली, रसिया, चरकूला नृत्य, मटका नृत्य, लावनी आदि प्रमुख लोकोत्सव हैं। ब्रज उत्सव में रासलीला भी एक प्रमुख नृत्य है जो राधा-कृष्ण की अनन्त प्रेम की कहानी को दर्शाता है जो हमें आध्यात्मिक उन्नति की ओर अथवा आध्यात्मिक प्रेम की ओर आकर्षित करने की शिक्षा देता है। विभिन्न प्रकार के लोकोत्सव हमारे हृदय के अन्तस्थल को प्रभावित करते हैं और हमें जीवन में अपनी संस्कृति को बचाये रखने के लिये प्रेरित करते हैं।

2. **ब्रज के लोक नृत्य एवं लोकगीतों में शिक्षा:**—ब्रज में विभिन्न प्रकार के लोकनृत्य एवं लोकगीत प्रचलित हैं। जिनमें ब्रज का चरकूला नृत्य अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर ख्याति प्राप्त है। इसके अन्तर्गत महिलायें अपने सिर पर सात मटके रखकर और उसके ऊपर जलता हुआ दीया रखकर कृष्ण की भक्ति के गीत गाती हैं और नृत्य करती हैं जिसको देखकर सभी दर्शक मंत्रमुग्ध हो जाते हैं। इस नृत्य के दौरान नगाड़ों और ढोल के साथ रसिया का गायन भी किया जाता है।

ब्रज के लोक नृत्यों में देश के आठ शास्त्रीय नृत्यों में कथक की एक विशिष्ट पहचान है। जिसमें नृत्य करने वाला व्यक्ति विभिन्न प्रकार की मुद्राओं के साथ और स्वांग रचाकर लय के साथ नृत्य करता है, इस दौरान गजल और दुमरी भी गायी जाती है तथा तबला और पखावज आदि की संगत भी मिलती है। ब्रज के लोकगीतों में वहाँ का सम्पूर्ण जीवन प्रतिबिम्बित होता है। ब्रज के सुख-दुख, आमोद-प्रमोद, आनन्द-उत्साह आदि की अभिव्यक्ति इन लोक गीतों के माध्यम से होती है। इनके माध्यम से लोक जीवन की सफल अभिव्यक्ति होती है। ब्रज के विभिन्न प्रकार के लोकगीत जैसे संस्कार गीत, ऋतु गीत, धार्मिक गीत एवं श्रम गीत तथा कथागीत आदि के माध्यम से व्यक्ति लोक गीतों के प्रति रसास्वादन की अनुभूति करता है। जिससे व्यक्ति के हृदय में संवेदना का प्रादुर्भाव होता है।

3. **ब्रज के लोक साहित्य में शिक्षा:**—ब्रज के लोक साहित्य में कान्हा की बांसुरी के स्वर है, राधा के गीतों का श्रृंगार है, यहाँ की गाली में भी कन्हैया का माधुर्य भरा है, उल्हाने और आंसुओं से भरे ब्रज के इस लोक साहित्य से हमें सम्पूर्णता से जीवन जीने की शिक्षा मिलती है। ब्रज में लोक साहित्य भिन्न-भिन्न रूपों में बिखरा पड़ा हुआ है। ग्रामीण कम पढ़े लिखे लोग भी लोक साहित्य को रचने में माहिर हैं व अपने आस-पास के जीवन से लोक

जीवन की कथाओं को अपनी भाषा में सम्प्रेषित करने में सक्षम हैं। लोक साहित्य हमें जीवन को नये तरीके से जीने और नयी भावनाओं के प्रति आकर्षित करता है।

4. **ब्रज की लोक परम्पराओं में शिक्षा:-** ब्रज की लोक परम्पराओं में नाट्य परम्परा, रास की मंचीय परम्परा एवं ब्रज की सांझी परम्परा से जुड़ा विस्तृत साहित्य आज ब्रज मण्डल ही नहीं अपितु भारतवर्ष के विभिन्न हस्तलिखित ग्रन्थागारों में देखा जा सकता है। वृन्दावन शोध संस्थान द्वारा ब्रज की कला परम्पराओं को संरक्षित करने के निमित्त आयोजित प्रकाशन श्रृंखला के इस पुष्प में सांझी से जुड़े साहित्यिक पक्ष का समावेश विभिन्न हस्तलिखित ग्रन्थ संग्रहों के सहयोग से किया गया है। कला परम्पराओं की समृद्धि ने ब्रज के सांस्कृतिक धरातल को अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्रदान की है, राधा-कृष्ण की लीलाओं से अनुप्राणित ब्रज संस्कृति में उनकी व्याप्ति किसी न किसी रूप में सहजता से देखी जा सकती है। उल्लास अथवा उत्सव धर्मिता ब्रज के लोक जीवन का प्रधान तत्व है। ब्रज का सांझी उत्सव भारतीय जन-मन में एक नई उमंग का संचार करता है और भक्ति के प्रति व्यक्ति को समर्पित करता है।

**ब्रज की लोक संस्कृति के संरक्षण में शिक्षा की भूमिका:-** शिक्षा लोक संस्कृति के संरक्षण और प्रसार में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है, शिक्षा के माध्यम से सांस्कृतिक ज्ञान और मूल्यों को एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक पहुंचाया जाता है। शिक्षा एक संस्कृति की परम्पराओं और रीति-रिवाजों के साथ-साथ सांस्कृतिक पहचान को व्यक्त करने के लिये इस्तेमाल की जाने वाली भाषा और संचार के अन्य रूपों को पारित करने में मदद करती है। यह व्यक्तियों को अन्य संस्कृतियों के रीति-रिवाजों, विश्वासों और मूल्यों के बारे में जानने और उनकी सराहना करने के अवसर भी देती है। शिक्षा लोगों को अपनी सांस्कृतिक विरासत के संरक्षण के महत्व और दूसरों के साथ साझा करने की आवश्यकता को समझने में मदद करती है। शिक्षा व्यक्ति के लोक जीवन में अनुशासन उत्पन्न करती है जिससे व्यक्ति अपनी परम्पराओं और उत्सवों के प्रति एक सकारात्मक दृष्टिकोण बना पाने में सक्षम होता है और वह अपनी संस्कृति की अमूल्य धरोहर को सहेजने का निरन्तर प्रयास करता है। शिक्षा के माध्यम से व्यक्ति अपने जीवन को सम्पूर्णता से जी पाता है और अपनी लोक संस्कृति के प्रति अडिग और कर्तव्यनिष्ठ बना रहता है और नित्य प्रति अपनी संस्कृति के उत्तरोत्तर विकास एवं संरक्षण करने के प्रति पूर्ण रूप से समर्पित हो पाता है।

शिक्षा लोक जीवन में विभिन्न संस्कारों को जीवित रखती है अपने तीज-त्यौहारों के प्रति पूर्णतः सजग बनाने का प्रयास करती है, शिक्षा विभिन्न देवी-देवताओं के प्रति आदर और विश्वास की भावना को सहेजती है, विभिन्न पूजा स्थलों के संरक्षण के प्रति क्षेत्र विशेष के व्यक्तियों को सजग बनाती है। विभिन्न धर्म ग्रन्थों के प्रति आदर उत्पन्न करती है। शिक्षा हमारे ब्रत, उपवास और उपासना के प्रति अटूट विश्वास जगाने में हमारी मदद करती है। अतः हम कह सकते हैं कि शिक्षा और लोक संस्कृति में घनिष्ठ सम्बन्ध है जिसके द्वारा शिक्षा और लोक संस्कृति दोनों का संवर्द्धन होता है। ब्रज भूमि भारत के सांस्कृतिक पक्ष का हृदय है, इस भूमि का नाम स्मरण मात्र राधा-कृष्ण और उनकी लीलाओं का सुखद आनन्द प्रदान करने वाला है। श्री कृष्ण की लालाओं के साक्षी यहाँ के वन, पर्वत, सरिता, कुण्ड, सरोवर, पशु-पक्षी एवं रज कण सभी भागवत स्वरूप हैं। ब्रज मण्डल के सम्बन्ध में यह लोक मान्यता युग युगान्तर से प्रचलित है। ब्रज के इसी वैशिष्ट्य ने इसे कहीं अधिक सांस्कृतिक और पूजनीय बना दिया है।

**सन्दर्भ सूची:-**

1. गौड़, डॉ० रामशरण, ब्रज लोक साहित्य और लोक संस्कृति, अनिल प्रकाशन, 2016
2. चक्रवर्ती, शेफाली, ब्रज लोक साहित्य: नव चिन्तन, हिन्दी बुक सेन्टर नई दिल्ली।
3. चतुर्वेदी, नर्मदेश्वर, लोक संस्कृति की आत्मा, सम्मेलन पत्रिका, लोक संस्कृति अंक, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयागराज।
4. डॉ० सत्येन्द्र, ब्रज लोक साहित्य का अध्ययन, साहित्य रत्न भण्डार, आगरा।
5. सिंह, प्रो० राधेश्याम एवं रावत, डॉ० पवन कुमार, लोक साहित्य एवं संस्कृति, लोक भारती प्रकाशन, प्रयागराज।

# भारत में पंचायती राज व्यवस्था का विकास : ऐतिहासिक विश्लेषण

डॉ. मुकेश कुमार यादव

ममता पाण्डेय

1. एसोसिएट प्रोफेसर, सिंघानिया विश्वविद्यालय, राजस्थान

2. लेक्चरर, राजनीति विज्ञान, न्यू लूक पी. जी. कन्या महाविद्यालय, लोधा, बांसवाड़ा, राजस्थान

**शोध सार:-**शासन व्यवस्था मुख्य रूप से विकेंद्रीकरण पर आधारित होती है। शासन व्यवस्था ऊपरी स्तर पर जब तक सफल नहीं हो सकती जब तक उसके निचले स्तर का योगदान न हो। लोकतांत्रिक शासन व्यवस्था भारत की एक प्रमुख विशेषता है। भारत के पूर्व काल से ही निचले स्तर का योगदान शासन व्यवस्था को मजबूती प्रदान करता रहा है। पूर्वकाल में निचले स्तर के इस योगदान को भुलाया नहीं जा सकता।

**प्रस्तावना:-**भारत के प्राचीन साहित्यिक ग्रंथों में पंचायत अथवा पंचायती शब्दों का उल्लेख किया गया है। भारतीय व्याख्याकारों के अनुसार सामाजिक संरचना और जीवन को सुदृढ़ता प्रदान करने के लिए प्राथमिक संस्थाओं ग्राम, पंचायत, संयुक्त परिवार प्रणाली का निर्माण किया गया था। प्राचीन समय से ही भारतीय ग्राम प्रशासन की केंद्रबिंदु रही है। भारत गांवों का देश है। उसकी तीन चौथाई जनसंख्या गांव में निवास करती है। जिस देश की तीन चौथाई जनसंख्या गांव में निवास करें तो उसके विकेंद्रीकरण में उनका जमीनी स्तर पर योगदान आवश्यक हो जाता है।

पंचायती राज व्यवस्था में ग्राम तहसील तालुका और जिला आते हैं। पंचायती राज व्यवस्था कोई नई नहीं है, बल्कि वैदिक काल से ही इस व्यवस्था का अस्तित्व विद्यमान है। पंचायत शब्द की उत्पत्ति संस्कृत भाषा के शब्द पंचायतन से हुई है, जिसका अर्थ है पांच व्यक्तियों का समूह। संस्कृत भाषा के ग्रंथों के आधार पर किसी आध्यात्मिक पुरुष सहित पांच पुरुषों के समूह को पंचायतन कहा जाता था। परंतु धीरे धीरे पंचायत की आध्यात्मिक वाली अवधारणा की जगह वर्तमान की निर्वाचित सभा में ले ली। जिनकी संख्या प्रधान सहित पांच होती है और जिसका दायित्व स्थानीय स्तर के विवादों का निपटारा करना होता है। प्राचीनकाल से ही स्वशासन की इकाई के रूप में ग्रामीण पंचायतों का अपना महत्त्व रहा है। डॉ. राधा कुमुद मुखर्जी ने स्थानीय स्वशासन की इस इकाई को प्रजातंत्र का देवता कहा है। उनके अनुसार ग्राम पंचायतों का निर्माण जनता के समान अधिकारों व स्वतंत्रता के लिए निर्मित किया गया ताकि जनता के बीच समानता, स्वतंत्रता एवं बंधुत्व जैसी भावना बनी रहे।

**प्राचीन काल में पंचायत राज व्यवस्था:-**पंचायतराज की प्राचीनता का प्रमाण हमें ऋग्वेद और अथर्व वेद में भी दिखाई देता है। भारत में स्थानीय स्वशासन की निचले स्तर की इस इकाई के प्रारंभ का श्रेय राजा पृथु को जाता है। सभ्यता के विकास के आधार पर यह कहना उचित होगा कि भारत जैसे देश में लोकतांत्रिक विकेंद्रीकरण की प्रक्रिया का आरंभ आज से लगभग 2000 वर्ष पूर्व हो चुका था।

**वैदिक युग में पंचायत राज व्यवस्था:-**वैदिक काल में भी पंचायतों

का अस्तित्व था। ऐसे बहुत से साक्ष्य हैं जिसके आधार पर यह कहा जा सकता है कि इस काल से ही ग्राम सभाओं का गठन हो चुका था।

सा उदक्रमात् सा समायां न्यक्रामत ।

सा उदक्रमात् सा समितोयां न्यतक्रामत ।

सा उदय क्रामत साडडमन्त्रणे न्यक्रामत ।

अर्थात् जनशक्ति प्रभावित होकर ग्राम सभा, राष्ट्र समिति और मंत्रिमंडल के रूप में सबके समक्ष प्रकट हुई। अथर्ववेद के अंतर्गत लिखा गया है।

ये ग्रामा यदरण्यं या सभा अधिभूम्याम्

ये संग्रामाः समितियस्तेषु चारु वेदम ते

अर्थात् पृथ्वी पर जो ग्राम वन सभाएं और समितियां हैं उन सभी में हमें वाणी में संयम के साथ साथ सभी को साथ लेकर चलने की प्रवृत्ति होनी चाहिए। सभा एवं समिति एक उच्च कोटि की निर्वाचित शासनप्रबंध की सभाएं थीं। इनके अतिरिक्त ऋग्वेद में विदथ शब्द का प्रयोग कई बार आया है, जिसका अर्थ है जत्था। उत्तर वैदिक काल में भी इस तरह की व्यवस्था विद्यमान थी, जिसे माध्यम से राजा ग्राम प्रशासन करता था।

**मनुस्मृति में पंचायत राज व्यवस्था:-**मनुस्मृति में मनु ने भी स्थानीय स्वशासन के महत्त्व को जानते हुए स्थानीय स्वशासन के व्यवस्थित स्वरूप पर बल दिया है। शासन की शक्तियां एवं कार्यों के विकेंद्रीकरण के महत्त्व का भी उल्लेख मनुस्मृति में दिखाई देता है। स्थानीय स्वशासन के महत्त्व के अनुरूप राज्य में शक्तियों के विकेंद्रीकरण एवं प्रजा में स्वशासनकी प्रवृत्ति पर मनु ने बल दिया है।

**महाकाव्य काल में पंचायत राज व्यवस्था:-**वाल्मीकि रामायण और महाभारत के सभापर्व में भी स्थानीय प्रशासन पुरवा एवं जनपद नामक दो स्थानीय स्तरों का उल्लेख मिलता है। रामायणकालीन शासन तंत्र में सभा मंत्रीपरिषद तथा शासनाधिकार ये तीन अंग थे। इन तीनों की सहायता से शासन सुचारु रूप से चलता था। उस समय राज्यसभा द्वारा सभा को परिषद समिति या केवल सभा अंश कहते थे। सभा के सदस्यों को सुभाश कहते थे। रामायण काल में भी स्थानीय स्वशासन के महत्त्व को समझा जाता था और उनकी भागीदारी का भी पूरा ध्यान रखा गया था। महाभारत के शातिपर्व में भी जनपदों के ग्राम स्वशासन और पंचायतों के निर्वाचन तथा गठन का उल्लेख किया गया है। उस समय पंचायत अधिकारियों में पुरोहित, सभापति और ग्रामीणी तथा ग्राम योजक प्रमुख हुआ करते थे। ग्रामीण ही पंचायत का मुखिया होता था।

**बौद्ध काल में पंचायत राज व्यवस्था:-**गांव के शासक को ग्रामभोजक कहा जाता था। सभा ग्राम संगठन का एक महत्वपूर्ण अंग थी। इस सभा में गांव के

वृद्ध लोग बैठते थे। ग्राम भोज का चुनाव वहाँ के ग्रामवासी करते थे।

**मौर्य काल में पंचायतीराज व्यवस्था:-**कौटिल्य के अर्थशास्त्र में ग्राम पंचायतों या स्थानीय स्वशासन व्यवस्था का भी उल्लेख मिलता है। कौटिल्य ने प्रशासन एवं राजस्व को एकत्रित रखने की दृष्टि से ग्रामीण इकाइयों को उतना ही महत्त्व दिया जितना केंद्रीय इकाइयों को। अर्थशास्त्र के अनुसार एक ग्राम के मुखिया को ग्रामवृद्ध और पांच गांव के मुखिया को पंचग्राम ई कहते थे। कई ग्रामों को मिलाकर एक जनपद का निर्माण किया जाता। प्रशासनिक रूप से जनपद के अस्तित्व का अपना ही महत्त्व था। ग्रामसभा की सभी गतिविधियों का केंद्र बिंदु ग्राम ही होती थी।

**गुप्तकालीन पंचायत राज व्यवस्था:-**गुप्तकालीन शासन व्यवस्था विकेंद्रित थी। समस्त साम्राज्य की शासन व्यवस्था चार भागों में विभक्त की गयी थी-केंद्रीय शासन, प्रांतीय शासन, जिले का शासन और ग्रामीण शासन। हर्ष चरित्र के अनुसार प्रशासन की सबसे छोटी इकाई ग्राम थी। जिसका प्रशासन ग्राम सभा द्वारा चलाया जाता था। ग्राम प्रशासन का सर्वोच्च अधिकारी ग्रामीणी या ग्राम पति तथा महतर होता था। उनकी सहायता के लिए एक ग्राम पंचायत होती थी।

**मध्यकालीन पंचायत राज व्यवस्था:-**मध्यकाल में स्थानीय स्वशासन के अनेक साक्ष्य या संकेत मिलते हैं। जैसे कि सल्तनत काल के दौरान राज्यों को प्रांतों में विभाजित किया गया था। साक्ष्यों से ज्ञात होता है कि ग्राम स्तर पर शासन के लिए तीन प्रमुख अधिकारियों को नियुक्त किया गया था। मुकादम, पटवारी, चौधरी। सल्तनत काल में भी स्थानीय स्वशासन का महत्त्व दिखाई देता है। दिल्ली साम्राज्य की विशालता इसके कारण उन्हें प्रांतों में विभक्त किया गया था। उस समय प्रांतों को इक्का कहा जाता था। इन प्रांतों को पर गुणों तथा परगनों को ग्राम में विभक्त किया गया था। प्रांतों के प्रमुख अधिकारी को सूबेदार। परगने के प्रमुख अधिकारी को आमाल तथा गांव के अधिकारियों को लम्बदार पटवारी या चौकीदार कहा जाता था।

**मुगलकाल में पंचायतराज:-**मुगलकाल के दौरान ग्राम पंचायत गांव के बुजुर्ग की एक सभा होती थी। प्रायः वे गांव के महत्वपूर्ण लोग होते थे। मुगलकाल में भी प्रशासन को सरकार एवं अनेक छोटे जिलों में बांटा गया था। प्रशासन की सबसे छोटी इकाई को परगना कहते थे। उन्हीं परगनों को छोटे छोटे गांव में विभक्त किया गया था। उन्हीं गांव या पंचायतों के मुखिया को मुकदम या मंडल कहते थे। अफगानों एवं मुस्लिम शासकों ने प्रशासन व्यवस्था जो पहले से चली आ रही थी, उनमें किसी तरह का भी परिवर्तन करना उचित नहीं समझा। अकबर के समय में पंचायती राज संस्थाओं में काफी हद तक एक नैतिक व प्रशासनिक सहयोग प्रदान की गई थी।

**दक्षिण भारत में पंचायत राज व्यवस्था:-**उस समय की राजनीति में जितनी उथल पुथल उत्तर भारत में दिखाई देती है, उतनी ही स्थिरता दक्षिण भारत में दिखाई देती है। चोल साम्राज्य स्थानीय स्वशासन एक अच्छी विशेषता प्रस्तुत करता है। चोल साम्राज्य अपनी स्थानीय स्वशासन के लिए जाना जाता है। लोकतंत्र की भाँति स्थानीय स्वशासन की जवाबदेही राज्य की न होकर स्वयं स्थानीय समितियों व सभाओं की होती थी। अभिलेखों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि दक्षिण भारत भी अपने स्थानीय स्वशासन के लिये सजग रहा। चोल के अभिलेखों आदि से ज्ञात होता है कि शासन सुविधा की दृष्टि से सारा राज्य अनेक मंडलों में विभक्त किया गया था। मंडल को कोट्टम या वळनाडुओं में विभक्त किया गया था। इसके बाद शासकीय परंपरा में नाडो जिला कूर्म ग्राम ग्रह एवं ग्राम थे। चेर राज्य काल में इनका शासन जन सभाओं द्वारा होता था। उत्तरमेरूर से प्राप्त अभिलेखों से ग्राम सभा व उनके कार्यों का विस्तृत उल्लेख पाया जाता है। उत्तरमेरूर

में ग्राम शासन सभा की पांच उपसमितियों का उल्लेख मिलता है। दक्षिण भारत की केंद्रीयकरण की प्रक्रिया भी अच्छी नहीं रही है। कोट्टम व बल नाडु, जिला, नाडु तालुका तथा उप ग्राम में विभाजित किया गया था। दक्षिण भारतीय प्रशासन की प्रमुख तत्व ग्राम सभा या समिति होती थी।

**ब्रिटिश शासनकाल में स्थानीय स्वशासन:-**1786 में ब्रिटिश पार्लियामेंट के सदस्य लॉर्ड वर्क उस समय के भारत के गवर्नर जनरल वारेन हेस्टिंग्स के खिलाफ महाभियोग प्रस्ताव लेकर आए थे। जिसमें महाभियोग का कारण था कि भारत में गांव स्तर की व्यवस्था का जो परंपरागत व मजबूत स्वरूप था, उसका हनन हो रहा है। 1830 में जनरल मैटकाफने ग्राम स्तर की पंचायत व्यवस्था पर अपना रिपोर्ट ब्रिटिश पार्लियामेंट में प्रस्तुत किया। जिसमें लिखा था कि भारतीय ग्राम समुदाय छोटे छोटे गणराज्य है जो पूरी तरह आत्मनिर्भर हैं और अपने लिए सभी आवश्यक सामग्री की व्यवस्था कर लेते हैं। इनके अधिकारों एवं प्रबन्धों पर किसी भी प्रकार का हस्तक्षेप नहीं हुआ। भारत के तत्कालीन वायसराय लॉर्ड मेयो को प्रशासनिक दक्षता के लिए शक्तिओं के विकेंद्रीकरण की आवश्यकता महसूस हुई।

ब्रिटिश काल में 1880 से 1884 के मध्य लॉर्ड रिपन का कार्यकाल पंचायतीराज का स्वर्ण काल माना जाता है। लॉर्ड रिपन को भारत में स्थानीय स्वशासन का जनक माना जाता है। 1882 में लॉर्ड रिपन ने स्थानीय स्वशासन प्रस्ताव में स्थानीय निकायों को बढ़ावा देने का कार्य किया। 18 मई 1882 को प्रस्तुत स्थानीय स्वशासन प्रस्ताव में बहुमत पर आधारित निर्वाचित गैर सरकारी सदस्यों का स्थानीय बोर्ड निर्माण पर ध्यान दिया। इसे भारत में स्थानीय लोकतंत्र का मैगाकाटा माना जाता है। 16 मई 1918 को वित्त केंद्रीयकरण आयोग के प्रस्ताव को ध्यान में रखते हुए भारत सरकार ने ग्राम पंचायतों के गठन, स्थानीय संस्थाओं के अध्यक्ष, गैर निर्वाचित सरकारी सदस्य, बजट निर्माण आदि बातों पर ध्यान दिया। भारत सरकार अधिनियम 1900 के अनुसार द्वैध शासन प्रणाली को स्थापित करने का प्रयास किया। द्वैध प्रणाली के माध्यम से स्थानीय स्वायत्त शासन को प्रांतीय सरकारों के अधिकार क्षेत्र में दिया गया। इसे प्रांतीय सरकारों को निर्वाचित मंत्रियों के अधीन किया गया था। इस अधिनियम के आने से इस स्थानीय स्वशासन भारत सरकार के हाथों से निकलकर प्रांतीय स्वायत्तता के नियंत्रण में जाने से जो स्थानीय स्वशासन की एकरूपता दिखाई देती थी अब वह पूरी तरह समाप्त हो चुकी थी। इस एकरूपता की समाप्ति के कारण सभी प्रान्त, जिलों एवं नगर पालिकाओं के लिए पृथक पृथक नियम बनाए गए। इसी क्षेत्र के तहत 1927 में साइमन कमीशन की अध्यक्षता में प्रांतों के कार्यकरण की परीक्षण के लिए एक आयोग का गठन किया गया। 1932 में गाँधी जी द्वारा स्थानीय स्व शासन को मजबूत करने की दृष्टि से ग्राम स्वावलंबन कार्यक्रम की शुरुआत की गई। 1935 से 37 के मध्य भारतीय शासन अधिनियम का प्रांतीय भाग लागू करने के साथ साथ द्वैध शासन के स्थान पर प्रांतीय स्वायत्तता शासन स्थापित किया गया। प्रांतीय स्वायत्तता पहले एक प्रयोग मात्र के रूप में दिखाई दे रहा था। वही वह स्वशासन का अभिन्न अंग बन चुका था।

**स्वतंत्रता प्राप्ति के पंचायत की पंचायत राज व्यवस्था:-**स्वतंत्र भारत का कार्यभार संविधान सभा की देखरेख में किया जा रहा था। इस क्षेत्र में केंद्र एवं राज्य सरकारों के लिए योजना प्रस्तावित करने हेतु दो समितियों का गठन किया गया- संघीय समिति एवं प्रांतीय समिति। प्रांतीय समिति द्वारा बनाए गए संविधान के ढांचे में कहीं पर भी पंचायतीराज का उल्लेख दिखाई नहीं दे रहा था। लोकतंत्र के विकेंद्रीकरण एवं ग्रामीण उत्थान में पंचायत के महत्त्व को अनदेखा नहीं किया जा सकता था। एक पक्ष इसका समर्थन कर रहा था। वही दूसरा

पक्ष जो अंबेडकर जी के पक्ष में था वह इसका बहिष्कार कर रहा था। स्वशासन की इकाई के रूप में ग्रामीण पंचायत के महत्त्व को देखते हुए गाँधी जी की मान्यता थी कि भारतीय ग्रामीण जीवन के पुनर्निर्माण हेतु ग्राम पंचायत को पुनः स्थापित किया जाना चाहिए। ग्राम पंचायत ही ग्रामीण क्षेत्रों में शासन प्रबंध सुरक्षा व उन्नति हेतु एकमात्र उपयुक्त संस्था है। डॉक्टर राधाकुमुद मुखर्जी ने तो पंचायत को प्रजातंत्र का देवता कह डाला। 1947 में आजादी मिलने के साथ राज्य में सरकारों का गठन किया गया। इस के तुरंत पश्चात सबसे पहले उत्तर प्रदेश और फिर बिहार में स्थानीय स्वशासन सशक्त बनाने हेतु बिहार पंचायती राज अधिनियम 1947 का गठन किया। इस अधिनियम को 1948 में पूरे राज्य में लागू किया गया।

स्थानीय स्वशासन की इसी उधेड़बुन के तहत संविधान के अनुच्छेद 40 में पंचायतों का उल्लेख किया गया तथा अनुच्छेद 246 में पंचायत से संबंधित कानून बनाने का अधिकार राज्य विधान मंडलों को सौंपा गया। यद्यपि अनुच्छेद 40 जो कि नीति निर्देशक सिद्धांतों में शामिल होने के कारण इन निकायों के लिए सार्वभौमिक एवं एक समान संरचना का अभाव देखा गया, क्योंकि नीति निर्देशक सिद्धांत एक बाध्यकारी सिद्धांत नहीं था। 2 अक्टूबर 1952 को गाँधी जयंती की पूर्व संध्या पर सामुदायिक विकास कार्यक्रम को लागू किया। सामुदायिक विकास कार्यक्रम अमेरिकी विशेषज्ञ एलबर्ट मेयर की इटावा परियोजना से प्रेरित थी। 1953 में सामुदायिक विकास कार्यक्रम के सहयोग हेतु राष्ट्रीय विस्तार सेवा को प्रारंभ किया गया। परंतु यह कार्यक्रम उतनी सफलता नहीं पा सका। इसकी विफलता के कारणों को जानने हेतु 1957 में राष्ट्रीय विकास परिषद ने बलवंत राय मेहता की अध्यक्षता में एक समिति का गठन किया। समिति द्वारा दी गई रिपोर्ट पता चला कि सामुदायिक विकास कार्यक्रम की विफलता का विशेष कारण लोगों की भागीदारी में कमी थी। लोकतांत्रिक विकेंद्रीकरण की इस योजना की शुरुआत 2 अक्टूबर 1959 को राजस्थान के नागौर जिले में शुरू की गई। 1 नवंबर 1959 को आंध्र प्रदेश में तथा कुछ समय पश्चात असम, गुजरात, कर्नाटक, मध्यप्रदेश, महाराष्ट्र एवं उड़ीसा में भी लागू किया गया। वित्तीय व्यवस्था और चुनाव में एकरूपता न होने के कारण यह असफल रहा।

**अशोक मेहता, समिति:-** 1977 में बलवंत राय मेहता समिति की विफलताओं के कारणों को जानने हेतु अशोक मेहता समिति का गठन किया गया। इस समिति ने में 32 सिफरिशों सहित अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की।

**जी वी के राव समिति:-** 1985 में जी वी के राव की अध्यक्षता में ग्रामीण विकास और गरीबी उन्मूलन कार्यक्रम ओके लिये प्रशासनिक प्रबंधन हेतु एक समिति का गठन किया। इस समिति ने सत्ता विकेंद्रीकरण हेतु राज्य स्तर पर राज्य विकास परिषद, जिला स्तर पर जिला परिषद, मंडल स्तर पर मंडल पंचायत तथा ग्राम स्तर पर ग्राम सभा की सिफरिश की। इस समिति ने कहा कि पंचायतों का चुनाव नियमित हो। समिति ने विकेंद्रीकरण के तहत नियोजन एवं विकास कार्यक्रम में पंचायतों की भूमिका पर बल दिया। इस समिति ने विभिन्न स्तरों पर अनुसूचित जाति व जनजाति तथा महिलाओं के लिए आरक्षण की सिफरिश की। परंतु इसकी सिफरिशों को अमान्य करार दिया गया।

**एल एम सिंघवी समिति:-** प्रजातांत्रिक विकेंद्रीकरण में वृद्धि तथा पंचायतों का फिर से सशक्तिकरण हेतु में राजीव गाँधी सरकार ने एलएम सिंघवी की अध्यक्षता में एक समिति का गठन किया। पंचायतीराज को संवैधानिक दर्जा मिलना चाहिए, ऐसा सुझाव सिंघवी की तरफसे रखा गया। इस समिति द्वारा पंचायतों को सक्षम बनाने हेतु गांव के पुनर्निर्माण, पंचायत के वित्तीय सहयोग का सुझाव दिया। पंचायतराज संस्थाओं के चुनाव उन्हें भंग करने तथा उनकी कार्य प्रक्रिया

से जुड़े न्यायिक विवादों के समाधान हेतु एक न्यायिक संस्था की स्थापना का सुझाव दिया गया।

**पी के थुंगन समिति:-** 1988 में संसद की सलाहकार समिति के एक उप समिति के अध्यक्ष पीके थुंगन की अध्यक्षता में राजनीतिक और प्रशासनिक ढांचे की जांच के उद्देश्य से इस समिति का गठन किया गया। इस समिति द्वारा भी पंचायत राज संस्थाओं को संवैधानिक ढांचे की मांग रखी गई। साथ ही त्रिस्तरीय पंचायती राज व्यवस्था गांव, प्रखंड और जिला उपायुक्त बताया गया।

**वी एन गॉड गिल समिति:-** वर्ष 1988 वीएन गॉड गिल की अध्यक्षता में पंचायतों को अधिक बेहतर बनाने हेतु एक समिति का गठन किया गया।

गॉड गिल और सिंघवी समिति की सिफरिशों के आधार पर तत्कालीन प्रधानमंत्री राजीव गाँधी की सरकार ने 1989 में पंचायती राज संस्थाओं को शक्ति व मजबूती प्रदान करने हेतु 64 वां संविधान विधेयक संसद में प्रस्तुत किया। अगस्त 1989 में यह विधेयक लोकसभा से पारित तो हो गया किन्तु राज्यसभा में कांग्रेस की सरकार इस विधेयक को पारित न करवा सके। अंततः नरसिम्हा राव ने एक बार फिर से पंचायती राज व्यवस्था के संवैधानिक ढांचे पर विचार किया। सितंबर 1991 में एक बार पुनः यह प्रस्ताव रखा गया। अंततः वे संवैधानिक संशोधन अधिनियम 1992 के रूप में पारित हुआ और 24 अप्रैल 1993 को यह प्रभाव में आया। इस तरह समय समय पर सरकार ने समितियों का गठन कर पंचायती राज संस्थाओं को मजबूती प्रदान करने हेतु कई प्रकार के कदमों को उठाने का प्रयास किया। लोकतांत्रिक विकेंद्रीकरण में पंचायतराज संस्थाओं का अपना ही महत्त्व है। पंचायतों की परिकल्पना अपने देश की कोई नवीन प्रवृत्ति नहीं है, अपितु प्राचीन समय से ही यह मानव समाज का अभिन्न अंग बन गया है। भारत के ग्रामीण विकास में पंचायती राज संस्थाओं का योगदान भुलाया नहीं जा सकता। पंचायतीराज संस्थाओं का महत्त्व और अधिक स्पष्ट हो जाता है कि भारत सरकार ने पंचायती राज संस्थाओं को एक संवैधानिक दर्जा प्रदान किया और उसको सुसंगठित एवं प्रभावी बनाने के उद्देश्य से भारतीय संविधान में संशोधन करके पंचायती राज अधिनियम 1993 को क्रियान्वित करने का कार्य किया।

**संदर्भ सूची:-**

1. असलम एम पंचायती राज इन नेशनल बुक ट्रस्ट नई दिल्ली 2007 पृष्ठ 13
2. सुरोलिया शंकर भारत में ग्रामीण शासन कॉलेज बुक डिपो, जयपुर 1975 पृष्ठ 25।
3. शर्मा डॉ. हरीशचंद्र भारत में स्थानीय शासन का इतिहास कॉलेज बुक डिपो जयपुर 1975 पृष्ठ 25।
4. पंवार मीनाक्षी पंचायती राज और ग्रामीण विकास क्लासिकल पब्लिशिंग कंपनी पृष्ठ 24-26।
5. शर्मा डॉ.के के भारत के राज्य प्रशासन कॉलेज बुक डिपो जयपुर 2001, पृष्ठ 3-4
6. मिश्रा, डॉ. महेंद्र कुमार पंचायती राज संस्था ए अतीत, वर्तमान और भविष्य कल्पना प्रकाशक पृष्ठ 69
7. त्यागी डॉक्टर शालिनी पंचायती राज व्यवस्था में सत्ता शक्ति का विकेंद्रीकरण नवजीवन पब्लिकेशन टॉक 2006 पृष्ठ 36
8. गोस्वामी डॉ.रवि पंचायतीराज इन इंडिया सिमनेचर बुक इंटरनेशनल दिल्ली 2012 पृष्ठ 17 18

# स्वतंत्रता आंदोलन की महान नायिका : अरुणा आसफ अली

डॉ. जितेंद्र कुमार बरबड़

सहायक आचार्य (विद्या संबल योजना) राजकीय महाविद्यालय, सुरजगढ़, झुंझुनू, राजस्थान

अरुणा आसफ अली का जन्म 16 जुलाई 1909 को वर्तमान हरियाणा(तत्कालीन पंजाब) के कालका नामक स्थान में हुआ था। इनका वास्तविक नाम अरुणा गांगुली था और इनका परिवार जाति से ब्राह्मण था। आसफ अली से 1928 में विवाह के बाद इन्होंने पति के नाम को अपने नाम के साथ जोड़ लिया और अरुणा आसफ अली के नाम से प्रसिद्ध हुई। इनकी प्रारम्भिक शिक्षा नैनीताल व लाहौर में हुई। शिक्षा प्राप्त करने के बाद ये शिक्षिका बन गई और कोलकाता के गोखले मेमोरियल कॉलेज में अध्यापन कार्य करने लगी।

अरुणा आसफ अली का राजनीतिक जीवन में प्रवेश करने का आधार उनके पति आसफ अली का राष्ट्र के प्रति प्रेम था। आसफ अली ने ही अरुणा को इस नयी दुनिया से परिचित करवाया। इसके बाद अरुणा आसफ अली भी देश के लिए समर्पित अपने पति आसफ अली के साथ स्वतंत्रता आंदोलन के महासमर में कूद पड़ी। अरुणा जी के इस आंदोलन में जुड़ने के बाद पहला कदम गांधीजी द्वारा चलाया गया नमक सत्याग्रह आंदोलन रहा। जब 1930 गांधी जी ने नमक कानून के विरुद्ध अहमदाबाद से दांडी तक 24 दिन की पदयात्रा की। इस आंदोलन में महिलाओं ने भी बढ़-चढ़ कर हिस्सा लिया। जब आसफ अली को गिरफ्तार कर लिया गया तब अरुणा जी पूरी तरह से आंदोलन में कूद पड़ी। अरुणा ने अपने सक्रिय राजनीतिक सफ़र की शुरुआत 1857 ई. की क्रांति की उत्पत्ति एवं इसके महत्व पर जोशीले भाषण के साथ की। अरुणा जी को लोगों को भड़काने के जुर्म में गिरफ्तार कर लिया गया और एक वर्ष के कारावास हेतु स्त्रियों को जेल लाहौर भेज दिया गया। अरुणा ने व्यंग्य करते हुये कहा जेल का कोई लिंग नहीं होता। अरुणा तथा उनके साथी जेल में भी भारत माता की जय, भगतसिंह जिंदाबाद के नारे लगाते थे।

5 मार्च 1931 को गांधी-इरविन समझौते के तहत राजनीतिक बंदियों को रिहा किया जा रहा था तब अंग्रेज सरकार ने अरुणा आसफ को मुक्त नहीं करने का निर्णय लिया। इस बात के विरोध में अरुणा जी के सहयोगी बंदियों ने भी रिहा होने से स्पष्ट मना कर दिया। अंत में गांधीजी के आग्रह पर ये महिलाएं जेल से रिहा होने को राजी हुईं। लोक नेताओं और राष्ट्रीय प्रेस ने अरुणा आसफ अली के मुद्दे को जोर-शोर से उठाया और इसी का नतीजा रहा दस दिन बाद उनकी रिहाई के आदेश हुये। जेल के बाहर अरुणा जी के साथियों ने उनका गर्मजोशी से स्वागत किया। यह उनकी पहली जेल यात्रा थी।

सन् 1931 में सविनय अवज्ञा आंदोलन के दौरान अरुणा आसफ अली को पुनः गिरफ्तार कर लिया गया और उन पर 200 रुपये का जुर्माना

लगाया गया लेकिन उन्होंने जुर्माना भरने से इनकार कर दिया। इन दिनों दिल्ली जेल में जहाँ उन्हें रखा गया था, वहाँ राजनीतिक बंदियों के साथ बहुत बुरा व्यवहार किया जाता था। सरकार के इस बर्ताव के विरुद्ध घोर विरोध व्यक्त करते हुये अरुणा जी भूख हड़ताल पर बैठ गईं। उनकी तबीयत बिगड़ने लगी लेकिन जब तक जेल प्रशासन उनकी माँग मानने को राजी नहीं हुआ तब तक उन्होंने भूख हड़ताल जारी राखी। जेल प्रशासन ने उनकी माँग मान ली परंतु दंड स्वरूप उन्हें अंबाला जेल में स्थानांतरित कर दिया जहाँ वह अकेली महिला कैदी थी। उन्हें अकेला रखे जाने का विरोध हुआ तो ब्रिटिश सरकार ने एक अन्य महिला कैदी चंदो बीबी को वहाँ भेजा, अरुणा जी ने प्रतिक्रिया देते हुये कहा 'ब्रिटिश सरकार ने मुझे नायिका बना दिया।'।

जब छः माह बाद अरुणा जी को रिहा किया गया तो वे दिल्ली आ गई, इसके बाद अगले दस वर्षों तक अरुणा जी सक्रिय राजनीति से अलग होकर सामाजिक कर्तव्य के पथ की ओर अग्रसर हुईं। इसकी शुरुआत 1929 ई. से ही हो गई थी जब उन्होंने दिल्ली वूमन लीग(महिला संघ) के लिए कार्य करना आरंभ कर दिया था। अरुणा जी को महिला संघ से जोड़ने में महत्वपूर्ण भूमिका रामेश्वरी नेहरू ने निभाई। रामेश्वरी नेहरू अरुणा जी को जनसेवा व महिला आंदोलन की ओर खींच लाईं। महिला संघ की स्थापना 1928 ई. में रामेश्वरी नेहरू ने दिल्ली के सरस्वती भवन दरियागंज में की। यह महिला संघ महिलाओं की शिक्षा, समानता व अधिकारों के संरक्षण के लिए कार्य करता था। अरुणा आसफ ने संघ में पूरी निष्ठा से कार्य किया और जल्द ही दिल्ली महिला संघ की सचिव चुनी गईं। इससे महिलाओं की अनेक समस्याओं को गहराई से जानने व समझने का मौका मिला। उनको लगा इस स्थिति में महिलाओं को संगठित करना नितांत आवश्यक है। उनका कहना था कि 'हम समानता की माँग करते हैं, हम इसके योग्य हैं, और हम इसे प्राप्त करने के लिए संघर्ष करेंगे।'।<sup>2</sup>

तत्कालीन भारतीय राजनीति में एक भ्रम की स्थिति गांधीवाद व समाजवाद की विचारधारा को लेकर थी। यह तय कर पाना कठिन था कि किसका अनुसरण किया जाए। अरुणा जी ने समय निकालकर इस विषय पर अध्ययन किया और स्वतंत्रता प्राप्ति हेतु प्रयासों को खोजने लगती हैं तो वे गांधीवाद और समाजवाद दोनों से प्रभावित दिखती हैं। दरअसल अरुणा जी को यह चुनने में असमंजस रहा कि लक्ष्य प्राप्ति हेतु गांधीजी के सत्याग्रह आदि का अनुसरण करें अथवा नेहरूजी के पूर्ण स्वराज्य हेतु संरचनात्मक कार्यक्रमों की अनुपालना करे। 1936 ई. में नेहरू जी की आत्मकथा को पढ़ने के बाद अरुणा जी इनसे प्रभावित हुईं और उनका झुकाव समाजवाद की ओर हुआ।

1940 ई. में जब व्यक्तिगत सविनय अवज्ञा आंदोलन छेड़ा गया और पहले सत्याग्रही विनोबा भावे बने उसी समय अरुणा आसफ अली भी आंदोलन में पुनः कूद पड़ी। आंदोलन के दौरान अरुणा जी को दिल्ली में गिरफ्तार कर लिया गया। लेकिन इस आंदोलन को गांधीजी ने विश्वयुद्ध के चलते सीमित समय उपरांत समाप्त कर दिया। गांधीजी युद्ध की विभीषिका में उलझी ब्रिटिश सरकार को और परेशान नहीं करना चाहते थे। गांधी जी के इस निर्णय से कांग्रेस में बहुत से लोग सहमत नहीं थे जिनमें अरुणा आसफ अली भी शामिल थी। अरुणा जी की गांधीजी से पहली गहरी बातचीत बारदोली (1940) के समय हुई, अरुणा जी ने जब गांधी जी से पूछा कि आप ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध आंदोलन करने से हिचकिचा क्यों रहें हैं? क्या इसलिए कि वे युद्ध में व्यस्त है? गांधी जी ने कहा 'वे विरोधी की उस परिस्थिति का लाभ नहीं उठाना चाहते जब वह स्वयं ही अपने अस्तित्व के लिए जूझ रहे हैं।'<sup>3</sup>

7 अगस्त 1942 को बम्बई में कांग्रेस अधिवेशन में भाग लेने के लिए आसफ अली एवं अरुणा आसफ दोनों बम्बई आये। कांग्रेस ने अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए जन-आंदोलन (भारत छोड़ो आंदोलन) प्रारम्भ करने का प्रस्ताव स्वीकार कर लिया। गांधीजी ने 8 अगस्त 1942 की रात्री में कहा 'मैं तुरंत स्वतंत्रता चाहता हूँ यदि संभव हो तो पौ फटने से पूर्व ही, एक छोटा सा मंत्र मैं आपको देता हूँ 'करो या मरो'। हम भारत को स्वतंत्र करेगें या मर मिटेगें हम गुलामी को स्थायी बनाया जाता देखने के लिए नहीं जिंदा रहेंगे।'<sup>4</sup>

ब्रिटिश सरकार पहले से ही कांग्रेस की प्रत्येक गतिविधि पर पैनी नजर रखे हुये थी 'सरकार के पास पुराने अनुभव ये थे कि कांग्रेस को मौका न दो, नेताओं को जेल में डालकर आंदोलन को नेतृत्व विहीन कर दो। पुराने तजुर्बे को वह 1942 में भी दोहराना चाहती थी उसने पहले से ही तीन-तीन सूचियाँ तैयार कर रखी थी, किन-किन लोगों को पहले गिरफ्तार किया जाएगा किनको उनके बाद तथा किनको अंत में।'<sup>5</sup>

9 अगस्त 1942 को सुबह ही पुलिस हरकत में आ गई और गांधीजी, नेहरूजी, मौलाना आजाद, सरदार पटेल, आसफ अली सहित 148 शीर्ष कांग्रेसी नेताओं को गिरफ्तार कर लिया। अरुणा जी अपने पति से मिलने स्टेशन पहुंची तो देखा कि ट्रेन में खिड़की के पास मौलाना आजाद बैठे थे जिन्हें कांग्रेस अध्यक्ष होने के नाते ग्वालिया टैंक मैदान में 8 बजे राष्ट्रीय ध्वज फहराना था। अरुणा जी ने गिरफ्तार होने के बजाय मैदान में जाने की टान ली। मैदान में होने वाली सभाओं को सरकार ने धारा 144 के तहत गैर कानूनी घोषित कर दिया। अरुणा जी के वहाँ पहुँचने के बाद की घटना स्वयं बताती है- 'मैं तत्काल ही मंच पर चढ़ गयी और लोगों को नेताओं की गिरफ्तारी की सूचना दी और तिरंगे को फहराने के लिए बाँधी मोटी रस्सी को खींचने को कहा, पुलिस ने लोगों पर आँसू गैस छोड़ दी, लोग आँखों में आँसू लिए इधर-उधर भाग रहे थे इस अनुभव को देखकर मैंने गिरफ्तार न होने का निर्णय लिया।'<sup>6</sup> अरुणा जी ने अपनी जान पर खेलकर तिरंगा फहरा दिया।

अरुणा जी का विचार था कि सभी का जेल जाना कोई बुद्धिमानी नहीं है कुछ लोगों को बाहर रहकर आंदोलन का संचालन करना चाहिए। धीरे-धीरे पूरे देश में आन्दोलन फैल गया, 'करो या मरो' का अर्थ जिसे जो समझ में आया उसने उसे स्वीकार कर संघर्ष शुरू कर दिया। इधर बम्बई में कुछ दिन बिताने के बाद अरुणा जी दिल्ली आ गई वे जानती थी कि उनकी गिरफ्तारी किसी भी समय हो सकती है, इसलिए उन्होंने गिरफ्तारी से बचने

के लिए भूमिगत होकर आंदोलन चलाने का निर्णय लिया। अरुणा जी ने जेल से बाहर बचे कांग्रेसी नेताओं के साथ आंदोलन को मजबूत बनाने का प्रयास किया, उन्होंने एक संदेश देकर दिल्ली के युवा छात्रों को उत्साहित किया। आंदोलन में प्राण डालकर वे घर से दूर देश भर में एक स्थान से दूसरे स्थान पर ढाई वर्षों तक घूमती रहीं और अपने साथियों के साथ आंदोलन चलाती रहीं। इस आंदोलन ने सरकार के प्रशासनिक तंत्र को पूर्ण रूप से ध्वस्त कर पंगु बना दिया था ग्रामीण जनता को निर्देश दिये गए थे कि वे गांवों एवं शहरों के मध्य के समस्त संचार माध्यमों को काट दें तथा जनसमिति बनाकर भविष्य की किसी भी परिस्थिति से मुकाबले की व्यवस्था करें।

अरुणा आसफ अली जब आंदोलन की जड़ें मजबूत कर रहीं थी तब 1944 ई. में पुलिस को करोलबाग में 'इंकलाब' व 'हमारा संग्राम' पत्रों की छायाप्रति के साथ अरुणा जी के लिखे कुछ पत्र प्राप्त हुये। इस विषय को लेकर उन पर केस दर्ज किया गया और उनका करोलबाग स्थित मकान 25000 रुपये में नीलाम कर दिया गया। जब ब्रिटिश सरकार अरुणा जी को ढूँढने में नाकामयाब रही तब इन्हें ढूँढने वाले को 5000 रुपये इनाम देने की घोषणा कर दी। पुलिस उन्हें हर स्थान पर खोज रही थी। एक पुलिस अधिकारी ने अपने उच्च अधिकारी को कहा- 'यदि हम नौ लोग उन्हें खोज रहें हैं तो अकेले दिल्ली में नौ लाख लोग उन्हें छिपाने व शरण देने के लिए तैयार हैं, ये संतुलित व समान स्थिति नहीं है हमारे लिए। यदि हम उन्हें नहीं खोज पाये तो कृपया हमें दोष नहीं दीजिएगा।'<sup>7</sup>

जब स्वास्थ्य के आधार पर गांधी जी को रिहा किया गया, उन्होंने पत्र लिखकर अरुणा जी के साहस की प्रशंसा की और आत्मसमर्पण करने की बात लिखी। पत्र के उत्तर में अरुणा जी ने लिखा की वह आत्मसमर्पण के लिए तैयार नहीं है। 1945 ई. में सरकार ने राजनीतिक कैदियों को रिहा कर दिया। रिहाई के बाद जवाहरलाल नेहरू ने अरुणा आसफ की प्रशंसा करते हुये बहादुर महिला कहा और कहा कि उन्होंने जो भी किया है वह बेकार नहीं जाएगा वह फलीभूत होगा।

कैबिनेट मिशन को भारत भेजने की घोषणा से लगभग एक महीने पूर्व अरुणा आसफ अली के गिरफ्तारी वारंट को रद्द कर दिया गया और इसी घोषणा के बाद भूमिगत अरुणा जी सामने आयीं। एक महान महिला का महान संकल्प था कि गिरफ्तार नहीं होंगी और यह संकल्प दृढ़ता से अंत तक कायम रहा। अरुणा जी का कलकत्ता में जोरदार स्वागत किया गया और जब वे वापस दिल्ली आ रही थी कलकत्ता के स्टेशन पर अपार भीड़ जमा हुई थी। अरुणा आसफ से मिलने को आतुर पति आसफ अली दिल्ली से एक स्टेशन पहले गाजियाबाद पहुँच गए। लगभग ढाई वर्ष बाद दोनों की मुलाकात हुई।

अरुणा आसफ अली अब एक महान महिला नेता बन चुकी थी। दिल्ली के आस-पास इन्होंने अनेक सभाएं की एवं विदेशी सामान का बहिष्कार करने व महिलाओं को आजादी के लिए जुटने का आह्वान किया, कहा कि हमारा लक्ष्य बहुत महान है, हम यह नहीं जानते कि स्वतंत्रता के लिए कितना त्याग व बलिदान और देना होगा। अरुणा जी अपने विचारों पर दृढ़ रहने वाली महिला थी और अपने विचारों से भिन्न विचार के लिए विरोध व्यक्त करने में भी जरा भी नहीं हिचकती थी। अगस्त 1946 मे कांग्रेस ने अंतरिम सरकार की योजना को स्वीकारा तथा मंत्रिमंडल की घोषणा की तब अरुणा जी ने असहमति व्यक्त की। मंत्रिमंडल में आसफ अली का नाम भी शामिल था, जिस पर अरुणा जी ने अप्रसन्नता व्यक्त की। जब आसफ अली मंत्री के रूप में कार्य ग्रहण कर रहे थे तब अरुणा जी मद्रास चली गई, 21 दिनों तक वहाँ की यात्रा

की। अंतरिम सरकार के गठन व आसफ अली के मंत्री बनने से दोनों में वैचारिक दूरी बन गई थी, इसलिए जब दिसम्बर में आसफ अली को अमेरिका में भारतीय राजदूत बनाया गया तो अरुणा जी उनके साथ न जाकर भारत की आजादी तक भारत में ही बने रहने का संकल्प व्यक्त किया। गांधी जी के आग्रह पर अरुणा जी अपने पति के साथ कराची तक विमान में गयीं, वहाँ उन्होंने स्पष्ट कहा इस महत्वपूर्ण एवं कठिन समय में भारत माता की सेवा करना चाहती हूँ छोड़कर जाना नहीं चाहती।

भारत में सांप्रदायिक सौहार्द बिगड़ता जा रहा था। मुस्लिम लीग व कांग्रेस में मतभेद इतना था कि दंगों के समय मार्च 1947 को लार्ड वैवेल की जगह लार्ड माउन्टबेटेन को नया वायसराय बनाया गया, इससे राष्ट्र विभाजन अनिवार्य सा हो गया। अरुणा जी इस स्थिति से दुखी थी, उन्होंने अशोक मेहता के साथ गांधी जी से भेंट की एवं राष्ट्र विभाजन का विरोध किया। अरुणा आसफ अली व उनके साथियों का विभाजन रोकने का प्रयास सराहनीय था, परंतु तत्कालीन परिस्थितियों, मुस्लिम लीग की जिद्द, तथा कांग्रेस के एक वर्ग द्वारा विभाजन को अटल मान लेने के कारण विभाजन रोक न सके। 3 जून 1947 को माउन्टबेटेन ने विभाजन योजना प्रस्तुत की। 10 जून को मुस्लिम लीग व 14 जून को कांग्रेस ने इसे स्वीकार कर लिया। अब्दुल गफ्फर ख़ाँ ने अरुणा आसफ से बड़े दर्द से कहा यह हमारे साथ विश्वासघात जैसा है। दर्द के इन अंशों के साथ 14-15 अगस्त 1947 को स्वतंत्र भारत व पाकिस्तान अस्तित्व में आए। माना की देश को विभाजन की कीमत चुकानी पड़ी परंतु स्वतंत्रता प्राप्त होना भी ऐतिहासिक था।

अरुणा जी आसफ अली के पास वाशिंगटन चली गईं। लंदन में आसफ अली अरुणा जी को लेने आए और दोनों वाशिंगटन के लिए रवाना हो गए। अरुणा जी को एक लक्ष्य 'आजादी' प्राप्त हो चुका था परंतु यह अंतिम छोर नहीं था। अरुणा आसफ अली जीवन भर देश सेवा में लगी रहीं।

#### संदर्भ सूची:-

1. राघवन, जी.एन.एस., अरुणा आसफ अली एक संवेदनशील क्रांतिकारी, नेशनल बुक ट्रस्ट, दिल्ली, 2007, पृ. 37
2. पालीवाल, ओ.पी., रामेश्वरी नेहरू-एक परिचय, नेशनल बुक ट्रस्ट, दिल्ली, 1986, पृ. 23
3. राघवन, जी.एन.एस., अरुणा आसफ अली एक संवेदनशील क्रांतिकारी, नेशनल बुक ट्रस्ट, दिल्ली, 2007, पृ. 99
4. प्रसाद, कामेश्वर, भारत का इतिहास( 1757-1950), भारती भवन पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स, पटना, 2021, पृ. 346
5. बेनीपुरी, रामवृक्ष, जय प्रकाश नारायण-एक जीवनी, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, 2011, पृ. 173
6. राघवन, जी.एन.एस., अरुणा आसफ अली एक संवेदनशील क्रांतिकारी, नेशनल बुक ट्रस्ट, दिल्ली, 2007, पृ. 43
7. राघवन, जी.एन.एस., अरुणा आसफ अली एक संवेदनशील क्रांतिकारी, नेशनल बुक ट्रस्ट, दिल्ली, 2007, पृ. 43

# श्रीलाल शुक्ल की कहानियों में सामाजिक दर्शन : एक आलोचनात्मक विवेचन

रमेश वसुनिया

डॉ. सी. एल. शर्मा

1. शोधार्थी, हिन्दी अध्ययनशाला, विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन, मप्र.
2. शोध निर्देशक, प्रधानमंत्री कॉलेज ऑफ़ एकसीलेंस, शासकीय कला एवं विज्ञान महाविद्यालय, रतलाम, मप्र.

भारतीय ज्ञानपीठ पुरस्कार विजेता, श्रीलाल शुक्ल हिन्दी साहित्य के मूर्धन्य रचनाकारों में से एक है, उनकी कहानियों में भारतीय समाज के यथार्थ का सजीव चित्रण मिलता है। वे भारत में सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक मुद्दों के यथार्थवादी, व्यंग्यात्मक और आलोचनात्मक चित्रण के लिए जाने जाते हैं। उनकी कहानियों में सामाजिक वर्गों के चित्रण, सामाजिक मानदंडों की आलोचना और राजनीतिक और आर्थिक प्रणालियों के प्रतिनिधित्व का पता लगता है। मूलतः श्रीलाल शुक्ल भारतीय समाज के यथार्थवादी चित्रण के लिए जाने जाते हैं। उनकी कहानियाँ समाज के विभिन्न स्तर के लोगों के सामने आने वाले विभिन्न सामाजिक मुद्दों और चुनौतियों पर प्रकाश डालती हैं। श्रीलाल शुक्ल आधुनिक कहानी को पूर्ववर्ती कहानी से सर्वथा भिन्न मानते हैं। उनके अनुसार— प्राचीन कथा शिक्षाप्रद, धार्मिक, मनोरंजन व कौतूहल दर्शाती थी, पर सीमित मात्रा में इसके विपरीत आज की कहानी पात्रों के मनोविश्लेषणात्मक चित्रण द्वारा ही सार्थकता पाती है इसलिए जनसाधारण की समस्याएं, आकांक्षाएं, उलझने व पारिवारिक गुत्थियों की विस्तृत झांकी संयुक्त परिवार विघटन, अलगाव, घूसखोरी, अंधविश्वास, ग्रामीण शोषण, आर्थिक वैषम्य, राष्ट्रीय जागरण, धर्म पर टिकी राजनीति व महाजनी सभ्यता की अमानवीयता इन सभी विषयों को आत्मियता से समेटे हुए हैं तथा पात्रों के रूप पाठकों से भावनात्मक नाता जोड़ते हैं।

शुक्ल की कहानियों में विभिन्न सामाजिक वर्गों का चित्रण भारतीय समाज में मौजूद सामाजिक विभाजन की गहरी जानकारी प्रदान करता है। वह अपनी कहानियों में जाति, वर्ग और लिंग पदानुक्रम की जांच करते हैं। अपने लेखन में, वह चित्रित करते हैं कि कैसे ये पदानुक्रम समाज में कायम हैं? उदाहरण के लिए, अपने उपन्यास 'राग दरबारी' में उन्होंने जाति व्यवस्था का चित्रण किया है और यह कैसे ग्रामीण भारत में लोगों के जीवन को प्रभावित करती है? वह दिखाते हैं कि कैसे ऊंची जाति के लोग निचली जाति के लोगों का शोषण और उत्पीड़न करते हैं। इसी तरह, अपनी कहानी 'मकान' में उन्होंने वर्ग विभाजन को दर्शाया है और यह कैसे अमीर और गरीब के बीच एक व्यापक अंतर पैदा करता है। शुक्ल की कहानियाँ यह भी दिखाती हैं कि पात्र किस प्रकार इन वर्गों को पार करते हैं और चुनौती देते हैं। उदाहरण के लिए, अपने उपन्यास 'राग दरबारी' में नायक रंगनाथ जाति व्यवस्था को चुनौती देता है और बदलाव लाने की कौशिस करता है। शुक्ल की कहानियों में सामाजिक मानदंडों की आलोचना भारतीय समाज में प्रचलित सामाजिक मानदंडों की भी आलोचना करती है। वह विवाह, परिवार और धर्म से जुड़े मानदंडों की पड़ताल करता है। अपने कार्यों में, वह दिखाते हैं कि कैसे पात्र

इन मानदंडों के अनुरूप उनका विरोध करते हैं। शुक्ल की कहानियाँ सामाजिक मानदंडों के अनुरूप या प्रतिरोध के परिणामों को भी दर्शाती हैं। उदाहरण के लिए, उनके उपन्यास 'राग दरबारी' में पात्र वैद्यजी सामाजिक मानदंडों के अनुरूप हैं और भ्रष्ट हो जाते हैं, जबकि रंगनाथ इन मानदंडों का विरोध करते हैं और बदलाव लाने की कौशिस करते हैं। शुक्ल की कहानियों में राजनीतिक सामाजिक और आर्थिक प्रणालियों का प्रतिनिधित्व भारत में राजनीतिक और आर्थिक प्रणालियों की खामियों और चुनौतियों पर एक टिप्पणी भी प्रस्तुत करता है। वह अपनी कहानियों में भ्रष्टाचार, नौकरशाही और सत्ता की गतिशीलता की जांच करते हैं। अपने कार्यों में, वह दिखाते हैं कि ये प्रणालियाँ पात्रों और उनके जीवन को कैसे प्रभावित करती हैं। उदाहरण के लिए, अपने उपन्यास 'राग दरबारी' में उन्होंने राजनीतिक व्यवस्था में भ्रष्टाचार और ग्रामीण भारत में लोगों के जीवन को कैसे प्रभावित करता है, इसका चित्रण किया है। इसी तरह, अपनी कहानी 'मकान' में उन्होंने दिखाया है कि कैसे आर्थिक व्यवस्था अमीर और गरीब के बीच एक बड़ी खाई पैदा करती है। शुक्ल की कहानियाँ भारतीय समाज में शक्ति की गतिशीलता संबंधी आलोचना भी प्रस्तुत करती हैं। उदाहरण के लिए, कहानी 'नौकर' में उन्होंने नियोक्ता और कर्मचारी के बीच शक्ति की गतिशीलता और यह कैसे शोषण की ओर ले जाती है, का चित्रण किया है।

शुक्ल की कहानियाँ बिगड़ते सामाजिक ताने-बाने को दर्शाती हैं। सबसे पहले, जाति व्यवस्था को एक विभाजनकारी शक्ति के रूप में चित्रित किया गया है। उनकी कहानियों में पात्रों के साथ उनकी जाति के आधार पर भेदभाव किया जाता है, और जाति पदानुक्रम कठोर और अक्षम्य है। दूसरे, समाज के सभी स्तरों पर भ्रष्टाचार व्याप्त है। सत्ता के पदों पर बैठे लोग व्यक्तिगत लाभ के लिए अपने अधिकार का दुरुपयोग करते हैं और रिश्तखोरी आम बात है। अंततः अन्याय और असमानता व्यापक है। गरीबों और हाशिए पर रहने वाले लोगों का शोषण किया जाता है, और कानूनी प्रणाली अक्सर अमीर और शक्तिशाली लोगों के पक्ष में पक्षपाती होती है। शुक्ल जी का प्रसिद्ध कहानी संग्रह 'सुरक्षा एवं अन्य कहानियाँ' एक महत्वपूर्ण संग्रह है। उनकी सामाजिक मुद्दों से जुड़ी कहानियाँ हमें भावनात्मक रूप से चीजों का एहसास कराती हैं, लेकिन वे हमें समाज की बुराइयों के बारे में सोचने पर भी मजबूर भी करती हैं। 'उमराव नगर में कुछ दिन' इनके एक संग्रह के केंद्रीय आख्यान के रूप में कार्य करती हैं। उमराव नगर एक ऐसा गांव है जिसे नियोजित विकास के चमत्कार का प्रतिनिधित्व करने के लिए चुना गया है, लेकिन स्वतंत्रता के बाद के अवसरवाद और भ्रष्टाचार ने इसके सार्वजनिक जीवन से समझौता किया है।

‘कुंती देवी का झोला’ में पुलिस और डकैतों का आतंकवाद जिसका अंतिम शिकार बेखबर जनता होना चाहिए, एक विशिष्ट तरीके से दर्शाया गया है। ‘मम्मीजी का गधा’ में अफसरशाही के अहंकार को उभारा गया है और संयोगवश यह खबर ली जाती है कि कैसे नेता बेकार की परिस्थितियों से लाभ उठाते हैं। निश्चय ही यह संग्रह श्रीलाल शुक्ल की प्रसिद्ध व्यंग्य प्रतिभा को एक नई ऊंचाई प्रदान करता है।

शुक्ल की कहानियाँ मानवीय भावना के लचीलेपन को भी दर्शाती हैं। उनकी कहानियों में घुला मीठे व्यंग्य का चस्का पाठक और श्रोताओं के अंतःकरण को गुदगुदाकर उनके होठों पर मधुर मुस्कान भी बिखेरता है। उनकी कहानियों के पात्र विपरीत परिस्थितियों में ताकत और दृढ़ संकल्प का प्रदर्शन करते हैं। वे समाज द्वारा उनके रास्ते में आने वाली बाधाओं को दूर करने में सक्षम होते हैं और अपने लिए एक बेहतर जीवन बनाते हैं। दयालुता और करुणा के ऐसे उदाहरण हैं, जहां पात्र अपने मतभेदों के बावजूद एक-दूसरे की मदद करते हैं। कुछ पात्र अपनी परिस्थितियों से ऊपर उठने और बाधाओं के बावजूद सफलता हासिल करने में सक्षम होते हैं। इसके अलावा, इनकी कहानियाँ पारंपरिक मूल्यों के टूटने को उजागर करती हैं। पारिवारिक संरचनाएँ विघटित हो रही हैं, पात्र रिश्तों को बनाए रखने और अपनी जिम्मेदारियों को पूरा करने के लिए संघर्ष कर रहे हैं। बड़ों और प्राधिकारियों के प्रति सम्मान कम हो रहा है, पात्र सामाजिक मानदंडों के खिलाफ विद्रोह कर रहे हैं। नैतिक मूल्यों से समझौता किया जा रहा है, पात्र ऐसे विकल्प चुन रहे हैं जो उनके विवेक के विरुद्ध जाते हैं। शुक्ल की कहानियाँ भारतीय समाज की जटिलताओं को अंतर्दृष्टि प्रदान करती हैं। वह जाति की गतिशीलता की बारीकियों को चित्रित करते हुए दिखाते हैं कि कैसे व्यक्ति अपनी जाति की पहचान से अलग-अलग तरीकों से प्रभावित होते हैं। उनकी कहानियाँ ग्रामीण समुदायों के सामने आने वाली चुनौतियों को संबोधित करती हैं, किसानों और मजदूरों के संघर्षों को उजागर करती हैं। वह परंपरा और आधुनिकता के अंतर्संबंध पर भी प्रकाश डालते हैं, जो समाज में अपना स्थान खोजने की कौशिल्य कर रहे व्यक्तियों के लिए चुनौतियों का एक अनूठा समूह तैयार करता है। शुक्ल कहते हैं कि सरकार सामाजिक मुद्दों को संबोधित करने में अप्रभावी है, पात्र अक्सर अपनी जरूरतों को पूरा करने के लिए अवैध तरीकों का सहारा लेते हैं। हिंसा और अपराध बढ़ रहे हैं, पात्रों को हर मोड़ पर खतरे का सामना करना पड़ रहा है। लोगों में निराशा की भावना है, पात्र अपने जीवन में अर्थ और उद्देश्य खोजने के लिए संघर्ष कर रहे हैं। उनकी कहानियाँ सामाजिक मुद्दों के बारे में बातचीत को बढ़ावा देती हैं, जिससे व्यक्तियों को समाज के सामने आने वाली समस्याओं के बारे में गंभीर रूप से सोचने के लिए प्रोत्साहित किया जा सकता है। वे व्यक्तियों को अपने स्वयं के मूल्यों और विश्वासों पर सवाल उठाने के लिए प्रेरित भी करते हैं, और उन्हें सकारात्मक परिवर्तन लाने के लिए कार्रवाई करने की दिशा दिखाते हैं। शुक्ल की कहानियाँ सामाजिक परिवर्तन के लिए उत्प्रेरक के रूप में काम करती हैं, जो व्यक्तियों को बेहतर समाज बनाने के लिए मिलकर काम करने के लिए प्रोत्साहित करती हैं। अतः श्रीलाल शुक्ल की कहानियाँ भारतीय समाज का सूक्ष्म एवं यथार्थवादी चित्रण प्रस्तुत करती हैं। जहां वे भारतीय समाज के सामने आने वाली विभिन्न चुनौतियों और मुद्दों पर प्रकाश डालते हैं, वहीं वे मानवीय भावना के लचीलेपन और सकारात्मक बदलाव की क्षमता को भी दर्शाते हैं। मिथकीय तकनीकों और क्षेत्रीय मुहावरों का प्रयोग करते हुए श्रीलाल शुक्ल ने अपनी अद्भुत एवं प्रभावी भाषा शैली का निर्माण किया। उन्होंने समाज की जड़ों तथा उसकी गहराइयों में जाकर पूरी गम्भीरता और निष्ठा से समाज की कुरूपता की पड़ताल की,

उसकी नब्ज पर हाथ रखा। इसी वजह से उनके साहित्य का ग्रामीण, कृषि प्रधान भारत एक लोक शिष्टता के साथ चित्रित किया गया। लेकिन वास्तविकता के इस विचार में कई परतें हैं, जिनमें आध्यात्मिक, आंतरिक, भौतिक आदि शामिल हैं। उदाहरण के लिए कहानी ‘छुट्टियाँ’ में लेखक ने इसे लिखने के क्रम में व्यवस्था पर सवाल उठाया। विश्वविद्यालय में छात्रों की अव्यवस्था का कारण अव्यवस्थित एवं अनैतिक व्यवस्था एवं व्यवहार है। लेकिन बुराई की जड़ में कोई नहीं झांकता। वहीं तुलनात्मक रूप से ‘एक चोर की कहानी’ पाठकों को झकझोर कर रख देती है और साथ ही उन्हें प्रतिबिंबित भी करती है। सच कहा जाए तो यह एक चोर की नहीं बल्कि भूख और बदहाली की कहानी है। ‘एक लुढ़कता पत्थर और ‘पहचान’ दो छोटी कहानियाँ हैं जो जीवन और मध्यम वर्ग की दुविधा को दर्शाती हैं। पता नहीं कब जीवन के संघर्ष में किसी व्यक्ति का नैतिकता और मानवता का भंडार धीरे-धीरे सूखने लगता है।

शुक्ल का साहित्य सामाजिक दर्शन और आलोचना-सा प्रतीत होता है। सामाजिक आलोचना एक साहित्यिक कार्य का विश्लेषण और विवेचन करने की प्रथा है, जिसमें यह जांचा जाता है कि किस सांस्कृतिक, राजनीतिक और आर्थिक संदर्भ में यह लिखा या प्राप्त हुआ था, कि कला और समाज के बीच संबंधों का अन्वेषण किया जाता है। यह ऐतिहासिक आलोचना नहीं है, इसका उद्देश्य केवल यह निर्धारित करना है कि क्या काम वर्तमान स्थिति को चुनौती देता है या समर्थन करता है। सामाजिक आलोचना लोगों को समाजिक आलोचकों पर आधारित व्यावसायिक समाधानों की ओर भी संदर्भित कर सकती है, चाहे वह सम्मतिपूर्ण सुधार के लिए हो या प्रबल क्रांति के लिए। यह सामाजिक स्थितियों को सुधारने का प्रयास करता है। सभी महान कथाएँ प्रतिष्ठान पर आधारित होती हैं। एक लघुकथा में, लेखक एक पात्र को पूर्णतः नहीं चित्रित कर सकता। वह केवल एक दृष्टिकोण या किसी पात्र के कुछ विशिष्ट लक्षणों को प्रदर्शित कर समाज को उसका दिग्दर्शन कराता है, जो उसे प्रमुख स्थिति में डाल देता है। पुरुष और महिलाएँ ऐसी परिस्थितियों में रखे जाते हैं जो उनके पात्रों के प्रमुख लक्षणों को उजागर कर उन्हें विकसित करने के लिए पर्याप्त होते हैं। इस प्रकार निस्संदेह श्रीलाल शुक्ल की संपूर्ण कहानियों का साहित्य सृजन एक सामाजिक चेतना और सुधार का कार्य करता है।

#### सन्दर्भ सूची:-

1. श्रीलाल शुक्ल की दुनियाँ, सं अखिलेश, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 2000
2. श्रीलाल शुक्ल की संचयिता, डॉ नामवर सिंह, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 2008
3. साहित्य समीक्षा के सिद्धांत, डॉ गोविन्द त्रिगुणायत, भारतीय साहित्य मंदिर, दिल्ली. 1951
4. साहित्य का समाजशास्त्रीय चिन्तन, निर्मला जैन, हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय दिल्ली विश्वविद्यालय 1906
5. सुरक्षा और अन्य कहानियाँ, श्रीलाल शुक्ल, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 2008
6. मेरे साक्षात्कार : श्रीलाल शुक्ल, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली प्रथम, 2015
7. आलोचना का परिप्रेक्ष्य सं. रोहिताश्व, विद्याप्रकाशन कानपुर, 2004.
8. श्रीलाल शुक्ल की संचयिता, डॉ नामवर सिंह, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 2008

## 21वीं सदी के संस्मरण - साहित्य में चित्रित आधुनिक संस्कृति

मलय नीरव

शोधार्थी, ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा, बिहार

छुट्टी हुई। कई दिनों के बाद घर आया था। पापा से बातचीत हो रही थी। उन्होंने कहा कि सबके लिए अनंत पूजा में अनंत चढ़ाया गया था। मैंने और तुम्हारी मम्मी ने पहन लिया है, आज तुम भी नहाकर अनंत पहन लेना। मैं थोड़ा असमंजस में पड़ गया कि कैसे कढ़ूँ, वह पहनना मुझे असहज कर देता है। कभी-कभी उससे स्कीन एलर्जी भी हो जाती है। सम्भवतः वेमेरीमन: स्थिति को समझ गए थे। उन्होंने मुस्कुराते हुए कहा कि कोई बात नहीं आज भर के लिए पहन लो, फिर कल खोलकर सही से रख लेना। मैंने राहत की साँस ली। सोच रहा था कि कितने सरल हैं मेरे पापा, इतनी आजादी दे रहे हैं। इस घटना को आज याद कर मेरे मन में कुछ सवाल उठ रहे हैं। क्या मेरा संस्कार, मेरा धर्म इस घटना के बाद बस एक दिन का ही रह गया होगा और पापा का धर्म, संस्कार साल भर का? न ही न! यह हमारी संस्कृति की मौलिकता है, सरलता है, सहजता है, जो हमें, हम सबको अपने दायरे में रहते हुए खुद को बदलने की सहूलियत देता है। साथ ही समय के साथ आने वाले बदलाव को अपनाने के लिए प्रोत्साहित भी करता है।

क्या यह सिर्फ भारतीय संस्कृति की खासियत है या हर संस्कृति में यह खूबसूरती होती है कि वह एक ही लीक से बंधा न हो? यह भारतीय संस्कृति का नयापन है या फिर लचीलापन? सबको सहज लेना, सबको समेट लेना। किसी को भी शरणार्थी नहीं रहने देना, सबको अपनी छांव में घेर लेना। सामासिक संस्कृति। एक घर, एक आँगन लेकिन दो संस्कृति। पद्मा सचदेव अपनी कृति 'बारहदरी' में कुसुम अंसल की आँगन का चित्रण करती हैं। एक तरफ कुसुम के दादाजी हैं जो कुसुम को कहते हैं कि तुम कभी मांस नहीं खाना। बेटियाँ रचती हैं, नष्ट नहीं करतीं। वहीं आँगन के दूसरे छोर पर जमादारिन सफ़ाई कर रही थी। वह रात को पकने वाले मांस के लिए मसाला का इंतजाम कैसे हो इसके बारे में सोच रही थीं। क्या यह एक आँगन में दो संस्कृतियों का सह-अस्तित्व है? क्या यही हमारी सामासिक संस्कृति है? क्या तभी 'अशोक के फूल' निबंध में आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी लिखते हैं कि देश और जाति की विशुद्ध संस्कृति केवल बात की बात है। सबकुछ में मिलावट है, सबकुछ अविशुद्ध है?

पहले संस्कृति चिट्ठियों के माध्यम से आती थी, आजकल ईमेल, व्हाट्सअप के माध्यम से आती है। आने का साधन बदला है तो स्वाभाविक है उसका स्वरूप भी बदलेगा। और यह जरूरी नहीं कि वह स्वरूप एक रेखीय हो। आज की संस्कृति में हर गंध समाहित है, चाहे वह गुलाब की खुशबू हो या फिर नाले की बदबू। जब हम 21 वीं सदी के संस्मरण साहित्य को पढ़ते हैं तो इसकी झलक हमें वहाँ देखने को मिलती है। सचदेव की बारहदरी, कमलेश्वर, गायत्री भाभी और पट्टी पूजन। पट्टी पूजन अर्थात्? बच्चे को अक्षर

बोध करवाना। बालक कमलेश्वर को अक्षर ज्ञान करवाने पंडित और मौलवी दोनों आते थे। उन्हें क्रमशः ' ? ' और ' अलिफ ' सिखाते थे। आज? और अलिफ एक साथ सीखने का सपना संस्कृति की परछाई में ही सिमट कर रह गया है। लेकिन सपना भी कहाँ! कई दशक बीत गए हैं मेरे जीवन के और कहाँ रह गए ये सपने! हम विस्मृति का शिकार हो गए हैं। अतीत का खोना और अतीत में खोना दोनों मिलकर ही एक संस्कृति को गढ़ते हैं। लेकिन हम क्या याद रखते हैं और क्या भूलते हैं, वह मायने रखता है।

तुलसी का पौधा कल भी था, आज भी है और कल भी रहेगा। यह सनातन है। नित्य है। यह हमारी स्मृति और संस्कृति दोनों में रची-बसी है। कथाकार कमलेश्वर सदी होने पर तुलसी का काढ़ा पीते थे, आज मैं भी। पद्मा सचदेव के बारहदरी में जब कमलेश्वर को तुलसी का काढ़ा पीते हुए देखा तो ऐसा लगा जैसे मैं खुद के वर्तमान को ही देख रहा हूँ, टाइम ट्रैवल करने लगा। लगा जैसे कमलेश्वर की तुलसी आज हम तक पहुंच गई है। मैं इसके माध्यम से अपने साहित्य के अतीत से जुड़ना महसूस कर रहा था। यह स्मृति का, साहित्य का संस्कृति हो जाना तो नहीं!

कुआं, रस्सी और उससे बंधी बाल्टी। कुआं के पानी में तैरने को तैयार बाल्टी। यह दृश्य कमलेश्वर के बचपन में है (बारहदरी, पद्मासचदेव ) और उनसे कई बरस बाद के मेरे बचपन में भी। कुछ दिन पहले कपिलेश्वर मंदिर जाना हुआ था। वहाँ भी कुआं था, बचपन की याद आ गई। बारहदरी में कुआं को पढ़ते हुए फिर से बचपन याद हो आया और कपिलेश्वर मंदिर भी। ऐसा लग रहा है कि मंदिर में कुआं से बाल्टी भर जल नहीं निकाल रहा था बल्कि एक संस्कृति जो बचपन के बाद कहीं खो गई थी, उस खोई संस्कृति को ही रस्सी के सहारे अपने पास बुला रहा था। अभी बाल्टी नहीं किताब है हाथ में पर ऐसा लग रहा है जैसे वो संस्कृति फिर से मेरे अन्दर जी उठी है। कुआं और किताब एक ही काम कर रहे हैं, मुझे मेरी स्मृति और संस्कृति से मिला रहे हैं।

कोई संस्कृति जीवित है तो उसमें स्मृति का योगदान भरपूर है, और अगर कोई संस्कृति भविष्य में जीवित है तो अवश्य ही वह कल्पनाशील होगी! कल्पनाशीलता का अभाव इंसान को मशीन बना देता है फिर संस्कृति कैसे इसके बिना जीवित रह सकती है।

हम नालंदा जाने वाले थे। इंतजार कर रहे थे बस की जो आने वाली थी। बस के आने से पहले उसका ख्वाब आ गया था कि मस्त सोफा वाली बस होगी, लेकिन सामने आया खंडहर से करीब-करीब मिलती-जुलती खटारा बस। कभी ओम थानवी (मुअन जोदड़ो, ओम थानवी) भी बस के इंतजार में थे, मुझसे हजारों किलोमीटर दूर, वर्षों पहले। सिर्फ काल और

स्थान ही नहीं, देश (हिन्दुस्तान और पाकिस्तान) भी भिन्न-भिन्नथा। हालांकि ये दोनों देश एक ही साझा संस्कृति की उपज है। बस का जैसा शानदार खाका उनके सामने खींचा गया था, उससे कहीं कई गुना बदतर बस उन्हें वहाँ मिली थी। गनीमत यह कि सीट थी, भले ही टूटी हालत में। हम दो भिन्न काल में थे लेकिन हमारे झटके एक जैसे थे, हमारी मनःस्थिति एक सी, अखिरकार कैसे? दोनों ही जो तलाश करने निकले थे अपनी संस्कृति की परंपरा को! 21वीं सदी में नालंदा विश्वविद्यालय के खंडहर देखता हुआ मैं, 20वीं सदी में मुअनजोदड़ों को देखते ओमथानवी, कहाँ जुड़ रहे थे हम? दोनों ही खोज रहे थे अपनी संस्कृति को, जीवन के सार को। ओम थानवी का यह यात्रा-संस्मरण हमें खुद को फ़रि से देखने का मौका दे रहा है। हम कितने भी नए हो जाए हमारा वजूद अतीत से बंधा ही होता है। हम उसे भले ही नकार दें, वह हमें नहीं छोड़ता है। चाहे वह नालंदा हो या मुअनजोदड़ों!

लोग निकल गए लेकिन वक़्त वही ठहर गया, क्या सच में? आजादी के बाद का समय, लालटेन, डिबिया या अंधेरी रात का समय था। रात होते ही पशु-पक्षियों की तरह आबादी का बड़ा हिस्सा सो जाता था। सुबह सूर्योदय से पहले जग जाता था। दिनचर्या का प्रारंभ, दिन होने से पहले ही शुरू हो जाता था। कुछ बरस बाद आयास मय, बिजली का, लैंप का। बिजली-केरोसिन तेल रात होने के समय को बढ़ा दिया, दिन भी अब सूर्योदय के साथ हो रहा था। आज का समय दिन और रात के समान हो जाने का समय है। भले ही आज भी आय और लिंग के स्तर पर असमानता हो। सूर्योदय और सूर्यास्त अब हमारे हिसाब से होने लगा है। वक़्त ठहरा नहीं, एक हो गया है। इतना ज्यादा परिवर्तन होने के बाद क्या हम यह सोच-समझ सकते हैं कि आज भी हम अपनी संस्कृति और परंपराओं से विचलित नहीं हुए होंगे? हमारा साहित्य इस नवीन होते, जवान होते संस्कृति को क्या दर्ज नहीं कर रहा होगा? अवश्य ही दर्ज कर रहा है। जब हम 21 वीं सदी के संस्मरण-साहित्य से गुजरते हैं तो इस परिवर्तन को शब्दों की संवेदना के माध्यम से देख पाते हैं। महादेवी वर्मा का 'मेरा परिवार' का दायरा जन से विस्तृत हो सजीव प्राणी तक पहुंच जाता है। वही आज के संस्मरण में यह व्यापकता सीमित होकर जन तक लौट आया है। जन से होते हुए यह व्यक्ति विशेष होता जा रहा है। क्या साहित्य के 'आठे दिन पाछे जा रहे हैं'? या एक नया संसार बन रहा है जहां अधूरा ही पूरा होना है।

संस्कृति, सभ्यता। ये शब्द सुन हमेशा संशय होता है कि किसे कहेंगे संस्कृति, किसे कहेंगे सभ्यता? इससे ज्यादा कि किसे इन दोनों खौंचे में नहीं रख सकते हैं! सुनता हूँ कि विश्वविद्यालय में साँस्कृतिक कार्यक्रम हो रहा है, वहाँ से निकल रहे छात्रों के गप-शप में सुनाई देता है कि वह कितने मधुर स्वर में गा रही थी। वाह! उसका नृत्य हमारी सांसों को तरंगित कर दिया था। सोचता हूँ और समझने की कोशिश करता हूँ कि अच्छा यह है संस्कृति! फिर एक सवाल खुद ही इसके साथ उभर आता है कि जब हम गाँव में थे, सुबह कोयल की कूक सुनाई देती थी, मीठा-स्वर, हम उसी स्वर को दोहराते थे, फ़रि कोयल कूकती थी। यह क्रम हमारे थकने तक चलता रहता था। तो क्या हम कोयल के मीठे स्वर को संस्कृति के परिभाषित दायरे में रख सकते हैं या बारिश में जंगल में नाचती मोर के नृत्य को साँस्कृतिक कार्यक्रम मान सकते हैं? ये सवाल साहित्य को पढ़ते समय कभी दबता तो कभी उभरता है। आज जब ये स्वर और नृत्य गायब होते जा रहे तब हम किस तरह के संस्कृति के नए धरातल बना रहे हैं!

'आहट सुन रहा हूँ यादों की।' मानों यादें, यादें न होकर पदचाप

हो। काशीनाथ सिंह जी की संस्मरणात्मक किताब है, जिसमें वह नामवर सिंह के हवाले से कहते हैं कि परम्परा निभाना बड़ी बात नहीं है, बड़ी बात है उस परम्परा में अपना कुछ जोड़ना। जोड़ना! आज जोड़ने से ज्यादा तोड़ने की ध्वनि सुनाई देती है। जोड़ना असंभव होता जा रहा है। क्यों? हम एकाकी होते जा रहे। एकाकी होकर हम भीड़ की तलाश में भागते हैं। भीड़ का कोई नियम नहीं होता है। वह सृजन से ज्यादा विनाश की ओर भागता है, क्योंकि विनाश का शोर उसके एकाकीपन को घोट जाता है। सृजन की शांति उसके लिए असहाय होता है। जब हम अनीता राकेश की किताब 'अतिरिक्त सतरें' से गुजरते हैं तब वह हमें अपनी इस खांसी का पड़ताल करने के लिए उकसाता है। 21 वीं सदी का प्रारंभ मोबाइल क्रांति के साथ हुआ था। अब हम इंटरनेट युग में प्रवेश कर चुके हैं। 21 वीं सदी को नेट-युग भी कहा जा सकता है। नेट-युग की संस्कृति क्या हो सकती है? अब जबकि समय 5-जी के रफ़्तार से दौड़ रहा है, चलते-चलते खाने-पीने का समय आ गया है। मेट्रो में बैठे हैं, एक तरफ़ आंख न्यूज का पान कर रहा होता है तो दूसरी तरफ़ मुंह में सेब या सैंडविच जा रहा होता है। समय का अभाव नहीं भाव के युग में हमारी संस्कृति भी फास्टफूड सी होती जा रही है। रील, सेल्फी और इंस्टा पोस्ट के दौर में जो विज्ञापन के नज़र में नहीं, उसका भला कौन ज्ञापन ले। संस्कृति भी आज विज्ञापन की मोहताज हो रही है। मिथिला प्रदेश में शादी हो रही है, मैथिली बोली में विवाह के संगीत से सजी मिथिला की धरती पर हरियाणवी गाना 'बाबन गज का दमन' बज रहा है। आज मिथिला के लिए हरियाणा दूर नहीं, लेकिन हरियाणा के लिए मिथिला आज भी शायद उतना ही दूर है। यही है विज्ञापन की संस्कृति, संस्कृति का ज्ञापन। केवल खाना ही फटाफट नहीं हुआ है, बल्कि साहित्य भी। जैसे आज हम महाकाव्य के जगह दो लाइन की शायरी पढ़ना पसंद करते हैं। उपन्यास कहानी तो कहानी लघु कहानी की ओर मुड़ रहा है। फास्टफूड खाते-खाते मोटी किताब पतली होती जा रही है। हम चाहते हैं कि कुछ ही पन्ने की किताब हो, ताकि किताब एक ही बैटरी में खत्म हो जाए। अनीता राकेश की किताब 'अतिरिक्त सतरें' कम पृष्ठ की किताब है, लेकिन उसमें दर्ज जीवन, संवेदना उसे कहीं से भी अन्य मोटी किताब से कमतर नहीं ठहराती है। लेकिन कम पृष्ठ उसके और पाठक का ध्यान स्वाभाविक रूप से आकर्षित करता है।

पहले अखबार आया, हम खबर पढ़ते थे, उसके बाद रेडियो आया और हम खबर सुनने लगे फिर टीवी आया और हम खबर को देखने लगे, ब्रेकिंगन्यूज। अब आया है सोशल मीडिया, हम न खबर पढ़ते हैं, न सुनते हैं, न देखते हैं बल्कि खुद ही खबर बन जाना चाहते हैं। हम रियल से ज्यादा रील होना पसंद करते हैं। ऐसे समय में उस साहित्य-विधा का लिखा जाना बढ़ना स्वाभाविक है, जिसमें सृजन करने वाला खुद का ही पुनर्निर्माण कर रहा हो। तभी आज आत्मकथा, संस्मरण, यात्रा वृत्तांत जैसे कथेतर गद्य विधा का बहुतायत में लिखा जाना आश्चर्यचकित नहीं करता है।

21 वीं सदी के संस्मरणों को पढ़कर हम 21 वीं सदी को कम और 20 वीं सदी को ज्यादा समझ पाते हैं। फिर उस समझ के आईने से हम आज को, 21 वीं सदी को देखते हैं, परखते हैं। लेकिन यह दृष्टि कभी-कभी हमें भ्रमित भी कर देती है।

एक ज़माना हुआ करता था जब 'इंटर का छात्र' हुआ करते थे, मैं भी उसी ज़माने का हूँ, अब 'छात्र इंटरनेट का' होने लगे हैं। मैं छात्र तो वैसा नहीं बन पाया लेकिन अब भले ही शोधार्थी इंटरनेट का बन गया हूँ। हाथ उठाता हूँ कि कुछ पढ़ूँ, लेकिन कहाँ से, दिमाग फौरन कहता है इंटरनेट

से। व्योमकेश दरवेश में रवींद्रनाथटैगोर के शांति निकेतन का जिक्र आता है, जिसमें वर्णन होता है कि कैसे विद्यार्थी चहारदीवारी रहित परिसर में पेड़ों के नीचे पढ़ा करते थे तो मेरी नज़र भी अपने विश्वविद्यालय परिसर के पेड़ पर अनजाने चली जाती है। पेड़ तो हैं लेकिन वैसे छात्र अब कहाँ? अगर आज ऐसा होगा तो क्या होगा! पेड़ के नीचे पढ़ते छात्र की तस्वीरें अगले दिन ही मीडिया, सोशल मीडिया में छप जाएगी, हेडिंग होगा 'संसाधन विहीन विश्वविद्यालय', 'भ्रष्टाचार का पोल खोलती तस्वीर' आदि आदि। सदी बदली है, संस्कृति भी। आज खबरें छुपाई जाती हैं, अफवाहें फैलाई जाती हैं। साहित्य भी इसका शिकार हो रहा है। कभी साहित्य इस बदलाव को रेखांकित करता है तो कभी खुद भी उसी के साथ बह निकलता है।

संस्कृति शब्द गंगा जल की तरह है, जिससे जुड़ जाए वह पवित्र हो उठता है। आधुनिकता के नाम पर आज कई तरह के खेल खेले जा रहे हैं, लेकिन सब जायज हो जाते हैं जब उन्हें आधुनिक संस्कृति से नवाजा जाता है। 'आहटें सुन रहा हूँ यादों की' में काशीनाथ सिंह 1950 के आस-पास के बनारस का जिक्र कर कहते हैं कि ये वे दिन थे जब बनारस सचमुच भारतीय संस्कृति ही नहीं, साहित्य की भी राजधानी थी। हाँ थी ! आगे चलकर वे आज के बनारस के लिए कहते हैं कि हाँ, राजधानी आज भी है यह नगर, लेकिन कला और संस्कृति की नहीं, धार्मिक अनुष्ठानों और कर्मकांडों की। इस पर कोई गर्व करना चाहे तो कर सकता है। काशी के बनारस का बदलता स्वरूप क्या पूरे भारत के बदलते स्वरूप का ही तो चित्रण नहीं ! अगर हाँ, तो क्या हम इस बदलाव का स्वागत करें या आत्म अवलोकन! बदलता भारत, विकसित होता भारत क्या सांस्कृतिक दृष्टि से पिछड़ता भारत बन रहा है... भारत के लिए दोनों तरह के दृश्य दिखाए जाते हैं, समृद्ध और विपन्न, लेकिन हम किसे सच मानते हैं और किसे झूट... इससे भी ज्यादा हम किस तरह के जीवन को जी पा रहे हैं , व्यक्तिगत स्तर पर! इसे समझने के लिए हमें किसी साहित्य और संस्कृति के भीतर झाँकने की जरूरत नहीं है, बल्कि खुद को देखने की कोशिश करनी चाहिए, आत्म को, जहाँ हमें साहित्य भी दिख जाएगा और संस्कृति भी!

इंसान ख्वाब देखता है, काश वो ख्वाब ही संस्कृति हो जाया करते! आज संस्कृति की तलाश कहाँ पहुंची है, अगर कोई यह पूछता है तो मन-मंदिर कहता है; हम चिट्ठी का इंतजार करते रह गए, उनके घर टेलीफोन आ गया। मैं तलाश कर रहा हूँ संस्कृति की, कोई तलाश कर रहा है रोटी का। किसकी तलाश पवित्र है? कौन कह सकता है खुद को संस्कृति-पुरुष, मैं या वह! क्या रोटी की तलाश ही संस्कृति है और संस्कृति की तलाश ही रोटी! ये सवाल हैं, फिर जवाब भी होंगे ही?

आह नहीं, वाह संस्कृति हो। इसके लिए हम सभी को सम्वेदनशील होना होगा और संस्मरण हमें यही सिखाता है।

'आहटें सुन रहा हूँ यादों की' में एक चरित्र है वकील। वे काशीनाथ से कहते हैं, 'कासी पंडित! मैं नामवर से दो साल बड़ा हूँ। अब भी गाँव जाता हूँ, साल में कम से कम एक बार। हमारे साथ बचपन में पढ़ता था बनारसी, जाति का कोईरी! उससे मिलता हूँ और पूछता हूँ, 'बनारसी कोई कष्ट?' अबकी उससे पूछा तो कहा-'है! एक कष्ट है। वकील साहब, बेटियाँ थीं, सबकी शादी कर दी। बेटे हैं, काम-धंधे से लग गए। बीवी है, कोई रोग नहीं है उसे। मैं हूँ, अपनी आंखों देख रहे हैं कि ठीक हूँ। बस, एक ही कष्ट है-आदमी नहीं मिलते अब।'

कितना सत्य है, कितना है यह यथार्थ! आधुनिक यथार्थ! आज

अगर कुछ मिलता है तो वह होता है भीड़ नहीं तो तन्हाई। आदमी नहीं, समाज नहीं, संस्कृति नहीं, साहित्य..! अब इसके बाद भी क्या कुछ बचा रह जाता है 21 वीं सदी की संस्कृति पर कहने के लिए?... शेष परिशिष्ट है। परिशिष्ट..

मैं तो अभी-अभी युवा हुआ हूँ। जीना सीख ही रहा हूँ। मैं क्यों मरघट का विलाप करूँ। मैं तो बहुत खुश हूँ आज की संस्कृति से। उत्तर-आधुनिकता और उत्तर-यथार्थ से। अपनी आज की जादुई संस्कृति से। लगता है अभी मेरा और मॉडर्न होना बाकी है, और जीना बाकी है। मैं जो जी रहा हूँ वही मेरी संस्कृति है, और मैं इसी में तल्लीन रहना चाहता हूँ। ऊपर जो लिखा गया उससे मेरा कोई भी ताल्लुक नहीं। वह एक पाठक का विलाप है जो पढ़ रहा है, हर जगह नष्ट होती भारतीय संस्कृति को। इसलिए वह अपने उसी पढ़ने को यहाँ उतार दिया है। मैं उस पाठक से घोर असहमत हूँ। यह आज ही मैं हूँ, मेरी संस्कृति है, और आज बेहद खुशनुमा है। झूठा-सच, सच्चा-झूट!

संदर्भ सूची :-

1. सिंह, काशीनाथ : आहटें सुन रहा हूँ यादों की, प्रथम संस्करण, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2024
2. अज्ञेय, सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन : त्रिशंकु, पुनर्मुद्रण, सस्ता साहित्य मण्डल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2012
3. सचदेव, पद्मा : बारहदरी, पुनर्मुद्रण, सस्ता साहित्य मण्डल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2018
4. थानवी, ओम : मुअनजोददो, द्वितीय संस्करण, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2020
5. राकेश, अनीता : अतिरिक्त सतरें, प्रथम संस्करण, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, 2018
6. राकेश, अनीता : अन्तिम सतरें, प्रथम संस्करण, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, 2018
7. <https://www.hindwi.org/essay/bharatiy-sanskriti-ki-den-hajariprasad-dwivedi-essay>

# सरगुजांचल के जनजातीय लोक गीतों में स्त्री की स्थिति

डॉ. मृदुला सिंह

सहायक प्राध्यापक, हिंदी, होली क्रॉस वीमेंस कॉलेज, अंबिकापुर, सरगुजा, छत्तीसगढ़

शोध सार:-छत्तीसगढ़ का उत्तरी भाग सरगुजा कहलाता है। छत्तीसगढ़ का यह क्षेत्र आदिवासी बहुल क्षेत्र है जहां कई प्रकार की जनजातियां निवास करती हैं जैसे पंडो, उरांव, गोंड, नगसिया पहाड़ी कोरबा इत्यादि। इन जनजातियों की अपनी संस्कृति है। यह अंचल मानव-सभ्यता के विकास का केंद्र भी रहा है, इसका अपना इतिहास रहा है किंतु अध्येताओं की दृष्टि कम ही पड़ी है। अध्ययन से निष्कर्ष निकलता है कि, यहां की स्त्रियों को सामाजिक स्वतंत्रता के साथ ही साथ सामाजिक क्षेत्र में भी पुरुषों के समान ही अधिकार प्राप्त हैं। परिवार में धार्मिक क्रियाएं एवं उत्सव स्त्री की सहमति से किए जाते हैं। सार्वजनिक रूप से होने वाले धार्मिक समारोहों में स्त्रियों को संख्या पुरुषों की तुलना में कम नहीं होती। यहां की आदिवासी स्त्रियों की स्थिति उनकी आयु के साथ परिवर्तित होती रहती है। जैसे- जैसे स्त्री की आयु बढ़ती जाती है, सामाजिक, धार्मिक एवं आर्थिक क्षेत्रों में उसकी स्वतंत्रता बढ़ती जाती है और उस पर अधिक दायित्व आ जाते हैं। अधिक आयु की स्त्रियां नवविवाहिता स्त्रियों की अपेक्षा परिवार एवं समाज में अधिक सम्मान पाने की अधिकारिणी होती हैं।

इस शोध पत्र के माध्यम से मैंने सरगुजांचल के जनजातीय समाज के गीतों में वर्णित यहां का समाज और उनके लोकगीतों में स्त्री की स्थिति को रेखांकित करने का प्रयास किया है।

**शब्द:-** डउकी, बधूमूल्य, दिनगिरय, विनिमय विवाह, छुटवइहा, गोंड।

**शोध पत्र:-** उत्तरी छत्तीसगढ़ का हिस्सा सरगुजांचल कहलाता है। यहां जनजातीय समाज में स्त्रियों तथा पुरुषों की स्थिति उनसे संबंधित कार्यों के अनुसार सुनिश्चित होती है। यहां का जनजातीय समाज अधिकांशतः पितृ-सत्तात्मक है। किंतु पुरुष ही परिवार का मुखिया होता है। पैतृक संपत्ति पर पुरुष का ही अधिकार होता है। पुत्र ही वंश परंपरा को चलाने वाला और पिता के पश्चात धर का स्वामी होता है। यहां स्त्री को अपने पति की संपत्ति प्राप्त करने का वंश परंपरागत अधिकार नहीं है। निसंतान स्त्री अपने पति की संपत्ति को पति के भाई या अन्य संबंधियों की इच्छा के बिना नहीं बेच सकती। ऐसा होते हुए भी यहां के पितृसत्तात्मक समाजों में स्त्री को पर्याप्त स्वतंत्रता प्राप्त है। यहां की स्त्रियों को सामाजिक स्वतंत्रता के साथ ही साथ सामाजिक क्षेत्र में भी पुरुषों के समान ही अधिकार प्राप्त हैं। परिवार में धार्मिक क्रियाएं एवं उत्सव स्त्री की सहमति से किए जाते हैं। सार्वजनिक रूप से होने वाले धार्मिक समारोहों में स्त्रियों को संख्या पुरुषों की तुलना में कम नहीं होती।

यहां की आदिवासी स्त्रियों की स्थिति उनकी आयु के साथ परिवर्तित होती रहती है। जैसे-जैसे स्त्री की आयु बढ़ती जाती है, सामाजिक, धार्मिक एवं

आर्थिक क्षेत्रों में उसकी स्वतंत्रता बढ़ती जाती है और उस पर अधिक दायित्व आ जाते हैं। अधिक आयु की स्त्रियां नवविवाहिता स्त्रियों की अपेक्षा परिवार एवं समाज में अधिक सम्मान पाने की अधिकारिणी होती हैं। इस क्षेत्र में स्त्रियों में पर्दा प्रथा नहीं है।

वे पुरुषों के साथ बराबरी में घर के बाहर के कार्यों में सहभागिता करती हैं। सरगुजा की आदिवासी स्त्रियां बलिष्ठ, सुंदर एवं आकर्षक होती हैं तुलनात्मक रूप में पुरुष नहीं। यहां की स्त्रियों ने अपनी सांस्कृतिक एवं परंपरागत निधि को बड़े यत्न के साथ सुरक्षित रखा है। ये स्वावलंबी, सबल चतुर, गृह कार्य में दक्ष एवं हस्त कला में प्रवीण हैं।<sup>1</sup> उनके लोकगीतों के माध्यम से हम जनजातीय समाज की स्त्रियों की स्थिति को समझने के लिए उनके लोकगीतों का अन्वेषण करेंगे।

**विवाह गीतों में स्त्री की स्थिति का चित्रण:-** सरगुजा की आदिवादियों में विवाह के अलग-अलग स्वरूप प्रचलित हैं जैसे एक विवाह, बहु विवाह, अधिमान्य विवाह, ममेरे फुफेरे भाई बहनों का विवाह, पति भ्राता विवाह, पति पत्नी विवाह, विवाह साथी चुनने के तरीके क्रय विवाह अपहरण विवाह, सेवा विवाह, विनिमय विवाह सहमति और सहपालन विवाह हट या बलपूर्वक गृह प्रवेश करके विवाह बूँदा विवाह, सगाई द्वारा विवाह। आदिवासियों में बहु विवाह की प्रथा है किंतु सर्वथा एक विवाह को ही सही माना जाता है यह स्त्री के पक्ष में है इसका एक उदाहरण है-

‘इक डउकी के टाकुर

दो डउकी के कुकुर

तिन डउकी के दिनगिरय’

अर्थात्, एक पत्नी के साथ पुरुष प्रतिष्ठित होता है दो के साथ स्वान और तीन के साथ वह इस संसार में रहने योग्य नहीं रह जाता। यहां की जनजातियों में विनिमय विवाह का प्रचलन है जहां जिसमें वर पक्ष की ओर से बधू मूल्य दिया जाता है।

गीत के माध्यम से एक उदाहरण -

‘जाय बर जइहा बाबू तू तो जनकपुर

दुधवा के मोल दे जइहा

तोर बर लइहो दाई जतन करइया

दुधवा के मोल

छुटवइहा’

अर्थात्-मां पुत्र से कहती है कि तू विवाह करने तो जा रहा है किंतु मेरे दूध का मूल्य चुकाता जा पुत्र कहता है कि मां, मैं तेरी सेवा करने वाली लाऊंगा वही तेरे दूध का मूल्य चुकाएगी। यहां यह स्पष्ट होता है कि भले ही

बधू मूल्य दिया जाता हो दहेज निषिद्ध हो पर ससुराल में आने के बाद लड़की को सेवादार के रूप में ही देखा जाता है।

**धार्मिक अनुष्ठानों में स्त्री की स्थिति:**—यहां के धार्मिक अनुष्ठानों में उनके गीतों के माध्यम से स्त्री की स्थिति स्पष्ट होती है। यहां की भूइहार, बैगा आदि जातियां धरती माता को सर्वश्रेष्ठ देवी मानते हैं। अतः हल द्वारा धरती माता का हृदय विदीर्ण करना पाप समझते हैं।

**पर्व गीतों में स्त्री चित्रण:**—सरगुजा का प्रसिद्ध नृत्य सुआ नृत्य है जिसे केवल स्त्रियां करती है यह दीपावली के समय किया जाता है इन गीतों में नारी मन की कोमलता उभर कर आती है।

‘तैं मोर सुवना भइया रे भतीजवा  
कि सुवना हो सइयां खवरि लेइ आव’

**टोनही प्रथा और स्त्री:**—सरगुजा में जादू-टोने की विद्या में पारंगत स्त्रियों को टोनही टोनहिया कहा जाता है। पुरुषों में भी होता है उन्हें टोनहा डेइया कहा जाता है। जादू टोना करने वाली यहां प्रायः स्त्रियां होती हैं।<sup>1</sup>

‘ईहा रहे विषनागन  
नागिन के बेटी  
ठाढे रहे अंगना मा  
ऊपर देखयै दादा’

टोनही प्रथा सरगुजा के आदिवासियों में कुप्रथा के रूप में चली आ रही है न जाने कितनी ही स्त्रियों को टोनही के शक में जान गंवानी पड़ी है जबकि टोनही निवारण कानून बना हुआ है।

‘पलंगा ऊपर अंचन बइटे दरबार  
ओहीं दरबार में नाचत आवे डइनियां के टोना हो  
ओहीं दरबार में नाचत आवे चमनियां के टोना हो’

इस लोक गीत के अर्थ को सहज ही समझा जा सकता है कि दरबार में स्त्री को जिस पर टोनही का इल्जाम लगा है उसे किस तरह तमाशा बनाया जाता है कैसे उसे प्रस्तुत किया जाता है।

**विवाहित स्त्री की ससुराल में स्थिति:**—

‘रे सुगना, आ गईन ससुर लेनहार  
ससुर के संग नहीं जाबो डे दाई  
ठहर में मोंटरा ढोवाही’

यहां पर यह तथ्य उभरता है कि विवाह के बाद स्त्री दूसरों के मन से जीवन चलता है। किंतु सरगुजा आदिवासी स्त्री अन्य क्षेत्रों की स्त्री से की तुलना में स्वतंत्र है वह खुल कर अपने प्रेमी को आमंत्रण दे रही है कि -

‘करम डार तरी, करमा खेलेब आबे छोड़ा।  
पूरबे ले आये कारी बदरिया, पछिम ले बरसत हे पानी।  
करम डार तरी, करमा खेलेब आबे छोड़ा।  
उतरे ले आये कारी बदरिया, दखिने से बरसत हे पानी।  
करम डार तरी, करमा खेलेब आबे छोड़ा।’<sup>4</sup>

अर्थात् - पूर्व दिशा से काले-काले बादल आ रहे हैं तथा पश्चिम दिशा में बारिश हो रही है।

ऐसे में तू करम डार (कर्म देवती वृक्ष की डाली) के नीचे करमा नृत्य करने जरूर आना। उत्तर दिशा से काले काले बादल आ रहे हैं एवं दक्षिण दिशा में बारिश हो रही है।

फिर भी तू करम डार के नीचे करमा नृत्य करने जरूर आना।<sup>5</sup>  
एक छत्तीसगढ़ी हाना है कि

‘जेकर घर में डउकी सियान ,  
तेकर घर नइ कटे बिहान।’<sup>6</sup>

कहने का तात्पर्य यह है कि स्त्री का नेतृत्व किसी भी समाज में स्वीकार्य नहीं है। बोलती हुई स्त्री का चरित्र हनन हर समाज में होता है। यही स्त्री की वास्तविक स्थिति भी है किंतु तुलनात्मक रूप से अन्य समाजों की स्त्रियों से आदिवासी समाज की स्त्री कहीं अधिक स्वतंत्र है।

**निष्कर्ष:**—छत्तीसगढ़ी जनजातीय लोकगीतों के विविध आयामों पर प्रचुर मात्रा में शोध हुए हैं किंतु उत्तरी छत्तीसगढ़ का यह सरगुजा अंचल अभी भी अछूता है। यहां के लोकगीतों में जनजातीय स्त्री की दशा एवं दिशा की स्थितियां चित्रण करने की पर्याप्त आवश्यकता है।

सरगुजांचल के जनजातीय लोकगीतों के इन लोकगीतों में यहां की महिलाओं के जीवन, उनके संघर्ष, एवं समाज में उनकी स्थिति का वर्णन किया गया है। प्रकृति प्रेम एवं पर्यावरण संरक्षण में उनकी महती भूमिका भी है। रोपा के गीतों में हम सहज ही उनकी सरगुजा संस्कृति में मुख्य कड़ी के रूप में देख सकते हैं।

जनजातीय लोकगीतों में स्त्रियों के जीवन की चुनौतियों उनके दुख पीड़ा, उनकी उम्मीदों को भी हम सहज ही देख सकते हैं। अंततः सरगुजांचल के जनजातीय लोकगीतों में स्त्री की स्थिति संघर्षशील है। सामाजिक स्वतंत्रता तो है पर परिवारिक जिम्मेदारियां भी बहुत हैं। उस समाज की स्त्रियां शिक्षा के क्षेत्र में आगे बढ़ रही है रोजगार के मार्ग खुल रहे हैं नतीजन इनकी स्थिति भी बदल रही है।

**संदर्भ सूची:**—

1. काले कंटों के श्वेत गीत, डॉ. कुंतल गोयल, (2012) पंकज बुक्स, दिल्ली, पृष्ठ 176
2. वही पृष्ठ 177
3. वही पृष्ठ 228
4. सरगुजा लोकगीतों में वर्षा गीत, अजय चतुर्वेदी  
<https://www.sahapedia.org>
5. वही
6. जनपदीय भाषा साहित्य, (छत्तीसगढ़ी), डॉ. सत्यभामा आडिल, (2012) छत्तीसगढ़ी राज्य हिंदी ग्रन्थ अकादमी, रायपुर, पृष्ठ 36

## प्रेमचंद नाम : उनका समय और वर्तमान समय

अशोक कुमार प्रमाणिक

सहायक प्राध्यापक, योगदा सत्संग महाविद्यालय, जगन्नाथपुर, राँची

सारांश:-प्रेमचंद हिन्दी साहित्य के सिद्धस्त एवं उच्च कोटीय युगप्रवर्तक लेखक है। उनकी रचनाओं में तत्कालीन इतिहास और समाज बोलता है। वे सर्वप्रथम उपन्यासकार थे जिन्होंने उपन्यास साहित्य को तिलस्मी और ऐय्याशी से बाहर निकालकर उसे वास्तविक भूमि पर खड़ा किया। 'मुझे अपना काम करते शर्म नहीं मालूम होती। अपना काम करना क्या जुर्म है? फिर मैं अपने को मजदूर कहता भी तो हूँ।' इस कथन को कहने वाला युगप्रवर्तक व विरले साहित्यकार कोई और नहीं साहित्य के महानायक प्रेमचंद है। इस कथन से हम अनुभव कर सकते हैं कि किसी साहित्यकार को अपनी साहित्य रचना से कितना प्रेम और कितनी अभिरुचि है। अपने अभाव और संघर्ष से भरे जीवन की कठिनाइयों के चलते उन्होंने जनजीवन से एकात्म बना कर साहित्य की पूँजी कमाई। यह उनकी निष्ठा, प्रतिबद्धता, प्रेम, अभिरुचि और साधना की मिसाल है। जब भी हम प्रेमचंद के साहित्य का अध्ययन करते हैं। अपने अध्ययन में उसके हालात व कठिनाई से भरा जीवन हमारे सामने झलक उठता है। उन्होंने अपने जीवन में जो कुछ भी देखा, समझा, परखा और महसूस किया, उसे ही अपने साहित्य में उतारा। प्रेमचंद ने जो हिन्दी साहित्य में अपना योगदान दिया है, वह अतुलनीय है। प्रेमचंद युग ऐय्यासी, तिलस्मी और जासूसी लेखन का था लेकिन प्रेमचंद ने इन तीनों विषयों से निकल कर अपने साहित्य सृजन द्वारा तत्कालीन परिस्थितियों का यथार्थ चित्रण किया। प्रेमचंद जिस समय धरती पर कदम रखा, वह समय क्रांति का समय था। परतंत्र भारत में जन्म लिए प्रेमचंद अपने अभावों और संघर्षों से भलीभाँति परिचित थे। प्रेमचंद आज के इस भावी युग में बहुत ही प्रासंगिक है चूँकि वे अपनी सर्जना और विचारों के साथ आज के संघर्षों और चुनौतियों के मार्गदर्शक हैं।

प्रेमचंद का वास्तविक नाम धनपत राय था। इनका जन्म 31 जुलाई सन् 1880 को उत्तर प्रदेश के बनारस शहर से चार मील दूर लमही नामक गाँव में हुआ था। इनका बाल्य जीवन काफी कष्टमय रहा है। परन्तु इनकी रुचि साहित्य में होने से कष्टमय क्षणों को भूल पाना इनके वश नहीं रही और उस क्षणों को कहानी व उपन्यास में किसी न किसी पात्र के माध्यम से उद्धृत किया है। सबसे पहले इन्होंने अपना लेखन कार्य उर्दू से प्रारंभ किया। इनके दो नाम हैं - एक पिता के द्वारा दिया हुआ और दूसरा चाचा के द्वारा दिया हुआ। शिवरानी देवी इस बात की पुष्टि करते हुए लिखती हैं- 'आपके दो नाम और थे-पिता का रखा नाम, मुंशी धनपत राय, चाचा का रखा हुआ नाम मुंशी नवाब राय।'<sup>2</sup> 'नवाबराय' नाम से उर्दू में लिखते थे।

हिन्दी के मूर्धन्य व अप्रतिम साहित्यकार मुंशी प्रेमचंद है। इन पर एक किंवदंती यह भी है कि प्रेमचंद क्यों कहा जाता है। इसके पीछे एक छोटी-

सी घटना है जो अभी के समय के लिए छोटी है। जबकि उस समय के लिए एक बड़ी घटना थी। ऐसी स्थिति में यह प्रश्न उठता है कि प्रेमचंद के नाम के साथ मुंशी का क्या संबंध था? यह शब्द आखिर कैसे जुड़ा? क्या प्रेमचंद ने कभी मुंशी का काम किया था? इन सभी प्रश्नों का उत्तर व प्रेमचंद के नाम के साथ मुंशी विशेषण जुड़ने का एकमात्र कारण यह है कि उनका 'सोजे वतन' (1909 जमाना प्रेस, कानपुर) कहानी संग्रह की सभी प्रतियाँ तत्कालीन अंग्रेजी सरकार ने जब्त कर ली। क्योंकि इस कहानी संग्रह में देश प्रेम सम्बन्धी भावनाओं से ओत-प्रोत था। सरकारी कोप से बचने के लिए उर्दू अखबार जमाना के संपादक दयानारायण निगम ने 'नवाबराय' के स्थान पर 'प्रेमचंद' उपनाम सुझाया। ताकि लेखनी जारी रहे और अंग्रेजों को इसकी पता न चले। यह नाम उन्हें इतना पसंद आया कि नवाबराय के स्थान पर वे प्रेमचंद लिखने लगे। इस तरह से उनको और एक नाम मिल गया- मुंशी प्रेमचंद। गोदान उपन्यास के प्रकाशीय पृष्ठ पर लिखा है कि '1910 ई. में मुंशीजी की पुस्तक 'सोजे-वतन' ब्रिटिश सरकार द्वारा जब्त करके जला दी गई, किन्तु उनकी लेखनी झुकी नहीं और उन्होंने प्रेमचंद उपनाम से लिखना शुरू कर दिया।'<sup>3</sup> प्रेमचंद नाम मिलने से ही उनकी किस्मत खुल गई और बहुत सारी उपाधियाँ भी मिली। जैसे- मुंशी प्रेमचंद, उपन्यास सम्राट, कहानी सम्राट, गद्य सम्राट, कलम का सिपाही। ये एक संवेदनशील लेखक, सचेत नागरिक, कुशल वक्ता तथा सुधी संपादक थे। जिन्होंने माधुरी, जागरण पत्रिका का संपादन भी किया। शिवरानी देवी इस घटना को इस ढंग से प्रस्तुत किया है- 'मेरी शादी के एक वर्ष बाद आपका कहानी-संग्रह 'सोजे-वतन' प्रकाशित हुआ। उस पर मुकदमा भी चला। हम लोग महोबा में थे। वहाँ भी खुफिया पुलिस पहुँची। उसके बाद उनको कलक्टर की आज्ञा मिली कि कल मुझसे मिलो।'<sup>4</sup> 'सोजे-वतन' सन् 1905 में प्रकाशित हुई थी। जब कलक्टर की आज्ञा मिली तो इस सिलसिले में प्रेमचंद को उनसे मिलने के लिए जाना पड़ा। इस पर वार्तालाप में शिवरानी देवी कहती हैं- 'आप उस दिन घर आने वाले थे। जब दूसरे रोज मेरे पास पहुँचे तो मैंने पूछा-कल आप कहाँ रह गये?

आपने कहा-रहो, बताता हूँ, बड़ी परेशानी में पड़ गया था। कल सारी रात चलता रहा।

मैं बोली- अरे, बात क्या है?

आप बोले- 'सोजे-वतन' के सिलसिले में सरकार ने मुझे बुलाया था।'<sup>5</sup>

सुप्रसिद्ध साहित्यकारों के मूल नाम के साथ कभी-कभी कुछ उपनाम या विशेषण ऐसे घुल-मिल जाते हैं कि साहित्यकार का मूल नाम पीछे

रह जाता है और यह उपनाम या विशेषण इतने प्रसिद्ध हो जाते हैं कि उनके बिना कवि या रचनाकार का नाम अधूरा लगने लगता है। भारतीय जनमानस की संवेदना में बसे उपन्यास व कथा सम्राट प्रेमचंद भी इस पारंपरिक तथ्य से अछूते नहीं रह सके। उनका नाम यदि मात्र प्रेमचंद लिया जाय तो अधूरा-सा प्रतीत होता है। उपनाम या तखल्लुस से तो बहुत से कवि और लेखक जाने जाते हैं किन्तु मुंशी प्रेमचंद उपनाम या तखल्लुस नहीं था बल्कि इसे हम उपाधि कह सकते हैं।

‘हंस’ पत्रिका के संपादक प्रेमचंद तथा कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी थे। परन्तु कालांतर में पाठकों ने मुंशी तथा प्रेमचंद को एक समझ लिया और प्रेमचंद, मुंशी प्रेमचंद बन गए। प्रेमचंद नाम के आगे मुंशी शब्द ऐसे जुड़ा है जैसे किसी पुरुष के आगे नारी। जिस प्रकार सीता के बिना राम, राधा के बिना कृष्ण, तथा श्री के बिना विष्णु अधूरे हैं, ठीक उसी प्रकार, मुंशी के खालीपन का एहसास दिलाता है। हंस के संपादन में दोनों की जोड़ी कृष्ण-सुदामा की तरह रही। प्रेमचंद अपनी रचनाओं में जन साधारण की भावनाओं, परिस्थितियों और उनकी समस्याओं का मार्मिक चित्रण किया। उनकी कृतियाँ न केवल भारतवर्ष में बल्कि विश्व के सर्वाधिक विशाल और विस्तृत वर्ग की कृतियाँ हैं। आज उन पर और उनके साहित्य पर विश्व के उन विशाल जनसमूह को गर्व है जो साम्राज्यवाद, पूँजीवाद और सामंतवाद के साथ संघर्ष में जुटा हुआ है। प्रेमचंद की रचनाओं में जीवन की विविध समस्याओं का चित्रण हुआ है। उन्होंने मील मालिक, मजदूरों, जमींदारों, किसानों तथा नवीनता और प्राचीनता का संघर्ष दिखाया है। प्रेमचंद जिस समय साहित्य की रचना कर रहे थे, उस समय भारत की दासता का युग था, जबकिपूरे भारतवर्ष में ब्रिटिश साम्राज्य की जड़े दृढ़तापूर्वक जम गयी थी। प्रेमचंद का साहित्य जहाँ एक ओर भारत की अधोगति को चित्रित करता है वहीं दूसरी ओर भारत की कृतियों में समाज के विभिन्न वर्गों की समस्याओं को दिखाता है। ‘रंगभूमि’ में प्रेमचंद एक अंधे भिखारी सूरदास को कथा साहित्य का नायक बनाकर हिन्दी कथा साहित्य में क्रांतिकारी बदलाव का सूत्रपात किया। ‘सेवासदन’ में एक नारी के वेश्या बनने की कहानी है, इसके माध्यम से समाज की कुरीतियों को पाठक के सामने लाने का भरपूर प्रयत्न किया है। ‘प्रेमाश्रम’ किसान जीवन पर लिखा हिन्दी का संभवतः पहला उपन्यास है। यह अवध भूमि के किसान आंदोलन के दौर में लिखा गया। प्रेमचंद ने कर्मभूमि में लाला समरकान्त की जिन्दगी के जीवन पर आधारित है। साथ ही जनसेवक का भी उल्लेख किया है। जो पांडेपुर में सिगरेट का कारखाना खोलना चाहता था। वह नवीन पूँजीपतियों का चिन्ह था। जनता के समाने जब भी आता था तो स्वदेशी प्रचार की आड़ में तम्बाकू का प्रचार करना चाहता था। इन स्वदेशी पूँजीपतियों के कारण भी देश की आर्थिक स्थिति अत्यंत सोचनीय होती जा रही थी।

ये तो थी उनके नाम से सम्बंधित मुख्य बिन्दुएँ। अगर प्रेमचंद और वर्तमान समय में हुए बदलाव की बात करें तो उस समय की अपेक्षा बहुत कुछ परिवर्तन दिखाई पड़ता है। प्रेमचंद के समय की निम्न बिंदुओं पर विशेष ध्यान देना अतिआवश्यक समझते हैं जिसे जानकर प्रेमचंद के व्यक्तित्व को आसानी से समझ सकते हैं।

- (क) कर्मठ व्यक्तित्व के धनी
- (क) भोलापन स्वभाव
- (ख) सत्यवादी विचार
- (ग) खेल में अभिरुचि
- (घ) बड़े के प्रति आदर सम्मान

(ड.) बेपरवाह घूमने के आदी ।

(क) कर्मठ व्यक्तित्व के धनी :- प्रेमचंद अपने काम के प्रति हमेशा सजग रहते थे। वे अपना सारा काम स्वयं करते थे। लेखन में उनकी विशेष अभिरुचि थी। सब कुछ काम करते हुए शरीर काफी थक चुका होता था। इसके बावजूद भी वे लेखन कार्य करते। पढ़ना और लेखन कार्य करना उनकी दिनचर्या बन चुकी थी। शिवरानी देवी अपने पति की जीवनी में लिखती हैं- ‘कभी-कभी मैं इन हरकतों पर बिगड़ जाती और कहतीकि नौकर फिर क्यों है? आप बोलते- अपनी जरूरतें खुद पूरी करना आदमी का धर्म है। आज तो नौकर हैं, हो सकता है कि कभी नौकर न रहे, फिर मैं पांच रुपए का नौकर तो खुद था।’<sup>6</sup>

इस कथन से यह स्पष्ट होता है कि प्रेमचंद सच में काम के प्रति सचेष्ट पुरुष किसी परभी जोर देकर काम करवाने की चेष्टा नहीं की, चाहे पत्नी हो, चाहे बच्चे हों या चाहे नौकर हो बल्कि इनको काम करते ही अच्छा लगता था। ये तो उनके वास्तविक जीवन की सच्चाई है लेकिन उनका ये कर्मठ व्यक्तित्व उनकी रचनाओं में साफ दिखाई पड़ती है। ‘गोदान’ उपन्यास हिन्दी साहित्य का एक ऐसा महाकाव्य है जो भारतीय कृषक जीवन पर आधारित है। जिसमें होरी को नायक बनाकर कृषक के दुख व पीड़ा भारतीय किसान समाज से जोड़कर किया है। होरी एक गरीब किसान है जो अपने साहूकार से कर्ज लेकर खेतीबारी करता है और परिस्थिति ने उसे साहूकार के कर्ज न चुका पाने की स्थिति में उन्हें यातनाएं झेलने पर विवश होना पड़ता है। यह भारतीय किसान की दुर्दशा का प्रतीक है। जब ‘गोदान’ उपन्यास में नायक पात्र होरी को देखते हैं तो वह अपना सारा जीवन कृषक बनकर खेतों और जमींदारों के पैरों तले रहकर बिता देता है। जहाँ स्वयं प्रेमचंद ‘गोदान’ में होरी पात्र के रूप में स्वयं के व्यक्तित्व को दिखाते हुए काम करने का संघर्ष, ईमानदार तथा कर्तव्यनिष्ठ होने का प्रमाण प्रस्तुत करते हैं-

‘होरी ने सुना तो चट-पट वहाँ जा पहुँचा और आठ आने रोज पर खुदाई करने लगा। अगर यह काम दो महीने भी टिक गया, तो गाय भर को रुपए मिल जाएँगे। दिन भर लू और धूप में काम करने के बाद वह घर आता तो बिल्कुल भरा हुआ, अवसाद का नाम नहीं। उसी उत्साह से दूसरे दिन काम करने जाता। रात को भी खाना खाकर डिब्बी के सामने बैठ जाता और सुतली कातता।.....

मैं डरती हूँ, कहीं तुम बीमार न पड़ जाओ।

चल बीमार वह पड़ते हैं, जिन्हें बीमार पड़ने की फुर्सत होती है।’<sup>7</sup>

होरी के इस बात से यह स्पष्ट होता है कि ‘देह जब तक चले अपना काम करते रहना चाहिए।’ ऐसी ही सोच प्रेमचंद की है। होरी प्रेमचंद के चरित्र को चरितार्थ करता हुआ एक कर्मठ पात्र है जिसके जीवन में आराम और थकावट नाम की कोई वस्तु नहीं है और न ही काम में कातरता है जबकि वर्तमान समय में धीरे-धीरे लोग अपनी कर्मठता खोते जा रहे हैं और तकनीकों का सहारा लेकर अपनी चारदीवारी में सिमटते जा रहे हैं। लोगों में मेहनत कम और ज्यादा कमाने की मानसिकता ने समाज को काफी प्रभावित किया है। इस तरह की चाह ने अँधा बना दिया है। लोग आपस में प्रेम कम और ईर्ष्या ज्यादा करने लगे हैं। सब प्रतिस्पर्धा की दृष्टि से देखते हैं।

(ख) भोलापन स्वभाव :- सभी प्राणियों में कुछ न कुछ विशेष गुण-अवगुण मौजूद रहता है। परिवेश एवं प्रकृति के अनुकूल व्यक्ति में गुण-अवगुण का समावेश होता है। क्रोध, वाक पटुता, ईर्ष्या, मृदुल वाणी, कर्कशता, दयाशील, भोलापन आदि मनुष्य के गुण व अवगुण हैं। किसी में

कोई पूरी तरह से हावी हो जाता है और कोई अपनी आदत से उस अवगुण का सुधार कर गुणों से परिपूर्ण हो जाता है। प्रेमचंद का भोलापन स्वभाव उनके बचपन से ही रहा है। प्रेमचंद का भोलापन उनके व्यक्तिगत स्वभाव की विशेषता थी, जो उनकी दयाशीलता, निष्ठा, सादगी, ईमानदारी और मानवीय करुणा में प्रकट होता है। उनका यह भोलापन स्वभाव ही उनकी रचनाओं को पाठकों के हृदय तक पहुँचाता है और उन्हें वास्तविक साहित्य का आधारस्तंभ बनाता है। उनका स्वभाव समान रूप से उनके लेखन और उनके जीवन दोनों में सहज, सरल और भोलेपन से भरा हुआ था। उनका यह भोलापन स्वभाव उनके साहित्यिक दृष्टिकोण और व्यक्तिगत जीवन में झलकता है।

जब हम साहित्य के क्षेत्र में उनके भोलापन स्वभाव की बात करें तो गहन रूप में यह प्राप्त होता है कि प्रेमचंद ने अपनी रचनाओं में आम जीवन के संघर्ष, मानवीय भावनाओं और समाज की समस्याओं को बड़ी सरलता, संवेदनशीलता और मार्मिकता से चित्रित किया है। जब उनकी रचनाओं में चित्रित पात्र को देखें तो 'गोदान' में होरी और धनिया, 'कफन' में घीसू और माधव आदि अन्य पात्रों में अपनी सरलता और भोलेपन के कारण पाठकों के हृदय में रच-बस जाते हैं। प्रेमचंद अपने भोलापन स्वभाव के कारण ही पात्रों की सोच और भावनाओं को बिना जटिल बनाए सहज ढंग से प्रस्तुत कर पाने में सफल हुए हैं, जो उनकी सरलता और मानवीयता समझ को चित्रित करता है। प्रेमचंद के जीवन में भोलापन स्वभाव की बात करें तो उनका जीवन बिल्कुल साधारण था और वे दिखावे से कोसों दूर थे। उनकी सादगी, कर्तव्यनिष्ठ और ईमानदारी ने उन्हें न केवल एक उत्कृष्ट लेखक की श्रेणी में रखा, बल्कि एक ऐसे व्यक्तित्व के सौँचे में ढाला जिसे पाकर साहित्य और समाज दोनों ही गर्व करता है। साहित्यिक क्षेत्र में उनकी निष्ठा और सादगी उनके पात्रों से चरितार्थ होती है। वे अपने सरल स्वभाव से समाज में शांति और व्यावहारिकता स्थापित करते रहें हैं। एक वास्तविक जीवन की घटना जो उनके भोलापन स्वभाव को प्रमाणित करती है। हमें शिवरानी देवी की पुस्तक 'प्रेमचंद घर में' में दिखलाई पड़ती है वो आज के बच्चों में बिल्कुल भी नहीं है। आज के बच्चे खुद को एक तिसमारखों समझते हैं लेकिन प्रेमचंद खुद कहते हैं- 'मैं भी कैसा भोंदु था जो आजकल के बच्चे मुझसे अधिक चालाक होते हैं।'<sup>9</sup> इस बात से प्रेमचंद के भोलेपन का साफ दृश्य दिखलाई पड़ता है। इस बात को उनकी पत्नी के साथ वार्तालाप में भी दोहराया गया है-

'मैं बोली- आप बिल्कुल भोंदु थे।

कह तो दिया कि सचमुच मैं भोंदु था। मैं किसी के ऊपर शासन न कर सकता था।'<sup>9</sup>

आज के बच्चों में भोंदुपन कहीं भी दिखाई नहीं देता बल्कि माँ के गर्भ से ही चालाकी की प्रतिभा लेकर आते हैं। आज के बच्चों को बुखार भी माँगों तो नहीं देते।

(ग) सत्यवादी विचार:- प्रेमचंद मूलतः सत्यवादी लेखक रहे हैं। ये वास्तविक जीवन में जितनी सच्चाई से अपने कर्तव्यों का निर्वहन किया है उतनी ही सच्चाई से अपना लेखन कार्य भी प्रेमचंद के सत्यवादी विचार ही उनकी रचना का मूल आधार है। उनकी यह विचार पद्धति उनके साहित्य, लेखन शैली, और सामाजिक दृष्टिकोण में स्पष्ट रूप से परिलक्षित होते हैं। वे न केवल एक लेखक थे, बल्कि समाज सुधारक, एक अच्छे मार्गदर्शक और यथार्थवादी चिंतक भी थे, जो समाज की प्रत्येक सच्चाई को निर्भीकता से उजागर करने की क्षमता रखते थे। प्रेमचंद का साहित्य समाज के वास्तविक

जीवन की सच्चाई को प्रस्तुत करता है। उन्होंने अपनी रचनाओं में किसानों, मजदूरों, दलितों, महिलाओं और समाज के दबे-कुचले वर्गों की समस्याओं को ईमानदारीपूर्वक उजागर किया। उनकी रचनाओं में आदर्शवाद के साथ-साथ वास्तविक जीवन का संतुलन मिलता है।

यह इस बात से स्पष्ट होता है कि एक बार इनके चाचा जी सन बेचकर एक रूपया ताक पर रख दिए और कहीं चले गए तो प्रेमचंद अपने भाई से मिलकर रूपया चोरी कर लिए जबकि उस समय उन्हें रूपया भुनाना भी नहीं आता था तो उनके चचेरे भाई ने रूपए भुनाकर मौलवी साहब की फीस दे दी और बच्चे पैसे से अमरुद और रेवड़ी खाए। इस बात का जिऊ शिवरानी देवी स्पष्ट करते हुए लिखती हैं- 'चचेरे भाई ने उस रूपए को भुनाकर बारह आने मौलवी साहब की फीस दी। और बाकी चार आनों में से अमरुद, रेवड़ी वगैरह लेकर दोनों भाइयों ने खायी।'<sup>10</sup> जब इनके चाचा को पता चला कि रूपया नहीं है तो प्रेमचंद से पूछने पर प्रेमचंद ने सत्य-सत्य बता दिया। परन्तु आज के बच्चों को कुछ भी मिल जाए तुरन्त चट कर जाएंगे और पूछने पर हरगिज नहीं मानेंगे, उल्टे हजार बहाने बनाएंगे।

'गोदान' में होरी का किसान संघर्ष, कफन में गरीबों की विशाल त्रासदी को चित्रित किया है। प्रेमचंद ने भारतीय समाज की जाति व्यवस्था, शोषण, गरीबी और महिलाओं की स्थिति जैसी कड़वी सच्चाइयों को अपने साहित्य के माध्यम से उजागर किया। 'सद्गति' कहानी में जातिवाद की सच्चाई और 'निर्मला' उपन्यास में दहेज-प्रथा की समस्या को उजागर कर समाज के लोगों में जागृति की भावना का विकास किया है।

ने सत्य को महत्व दिया है और इसे किसी भी प्रकार के दिखावे या आडंबर में नहीं रखा है बल्कि इसे अलग दिशा प्रदान की है। उनके लेखन में सत्य की अभिव्यक्ति इतना स्पष्ट है कि पाठक उनके पात्रों और उनकी स्थितियों से तुरन्त जुड़ जाते हैं। प्रेमचंद ने हमेशा नैतिकता और ईमानदारी को अपने सत्यवादी दृष्टिकोण का आधार बनाया। उनके सभी पात्र किसी न किसी क्षेत्र में सत्य और नैतिकता के लिए संघर्ष करते पाए जाते हैं, भले ही इसके लिए उन्हें कठिनाई का सामना करना पड़ता है लेकिन समाज के लिए एक मिसाल बन जाते हैं।

'ईदगाह' कहानी में हामिद का अपनी दादी के लिए चिमटा खरीदने का निर्णय उसकी ईमानदारी और सच्चाई को दर्शाता है। प्रेमचंद के सत्यवादी विचारों का उद्देश्य केवल सच्चाई दिखाना नहीं था, बल्कि समाज में बदलाव लाकर एक आदर्श समाज की स्थापना करना था। वे सत्य को एक शक्तिशाली साधन मानते थे, जो समाज को सुधारने में सक्षम है। इनके उपन्यास 'प्रेमाश्रम' और 'रंगभूमि' में सामाजिक-आर्थिक अन्याय और सामंतवादी व्यवस्था को चित्रित कर समाज को एक नई दिशा की ओर ले जाता है ताकि समाज के लोगों में न्याय हो सके। परन्तु सच्चाई और ईमानदारी का जमाना अब नहीं रहा। यहाँ झूठ और बेमानी का बोलबाला है। समाज में सब द्रष्टव्य है। आज हर व्यक्ति झूठ और बेमानी से पीड़ित है।

(घ) खेल में अभिरूचि:- प्रेमचंद के जीवन और साहित्य में खेलकूद या शारीरिक गतिविधियों को लेकर उनकी विशेष अभिरूचि दिखलाई पड़ती है जब उनकी 'गुल्ली डंडा' कहानी में सदन के साथ लेखक स्वयं गुल्ली डंडा सुबह से लेकर शाम तक खेलते हैं। उन्होंने स्वयं कहा है- 'मैं गुल्ली डंडा बहुत खेलता था।'<sup>11</sup> 'बड़े भाई साहब' कहानी में स्वयं पतंग उड़ाने के लिए छत पर चले जाते और दूसरों की पतंग जब टूटकर गिरती तो पतंग उड़ाने की इच्छा पूरी करते क्योंकि उस समय पास पैसे नहीं होते थे। आपने

यह भी कहा कि- 'मेरा काम-मौलवी साहब के यहाँ पढ़ना, गुल्ली डंडा खेलना, ईख तोड़कर चूसना और मटर की कली तोड़कर खाना चलने लगा।'<sup>12</sup> इससे यह स्पष्ट होता है कि प्रेमचंद का खेल के प्रति काफी रुचि थी। इस तरह उनकी रुचि उनकी रचनाओं में खेलके रूप में सीधा उल्लेख मिलता है, लेकिन उनके पात्रों के जीवन में सामूहिक गतिविधियों और ग्रामीण जीवन के संदर्भ में गुल्ली डंडा, पतंग उड़ाना जैसे खेलों का चित्रण मिलता है। उनकी कहानियों में बच्चों और युवाओं का खेल के प्रति उत्सुकता, चपलता, ऊर्जा और सामूहिक गतिविधियों को देखा जा सकता है।

'ईदगाह' में हामिद और उसके दोस्त मेला घूमने जाते हैं। भले ही यह खेल का हिस्सा नहीं है परन्तु बच्चों की सामूहिक गतिविधि और उनकी मासूमियत की झलक उनके चेहरे में साफ दिखाई पड़ती है। जो एक प्रकार से मेले में खिलौने को देख उनके बाल सोंच में खेल के प्रति प्रेम को दर्शाता है। प्रेमचंद के साहित्य में ग्रामीण जीवन का यथार्थवादी चित्रण मिलता है। इस संदर्भ में पारंपरिक ग्रामीण खेलों, जैसे- कबड्डी, कुश्ती, या अन्य शारीरिक गतिविधियों का आभास होता है, जो उस समय के ग्रामीण समाज की संस्कृति का हिस्सा थे। उन्होंने अपने बचपन की घटनाओं को एक-दो कहानियों में खेल को मुख्य विषय बनाकर स्पष्ट किया है। सामूहिकता, अनुशासन और सहयोग जैसे गुण खेलों से जुड़े हैं, जिन्हें बाल मनोवैज्ञानिक पात्रों के माध्यम से समाज को एक नई दृष्टि प्रदान करने की कोशिश की है। उनकी लेखनी इस बात पर बल देती है कि शारीरिक, बौद्धिक और मानसिक विकास के लिए सामूहिक गतिविधियाँ आवश्यक है।

प्रेमचंद का समय प्राकृतिक वस्तुओं से खेलने का समय था। प्रेमचंद का खेल के प्रति जो रुचि थी। शिवरानी देवी ने इस बात को स्पष्ट करते हुए लिखती हैं- 'एक बार की बात है- कई लड़के मिलकर नाई का खेल खेल रहे थे। आपने एक लड़के की हजामत बनाते हुए बाँस की कमाने से उसका कान ही काट लिया। उस लड़के की माँ झल्लाई हुई, उनकी माता से उलाहना देने आई। आपने जैसे ही उसकी आवाज सुनी- खिड़की के पास दबक गये। माँ ने दबकते हुए उन्हें देख लिया था, पकड़ कर चार झापड़ दिये।

'माँ- उस लड़के के कान तूने क्यों काटे?'

'मैंने उसके कान नहीं काटे बल्कि बाल बनाया है।'<sup>13</sup>

गुल्ली डंडा खेलना उनको खूबपसंद थी। साथ में पतंग उड़ाने का शौक भी था परन्तु पास पैसे नहीं होते। जब दूसरों को खेलते देखता प्रेमचंद को लगता कि मैं भी खेलूँ लेकिन अभाव के कारण जब किसी का पतंग टूटकर गिरता उसी को उड़ाकर मन को शांत कर लेता था। प्रेमचंद अपनी पत्नी शिवरानी देवी से कहता है- 'मुझे पतंग उड़ाने का शौक था, मगर पास पैसे न थे। विजयबहादुर और मैं पास वाले मियाँ के मैदान की ओर जाते और वहाँ कनकैया को देखते रहते और जहाँ कनकैया गिरी कि टूटी डोर मिल जाती, तब मैं अपना शौक पूरा करता।'<sup>14</sup> लेकिन आज का समय अभाव का नहीं स्वभाव का है जो चाहे वहीं हो जाए लेकिन गुल्ली डंडा से नहीं तकनीकी सामग्री से जैसे- खिलौने, मोबाईल, टी. बी. आदि।

(ड.) बड़ों के प्रति आदर-सम्मान:- प्रेमचंद अपने से बड़ों का बहुत ही आदर और सम्मान करते थे। उनके जीवन और साहित्य में बड़ों के प्रति जो आदर भाव दिखाई पड़ता है, वह वर्तमान समय के लिए एक सीख है। उनकी कहानी 'बड़े भाई साहब' में एक आदर्श भाई-भाई के प्रेममय सम्बन्ध को बताया गया है। जिसमें प्रेम, आदर-सम्मान की अद्भुत कड़ी दिखाई पड़ती है। उनका लेखन भारतीय पारिवारिक और सामाजिक संरचना में निहित

पारंपरिक मूल्यों का प्रतीक है, जिसमें बड़ों के प्रति आदर और सम्मान को प्रमुख स्थान दिया गया है। प्रेमचंद की रचनाओं में पारिवारिक संबंधों का यथार्थवादी और संवेदनशील चित्रण मिलता है, जिसमें बड़ों के प्रति आदर और सम्मान एक स्वाभाविक गुण के रूप में प्रकट होता है।

'गोदान' में होरी का अपने पुरखों और सामाजिक परंपराओं के प्रति समर्पणकी मिसाल दिखाई पड़ती है। 'ईदगाह' कहानी में हामिद का अपनी दादी के लिए चिमटा खरीदने सोंच और भावनात्मक निर्णय बड़ों के प्रति प्रेम और आदर को दर्शाता है। प्रेमचंद भारतीय समाज की पारंपरिक संरचना को आदर्श मानते थे, जिसमें बड़ों का स्थान विशेष और श्रेष्ठ होता है। उनकी कहानियों में यह स्पष्ट होता है कि बड़ों का सम्मान केवल कर्तव्य नहीं है, बल्कि परिवार और समाज को सशक्त बनाने का एक माध्यम भी है। 'गबन' में रामनाथ और जालपा के बीच का संबंध और उनकी पारिवारिक जिम्मेदारियों का जो चित्रण हुआ है वह इस बात को रेखांकित करता है कि जिम्मेदारियाँ बड़ों की छोटों के लिए एक आदर्श रूप है। प्रेमचंद ने दिखाया है कि परिस्थितियाँ चाहे कितनी भी कठिन क्यों न हों, बड़ों के प्रति आदर-सत्कार का भाव बनाए रखना ही भारतीय संस्कृति और नैतिकता को दर्शाता है जो समाज का अभिन्न अंग है। 'कफन' में, भले ही घीसू और माधव अपने जीवन में संघर्ष कर रहे हों, उनके संवादों में पारिवारिक रिश्तों और पुरानी पीढ़ियों की स्मृतियों का आदर झलकता है। वहीं, एक स्त्री की प्रसव पीड़ा को न समझ पाने की भूल एक स्त्री सम्मान को ठेस पहुँचती है। प्रेमचंद की कहानियों में आदर भाव केवल दिखावा नहीं है, बल्कि सच्चे प्रेम, करुणा और पारस्परिक समझ का प्रतीक है। 'पूस की रात' में हल्कू का अपनी पत्नी के प्रति आदर और उसकी तकलीफों को समझने का प्रयास यह बताता है कि अपनी स्त्री के प्रति कितनी आसक्ति है और कितना सम्मान है। प्रेमचंद का मानना था कि बड़ों का सम्मान करना समाज के संतुलन और नैतिकता को बनाए रखने के लिए अत्यंत आवश्यक है। उनकी रचनाएँ यह दर्शाती हैं कि जिस परिवार में बड़ों का सम्मान नहीं होता है, उस परिवार में विघटन की संभावनाएँ बढ़ जाती हैं। प्रेमचंद की प्रत्येक रचनाएँ आज भी यह बताने के लिए सक्षम है कि बड़ों के प्रति सम्मान, प्रेम और करुणा से ही समाज और परिवार का सही रूप संभव है।

प्रेमचंद अपने पसंद से शादी नहीं की थी बल्कि उनके चाचा की पसंद की लड़की से शादी हुई थी। जो प्रेमचंद की उम्र से बड़ी थी। फिर भी प्रेमचंद अस्वीकार नहीं किया। इससे साफ झलक पड़ता है कि प्रेमचंद बड़ों का आदर-सम्मान करते थे परन्तु अभी के समय में बच्चों में जो उतावलापन है उसे यह समझाना चाहिए कि बड़ों की पसंद और उनकी पसंद में अंतर होगा। कहने का तात्पर्य है कि आज के बच्चे माता-पिता व बुजुर्गों की पसंद को अस्वीकार कर, अपनी पसंद की लड़की से शादी करना अधिक सटीक समझते हैं।

वर्तमान समय अपनी इच्छा का समय है। यहाँ बहुत कम ही लोग ऐसे हैं जो बड़ों का आदर-सम्मान करते हैं बल्कि सब अपने मन के राजा हैं, मन में जो आए वही करे। उसे कोई रोक-टोक नहीं सकता है। वास्तविक स्वतंत्रता युवाओं में देखी जाती है, बाकी सब अपने बंधनों में बंधे हुए हैं।

(च) बेपरवाह घूमने के आदी:- प्रेमचंद अपने समय में कहीं भी घूमते उसके घरवालों को कोई आपत्ति नहीं होती। यहाँ तक प्रेमचंद दस बजे रात को घर आते पिताजी उसे कुछ नहीं कहते। पिताजी को विश्वास था कि प्रेमचंद जो कुछ भी करेगा वो उसके भलाई के लिए करेगा न कि अपने वंश

का नाम बदनामी के सागर में डूबोएगा। प्रेमचंद भी कभी अपने पिताजी के विश्वास को खोने नहीं दिया बल्कि उनके वंश का नाम रौशन करने के लिए सदाप्रयासरत रहे। अभी के समय में बिल्कुल भी ऐसा नहीं है, यहाँ माता-पिता हमेशा अपने करीब रखना पसंद करते हैं ताकि घर-परिवार रहकर संस्कारी व वंश का नाम रौशन करें। अभी के समय में हर माता-पिता अपने बच्चे को घर में रखना पसंद करते हैं लेकिन बच्चे उनके पसंद को टुकराकर अपने अनुसार जीने की कोशिश करते हैं। जितना कोशिश करते हैं उतना ही बिगड़ते जाते हैं। माता-पिता की सोंच यह होती है कि बच्चा बाहर निकलकर अच्छे-बुरे का फर्क ना समझ कर दोस्ती कर उसके सत्संग से बच्चा बिगड़ जाएगा। इसी भय से अपने बच्चे को घर के विरासत में संस्कार का बीज बोना चाहते हैं परन्तु दुर्भाग्यवश ऐसा नहीं होता है और घर में रहकर भी बिगड़ ही जाते हैं। उस समय के माता-पिता वैसा नहीं सोंचते थे। पूरी स्वतंत्रता के साथ बाहर घूमने की छूट देते थे पर निगरानी रखते थे और घर आने पर उसकी खबर भी लेते थे। साथ ही संस्कार भी भरते थे परन्तु आज ऐसा बिल्कुल भी नहीं है। संस्कार है परन्तु आज का समय बेपरवाह घूमने का नहीं बल्कि अपने घर में सिमटकर रहना। परिवार के साथ रहकर भी अलग-अलग रहना। समाज सिमटा और समाज के लोग भी सिमट गए।

**निष्कर्ष:-**प्रेमचंद का समय आज के समय की अपेक्षा काफी संघर्षशील, कठिनाईयों और अभावों का रहा है। उस समय कदम-कदम पर मुश्किलें आती थी। उस समय क्रांति व आंदोलनों का युग था। भारत की दासता का युग था। पूरे भारतवर्ष में ब्रिटिश साम्राज्य की जड़े दृढ़तापूर्वक जम गयी थी, ऐसे हालात में साहित्य की रचना करना बहुत ही जटिल काम था। लेकिन आज के समय में हर लेखक पूरी तरह स्वतंत्र है। वह किसी भी विषय पर लिखे किसी प्रकार की कोई बाध्यता नहीं है। प्रेमचंद की रचनाओं में युग सापेक्ष की गंभीर अभिव्यक्ति है। उनके समय और अभी के समय में काफी परिवर्तन दिखाई पड़ता है। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में कुछ न कुछ परिवर्तन दिखाई देती है—चाहे वह उनके विचार हों, उनका लेखन होया उनका समाज के प्रति गम्भीर दृष्टिकोण हो। उनकी रचनाओंसे उस समय के समाज की वास्तविक घटना का उद्घाटन हुआ है। कुछ हद तक उसकी प्रासंगिकता वर्तमान समय में भी उद्घाटित होती है। उनकी रचनाएँ प्रत्येक वर्ग को जागरूक करने और उनकी समस्याओं को उजागर करने का एक माध्यम थीं। आज के समय में आप स्वतंत्र लिख सकते हैं।

प्रेमचंद को उनके अविस्मरणीय साहित्यिक योगदान के लिए उन्हें समर्पित एक छोटी-सी स्वरचित कविता-  
अल्फाज अर्पण तुम्हें करूँ मैं जीवन तूझमें वार दूँ।  
कर कमलों से कुछ नहीं मैं अल्फाजों का हार दूँ।।  
कथा-कहानी का तुम्हें कहते हैं सम्राट,  
सब पाठक के सामने रखी समाज की बात,  
पढ़कर तेरी कथा-कहानी मैं जीवन सँवार लूँ। कर.....  
तुम्हारी कलम जहाँ चली बन गया इतिहास,  
सोजे-वतन, गोदान साहित्य में रचा नया इतिहास,  
जोशीली भाषा को मैं जीवन में उतार लूँ। कर.....  
अंग्रेज राज का सोजे वतन ने तोड़ दिया विश्वास,  
गुलाम अंधेरी राज में जगाया ज्योत प्रकाश,  
दीप ज्योत जलाकर अंदर सौ-सौ बार पुकार लूँ। कर.....  
लिखने को मैं लिखता पर ना चली कलम,

तूझपर जितना मैं लिखूँ फिर भी लगता है कम,  
लेख अर्पण करके मैं शब्दों का बहार दूँ। कर.....

**संदर्भ सूची:-**

1. देवी, शिवरानी- प्रेमचंद घर में, सरस्वती प्रेस बनारस, प्रथम संस्करण-1944, पृष्ठ संख्या-39
2. वही, पृष्ठ संख्या-1
3. वही, पृष्ठ संख्या-27
4. वही, पृष्ठ संख्या-27
5. वही, पृष्ठ संख्या-36
6. वही, पृष्ठ संख्या-5
7. वही, पृष्ठ संख्या-11
8. वही, पृष्ठ संख्या-2
9. वही, पृष्ठ संख्या-3
10. वही, पृष्ठ संख्या-3
11. वही, पृष्ठ संख्या-1
12. वही, पृष्ठ संख्या-4
13. प्रेमचंद, मुंशी-गोदान, राजा पॉकेट बुक्स, बुराड़ी, दिल्ली, नवीन संस्करण-2015, पृष्ठ संख्या-284
14. वही, पृष्ठ संख्या- प्रकाशीय पृष्ठ

# महादेवी वर्मा के रेखा चित्र में पुरुष प्रधान समाज का संघर्ष

प्रमोद कुमार सहनी

डॉ. मधुबाला श्रीवास्तव

1. शोधार्थी, सैम ग्लोबल विश्वविद्यालय, भोपाल, मप्र.
2. शोध निर्देशक, सैम ग्लोबल विश्वविद्यालय, भोपाल, मप्र.

रंगो के पर्व होली के दिन 24 मार्च 1907 ई0 को जन्मी महादेवी वर्मा छायावाद के चार स्तम्भों में से एक प्रमुख व मजबूत स्तम्भ है। महादेवी वर्मा की दयालु माता की दया की छाप महादेवी वर्मा पर पड़ना स्वाभाविक है। महादेवी वर्मा भावुक कवियत्री थीं। इनकी रचनाओं में जितने भी रेखाचित्र हैं उनमें से 'पथ के साथी' रेखाचित्र को छोड़कर अन्य सभी रेखाचित्रों को ध्यान से देखा जाय तो सभी रेखाचित्रों के जितने भी पत्र हैं, वे सभी दया के पात्र हैं और शायद इसलिए भी महादेवी वर्मा द्वारा अपने रेखाचित्रों में उन्हें स्थान दिया गया है। ये सभी पात्र खासकर महिलाओं के जीवन में सिर्फ दुःख और संघर्ष ही है। किसी भी महिला के जीवन में न तो खुशी है और न ही सम्पन्नता। इनके रेखाचित्र के पुरुष वर्ग भी अपने जीवन में संघर्ष करता दिखाई पड़ता है। पुरुष वर्ग के कुछ पुरुष जहाँ अपनी पारिवारिक व सामाजिक मर्यादा को तोड़कर अपने जीवन के रूख को बदल लेता है। वहीं कुछ पुरुष पात्र अपने संस्कार में इतने मजबूती से बंधा हुआ है कि यह पुरुष पात्र भारतीय संस्कृति व सभ्यता को जीवित रखने व मजबूती प्रदान करने में काफी महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। अगर सीधा-सीधा कहा जाय तो इसे हम भारतीय संस्कृति व सभ्यता का प्रतिनिधित्व करने वाला पुरुष पात्र भी कह सकते हैं।

जिस कालखण्ड में महादेवी वर्मा का जन्म हुआ था वह कालखण्ड पूरणरूपेण पुरुषवादी मानसिकता का शिकार था या यह भी कहा जा सकता है कि उस काल पर पूर्ण रूप से पुरुष समाज का वर्चस्व था और जिस समाज में पुरुष का आधिपत्य होता है वहाँ स्त्री का सभी तरह से शोषण स्वाभाविक था। महादेवी वर्मा भी कम स्वभाग्यशाली स्त्री नहीं थी। जिस युग में स्त्री पर पुरुष वर्ग का अत्याचार हो रहा था, उसी युग में गोविन्द प्रसाद वर्मा व हेमरानी देवी की पुत्री के रूप में दादा श्री बांके बिहारी वर्मा के घर जन्मी महादेवी वर्मा को अपने परिवार में काफी लाड़-दुलार व स्नेह प्राप्त हुआ। उन्हें अपने परिवार में यह महसूस ही नहीं हुआ कि वे स्त्री हैं। उनके अपने परिवार में स्त्री का काफी सम्मान होता था। जिस युग में महिलाएँ घर की शोभा मात्र बनकर रह रही थी उसी युग में महादेवी वर्मा जी उत्तरप्रदेश की बोर्ड की परीक्षा में अक्ल रहीं। राज्य सरकार द्वारा उन्हें छात्रवृत्ति की राशि भी दी गई।

विद्यालय भेजने से पूर्व माता श्रीमती हेमरानी देवी द्वारा महादेवी वर्मा को घर का सम्पूर्ण कार्य सिखाया गया। उन्हें खाना-पकाना, अन्य व्यंजन बनाना, घर सजाना, साफ-सफाई करना, बाग-बगीचा लगाना आदि की शिक्षा दी गई। तत्पश्चात् उन्हें विद्यालय भेजा गया। प्रयाग विश्वविद्यालय से महादेवी जी दर्शनशास्त्र विषय से स्नातक व वहीं से संस्कृत विषय से स्नातकोत्तर की परीक्षा उत्तीर्ण हुई। दादा श्री बांके बिहारी जी के जिद से मात्र 09 वर्ष की आयु

में इनका विवाह बरेली के पास नबावगंज कसबा के निवासी डॉ? स्वरूप नारायण वर्मा के साथ हुआ। विवाह के समय स्वरूप नारायण वर्मा दशम वर्ग का छात्र थे। महादेवी वर्मा प्रयाग महिला महाविद्यालय की प्राचार्य के पद को काफी दिनों तक सुशोभित किया। तत्पश्चात् प्रयाग महिला विश्वविद्यालय के प्राचार्या पद को भी सुशोभित किया। काफी लम्बे समय तक प्राचार्य पद को सुशोभित करने के पश्चात् वे महात्मा गाँधी से प्रेरित होकर समाज सेवा का कार्य भी किया और इस कार्य में काफी रुचि लिया। समाज सेवा के दौरान वे गरीब, लाचार व अवारा की तरह घूमनेवाले बच्चों को शिक्षित करने की बात सोचकर उन्हें पढ़ाने का कार्य शुरू किया। उसके बाद महिलाओं को भी शिक्षित करने का अथक प्रयास किया। यह बात और है कि समाज के अन्य लोगो द्वारा इनकी सहायता नहीं की गई और आगे चलकर उनको यह संस्था बंद करना पड़ा। महादेवी वर्मा ने कई वर्षों तक 'चाँद' पत्रिका का सम्पादन कार्य भी किया। उसके बाद 'साहित्य संसद' की स्थापना कर के अपने समकालीन लाचार व गरीब रचनाकारों को उस माध्यम से सहायता भी किया। उन्हें कई साहित्यिक पुरस्कार प्राप्त हुए जिसमें 1933 ई. में सेक्सरिया पुरस्कार 1943 ई. में द्विवेदी पदक, 1944 ई. में 'मंगला प्रसाद पारितोषिक' पुरस्कार, भारत सरकार द्वारा सन् 1956 ई. में पद्मभूषण पुरस्कार एवं सन् 1982 ई. में ज्ञानपीठ पुरस्कार से सम्मानित हुई।

महादेवी वर्मा अपने रेखाचित्रों का विवेच्य विषय या विवेच्य विषय का केन्द्र बिन्दु, लाचार, दीन-हीन, भूखे-नंगे, बेसहारा आदि को बनाया। साथ ही विधवा-विवाह, बाल-विवाह, विमाता की क्रूर व्यवहार, अशिक्षा, जाति-पाति, छुआ-छूत, स्त्री की पतिव्रता आदि विषयों जैसी गम्भीर विषयों को अपनी रचनाओं का मुख्य व प्रधान विषय बनाया है। इनकी रचनाओं में पुरुष प्रधान समाज से व्यथित या उनसे शोषित, स्त्री, विधवा स्त्री, बिना माँ-बाप की संतान, समाजिक कुरीति की शिकार महिलाओं का जीवंत चित्रण किया गया है। 'स्मृति की रेखाएँ' और 'अतीत के चलचित्र' में जितने भी विषय वस्तु हैं वे सभी लाचार और दीन-हीन की ही व्यथा है। इनकी रचनाओं में जितने भी स्त्री पात्र हैं वे सभी अपने जीवन में संघर्षशील हैं। सभी स्त्रियाँ अपने जीवन में अपने कर्तव्य से परे होने के बजाय अपने जीवन के कर्तव्य पथ पर संघर्ष करते आगे बढ़ती जा रही हैं, वही इनकी सभी रेखाचित्रों में जितने भी पुरुष वर्ग के पात्र हैं वे भी कम संघर्षशील नहीं हैं। हाँ यह अलग बात है कि पुरुष प्रधान समाज में पुरुष का बोल-बाला तो रहता ही है। लेकिन फिर भी कुछ पुरुष पात्र अपने जीवन में काफी संघर्ष करते दिखाई देते हैं।

घीसा:- 'अतीत के चलचित्र' रेखाचित्र के 'घीसा' रेखाचित्र का

धीसा ऐसा पुरुष पात्र है जो अभी छोटा बालक है, जिसे महादेवी वर्मा पढ़ाने झूसी गाँव जाती है। इस रेखाचित्र में पुरुष प्रधान समाज की कुरीतियों एवं उसके अत्याचार का शिकार धीसा की माँ होती है। समाज उसे त्याग देता है और उसे जीना मुश्किल कर देता है, फिर भी धीसा की माँ धीसा के लिए समाज की परवाह किये बिना धीसा के साथ जीवन जीती है। धीसा भी महादेवी वर्मा का एकलव्य छात्र था। वह अपनी गुरुमाता को गुरुदक्षिण के रूप में तरबूज देने के लिए जीवन एवं मृत्यु से खेलता है। धीसा की मृत्यु महादेवी वर्मा को अन्दर से झकझोड़ देती है।

**‘अंधाअलोपी’:-** ‘अंधाअलोपी’ रेखाचित्र में महादेवी वर्मा द्वारा ऐसे अंधा पुरुष का जीवंत चित्रण किया गया है जो दूसरे के सहारे जीवन जीने के बजाय स्वयं काम करना स्वीकार करता है। जहाँ लोग विकलांगता को कमजोरी बताने में लगा रहता है और विकलांग लोग भिखारी बनकर जीवन जीना अपना भाग्य समझता है वहीं अलोपी महादेवी वर्मा के बालिका हॉस्टल में सब्जी पहुँचाकर अपने पुरुषार्थ को साबित करता है। इतना ही नहीं जब अलोपी की पत्नी अलोपी को छोड़कर अन्य पुरुष के साथ चली जाती है तो पुलिस केस करने की बात पर अपनी पत्नी की पहचान बताना पुरुषार्थ नहीं कायरता समझता है।

**‘बदलू’:-** ‘बदलू’ रेखाचित्र में महादेवी वर्मा ने बदलू कुम्हार के जीवन का जीवंत चित्रण किया है। बदलू गरीब और लाचार व्यक्ति है। बदलू गरीब तो है ही साथ ही वह इतना कम कमाता है उसके बाल-बच्चों को दो वक्त की रोटी भी नहीं मिल पाती है। बदलू अपनी पत्नी रधिया और बच्चों के साथ रहता है। महादेवी वर्मा ने व्यक्ति विशेष का परिचय देकर बदलू की समस्या को सामने रखा है। गरीबी और अशिक्षा के कारण बदलू अपने जीवन में सब कुछ खो देता है। वह बेटी, पत्नी सब को खो देता है। खाने व इलाज के बिना सब मर जाते हैं। बदलू अपने जीवन में बहुत सुधार करता है और महादेवी वर्मा को बताता है कि वह अपने जीवन में सुधार कर लिया है।

**‘अभागी स्त्री’:-** ‘अभागी स्त्री’ रेखाचित्र में महादेवी वर्मा ने ऐसी स्त्री का जीवंत चित्रण किया है जो वेश्यापुत्री है। वेश्यापुत्री अपना जीवन खूबसूरत बनाने के लिए सभ्य समाज में सभ्य व संस्कारी बनकर जीवन जीना चाहती है। लेकिन सभ्य व संस्कारी होने का ढोंग करने वाला यह समाज उसे ऐसा सौभाग्य प्राप्त होने नहीं देता है। अभागी स्त्री का पति उसे सहर्ष स्वीकार कर उसे इस समाज में बेहतर जीवन जीने में सहायता करता है। समाज व अपने परिवार के लाख विरोध होने के बावजूद वह उस स्त्री को अपनाता है। वह जब तक जीवित रहता है समाज में संघर्ष ही करता रहता है।

**‘भक्तिन’:-** ‘भक्तिन’ रेखाचित्र द्वारा महादेवी वर्मा द्वारा पुरुष प्रधान समाज की वास्तविकता को उद्घाटित किया गया है। जब भक्तिन यानी लछमिन की बेटी के घर में एक युवक घुस जाता है तो समाज के लोग पंचायत में बिना कुछ गलत गलत हुए लछमिन की बेटी को दोषी मानते हैं और पसन्द-नापसन्द का ख्याल किये बिना उस युवक से लड़की की शादी करवायी जाती है। इस पंचायत में जितने भी लोग शामिल हुए वे सभी पुरुष थे। किसी ने भी सच जानने की कोशिश नहीं की।

**‘चीनी फेरेवाला’:-** ‘चीनी फेरेवाला’ रेखाचित्र में भाई-बहन का प्रेम व विमाता का दोनों भाई बहन पर क्रूरता का जीवंत चित्रण किया गया है। जब विमाता द्वारा अपनी ही सौतेली पुत्री को अंधेरी रात में अपने हाथों से सजा-धजाकर वेश्यावृत्ति के लिए भेजा जाता है तब भाई अपने बिस्तर पर लेटे-लेट आधी आँखें बन्द किये सब कुछ देखता रहता है। जब बहन नहीं

आती है तो वह गली-गली चारों तरफबेचैन होकर अपनी बहन को ढूँढ़ते रहता है।

**‘ठकुरी बाबा’:-** ‘ठकुरी बाबा’ रेखाचित्र में ऐसे पुरुष का जीवंत चित्रण किया गया है जिसे काफ़ी देर से शादी होती है और अपनी पत्नी के न रहने के बावजूद अपनी पुत्री को माता-पिता की कमी महसूस नहीं होने देता है। ठकुरी जहाँ जाता है अपनी पुत्री को अपने साथ रखता है। वह स्वयं ही पिता और माता दोनों का प्यार अपनी पुत्री को देता है। अगर वह चाहता तो दूसरा विवाह कर सकता था लेकिन अपनी पुत्री की खातिर वह विवाह नहीं किया।

निष्कर्ष के रूप में कहा जा सकता है कि महादेवी वर्मा के रेखाचित्र में जिस युग के पुरुष वर्ग की चर्चा की गई है, पुरुष वर्ग समाज पर वर्चस्व बना रखा है उसी युग में ऐसे भी पुरुष हैं जो अपने जीवन में संघर्ष करता दिखाई देता है। पुरुष वर्ग के जीवन में भी कम संघर्ष नहीं है। इन पुरुषों के जीवन में संघर्ष जारी रहा है। ये लोग स्त्री का सम्मान भी करते हैं।

**संदर्भ सूची:-**

1. वर्मा महादेवी, ‘अतीत के चलचित्र’, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।
2. पाण्डेय रामजी, ‘महादेवी वर्मा प्रतिनिधि गद्य रचनाएँ’, भारतीय प्रकाशन।
3. वर्मा महादेवी, ‘स्मृति की रेखाएँ’, लोकभारती प्रकाशन, नई दिल्ली।
4. जैन निर्मला, ‘महादेवी संचयिता’, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली।
5. सिंह नामवर- ‘छायावाद’, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।

## गीतांजलि श्री के उपन्यासों में नारी

बबीता

शोधार्थी, हिंदी विभाग, गुरुकुल कांगड़ी सम विश्वविद्यालय, हरिद्वार, उत्तराखण्ड

महिला, नारी, स्त्री, औरत, वूमन आदि अनेक नामों से प्रसिद्ध आधी आबादी के विषय में वैदिक काल से ही चर्चा होती रही है। शब्द कोश के अनुसार- 'स्त्रिया इत्थी- विकल्प से स्त्री > इत्थी होता है। पक्षान्तर में 'थी' बनता है। वस्तुतः अशुद्ध उच्चारण 'इस्त्री' होने से इत्थी बना है। अवधी आदि में तिया, तिय, ती, रूप चलते हैं। इकारागम से 'तिरिया' भी सुलभ है।'<sup>1</sup>

'महिला, स्त्री, नारी, a woman,'<sup>2</sup> इत्यादि समानार्थक शब्द स्त्री, नारी, वनिता, वधू, सीमन्तिनी, वामा, वर्णिनी, अबला, योषा, योषिता, प्रमदा, सुन्दरी, रामा, रमणी, ललना आदि अनेकों पर्याय से सम्बोधन किया जाता है।

स्त्री समाज, साहित्य व संस्कृति की धुरी है। स्त्री के बिना कोई भी समाज, कोई भी संस्कृति, कोई भी साहित्य रचा नहीं जा सकता। वैदिक साहित्य से लेकर आधुनिक साहित्य तक में स्त्री को विशेष स्थान प्राप्त है। चाहे समाज में उसकी स्थिति कैसी भी हो, पर साहित्य में स्त्री ने अपना स्थान हमेशा बनाए रखा, क्योंकि स्त्री के बिना तो साहित्य की कल्पना नहीं की जा सकती है। हालांकि संस्कृत साहित्य से लेकर आधुनिक साहित्य तक कहीं पर स्त्री को देवी- 'यत्र नार्यस्तु पूज्यते रमते तत्र देवता' कहा गया है, तो कहीं पर स्त्री को नर्क का द्वार और 'तिरिया चरित्रं पुरुषस्य भाग्यम दैवो न जानाति, कृतो मनुष्यः' अर्थात् स्त्री का चरित्र और पुरुष का भाग्य देवता भी नहीं जानते, मनुष्य की क्या बिसात?'<sup>3</sup> कहकर खींच प्रकट की गई है। इसी प्रकार मनुस्मृति में भी एक श्लोक आता है, जिसका अर्थ है- 'स्त्री बचपन में पिता के अधीन, युवावस्था में पति के अधीन और वृद्धावस्था में पुत्र के अधीन रहती रहे, वह कभी स्वतंत्र ना रहे।'<sup>4</sup> तुलसी बाबा कह गए - 'ढोल, गवार, शुद्र, पशु, नारी/ ये सब ताड़न के अधिकारी', यह ताड़ना किस प्रकार की है? वह तो तुलसी बाबा ही जाने। द्विदेदी काल में मैथिलीशरण गुप्त को स्त्री पर दया आई और वह बोल उठे-

'अबला जीवन हाय तुम्हारी यही कहानी।

आंचल में है दूध और आंखों में पानी।।'

इसी प्रकार जयशंकर प्रसाद छायावाद में स्त्री के सौम्य रूप को लेकर प्रकट हुए-

'नारी तुम केवल श्रद्धा हो, विश्वास रजत-नग-पग-तल में।

पीयूष-स्रोत-सी बहा करो, जीवन के सुंदर समतल में।।'

इसके अलावा भी स्त्रियों को कही पर देवी स्वरूप, कही पर कुटिल भाव से युक्त, गलत आचरण युक्त, अविश्वसनीय आदि अनेक मुहावरों और कथाओं में प्रचलित किया गया है। सदा से समाज में स्त्री के प्रति सकारात्मक या नकारात्मक सोच चलती ही आ रही है, लेकिन कोई कुछ भी कहे या पुरुष को स्त्री की अपेक्षा श्रेष्ठ घोषित करने पर लगा रहे; किंतु यदि विश्लेषण करके देखा जाए तो संसार की गाड़ी में स्त्री-पुरुष दो पहिए हैं जो जीवन की गाड़ी

को गंतव्य तक पहुंचाते हैं। एक दूसरे को कमतर आंकना यह विचारधारा प्रामाणिकता से युक्त नहीं है। जैसा कि कहा जा चुका है कि स्त्री के बिना साहित्य भी नहीं रचा जा सकता, क्योंकि साहित्य का आधार तत्व समाज है और समाज में स्त्री के कई रूप जैसे माता, पत्नी, पुत्री व बहन आदि समाहित हैं। इन आधार तत्वों के बिना किसी भी समाज के साहित्य का निर्माण नहीं किया जा सकता। यदि हम ध्यान पूर्वक विचार करें तो पाते हैं, कि स्त्री पुरुष, समाज, देश की निर्माता कही जा सकती है क्योंकि पुरुष का निर्माण भी स्त्री ही करती है। यदि किसी देश या समाज की स्त्रियाँ सशक्त निर्माता होंगी, तो उस देश व समाज के नागरिक भी सशक्त होंगे और वह देश एवं समाज उन्नति के मार्ग पर अग्रसर होगा। वहीं अगर स्त्रियाँ निर्बल, निरक्षर एवं अज्ञानी होंगी तो वह उसी प्रकार की संतानों को उत्पन्न करेंगी जिससे वह देश और समाज उन्नति नहीं कर पाएगा, इसलिए स्त्री को आधार माना गया है वह राष्ट्र की आधारशिला है क्योंकि श्रेष्ठ पुरुषों का निर्माण करने में स्त्री ही सक्षम है। संस्कार स्त्री ही डालती है। क्योंकि माँ सबसे पहली गुरु कही जाती है।

हिंदी साहित्य में आधुनिक काल में गीतांजलि श्री एक उपन्यासकार और कहानीकार के रूप में प्रसिद्ध है। उनके अभी तक पांच उपन्यास प्रकाशित हो चुके हैं- जिसमें माई 1993 में, हमारा शहर उस वर्ष 1998 में, तिरोहित 2001 में, खाली जगह 2006 में और रेत-समाधि 2018 में प्रकाशित हो चुके हैं। इनके प्रसिद्ध उपन्यास रेत-समाधि के अंग्रेजी संस्करण 'टाम्ब ऑफ सैंड' को 2022 का बुकर पुरस्कार प्राप्त है। हिंदी साहित्य में रेत- समाधि पहली रचना है, जिसको 'बुकर सम्मान' से सम्मानित किया गया है। लेखिका द्वारा लिखे गए उपन्यासों में स्त्री पात्रों को विशेष स्थान दिया गया है; क्योंकि लेखिका स्वयं एक स्त्री हैं, इस कारण इन्होंने स्त्री के मनोभाव, उसके आचार-विचार, रहन-सहन, खान-पान, उसकी दिनचर्या, जीवनचर्या, उसकी सोच आदि का चित्रण विश्लेषित ढंग किया है। लेखिका के सभी औपन्यासिक स्त्री पात्र अधिकांशतः शहरी क्षेत्र से संबंधित हैं। गाँव से उनका कोई संबंध नहीं है। मुख्य पात्र सुशिक्षित हैं और समृद्ध परिवारों से हैं, जबकि गौण पात्रों में कुछ पात्र कम पढ़े लिखे और अशिक्षित भी हैं।

माई:- 'माई' उपन्यास लेखिका का प्रथम उपन्यास है। इस उपन्यास में प्रमुख महिला पात्र स्वयं माई ही है। माई उपन्यास की धुरी होने के साथ-साथ यह पात्र घर की भी धुरी है। पूरे घर की जिम्मेदारी माई पर है और वह प्रातः काल स्नानादि से निवृत्त होकर सबके लिए भोजन की व्यवस्था करती है।- 'माई का ऐसा था कि वह हमेशा झुकी रहती थी। और बोलती कम थी। जब हम जगते तो वह नहाई-धोई, साफ धोती पहने, रसोई घर में पराटें संकती होती।'<sup>5</sup> इस उपन्यास में माई का स्वरूप एक भारतीय नारी का स्वरूप है। वास्तव में यह उपन्यास पितृसत्तात्मक प्रवृत्ति को भी दिखाता है, जिसमें दादाजी

बहुत रोबिले स्वभाव के हैं और दादी दिनभर हुकम चलाने वाली सास की भूमिका में है। माई के पति सीधे सरल सहृदय व्यक्ति हैं। माई सब की इच्छाओं का ध्यान रखती हुई अपने कर्तव्य कर्मों को करती रहती है। शालीनता इतनी है कि हमेशा झुकी रहती है और इसी झुके रहने के कारण उसकी रीढ़ की हड्डी झुक गई है। जिसमें दर्द रहता है; किंतु फिर भी वह अपने कर्तव्य पथ पर दिन रात लगी रहती है। - 'माई हमेशा झुकी रहती थी। हमें पता है हम उसे शुरू से देखते आए हैं। ....तभी से वह एक मौन, झुकी हुई साया थी, झुंधर से उधर फिरती, सबकी जरूरतों को पूरा करने में जुटी।' सास नन्द के कटु वचनों को सुनकर भी माई कभी जवाब नहीं देती, सहनशीलता की प्रतिमूर्ति माई घर के सभी काम करती रहती। - 'और सब कहते हैं कि माताजी, यह आप ही का पुण्य है कि ऐसी दीन हीन, सुशील बहू मिली, कभी जो आंख ऊपर करती हो।' इसको देखकर माई की बेटे जिसका नाम सुनैना है और माई का बेटा, जिसका नाम सुबोध है, दोनों सोचते कि माई शोषित, पीड़ित है और दोनों चाहते हैं कि माई इस परिस्थिति से बाहर निकले। दोनों भाई-बहन पूरी कोशिश करते हैं की माई को इस परिस्थिति से बाहर निकालें- किंतु अंततः उन्हें अपनी सोच पर पछतावा होता है और उन्हें पता चलता है माई अंदर से बहुत मजबूत और सुदृढ़ है और वह जो भी कार्य कर रही है उन्हें अपना कर्तव्य समझकर कर रही है ना कि बोझ। इस उपन्यास में सुनैना एक पढ़ी-लिखी और आधुनिक लड़की है और माई भी अपने समय की पढ़ी-लिखी महिला है। माई हमेशा चाहती है कि सुनैना पढ़ लिखकर कुछ बने और अपनी पढ़ाई हमेशा जारी रखें। इसीलिए वह उससे घर का कोई काम भी करने के लिए नहीं कहती। उपन्यास में दो अन्य महिला गौण पात्र हैं एक तो दादी माँ, यानी माई की सास और दूसरी माई की नंद (बुआ जी)। दादी माँ बहुत अक्लड़ स्वभाव की है और अपनी जीभ के स्वाद के लिए माई को हमेशा पकवान बनाने के लिए कहती रहती हैं। नंद का विवाह हो चुका है और वह कभी-कभी अपने मायके आकर दो-चार दिन रहती है। इस प्रकार यह उपन्यास माई की संवेदनशीलता, उनकी उदारता, उनके कर्तव्य परायण व्यवहार को प्रमुखता से चित्रित करता है। एक भारतीय नारी के कर्तव्यों से युक्त माई को ही मुख्य पात्र के रूप में प्रस्तुत करता है। इस उपन्यास में माई परंपरागत भारतीय नारी के रूप में चित्रित की गई है जो सहनशीलता, कर्तव्य निष्ठा, सेवा, लगन, शीलता, दया, करुणा, परोपकार आदि की प्रतिमूर्ति है।

**हमारा शहर उस बरस:-** 'हमारा शहर उस बरस' लेखिका का 1998 में प्रकाशित दूसरा उपन्यास है। प्रस्तुत उपन्यास सांप्रदायिक दंगों से प्रभावित है और उस समय की सांप्रदायिक स्थिति को चित्रित करता है। इस उपन्यास में केवल एक ही स्त्री पात्र है, जिसका नाम श्रुति है। श्रुति पढ़ी-लिखी आधुनिक महिला है और इसका विवाह प्रोफेसर हनीफ के साथ हुआ है। उपन्यास में श्रुति को एक लेखिका के रूप में दिखाया गया है। श्रुति हमेशा कुछ ना कुछ लिखती रहती है। सांप्रदायिक हिंसा से उत्पन्न परिस्थितियों को श्रुति अपनी लेखनी में लिपिबद्ध करती रहती है, जबकि उपन्यास में ददा नाम के वृद्ध भी हैं, जो श्रुति को सांप्रदायिक परिस्थितियों पर ना लिखकर कहानी लिखने के लिए कहते हैं। सांप्रदायिक दंगों से उत्पन्न मानसिक द्वंद से श्रुति कभी-कभी इतनी दुखी व निराश हो जाती है कि लिखने का मन नहीं करता, किंतु फिर लिखने लगती है। - 'मैं सर्वव्यापी नहीं हूँ। जहाँ जिस वक्त हो पाई, वहाँ का लिख देती हूँ। आपस के जोड़-जुड़ाव मैं नहीं बना सकती, मिलके क्या ताना-बाना उभरता है, मुझे नहीं पता। मगर लिखने से तो बचाव है नहीं। यह विभत्स जीभ जो हमारे शहर को लपलप लीलती जा रही है, उसके खिलाफ गवाही क्या बचेगी? क्योंकि क्या पता, यह जीभ कल हमें भी, तुम्हें भी? और हम ही ना रहे तो...?' श्रुति संवेदनशील और परिस्थितियों के प्रति अत्यंत दुखी है; किंतु लिखने के अलावा उसके पास और कोई चारा नहीं है। वह चाहती है

कि यह सांप्रदायिक हिंसा बंद हो और सब सुख चैन से रहें। इसी कारण वह लिखती है। ददू भी उसे प्रोत्साहित करते रहते हैं। - 'लिखो- लिखो, ददू की आंखें चमक रही हैं, जवान हो, कुछ तो करते ही रहोगे। नादानों! सूरज कभी कब्जे में नहीं आने वाला।' श्रुति का प्रेम विवाह एक मुस्लिम युवक हनीफ से हुआ है और उसका एक हिंदू मित्र शरद भी है। ये दोनों जब सांप्रदायिक हिंसा में एक दूसरे की जाति को दोष देने लगते हैं, तब श्रुति बीच में बचाव के लिए खड़ी हो जाती है। श्रुति एक सहनशील महिला है, जो जाति के बंधनों को नहीं मानती और स्वच्छंद होकर एक मुस्लिम युवक से प्रेम विवाह कर लेती है। सांप्रदायिक दंगे उसके वैवाहिक जीवन में बाधा उत्पन्न करते हैं किंतु वह धैर्य पूर्वक उनका सामना करती है।

**तिरोहित:-** 'तिरोहित' लेखिका का तीसरा उपन्यास है। यह उपन्यास स्त्री पात्रों की मानवीय संवेदना पर आधारित है। इस उपन्यास में स्त्रियों के आपसी व्यवहारों को दिखाया गया है। प्रस्तुत उपन्यास में दो महिला पात्र हैं एक चच्चो और दूसरी ललना। चच्चो विवाहित स्त्री है और उसके एक बेटा भी है, जबकि ललना की पारिवारिक स्थिति का कुछ पता नहीं है। लल्ला और चच्चों दोनों में अत्यधिक आपसी प्रेम है। चच्चो हमेशा ललना को अपने घर में आश्रय देकर रखती है। उपन्यास में चच्चों व उसके पति की मृत्यु के उपरांत ललना, चच्चो का घर संभालती है, उस समय का वर्णन है। क्योंकि आज ललना और बेटे के अंतर्मन में हमेशा चच्चो घूमती रहती हैं। - 'चच्चो ने उम्र के साथ-साथ अपना पूरा बदन ढकना शुरू कर दिया है। कुर्तीनुमा ब्लाउज, नेफे को ढकता। लंबी ढीली बांह, उंगलियों तक ढलकती। सिर पर माथे तक पल्लू, चेहरा आंचल में कस के बंधा-सा। पांव जूतियों में या फिर साड़ी के नीचे लापता। चाचा के बाद बेचारी टूट गई है, छत पर हवा खाते लोगों ने कहा। वैधव्य मनाने वाली नारियाँ हमारी।' पूरा उपन्यास भोगी हुई यादों पर ही टिका हुआ है। दोनों पात्र असमंजस की स्थिति में दिखाई देते हैं। लेकिन चच्चो और लल्ला का आपसी व्यवहार, स्त्रियों की मानवीय संवेदना, उनके आपसी व्यवहार व संबंध, स्त्रियों के गुप्त वार्तालाप आदि का वर्णन इस उपन्यास में किया गया है। ललना इसमें अनाथ, अनपढ़ और चरित्र से हीन दिखाई गई है, जबकि चच्चो समृद्ध परिवार की शालीन स्त्री है। दोनों स्त्रियों में आपसी प्रेम इतना है कि एक दूसरे के वस्त्र पहनना, एक साथ भोजन करना, एकसाथ सोना आदि व्यवहार दोनों साथ-साथ करती हैं। स्त्रियों के अंतर्मन को चित्रित करता यह उपन्यास चच्चो एवं ललना के आंतरिक जीवन पर आधारित है।

**खाली जगह:-** 'खाली जगह' लेखिका का चौथा उपन्यास है। इस उपन्यास में प्रमुख मुद्दा आतंकवाद है। आतंकवाद के कारण एक परिवार कैसे दुख के गर्त में चला जाता है, मूल विषय यही है। प्रस्तुत उपन्यास में एक माँ का चित्रण किया गया है जिसका अद्वारह वर्षीय बेटा आतंकवादी घटना में मर चुका है। किंतु वहीं पर उस माँ को एक तीन वर्षीय बालक मिल जाता है, जिसको वह अपने घर ले आती है। इस उपन्यास में स्त्री की मातृत्व युक्त संवेदना को प्रस्तुत किया गया है। एक बालक जिसका कोई संबंध उस माँ से नहीं है और जिससे खून का संबंध था वह मर चुका है। उसी बालक को पालने में वह अपना पूरा जीवन लगा देती है और इसी आशा में रहती है कि एक दिन यह उसके बेटे के जैसा होगा। माता के रूप में चित्रित इस चरित्र में एक माँ के सभी गुण विद्यमान हैं। यह उस बालक में अपने बेटे को हमेशा देखती रहती है और उसको पालने में अपना तन-मन-धन समर्पित करती है। इसमें केवल यही स्त्री पात्र है जो माँ के गुणों से पूर्ण है। माँ बालक से किस प्रकार जुड़ी रहती है उसकी संवेदना का एक चित्रण इस प्रकार है- 'पर माँ की जरूरत हमेशा होती है। राख बाप मुझे मैं उठाता है, टुकड़े माँ पहचानती हैं। कौन सा बटन किस कमीज पर सिया था माँ जानती हैं, बाप नहीं। और नाडा कहाँ तक लटकता है जिसे

पेंसिल से लपेट कर उसने पजामे में डाला था वह जानती है।<sup>11</sup> एक माँ के आन्तरिक मनोभाव एवं संवेदना, प्रेम, करुणा का चित्रण पूरे मनोयोग से इस महिला पात्र के माध्यम से लेखिका ने प्रस्तुत किया है।

**रेत-समाधि:-** 'रेत-समाधि' लेखिका का पांचवा उपन्यास है। प्रस्तुत उपन्यास में 80 वर्षीय वृद्ध स्त्री के अंतर्मन की कथा है। चंदा अथवा चंद्रप्रभा नाम से अंकित यह वृद्धा पति की मृत्यु के बाद अवसाद ग्रस्त है। अवसाद इतना गहरा है कि बिस्तर में मुंह छुपाए लेटी रहती है, दीवार की ओर मुख करके। किसी से कोई बात नहीं करती, न ही उठती है। परिवार के सभी सदस्य वृद्धा को उठाने की पूरी कोशिश करते हैं लेकिन वह नहीं उठती। एक दिन वृद्धा उठती है और अपनी प्रेम-संवेदना को लेकर बेटी के साथ पाकिस्तान पहुंच जाती हैं। यह वृद्धा अपने प्रेमी (पूर्व पति) से मिलने के लिए पाकिस्तान जाती है, जिसका बेटी को भी पता नहीं। बेटी को जब पता चलता है तो वह आश्चर्यचकित हो जाती है। प्रस्तुत उपन्यास में वृद्धा को निर्भीक दिखाया गया है और शारीरिक रूप से स्वस्थ भी, क्योंकि 80 वर्ष में भी वह प्रेम के सपने देखती है, जो उसके मानसिक पक्ष को मजबूत सिद्ध करता है। उपन्यास में वृद्धा की एक बेटी है जिसका लगाव अपनी माँ से अत्यधिक है। इस उपन्यास में एक समृद्ध परिवार की कहानी है। वृद्धा का पति जो अब मर चुका है, एक अधिकारी था और वृद्धा का बेटा भी एक अधिकारी है। आर्थिक रूप से परिवार समृद्ध है लेकिन मानसिक रूप से घर में शांति नहीं है। वृद्धा की पुत्रवधू भी उपन्यास में अंकित है लेकिन वृद्धा का अपनी पुत्रवधू से कोई मानसिक संबंध नहीं है। भावनाएं ही परिवार के सदस्यों को एक दूसरे से जोड़े रखती हैं और जब ये भावनाएं नहीं रहती तब परिवार केवल दिखावे के लिए एक है। उपन्यास में लेखिका बेटियों के लिए लिखती है- 'बेटियां हवा से बनती हैं। निस्पंदन पलों में दिखाई नहीं पड़ती और बेहद बारीक एहसास कर पाने वाले ही उनकी भनक पाते हैं।... सब औरतें मत भूलना बेटियाँ हैं।'<sup>12</sup>

वृद्धा की बेटी जो अविवाहित है तथा स्वच्छंद प्रकृति की है। पिता ने अपने अति प्रेम के कारण बेटी के लिए कई रिश्तों को टुकड़ाया। जिससे बेटी का विवाह नहीं हो पाया।- 'बेटी भी थी एक। और बेटियों जैसी। बाप की मोहब्बत में यों पगलाई की कोई मर्द उसका पासंग न उतरता और बाप भी न तैयार कि उनकी शहजादी को किसी कमतर से बांध दें। तो बाप ही बन गया हर मर्ज का इलाज और अंगूठी का पुखराज और पूरी तरह नहीं तो आधी से कुछ ज्यादा ही उस बच्ची की जवानी और जिंदगी हवा में चकचूर हुए।'<sup>13</sup> भाई से बहन की बनी नहीं और बेटी अलग रहने लगी फ्लैट लेकर। उसकी विचारधारा अत्यधिक आधुनिक होने के कारण परिवार से उसका संबंध कम होता चला गया। इसी प्रकार उपन्यास में तृतीय महिला पात्र वृद्धा की पुत्रवधू है जो गौण पात्र के रूप में दिखाई गई है। पुत्रवधु पढ़ी लिखी और आधुनिक फैशन से युक्त है। ननद-भाभी की आपस में कभी बनी नहीं, दोनों एक दूसरे में कमियाँ निकालती रही। उपन्यास की मुख्य पात्र वृद्धा ही है जिसके इर्द-गिर्द पूरा उपन्यास घूमता है। प्रारंभ से लेकर अंत तक वृद्धा की केंद्रीय पात्र और उसके जीवन की गाथा ही चलती रही।

लेखिका के सभी महिला औपन्यासिक पात्र, क्योंकि शहरी परिवेश के हैं और समृद्ध परिवारों से हैं तो उनका जीवन के कठिन संघर्षों से कोई स्पष्ट वास्ता दिखाई नहीं देता है। ये महिला पात्र किसी को कोई नवीन प्रेरणा की ओर लक्षित नहीं कर रहे हैं। जीवन के मार्मिक पक्ष उनके साथ ज्यादा नहीं जुड़े हैं। अंतर्मन की संवेदनाएं शहरी क्षेत्र के व्यक्तियों में जितने स्तर पर होती है, उतनी ही यहाँ पर हैं। 'माई' उपन्यास की माई सीधी-सादी भारतीय नारी है, ऐसी हजारों-लाखों नारियाँ भारत में आज के समय में भी मौजूद हैं। जो अपने परिवार की सेवा के लिए हर समय तत्पर रहती है। उनके मुंह में जबान नहीं

होती और शरीर पर थकान नहीं होती हैं। हर समय सब की सेवा में तैयार। इसी प्रकार श्रुति 'हमारा शहर उस बरस' की पात्र भी अपने परिवेश के हिसाब से जीवन जी रही है। लेखक के रूप में वह अपने आसपास की उत्पन्न हुई परिस्थितियों का चित्रण करती हुई दिखाई देती है। तिरोहित उपन्यास की पात्र चर्चा और ललना कि समाज पर कोई विशेष प्रभाव स्थापित नहीं करती। इस तरह के पात्र हमें यदा-कदा दिखाई दे ही जाते हैं जो हमारे ऊपर विशेष प्रभाव नहीं छोड़ते। खाली जगह की माँ के प्रति संवेदना उत्पन्न होती है क्योंकि वह एक ऐसे बालक को पालती है जिसका उससे कोई संबंध नहीं है। वहीं पर रेत-समाधि उपन्यास की वृद्धा एक विशेष पात्र हैं क्योंकि भारत में ऐसी स्त्रियाँ दुर्लभ ही मिलेंगी। भारत में इस उम्र की महिलाएँ या तो भगवत भजन में समय बिताती हैं या फिर अपने पोते-पोतियों को पालने में उनका समय बितता है। इस उम्र में उन्हें अपनी प्रेम संवेदनाओं का कहीं अता पता नहीं होता। यह लेखिका की नवीन कल्पना है, जिसका जीवन की सच्चाई से कोई स्पष्ट सरोकार प्रतीत होता दिखाई नहीं देता है। बेटियों का जुड़ाव हमेशा माँ से अधिक रहता है और बेटियाँ हमेशा माँ को खुश देखना चाहती हैं। लेखिका ने 'माई' उपन्यास की सुनेना और रेत-समाधि की बेटी को ऐसा ही चित्रित किया है, जो अपनी माँ को खुश करने के लिए कुछ भी करने को तैयार है। यह दोनों बेटियाँ माँ से संवेदनात्मक रूप से इतनी जुड़ी हुई है कि माँ की पीड़ा को तुरंत समझ जाती हैं और उसे दूर करने की कोशिश करती हैं। काश बेटियों के स्थान पर यह कार्य यदि बहुएं करने लगे तो प्रयास सराहनीय हो सकता है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि लेखिका के औपन्यासिक महिला पात्र समाज के साधारण चरित्रों से ही लिए गए हैं। समाज के मिले-जुले रंगों से भरे यें नारी पात्र मानव जीवन की अच्छी-बुरी दोनों प्रकार की संवेदनाओं को व्यक्त करते हैं।

#### संदर्भ सूची :-

1. आचार्य बच्चूलाल अवस्थी, हिंदी व्युत्पत्ति कोश, खंड-1, प्रथम संस्करण 2005, प्रकाशक बुक्स एंड बुक्स दिल्ली, पृ0- 81
2. आचार्य बच्चूलाल अवस्थी, हिंदी व्युत्पत्ति कोश, खंड-1, प्रथम संस्करण 2005, प्रकाशक बुक्स एंड बुक्स दिल्ली, पृ0- 680
3. सुभाष शर्मा, भारतीय महिलाओं की दशा, प्रकाशक-आधार प्रकाशन, प्राइवेट लिमिटेड, पंचकूला, हरियाणा, प्रथम संस्करण, 2006, पृ0-159
4. वही, पृ0-9
5. गीतांजलि श्री, माई उपन्यास राजकमल प्रकाशन, चौथा संस्करण 2022 पृ0- 0-15
6. वही, पृ0-9
7. वही, पृ0-19
8. गीतांजलि श्री, हमारा शहर उस बरस, राजकमल प्रकाशन, तीसरा संस्करण, 2022, पृ0-12
9. वही, पृ0- 12
10. गीतांजलि श्री, तिरोहित, राजकमल प्रकाशन, पहली आवृत्ति, 2022, पृ0- 19
11. गीतांजलि श्री, खाली जगह, राजकमल प्रकाशन, तीसरा संस्करण, 2022, पृ0-24
12. गीतांजलि श्री, रेत समाधि, राजकमल प्रकाशन, पहला संस्करण, 2018, पृ0-21
13. वही, पृ0-23

## जनकाव्य की चेतना के कवि त्रिलोचन

डॉ. रुपाली सारथे

सहायक प्राध्यापक, हिंदी, तुलनात्मक भाषा एवं संस्कृति विभाग, देवी अहिल्या विश्वविद्यालय, इंदौर, मप्र.

**शोध सारांश:-**त्रिलोचन का काव्य वास्तव में लोक जीवन और ग्रामीण चेतना का जीवंत दस्तावेज है। उनकी कविताएँ मानवीय संवेदनाओं, प्रकृति, और जीवन की सहजता को अत्यंत प्रामाणिकता और गहराई से अभिव्यक्त करती हैं। आपके द्वारा उद्धृत कविताएँ जैसे 'नगई', 'महरा', और 'चंपा काले अच्छर नहीं चीन्हती', त्रिलोचन की संवेदनशील दृष्टि और उनके गहरे लोकानुभव का प्रमाण हैं। इन रचनाओं में ग्रामीण जीवन की सरलता, संघर्ष, और उसकी आंतरिक शक्ति को बड़ी कुशलता से उभारा गया है।

त्रिलोचन जनकाव्य के धनी थे। प्रकृति और ग्रामीण चेतना उनकी कविताओं की धड़कन है। 'नगई' 'महरा' 'चंपा काले अच्छर नहीं चीन्हती' 'परदेसी के नाम पर' 'सचमुच इधर तुम्हारी याद' जैसी कविताओं में ग्रामीण एवं नगरी जीवन के परिवेश के प्रक्रिया देखे जा सकती है। अतः यह कहा जा सकता है कि दोनों ही जीवन परिपाटी की बोध अभिव्यक्ति आपके काव्य में दिखाई पड़ती है।

आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने कहा है कि 'कवि में करुणा और प्रेम का विशिष्ट भाव होना चाहिए।' साथ ही जो मनुष्य हृदय को जानकर उन संवेदनाओं को अपना समझे वही सच्चा कवि है। त्रिलोचन भी इन्हीं संदर्भों के आलोक में अपना काव्य रचते हैं। लोक जीवन लोकतंत्र की पहचान उनके काव्य में प्रस्तुत हुआ है। त्रिलोचन की साहित्य सृजन में गांव कस्बा दुख दर्द की सहानुभूति है वह ग्रामीण नैसर्गिकता का सहज बखान करते हुए कहते हैं कि-

प्रिय लगती है बहुत, घमौनी घाम देखकर,  
लोग कहीं जमते हैं, गाएं और बकरियां,  
खड़ी धूप में मौज लिया करती है सर्दी,  
इस तरह जाती है घर से मीन-मेखकर,  
आती है महिलाएं आती है सुंदरिया,  
कुत्ते करते रहते हैं आवारा गर्दी,

यह जो ग्रामीण परिवेश है इसकी हम शहर में कल्पना भी नहीं कर सकते घमौनी का आनंद गांव में जैसा कहीं ओर नहीं, समूह बनाते लोग और चौक पर उनकी बातें, कुएं-पोखर पर मीन-मेख निकालती स्त्रियों के जमघट, गांव में बकरियां कुत्ते सभी जानवर भी उन्मुक्त है फिर भी सब में आत्मीयता है, जीवन का आनंद है। एक जगह वह कहते हैं कि-

''फूले है पलाश, सेमल, गुलाब, बनबेला  
जामुन, नीम, लिसोढ़े। अभिनव दल आए हैं  
पीपल-पाकड़ में।''<sup>3</sup>

स्पष्ट है कि गांव का किसान मजदूर पशुओं, वृक्ष, लताओं से भरपूर होता है किसान जीवन कितना कठिन होता है लोगों और पशुओं का पारस्परिक सहयोग जीवन से वर्णन जुदा होता है कहीं-कहीं कवि लोकगीतों के प्रभाव में रचना करते हैं एक उदाहरण दृष्टि में है।

1. ''नव जीवन के बीच, धरातल की हरियाली  
हो दिन दूनी रात चैगुनी रहने वाली।''<sup>4</sup>
2. ''टोक बजाकर देख लिया,  
कुछ कसर न छोड़ी  
दुनिया के सिक्के को बिल्कुल खोटा पाया।''<sup>5</sup>

अपनी रचना क्षमता के कारण उनके काव्य संसार व्यापक दृष्टिकोण लिए हुए हैं। प्रकृति और जीवन दोनों की ओत-प्रोत भावनाओं को जोड़े हुए हैं। जनकवि होने के साथ-साथ वह कहीं-कहीं लोकाभिव्यक्ति भी करते हैं परंतु आधुनिक भावबोध। कसे हुए शब्दों में बहुत कुछ समझ लेने की क्षमता दिखाई देती है।

अभी हुक्के पुड़ पुड़,  
बजे, उठा कर धूम, रंग आंखों में आया,  
हंसिए में उत्साह, नया पहंटा वह सलटा,  
कुछ मालूम हुआ न, उधर से गीत कढ़ाए  
मजदूरियों ने आम और मद से बौराया  
कटहल की अरघान घड़ी<sup>6</sup>

वर्तमान में वैज्ञानिक आविष्कार और आधुनिकता के बाद भी मनुष्य ईश्वर प्रकृति को अपना परिवार समझता है आकाश पिता के समान नदी को मां कहता है। गंगा मां के स्नान करने मात्र से पापों का क्षय होता है ऐसी प्रथाओं के चलते इसी लोक आस्था लिए हैं। गंगा मैया श्रद्धा और विश्वास की भावना लोक में अधिक बलवती होती दिखाई देती है। कभी-कभी यह विश्वास अंधविश्वास का रूप भी ले लेता है मानव का स्वभाव भी है कि वे युगों से होती क्रियों का अनुकरण करता है। ध्यान देने योग्य बात है कि पढ़े-लिखे लोगों के लिए भी अंधविश्वास पर्याप्त रूप में विद्यमान होता है। एक जगह वह कहते हैं-

''पढ़ना हमारे नहीं सहता पर बात मेरी कौन यहां सुनता है।  
रान परोसी कहते हैं लड़का इन्हें भारी है, इसी राह खो रहे हैं।  
पढ़ लिखकर ही आखिर फालने विक्षिप्त हुए।  
पढ़ते-पढ़ते तीन चार जने मर गए।''<sup>7</sup>

अब ऐसा कहा जाता है कि पढ़ने लिखने से किसी की मृत्यु हो जाए या वह विक्षिप्त हो जाए पर ईर्ष्या, द्वेष, अंधविश्वास के चलते गांव में ऐसे प्रसंग

है आम है। लोक की बात हो और प्रकृति का प्रसंग ना हो ऐसा कैसा संभव है। त्रिलोचन जब बसंत वर्णन करते हैं तो पौधे की नवदल, आम की बौर, कोयल की कूक, पलाश के फूलों सभी की अगवानी पता चलती है। वैसे तो सभी कवि इन उपादानों के विषय में बोलते हैं परंतु इस वर्णन के साथ ग्राम की चौपाल की चर्चा भी वह करते जाते हैं वह कहते हैं-

‘चौपाल की लहर में बोल-डोल के उठे ।

गांवों ने फाग गाकर कहा आ गया वसंत ।।’<sup>8</sup>

किसान को बसंत का आनंद तब और बढ़ जाता है जब वह देखता है की फसल तैयार है क्योंकि हर त्योंहार-ऋतु खेती किसानी से ही जुड़े होते हैं। यह सभी उसका जीवन है और एक स्थान पर कवि कहता हैं-

‘चैती अब पककर तैयार है, खेतों में रंग बदल गए हैं।

मटर उखड़ रही है, गेहूँ जौ खड़े हैं, हवा में झूम रहे हैं।

हवा की लहरों पर धूप का पानी चढ़ जाता है ।

फूले है पलाश, वैजयंती, कचनार, आम। चिराबल अब कंकड़ है, पीपल, शिरीष, नीम का भी यही हाल है।’<sup>9</sup>

स्पष्ट है कि यहां लोग जीवन को प्रकृति के माध्यम से देखने का प्रयास हुआ है किस की भावनाएं समझने के लिए हमें उसे परिवेश और माटी से जुड़ना होगा इन अनुभवों के वर्णन में कहीं-कहीं उपदेश भी दिखाई देते हैं परंतु योगेश कहीं ना कहीं रूढ़िवादी भावना देश के विकास में अवरोध बन जाते हैं। हमें आगे बढ़ाने के लिए बहुत से आप पुरातन परिवर्तित करना होगा जिससे ब्याप्त बुराइयों का अंत होने लगेगा। वर्तमान में आवश्यकता है नए युग में नए विचारों की। यही कारण है कि कवि कहते हैं-

‘ये नए युग से अपरिचित और सशक्त

ये गए सब दिन सताए

चल रहे प्राचीनता से लौ लगाए

एक अपनी ही नई दुनिया बसाए

आज भी इनको पुरानी बात पहले रूप में ही

भा रही है भा रही है भा रही है।’<sup>10</sup>

यहां कभी अंधविश्वास की चली आ रही परंपराओं के प्राचीन रूप से सचेत कर रहा है और कह रहा है कि हमें पुरातन को बदलने की आवश्यकता है। कवि कर्मों और उससे मिलने वाले फल की भी बात करता है कभी आध्यात्मिक है वह धर्म को जानता है संस्कृति को मानता है परंतु जो गलत है उसको स्वीकार नहीं करता कवि कहते हैं मनुष्य को अपनी तपस्या का पुण्य अवश्य प्राप्त होता है इसलिए त्रिलोचन श्रम और संघर्ष की बात करते हैं-

‘धूप कठिन सर -ऊपर, थम गई हवा है जैसे

दोनों दूजो के ऊपर, रख पैर खींचते पानी,

उसे मलिन हरी धरती पर, मिलकर वे दोनों पानी

दे रहे हैं खेत में पानी।’<sup>11</sup>

जीवन का महत्वपूर्ण पहलू श्रम है जो संघर्ष के बिना संभव नहीं धरती के प्रति अपने स्नेहा को सौंदर्य श्री हार्दिक जी कभी कहते हैं जब देखे तब पे दूरियां जिन्हें जाने के खेत का खेत का मन श्रमजीवी कभी शम से नहीं घबराते उनके लिए स्वयंवर संघर्ष जीवन की अनिवार्यता है दोनों के काम बाते हैं फिर भी एक दूसरे का सहयोग करते हैं त्रिलोचन की कविता के संघर्ष पत्र नगर निराहिनी केवट निषाद सनी ही सब्जी वाला बुढ़िया जैसे कई चरित्र के सामने लोगों की स्थिति को दर्शाते हैं।

निष्कर्ष:-त्रिलोचन अपनी काव्य रचनाओं में कोई भी बात स्पष्ट

रूप में बयां करते थे। बातों को घूमाकर कहना उनकी आदत में नहीं था। यथार्थ का अंकन ही उनकी विशेषता है वह कहते हैं-

‘कोई भूखा हो तो उसको ला कर रोटी

दो, मत लंबी चौड़ी बात बनाओ इसकी उसकी।’<sup>12</sup>

किसी ने सही कहा है कि त्रिलोचन साहित्य के हनुमान है। इन कि राजनशीलता से बात सत्य प्रतीत होती है। सहजता के साथ-साथ फक्कड़ स्वभाव और समाज के गरीब टपके के प्रति संवेदनशीलता इनको महनीय बनाती है। इनके इसी स्वभाव के कारण सुप्रसिद्ध आलोचक डॉ. रामविलास शर्मा कहते हैं।

त्रिलोचन जिस खास अर्थ में आधुनिक हैं, वह यही गरीबी से उनकी कविता का नाता है। नयी कविता ने अपने लिए जो परिधि बनाई, उसने जनता के दुख- दर्द को उससे बाहर रखा। त्रिलोचन की कविता इस परिधि को तोड़ती है।<sup>13</sup>

स्पष्ट कहा जाए तो भाषा की दृष्टि से हिंदी को समृद्ध करने का श्रेय त्रिलोचन को दिया जाएगा। उन्होंने देशज शब्दों को साहित्य गरिमा के आवरण में समेटा है।

संदर्भ सूची:-

1. चिंतामणि : रामचंद्र शुक्ल भाग 1 पृ 151
2. बात मेरी कविता : त्रिलोचन, पृष्ठ क्रमांक 22
3. त्रिलोचन संचयिता, सम्पादक-ध्रुव शुक्ल पृ094
4. त्रिलोचन संचयिता, सम्पादक-ध्रुव शुक्ल पृ0-77।
5. वही पृष्ठ क्रमांक 52
6. अरधान -त्रिलोचन शास्त्री यात्री प्रकाशन नई दिल्ली पृष्ठ क्रमांक 58
7. धरती पृष्ठ क्रमांक 82
8. गुलाब और बुलबुल पृष्ठ क्रमांक 56
9. चैती पृष्ठ 48
10. धरती पृष्ठ क्रमांक 25
11. धरती पृष्ठ क्रमांक 18
12. उस जनपद का कवि हूँ
13. त्रिलोचन के बारे में, रामविलास शर्मा का लेख, त्रिलोचन: आधुनिक और परंपरा बोध, पृ.55

## मृणाल पाण्डे की नाट्य-भाषा

संध्या राय

शोधार्थी, नेट-जेआरएफ, विश्वविद्यालय हिन्दी विभाग, ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा, बिहार

भारत की महिला नाट्य परम्परा में अस्सी के दशक में एक सशक्त नाटककार के रूप में मृणाल पाण्डे आती हैं। उन्होंने अपने व्यंगात्मक नाट्य लेखन के माध्यम से समाज की समकालीन समस्याओं को बखूबी उजागर किया है। मुख्य रूप से उनके पांच नाटक और दो अन्य रेडियो नाटक प्रकाशित हैं। उनके नाटकों का मंचन भी विभिन्न नाट्य मंडलियों द्वारा होता रहा है। नाटक में भाषा की भूमिका अन्य विधाओं के अपेक्षाकृत कहीं बढ़ कर होती है। अतः इस आलेख का ध्येय मृणाल पाण्डे के नाटकों की भाषा का अध्ययन एवं विश्लेषण है।

नाटक साहित्य की एक अद्भुत विधा है, जो अपनी विशिष्टता में अकेली, सदैव नूतन प्रयोगों से भरी है। विश्व साहित्य में काव्य के बाद नाटक की परम्परा सबसे प्राचीन और समृद्ध है। कहानी, कविता या उपन्यास की तुलना में नाटक का प्रभाव अधिक सीधा होता है। नाटक की आत्मा रंगमंचीयता है। रंगमंच कलात्मक अभिव्यक्ति का ऐसा माध्यम है जिसमें मनोरंजन का अंश अन्य कलाओं की तुलना में सबसे अधिक है। रंगमंच पर प्रदर्शित होने वाला नाटक प्रेषकों(दर्शकों) तक अपनी बात पहुंचा कर ही सफल हो सकता है, तभी उसका उद्देश्य पूर्ण होता है। रंगकला जीवन के विभिन्न अनुभवों के आस्वादन द्वारा हमारे मन को अधिक संवेदनशील और ग्रहणशील बनाती है, हमारे भीतर सहानुभूति और द्रवित होने की क्षमता को जीवित रखती है। रंग कार्य अपने मूल रूप में मानव अस्तित्व की सामूहिकता की चेतना से संबद्ध होता है। किसी अच्छे नाटक में भाग लेकर हम अपने भीतर के बहुत से वृथा अहंकार और मिथ्या श्रेष्ठताबोध के प्रति सचेत होते हैं। भारतमुनि ने अपने नाट्यशास्त्र में नाट्य का उद्गम बताते हुए कहा है- 'यह नाट्य नामक पाँचवाँ वेद मनोरंजन का ऐसा दृश्य और श्रव्य साधन है 'जो धर्म, यश, आयु को बढ़ानेवाला, वृद्धि को उद्दीप्त करनेवाला, तथा लोक को उपदेश देने वाला होगा। न ऐसा कोई ज्ञान है, न शिल्प है, न विद्या है, न ऐसी कोई कला है, न कोई योग है, और न कोई कार्य ही है जो इस नाट्य में प्रदर्शित न किया जाता हो।'<sup>1</sup>

संस्कृत नाटक के स्वर्णयुग के बाद हमारी रंग परम्परा विच्छिन्न हो गई। उसके एक हजार वर्ष तक आधुनिक भाषाओं में नाटक बहुत ही कम लिखे गए विशेषकर हिंदी भाषा के क्षेत्र में। अठारहवीं-उन्नीसवीं शताब्दी के बाद हिंदी साहित्यकारों द्वारा लिखा गया नाटक रंगमंच से कटा हुआ ही रहा। पिछले कुछ वर्षों में कलात्मक और सौन्दर्यमूलक अभिव्यक्ति के रूप में रंग कार्य को फिर से स्वीकृति मिलने लगी है। हिंदी नाट्य साहित्य के विस्तार में अपना योगदान देते हुए मृणाल पाण्डे ने इन नाटकों की रचना की है- 'जो राम रचि राखा', 'आदमी जो मछुआरा नहीं था', 'काजर की कोठरी', 'चोर

निकल के भागा', 'शर्मा जी की मुक्ति कथा', 'सुपरमैन की वापसी', 'धीरे - धीरे रे मना।'

कहना न होगा नाटक साहित्यिक अभिव्यक्ति की ऐसी विधा है जिसकी संपूर्णता रंगमंच पर ही संभव है। नाटक में तीन मौलिक पक्ष होते हैं - नाटककार द्वारा तैयार की हुई संवादात्मक कथा, अभिनेताओं द्वारा उसका अभिनय और दर्शक वर्ग। अभिनय द्वारा मूर्त होने की क्षमता और संभावना ऐसी कसौटी है जिस पर खड़ा उतरे बिना नाटक का अस्तित्व अधूरा ही रहता है। नाटक की भाषा एक विशेष प्रकार की काव्य-भाषा है, जिसका व्यंजनापूर्ण, भावगर्भित और उद्दीपन होना एकदम अनिवार्य है। काव्यात्मकता, भावों, अनुभूतियों और अभिव्यक्ति की सघनता, सार्थकता और महत्व, नाटक के आवश्यक गुण हैं। मृणाल पाण्डे के नाटकों की भाषा उपरोक्त सभी गुणों का वहन करती है। इस सन्दर्भ में उनके नाटक 'जो राम रचि राखा' की भाषा द्रष्टव्य है-

'मुसाहब : हम तो कुकुर सेट के  
मनुस जात हम नाय।  
गले उन्हीं का है पट्टा  
जित हाँके हम जाएँ।

नन्दी पर क्यों?

मुसाहब : क्यों? क्योंकि वे ठहरे समर्थ, 'औ' हमारे गुरु महाराज  
कह गए कि इस लोक में...

समरथ दाता समरथ ज्ञानी,  
समरथ सदा करें मनमानी,  
समरथ राजा समरथ साई,  
समरथ का नहीं दोष गुसाई॥

नन्दी : सत्य वचन है।

मुसाहब : कि हर नाटक में जो होता है वो सब कोई समरथ ही  
कराता है-

'औ' इस दुनिया के हर समरथ का भाई, हर दूसरे समरथ से नाता है।

तब तुम ढूँढ़ लो किसी समरथ का आसरा भारी,  
आप कहोगे चिक्कार है, पर ये तो है इक लाचारी।

कि जिसने झोले हों थपेड़े बाहरी समन्दर के  
वो किसी भी साहिल से चिपट-चिपट जाता है

'औ' जिसने जिन्दगी की चक्की पीसी है वो जानता है,

कि आदमी को पीठ नहीं यह पेट ही गिराता है।'<sup>2</sup>

आधुनिक हिन्दी नाटक के प्रमुख स्तंभ मोहन राकेश ने नाटक में

शब्दों की महत्ता पर गंभीरतापूर्वक विचार किया है। वे मानते हैं कि 'नाटक में शब्द ही महत्वपूर्ण है-वही दृश्यत्व की सृष्टि करते हैं। नाटककार को शब्द-प्रयोग में गहरे संयम से काम लेना होगा - ऐसा कोई शब्द नहीं जो व्यर्थ हो, अनावश्यक हो, बिना किसी नाटकीय अर्थ के हो। नाटक में अंतर्निहित सौंदर्य शब्दों से पैदा होता है।'<sup>3</sup>

मृगाल पाण्डे के लेखन में शब्दों के प्रयोग की महत्ता को स्पष्टतः रेखांकित किया जा सकता है। उन्होंने अपनी नाट्य भाषा में शब्दों की व्यापक अर्थवत्ता की रक्षा की है। मसलन उनके नाटकों में देखा जा सकता है कि कभी वे एक शब्द के माध्यम से नाटक के मर्म को उभारने की कोशिश करती हैं। उनके यहां एक शब्द भी नाटक की अंतर्वस्तु पर कितना गहरा प्रभाव छोड़ता है, इसे निम्नांकित संवाद के माध्यम से समझा जा सकता है:-

'सेठ : क्या परेशानी है ?

मन्ना सेठ : (तड़पकर) आपके लिहाज से मुझे कोई परेशानी नहीं यही मेरी परेशानी है।

सेठ : मैंने यह तो नहीं कहा कि तुम्हें कोई परेशानी नहीं हो सकती।

मन्ना सेठ : (हल्की आशा व व्यंग्य से) अच्छा? मेरी परेशानियों का आपको कोई अनुमान है!

सेठ : यह अटूट सम्पदा, यह सारा तिजारत व्यापार, यह लोकाचार का भार जिसके कन्धों पर जल्द आने वाला हो उसकी परेशानियाँ हम समझ सकते हैं।'<sup>4</sup>

नाट्य भाषा की सर्जनात्मकता और प्रभावोत्पादकता सिर्फ शब्दों तक सीमित नहीं है बल्कि उनके प्रयोग में, पत्रानुकूल, समयानुकूल, भावानुकूल ध्वनि-संयोजन में निहित है; उस भाषा के रचाव में है जो अभिनय की विविध भाव-भंगिमाएँ लिए हुए, उतार-चढ़ाव भरी, बदलते लय के सही टोन से युक्त है और साहित्यिक और बोलचाल की भाषा से मिलकर बनी हुई है।

'जो राम रचि राखा' में मन्ना सेठ और मुसाहब के संवाद में शासक और सेवक की मनःस्थिति देखने को मिलती है। इनके संवाद में लयात्मकता है। शब्दों के लय नियोजन के द्वारा गंभीर व्यंग्य का यह नाटक अप्रतिम उदाहरण है। इस संदर्भ में उक्त नाटक का निम्नांकित संवाद ध्यातव्य है:

'मन्ना सेठ : गरीब लोग क्या बजाते हैं ?

मुसाहब- क्या बजाएंगे और ? पेट बजाते हैं अपना तिडिंग-तिडिंग।'<sup>5</sup>

मृगाल पाण्डे लिखती हैं कि 'नाट्य संगीत मेरी रचनाधर्मिता के मूल में कहीं न कहीं हमेशा विराजता आया है।'<sup>6</sup> उनका नाटक 'शर्मा जी की मुक्ति कथा' संगीत से उनके गहरे जुड़ाव का परिचायक है। इस नाटक में काल्पनिक दृश्य के आधार पर कथानक गढ़ा गया है। जिन आकारों और ध्वनियों की कल्पना अ. नाथ कर रहा है, वे उनके पार्टनर को न तो दिखते हैं और न ही सुनाई देते हैं-किंतु नेपथ्य से उठने वाली अदृश्य ध्वनियों के मार्फत दर्शकों को वे स्वर सुनाई देते हैं।

'अ. नाथ झुककर तकिये के नीचे से एक अदृश्य बाँसुरी निकालता है। अदृश्य छेद टटोल कर उन पर उँगली रखता है, नेपथ्य से बाँसुरी का बड़ा धीमा-स्वर बजता है। फिर ज्यों-ज्यों उसकी हरकतों में तेजी आती है, स्वर तेज होते जाते हैं। नाटक में कई बार होता है। यह सुर स्पष्टतः ही अ. नारायण को नहीं सुनाई पड़ते, पर वह अपने तख्त पर बैठा बड़े मनोयोग से अ. नाथ की क्रियाएँ देख रहा है।'<sup>7</sup>

नाटक को सबसे जटिल विधा माना गया है। नाट्य लेखन में भाषा हमेशा से एक चुनौती रही है। मोहन राकेश लिखते हैं-'हिंदी एक ऐसी

संघर्षशील भाषा अवश्य है जो अपने भाव, विचार और बिम्ब-संपत्ति के संप्रेषण की समस्या से निरंतर जूझ रही है। हर जीवित भाषा एक संक्रमण की स्थिति में रहती है- उसके जीवित होने के प्रमाण ही यह है। आज की भाषा का आंतरिक रूप-परिवर्तन, उनके हास का नहीं, बल्कि विकास की संभावनाओं का ही संकेत है।'<sup>8</sup>

नाटक की भाषा की कसौटी पर मृगाल पाण्डे कितनी सफल रहीं? इस प्रश्न का हल ढूँढते हुए मैंने पाया कि मृगाल पाण्डे के नाटकों में पात्रों के बीच जो संवाद होते हैं, उनमें काव्यात्मक गुण हैं, संगीत है, लय है, चित्र है, भाषा में चमक है। मुहावरेदार उक्तियाँ, हास्यात्मक व्यंग उनके संवादों को रोचक बनाते हैं। उनकी भाषा में उबाऊपन नहीं है। कथानक और संवाद एक-दूसरे से गूँथे हुए हैं। बोलचाल की भाषा और साहित्यिक भाषा का इतना सहज तालमेल बैठाया गया है कि लगता ही नहीं कहीं सायास कुछ है। उनकी भाषा कृत्रिमता से भरी नहीं है जिसके कारण प्रायः नाटक जटिल व दुरूह प्रतीत होते हैं। यही कारण है कि मृगाल पाण्डे के नाटक दर्शकों को बोझिल नहीं लगते। पात्रों के अनुकूल ही भाषा का प्रयोग है। साहित्यिक भाषा और बोलचाल की भाषा का अद्भुत सम्मिश्रण उनके नाटकों में संभव हो सका है। नाटककार के पास अगर अंतर्दृष्टि, कल्पना, सूझ-बूझ और पैनी रंग दृष्टि और अनुभव है तो वह थियेटर को कृत्रिम उपकरणों से सर्वथा मुक्त कर सकता है, नाटक और उसके प्रदर्शन को अधिक सुविधाजनक और रचनात्मक बना सकता है। इन्हीं गुणों के कारण मृगाल जी के नाटकों का आज भी मंचन हो रहा है और दर्शकों से उन्हें निरन्तर प्रेम मिल रहा। मृगाल पाण्डे यदि हिन्दी नाट्य जगत में सर्वाधिक प्रासंगिक नाटककार मानी जाती हैं तो उसके पीछे सजग सामाजिक बोध व जनपक्षधरता के साथ-साथ उनके भाषा-कौशल और मंचन की विलक्षण समझ का भी प्रमुख स्थान है। जनसामान्य के दैनिक जीवन व उनके मनोभावों को उन्होंने इतने करीब से चित्रित किया है कि उनके पात्रों में दर्शक स्वयं को देख पाता है। उनके नाटक कथ्य के स्तर पर आम आदमी को जोड़ते हैं, जिसमें निश्चय ही भाषा सेतु का काम करती है। वस्तुतः उनके नाटकों की सफलता आमफहम भाषा में विराट मानवीय मूल्यों के चित्रण में है।

संदर्भ सूची:-

1. जैन, नेमिचन्द्र, रंगदर्शन, राधाकृष्ण प्रकाशन, संस्करण - प्रथम, 2023, पृष्ठ- 21,22
2. पाण्डे, मृगाल, सम्पूर्णनाटक, राधाकृष्ण प्रकाशन, संस्करण - प्रथम, 2011, पृष्ठ-30
3. रस्तोगी, गिरीश, मोहनराकेश और उनके नाटक, लोकभारती प्रकाशन, संस्करण चतुर्थ, 2008, पृष्ठ 116
4. पाण्डे, मृगाल, सम्पूर्ण नाटक, राधाकृष्ण प्रकाशन, संस्करण- प्रथम, 2011, पृष्ठ - 64
5. वही पुस्तक, पृष्ठ- 45
6. वही पुस्तक, पृष्ठ - 7
7. वही पुस्तक, पृष्ठ - 308
8. रस्तोगी, गिरीश, मोहनराकेश और उनके नाटक, लोकभारती प्रकाशन, संस्करण चतुर्थ, 2008, पृष्ठ - 133

# स्वच्छ भारत मिशन का ग्राम पंचायत स्तरीय आलोचनात्मक विश्लेषण (ग्राम पंचायत जमालपुर जिला बाँदा के सन्दर्भ में)

डॉ. राजीव त्रिपाठी

असिस्टेंट प्रोफेसर, भूगोल विभाग, पं. जवाहरलाल नेहरू पीजी कॉलेज, बाँदा

सारांश:-स्वच्छ भारत मिशन, 2 अक्टूबर 2014 को प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी द्वारा अखिल भारतीय स्तर पर प्रारम्भ किया गया स्वच्छता अभियान है। जिसका उद्देश्य खुले में शौच की प्रवृत्ति का उन्मूलन एवं लोगों को स्वच्छता के प्रति जागरूक करना है। प्रस्तुत शोधपत्र में प्राथमिक सर्वेक्षण पद्धति के आधार पर निदर्शतया चयनित 50 लोगों से प्राप्त सूचना/आंकड़ों का प्रयोग करते हुए स्वच्छ भारत मिशन के क्रियान्वयन तथा उसके समाज पर होने वाले प्रभाव का अध्ययन किया गया है। स्वच्छ भारत मिशन लोगों में स्वच्छता की प्रवृत्ति जागरूक करने तथा खुले में शौच की प्रवृत्ति खत्म करने में महत्वपूर्ण योगदान दे रहा है।

**मूलशब्द:-**जागरूकता, शौचालय, परिवर्तन, स्वच्छता।

**प्रस्तावना:-**स्वच्छ भारत मिशन, 2 अक्टूबर 2014 को राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी की 145 वी जयंती पर प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी जी द्वारा शुरू किया गया। इस मिशन का प्रमुख उद्देश्य सम्पूर्ण देश को स्वच्छ बनाना है। इसके अन्तर्गत खुले में शौच का उन्मूलन, हर परिवार को शौचालय सहित स्वच्छता सुविधा उपलब्ध कराना, ठोस और द्रव अपशिष्ट निपटान व्यवस्था करना इत्यादि को शामिल किया गया है। स्वच्छ भारत मिशन का प्रथम चरण 2019 तक के लिए था। 2014 से 2019 तक की अवधि में काफ़ी सकारात्मक परिवर्तन हुए खास तौर पर खुले में शौच करने की बुरी आदत में। प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी के दूरदर्शी नेतृत्व में स्वच्छ भारत मिशन विश्व का सबसे बड़ा व्यवहार परिवर्तन अभियान बन गया और पांच साल में भारत में खुले में शौच की बुराई से मुक्त होने का असंभव सा लगने वाला लक्ष्य हासिल कर लिया। यह इसीलिए संभव हो पाया क्योंकि प्रधानमंत्री जी ने इस अभियान को एक जन आंदोलन में बदल दिया। देशभर के 141 करोड़ लोगों ने इस कार्यक्रम को सफल बनाने में अपना योगदान दिया।

फ़रवरी 2022 में भारत सरकार ने स्वच्छ भारत मिशन के दूसरे चरण की मंजूरी दे दी। कुल 1,40,881 करोड़ रुपये के खर्च से इस चरण में ठोस और तरल अपशिष्ट प्रबंधन, खुले में शौच से मुक्त यानी ओ डी एफका दर्जा बनाये रखना, सार्वजनिक स्थानों पर कूड़े के ढेर कम से कम हो, जल निकासी की व्यवस्था इत्यादि पर ध्यान केन्द्रित किया जायेगा।

भारत सरकार द्वारा पहले भी स्वच्छता अभियान को लेकर कई कार्यक्रम चलाये गये हैं। जिनमें पूर्ण स्वच्छता अभियान 1999 में, निर्मल ग्राम पुरस्कार योजना 2003 में एवं निर्मल भारत अभियान 2012 में प्रारम्भ किये गये जो बहुत अधिक प्रभावशाली नहीं रहे। लेकिन 2 अक्टूबर 2014 को प्रारम्भ किया गया स्वच्छ भारत अभियान काफ़ी प्रभावशाली रहा और अपने प्रथम चरण (2014 से 2019 तक) में कई लक्ष्यों को हासिल करने में सफल

रहा जिससे प्रेरित होकर भारत सरकार ने इसके द्वितीय चरण को फ़रवरी 2022 में मंजूरी दे दी। स्वच्छ भारत अभियान का मुख्य लक्ष्य लोगों में स्वच्छता के प्रति जागरूकता फैलाकर अस्वच्छता की वजह से होने वाली विभिन्न प्रकार की बीमारियों में कमी लाना ताकि एक स्वस्थ सभ्यता का विकास हो।

**उद्देश्य:-**

1. स्वच्छ भारत मिशन के अन्तर्गत चलाई गई योजनाओं का आलोचनात्मक मूल्यांकन करना।
2. स्वच्छ भारत मिशन द्वारा लोगों के स्वच्छता व्यवहार में आये परिवर्तनों का अध्ययन करना।
3. स्वच्छ भारत मिशन की सफलता का विश्लेषण करना।

**शोध विधि:-**प्रस्तुत शोधपत्र में स्वच्छ भारत अभियान का तुलनात्मक अध्ययन करने के लिए जिला बाँदा, तहसील बाँदा सदर की ग्राम पंचायत जमालपुर का चुनाव किया गया है। शोध विषय पर आंकड़े एकत्र करने के लिए प्राथमिक एवं द्वितीयक आंकड़ों का प्रयोग किया गया है। प्राथमिक आंकड़ों को शोधकर्ता ने 50 व्यक्तियों के नमूना सर्वेक्षण भेंटवार्ता द्वारा लिया है एवं द्वितीयक आंकड़ों का संग्रह प्रकाशित समाचार पत्र, पत्रिकाओं, पुस्तकों, शोध पत्रों व वेबसाइट्सो से किया गया है। एकत्रित आंकड़ों का वर्गीकरण, सारणीयन, प्रतिशत आदि सांख्यिकीय विधियों का प्रयोग करके निर्वचन किया गया है।

**शोध क्षेत्र:-**जमालपुर ग्राम पंचायत उत्तर प्रदेश राज्य के बाँदा जिले में स्थित है। यह जिला मुख्यालय से 10 किमी की दूरी पर स्थित है। इसका कुल भौगोलिक क्षेत्र 1129.48 हेक्टेयर है। सन् 2011 की जनगणना के अनुसार जमालपुर ग्राम पंचायत की कुल जनसंख्या 3952 है जिनमें 2106 पुरुष व 1846 महिलायें हैं। जमालपुर में लगभग 722 घर हैं। परिवार के सदस्यों की औसत संख्या 5 व्यक्ति है जिसमें कमाने वाले सदस्यों की औसत संख्या 2.4 व्यक्ति है।

**स्वच्छ भारत मिशन एवं शौचालय प्रकृति:-**स्वच्छ भारत मिशन में खुले में शौच के उन्मूलन पर विशेष ध्यान दिया गया है जिसके लिए हर परिवार को शौचालय उपलब्ध कराने के लिए विशेष व्यवस्था की गयी है। अध्ययन क्षेत्र (जमालपुर ग्राम पंचायत) में स्वच्छ भारत मिशन के बारे में लोगों की जानकारी व शौचालय की प्रकृति को नीचे दी गयी तालिका संख्या- 1 से समझा जा सकता है:

तालिका संख्या-1 : स्वच्छ भारत मिशन एवं शौचालय प्रकृति

क्रम सं०	प्रश्न	उत्तर
1.	क्या आप स्वच्छता अभियान के बारे में जानते हैं ?	पता है - 86% नहीं पता है - 14%
2.	क्या आपके घर में शौचालय है ?	हाँ - 100% नहीं - 0
3.	शौचालय कहाँ पर बना हुआ है ?	घर में - 92% घर से बाहर - 2% दोनों जगह - 6%
4.	शौचालय कैसा है ?	सरकारी - 32% निजी - 66% दोनों - 2%
5.	शौचालय किस प्रकार का है ?	सोखते वाला - 88% बहने वाला - 12%
6.	क्या शौचालय वर्तमान में चालू है ?	हाँ - 100% नहीं - 0

● किये गये सर्वेक्षण में पाया गया कि 86 प्रतिशत लोग स्वच्छता अभियान के बारे में जानते हैं जबकि शेष 14 प्रतिशत लोगों को इसके विषय में कोई जानकारी नहीं है। जहाँ तक शौचालय का सवाल है तो शौचालय सभी लोगों के घर में उपलब्ध है। जिनमें 66 प्रतिशत लोगों के घर में निजी शौचालय है और 32 प्रतिशत लोगों के घर में सरकारी अनुदान से बना शौचालय है जबकि शेष 2 प्रतिशत लोगों के घर में निजी व सरकारी दोनों प्रकार के शौचालय हैं।

● 88 प्रतिशत शौचालय सोखते वाले हैं जबकि 12 प्रतिशत शौचालय बहने वाले हैं। वर्तमान में सभी लोगों के यहाँ शौचालय चालू हैं। शौच सम्बन्धी आदतें एवं व्यवहार : निम्नांकित तालिका संख्या : 2 में लोगों की शौच सम्बन्धी आदतों एवं व्यवहार का विवरण दिया गया है :

तालिका संख्या-2 : शौच सम्बन्धी आदतें एवं व्यवहार

क्रम सं०	प्रश्न	उत्तर
1.	शौच जाने का समय क्या है ?	सुबह - 53% सुबह-शाम - 17% कोई समय नहीं - 30%
2.	शौच के लिए कहाँ जाते हैं ?	शौचालय में - 78% बाहर - 13% कभी शौचालय कभी बाहर - 9%
3.	शौच के लिए बाहर क्यों जाते हैं ?	शौचालय में जाते हैं - 78% अधिक सदस्य - 12% आदत - 10%
4.	एक शौचालय का प्रयोग कितने व्यक्ति करते हैं ?	औसतन - 4
5.	शौचालय हेतु घयनित स्थान की दूरी क्या है ?	औसत 182 मीटर
6.	बाहर शौच हेतु किस पानी का प्रयोग करते हैं ?	डब्बे का पानी - 74% तालाब का पानी - 24% नहर का पानी - 2%
7.	शौच करने के बाद आप हाथ किससे धोते हैं ?	साबुन - 72% मिट्टी - 4% कभी साबुन या कभी मिट्टी - 24%
8.	शौचालय की साफ-सफाई कब करते हैं ?	रोजाना - 10% सप्ताह में दो बार - 15% सप्ताह में एक बार - 80% 15 दिन में एक बार - 15%
9.	शौचालय की सफाई किससे करते हैं ?	हार्पिक - 82% किनायल - 4% तेजाब - 6% निरमा - 8%

● सर्वेक्षण में लिये गये 100 प्रतिशत लोगों के अनुसार 53 प्रतिशत लोग सुबह के समय शौच के लिए जाते हैं तथा 17 प्रतिशत लोग सुबह-शाम दोनों समय जाते हैं जबकि 30 प्रतिशत लोगों का कोई समय निर्दिष्ट नहीं है।

● 78 प्रतिशत लोग शौच के लिए शौचालय का इस्तेमाल करते हैं। 13 प्रतिशत लोग शौच के लिए जाते हैं जबकि 9 प्रतिशत लोग कभी शौचालय कभी बाहर जाते हैं।

● 12 प्रतिशत लोग अधिक सदस्य की वजह से शौच के लिए बाहर जाते हैं जबकि 10 प्रतिशत लोग आदत की वजह से शौच के लिए बाहर जाते हैं।

● औसतन 4 व्यक्ति एक शौचालय का इस्तेमाल करते हैं।

● शोध अध्ययन करने से पता चलता है कि औसतन लगभग 182 मीटर की दूरी तक लोग शौच के लिए जाते हैं।

● शौच के लिए बाहर जाने वाले लोगों में 74 प्रतिशत लोग डब्बे के पानी का, 24 प्रतिशत लोग तालाब के पानी का एवं 2 प्रतिशत लोग नहर के पानी का प्रयोग करते हैं।

● 72 प्रतिशत लोग शौच के बाद साबुन से, 4 प्रतिशत लोग मिट्टी से एवं 24 प्रतिशत लोग कभी साबुन या कभी मिट्टी से अपने हाथ धोते हैं।

● लोगों से बात करने पर पता चला है कि 10 प्रतिशत लोग अपने शौचालय की सफाई रोजाना करते हैं। 15 प्रतिशत लोग सप्ताह में दो बार, 60 प्रतिशत लोग सप्ताह में एक बार एवं 15 प्रतिशत लोग 15 दिनों में एक बार अपने शौचालय की सफाई करते हैं।

● शौचालय की सफाई करने के लिए 82 प्रतिशत लोग हार्पिक, 4 प्रतिशत लोग किनायल, 6 प्रतिशत लोग तेजाब एवं 8 प्रतिशत लोग डिटर्जेंट पाउडर का प्रयोग करते हैं।

स्वच्छता व्यवहार :

तालिका संख्या-3 में लोगों का स्वच्छता से सम्बन्धित व्यवहार किस प्रकार का है उसका विवरण दिया गया है

तालिका संख्या-3 : स्वच्छता व्यवहार

क्रम सं०	प्रश्न	उत्तर
1.	घर में साफ-सफाई करने का समय	सुबह - 79% शाम - 7% सुबह-शाम दोनों - 12% कभी भी - 2%
2.	घर के बाहर साफ-सफाई का समय	सुबह - 75% शाम - 12% सुबह-शाम दोनों - 10% कभी भी - 3%
3.	कूड़ा-करकट जलाते हैं अथवा फेंकते हैं ?	जलाते हैं - 24% फेंकते हैं - 76%
4.	कूड़ा-करकट कहाँ फेंकते हैं ?	घर के बाहर - 24% तालाब के किनारे - 5% नहर के किनारे - 7% गड्ढे में - 64%
5.	सड़क पर गदगी देखने को मिलती है ?	हाँ - 84% नहीं - 16%
6.	सार्वजनिक स्थानों पर गदगी देखने को मिलती है ?	मंदिर के पास - 4% तालाब के पास - 53% खेल के मैदान के पास - 38% विद्यालय के पास - 5%
7.	सार्वजनिक स्थानों की सफाई में आप अपनी सहभागिता करते हैं ?	हाँ - 20% नहीं - 52% कभी-कभी - 28%
8.	सफाई कर्मी सफाई करता है ?	प्रत्येक दिन - 0 सप्ताह में - 12% पन्द्रह दिन में - 15% कोई निश्चित नहीं - 73%

● आंकड़ों से ज्ञात होता है कि 100 प्रतिशत सभी लोग अपने घर की सफाई रोजाना करते हैं। जिसमें से 79 प्रतिशत लोग सुबह, 7 प्रतिशत लोग शाम को, 12 प्रतिशत लोग सुबह-शाम दोनों एवं 2 प्रतिशत लोग दिन

में कभी भी अपने घर की सफ़ाई करते हैं।

- 75 प्रतिशत लोग सुबह घर के बाहर साफ-सफ़ाई करते हैं। 12 प्रतिशत शाम को एवं 10 प्रतिशत लोग सुबह-शाम दोनों घर के बाहर साफ-सफ़ाई करते हैं। 3 प्रतिशत लोगों का घर के बाहर साफ-सफ़ाई करने का कोई निश्चित समय नहीं है।

- 24 प्रतिशत लोग कूड़ा-करकट जलाते हैं जबकि 76 प्रतिशत लोग कूड़ा-करकट को फेंकते हैं।

- कूड़ा-करकट फेंकने वाले लोगों में 24 प्रतिशत लोग घर के बाहर, 5 प्रतिशत लोग तालाब के किनारे, 7 प्रतिशत लोग नहर के किनारे और 64 प्रतिशत लोग गड्ढे में कूड़ा-करकट फेंकते हैं।

- सर्वेक्षण के दौरान 84 प्रतिशत लोगो ने बताया कि सड़क के किनारे गंदगी देखने को मिलती है जबकि 16 प्रतिशत लोगों ने बताया कि सड़क के किनारे गंदगी देखने को नहीं मिलती है।

- सार्वजनिक स्थानों की साफ-सफ़ाई के सम्बन्ध में आंकड़ों से पता चलता है कि 20 प्रतिशत लोग सार्वजनिक स्थानों की साफ-सफ़ाई में भाग लेते हैं, 28 प्रतिशत लोग कभी-कभी भाग लेते हैं जबकि 52 प्रतिशत लोग भाग नहीं लेते हैं।

- सफ़ाई कर्मों के बारे में 12 प्रतिशत लोगों ने बताया कि वह सप्ताह में एक दिन सफ़ाई करता है, 15 प्रतिशत लोगों ने बताया कि वह पन्द्रह दिन में एक बार सफ़ाई करता है जबकि 73 प्रतिशत लोगों का मत था कि उसके सफ़ाई करने का कोई निश्चित समय नहीं है।

#### जल एवं जल निकासी:

तालिका संख्या-4 में जल एवं जल निकासी से सम्बन्धित विवरण दिया गया है:

तालिका संख्या-4 : जल एवं जल निकासी		
क्रम सं०	प्रश्न	उत्तर
1.	पानी का क्या साधन है ?	निजी हैण्डपम्प - 75% निजी मोटरपम्प - 14% सरकारी हैण्डपम्प - 11%
2.	आपके घर का पानी कहाँ जाता है ?	नाली में - 76% गड्ढे में - 10% क्यारी में - 3% खेत में - 4% तालाब में - 4% खाली जगह - 3%
3.	क्या घर के बाहर नाली है ?	हाँ - 80% नहीं - 20%
4.	नाली कैसी है ?	कच्ची - 10% पक्की - 18% ढालू खड़न्जे की नाली - 52% नाली नहीं - 20%
5.	नाली की सफ़ाई कौन करता है ?	स्वयं - 43% सफ़ाई कर्मों - 37% नाली नहीं - 20%
6.	सफ़ाई कर्मों रोज आता है ?	हाँ - 0 नहीं - 100%
7.	क्या रास्ते के पानी का निकास है ?	हाँ - 81% नहीं - 19%
8.	गांव का रास्ता कैसा है ?	कच्चा - 6% पक्का - 41% खड़न्जा - 53%

- सर्वेक्षण से पता चलता है कि 75 प्रतिशत लोगो के घरों में निजी हैण्डपम्प, 14 प्रतिशत लोगो के घरों में निजी मोटरपम्प है जबकि 11 प्रतिशत लोगो के घरों में नल नहीं है वे सरकारी हैण्डपम्प का प्रयोग करते हैं।

- जिन लोगो के घर के बाहर नाली बनी हुयी है उनमें से 76 प्रतिशत

लोगों के घर का पानी नाली में तथा 10 प्रतिशत लोगो के घर का पानी गड्ढे में जाता है। 3 प्रतिशत लोगो के घर का पानी क्यारी में, 4 प्रतिशत लोगो के घर का पानी खेतों में, 4 प्रतिशत लोगो के घर का पानी तालाब में एवं 3 प्रतिशत लोगो के घर का पानी खाली जगह में जाता है जिससे मक्खी, मच्छर उत्पन्न होते हैं।

- 80 प्रतिशत लोगो के घरों के बाहर नाली है जबकि 20 प्रतिशत लोगो के घरों के बाहर नाली नहीं है। नाली न होने के कारण पानी रास्ते में भर जाता है।

- सर्वेक्षण से पता चलता है कि 10 प्रतिशत लोगो के घरों के बाहर कच्ची नाली है। 18 प्रतिशत लोगो के घरों के बाहर पक्की नाली तथा 52 प्रतिशत लोगो के घरों के बाहर ढालू खड़न्जे की नाली है। 20 प्रतिशत लोगो के घरों के बाहर नाली नहीं है।

- सरकार द्वारा लगाये गये सफ़ाई कर्मचारी गांव में नाली की सफ़ाई करने के लिए नहीं आते हैं। मात्र 37 प्रतिशत नाली की सफ़ाई कर्मचारी करते हैं, 43 प्रतिशत नाली की सफ़ाई लोगो के द्वारा स्वयं की जाती है जबकि 20 प्रतिशत लोगो के घरों के बाहर नाली नहीं है।

- सभी 100 प्रतिशत लोगो का कहना है कि सफ़ाई कर्मों रोज सफ़ाई करने नहीं आते हैं।

- 81 प्रतिशत लोगो ने बताया कि रास्ते का पानी निकल जाता है जबकि 19 प्रतिशत लोगो के अनुसार रास्ते में पानी का कोई निकास नहीं है जिससे गांव के रास्ते में कीचड़ हो जाता है।

- गांव का रास्ता 6 प्रतिशत कच्चा, 41 प्रतिशत पक्का एवं 53 प्रतिशत खड़न्जा वाला है।

#### सरकारी क्षेत्र की भूमिका:

निम्न तालिका संख्या-5 में सरकारी कार्यों के प्रति लोगो के नजरिये को बताया गया है:

तालिका संख्या-5 : सरकारी क्षेत्र की भूमिका

क्रम सं०	प्रश्न	उत्तर
1.	क्या सरकार द्वारा बनाये गये शौचालय टिकाऊ है ?	हाँ - 0 नहीं - 100%
2.	क्या शौचालय बनवाने का काम वास्तविकता में पूरा है ?	हाँ - 5% नहीं - 95%
3.	बिना रिश्तत दिये आपका काम होता है ?	हाँ - 10% नहीं - 90%

- सर्वेक्षण के दौरान लोगो ने बताया कि शौचालय निर्माण के लिए प्रति शौचालय 12000 रु० की धनराशि केन्द्र सरकार द्वारा उपलब्ध करायी जाती हैं। इन शौचालयों का निर्माण ठेके में ठेकेदारों के माध्यम से होता है परन्तु ठेकेदारों द्वारा शौचालय निर्माण के लिए अच्छी गुणवत्ता की सामग्री प्रयोग में नहीं लायी जाती है और कभी-कभी तो अकुशल मिस्त्रियों से भी निर्माण करा लिया जाता है इसलिए ये शौचालय टिकाऊ नहीं है।

- सर्वेक्षण के दौरान 5 प्रतिशत लोगो ने माना कि शौचालय बनाने का कार्य वास्तविकता में पूरा है जबकि 95 प्रतिशत लोगो का मानना है कि कार्य वास्तविकता में पूरा नहीं है।

- 90 प्रतिशत लोगो ने बताया कि उनका कोई भी काम बिना रिश्तत

के नहीं होता है केवल 10 प्रतिशत लोगो का मानना है कि उनका काम बिना रिश्त के होता है।

**प्राप्तियाँ :**

- स्वच्छ भारत मिशन से लगभग 86 प्रतिशत लोगो को स्वच्छता के बारे में जानकारी हुई है जिससे वो स्वच्छता के प्रति जागरूक हुए हैं।
- गरीबी के कारण जो लोग शौचालय निर्माण को आवश्यक नहीं समझते थे अब वित्तीय सहायता से उनके घर में भी शौचालय निर्माण सम्भव हो पाया है।
- शौचालय निर्माण से खुले में शौच की बुरी आदत को दूर कर पाना सम्भव हुआ है।
- शौचालय निर्माण से सभी लोगो की खासकर महिलाओं की सुरक्षा में बढ़ोतरी हुई है।
- शौचालय निर्माण से खेतों व सड़कों में गन्दगी में कमी आयी है।
- खुले में शौच में कमी से प्रदूषण में कमी आयी है जिससे हैजा, चेचक आदि बिमारियों में कमी आयी है।

**सीमाएँ :**

- लगभग 22 प्रतिशत लोग ऐसे है जो अभी भी घर में अधिक सदस्य होने या उनकी आदत होने की वजह से घर से बाहर खुले में शौच के लिए जाते हैं।
- लोगो को अभी भी साफ-सफ़ाई की ठीक से जानकारी नहीं है क्योंकि उनमें जागरूकता की कमी है।
- पानी के निकास की सुविधाएँ नहीं है।
- सरकार द्वारा बनवाये गये शौचालय टिकाऊ नहीं है।
- जिन शौचालयों का निर्माण हुआ उनमें से भी अधिकांश का बिना रिश्त दिये नहीं हो पाया है।
- कागजों में जितने शौचालय का निर्माण किया गया है वह वास्तविकता में पूरा नहीं किया गया है।

**सुझाव :**

- स्वच्छ भारत अभियान के बारे में सभी लोगो को जागरूक करना आवश्यक है जिससे अधिक सदस्य वाले घरों के सभी लोग शौचालय का प्रयोग करने की आदत विकसित करें।
- जो लोग आदतवश खुले में शौच के लिए जाते है उन लोगो को भी स्वच्छता का महत्व बताना चाहिए और उन्हें शौचालय का प्रयोग करने के लिए प्रेरित करना चाहिए।
- सभी लोगो को साफ-सफ़ाई की आदत विकसित करनी चाहिए जिससे एक स्वच्छ व स्वस्थ समाज का निर्माण हो सके।
- पानी के निकास की व्यवस्था ठीक करना जिससे किसी भी प्रकार की गन्दगी से निकास में असुविधा न हो।
- शौचालय निर्माण में गुणवत्तापूर्ण सामग्री का उपयोग किया जाए जिससे शौचालय टिकाऊ बन सके।
- शौचालय निर्माण में भ्रष्टाचार को खत्म किया जाए जिससे बिना रिश्त के प्रत्येक शौचालय का निर्माण हो सके तथा इस योजना को सफल बनाया जा सके।

**निष्कर्ष :-**अधिकांश लोग स्वच्छता के प्रति जागरूक हैं। अपने घर तथा अपने आस-पास स्वच्छता की चाह भी रखते हैं परन्तु कुछ कमियों

जैसे निम्न आय स्तर, जगह की अनुपलब्धता आदि की वजह से स्वच्छता नहीं रख पाते है। गांव में पानी की उचित निकास व्यवस्था न होने के कारण लोग गन्दा पानी एक जगह जमा करने पर मजबूर है। गांव का रास्ता भी अच्छा नहीं है जगह-जगह बारिश का पानी जमा हो जाता है। कुछ हद तक लोगो को स्वयं को स्वच्छ रखने के लिए अपनी गन्दगी दूसरों की तरफ उछालना तथा साफ-सफ़ाई करना हमारा कार्य नहीं है जैसी संकीर्ण मानसिकताओं को दूर किए बिना स्वच्छ भारत अभियान की सफलता सुनिश्चित नहीं की जा सकती है। जब तक लोग इतने जागरूक नहीं हो जाते कि वह स्वच्छता को अपना कर्तव्य न समझने लगे तब तक सम्पूर्ण स्वच्छ भारत अभियान एक सपना है।

**सन्दर्भ सूची :-**

1. Surendra Kumar Tiwari. The Study of Awareness of A National Mission: swachh vidyalya in the Middle School Student of Private and Public Schools. PARIPEX Indian Journal of Research (ISSN2250-19910) 2014.  
[www.paripex.in/http://indianjournalresearch.com](http://www.paripex.in/http://indianjournalresearch.com)
2. Venkata Subbarao P. Somasekhar S. Swachh Bharat: Some Issues and Concern. International journal of Academic Researsch. ISSN 2348-7666 2015.2. 4(4)  
<http://ijar.org.in>
3. Ministry of Drinking water and Sanitation Government of India 2017 "The Sanitation Health Impact Assessment Study"  
<https://swachhbharat.mygov.in>
4. <https://sbm.mygov.in>
5. <https://en.m.wikipedia.org>
6. <https://www.india.gov.in>
7. <https://pmindia.gov.in>
8. <https://ncbi.nib.gov>
- 9.

## विद्यासागर नौटियाल की कहानियों में सामाजिक जीवन

करूणा गायकवाड़

डॉ. जयपाल सिंह प्रजापति

1. शोधार्थी, पण्डित सुन्दरलाल शर्मा (मुक्त) विश्वविद्यालय, बिलासपुर, छत्तीसगढ़
2. सहायक प्राध्यापक, पण्डित सुन्दरलाल शर्मा (मुक्त) विश्वविद्यालय, बिलासपुर, छत्तीसगढ़

**शोध सारांश:-**साहित्य समाज का दर्पण होता है। साहित्यकार अपने समाज का एक हिस्सा होता है। साहित्यकार जिस समाज में रहता है उस समाज के भोगे हुए यथार्थ का चित्रण उसके साहित्य में परिलक्षित होता है। विद्यासागर नौटियाल जी का सम्पूर्ण जीवन उत्तराखण्ड के टिहरी गढ़वाल क्षेत्र में व्यतीत हुआ। उनके सम्पूर्ण साहित्य में पहाड़ी जीवन, लोक-संस्कृति का विशिष्ट रूप दिखाई देता है। उनकी कहानियों में पहाड़ी समाज का यथार्थ चित्रण परिलक्षित होता है। पहाड़ी समाज की आस्था, लोक-विश्वास, रुढ़ियों, अंधविश्वासों सभी का निरूपण नौटियाल जी की कहानियों की विशेषता रहा है। उनकी कहानियों के पात्र तात्कालिक समाज में व्याप्त भ्रष्टाचार, शोषण, कुप्रथाओं के दंश के पीड़ित आम आदमी की व्यथा को प्रकट करते हैं।

साहित्य में पाठकों का ध्यान पहाड़ी जीवन की ओर आकर्षित करना नौटियाल जी ध्येय रहा है। नौटियाल जी ने अपनी कहानियों के माध्यम से पहाड़ी ग्रामीण परिवेश की सामाजिक समस्याओं का चित्रण किया है। जैसे-गरीबी, भ्रष्टाचार, जातिवाद, बेरोजगारी, सामाजिक अन्याय आदि।

**कुंजी शब्द :-**पहाड़ी जीवन, यथार्थ, कुप्रथा, सामाजिक अन्याय।

साहित्य समाज का दर्पण होता है। साहित्यकार अपने समाज का एक हिस्सा होता है। साहित्यकार जिस समाज में रहता है उस समाज के भोगे हुए यथार्थ का चित्रण उसके साहित्य में परिलक्षित होता है। कहानी की सामाजिकता के सदर्भ में प्रसिद्ध आलोचक अमृतराय कहते हैं कि 'किस्सा कहने का सुनने की आदिम भूख से ही कहानी का जन्म हुआ है, और अपने इस जन्मजात गुण या स्वभाव की रक्षा करने से वह जीवित रह सकती है क्योंकि कहानी सामाजिक विधा है, जन्म से ही। एक आदमी कहानी कहता है, दूसरा आदमी सुनता है; वही दूसरा आदमी समाज है और यही कहानी की सामाजिकता का आधार है।''

विद्यासागर नौटियाल जी अपने आस-पास के पर्वतीय परिवेश (टिहरी गढ़वाल) से बहुत ज्यादा प्रभावित हुए हैं। इसी कारण उनका पूरा साहित्य ही पर्वतीय प्रदेश में व्याप्त निर्धनता, भौगोलिक विषमता से जन्मी समस्याओं, बेरोजगारी और विभिन्न जीवन की विडम्बनाओं का चित्रण रहा है। कहानीकार के रूप में नौटियाल जी ने कहानियों में विविध पहाड़ी नर-नारियों के चित्रों के माध्यम से पाठकों का ध्यान पहाड़ी जीवन की ओर आकर्षित किया है। उन्होंने टिहरी गढ़वाल के गाँव-गाँव का भ्रमण करते हुए वहाँ की वास्तविक परिस्थितियों को पास से देखा। नौटियाल जी स्वयं मानते हैं कि उन्होंने अपनी कहानियों में हमेशा पहाड़ को आदमी से जोड़कर देखा है।

नौटियाल जी लेखन को सामाजिक दायित्व मानते थे। 'अपने को अपने समाज का ऋणी मानते हुए उससे उन्नत होने की छटपटाहट में लिखता हूँ। साहित्य मेरे लिए मौज-मस्ती का साधन नहीं, कहीं ऊपर पहुँचने-चढ़ने की कोई अस्थायी सीढ़ी नहीं, जिन्दगी की एक जरूरत है। लेखन के काम को मैं एक फर्ज के तौर पर अंजाम देता हूँ। किसी भी प्रकार की हड़बड़ी के बैगर लिखता हूँ और किसी की फरमाइश नहीं लिखता हूँ। जो मन में आए वह लिखता हूँ। सिर्फवही लिखता हूँ।''

नौटियाल जी ने पहाड़ी जीवन को करीब से देखा पहाड़ी जीवन में मानव एवं पालतू पशुओं के रिश्ते और पशुओं के प्रति बालक मन में जागती संवेदनाओं के भावों का चित्रण किया। किसान अपने प्राकृतिक परिवेश एवं पशुओं से अभिन्न रूप से एकाकार हो कर रहता है। देव मंदिरों में पशुओं की बलि दिये जाने की प्रथा तथा गरीब लोगों पर रियासती कर्मचारियों का अत्याचार एवं हाड़तोड़ मेहनत के बाद भी भरपेट भोजन न मिलना गरीबों की यह स्थिति देखकर नौटियाल जी के अंदर लिखने की इच्छा बलवती हुई। नौटियाल जी पहाड़ी समाज में पहाड़ी नारी से सर्वाधिक प्रभावित हुए हैं। नारी की अंतहीन पीड़ा को उन्होंने अपनी कहानियों के द्वारा प्रदर्शित किया है। उनकी पहली कहानी 'मूकबलिदान' में एक नव-विवाहित की ससुराल में बीमार स्थिति में देखभाल के अभाव में मृत्यु हो जाने पर आधारित थी। नारी जीवन पर केंद्रित उनकी प्रमुख कहानियाँ 'सोना', 'घास', 'पीपल', 'फट जा पंचधार' आदि हैं। नौटियाल जी नारी को समाज में पुरुषों की बराबरी करते देखना चाहते थे।

'सोना' कहानी में समाज में प्रचलित स्वर्ण-आभूषण प्रियता की प्रवृत्ति को चित्रित किया गया है। 'सोना' कहानी की नायिका का विवाह उसी घर में किया जाता है, जहाँ से छः तोले सोने की नथ शादी में मिल सके। सोना नथ के वजन से होने वाली असह्य पीड़ा को घर की इज्जत, मान-मर्यादा के नाम पर सहने की मजबूर है।

'घास' कहानी की नायिका रूपसा का पति फौज में भर्ती हो गया है। घर गृहस्थी की सारी जिम्मेदारी रूपसा पर आ जाती है। पहाड़ी ग्रामीण अर्थव्यवस्था में रोजगार के लिए जवानों का दूर क्षेत्रों में काम करना आवश्यक हो जाता है जिससे घर में स्त्री पूरी जिम्मेदारी का निर्वहन अकेली करती है। बीमार भैंस के लिए घास लेने जंगल जाने पर पतरोल और पुलिस वालों द्वारा उसका दैहिक भोषण किया जाता है।

'फट जा पंचधार' की नायिका रक्खी बंधुआ मजदूर की बेटी है।

जाति की शुद्ध होने के कारण ठाकुर वीरसिंह द्वारा उसे अपनाया नहीं जाता है पंचायत द्वारा अन्याय होने पर रक्खी को गाँव से निष्कासित कर दिया जाता है। वह अपने साथ हुए अन्याय का किसी भी तरह विरोध नहीं कर पाती है शेष जीवन गुफा में रह कर व्यतीत करती है। वह अपनी अंतिम इच्छा को प्रकट करते हुए कहती है- ' -मैं चाहती हूँ कि पंचधार फट जाए। भूकम्प का एक झटका आए, तगड़ा भूचाल और इस पहाड़ का जोड़-जोड़ हिल उठे। पंचायत के तप्पड़ से यमुना माई के फाट तक के ढगारों, ढलानों में बेशुमार गहरी चौड़ी-चौड़ी दरारें पड़ जाएँ और पंचधार खंड-खंड हो जाए।

-भूख, नंगेपन और तिरस्कार के नुकीले काँटों की सेज पर टिके मेरे अपंग शरीर में अब ज्यादा दम नहीं, पर इस गुफा में बैठकर मैं उसी भूचाल का इंतजार कर रही हूँ। मैं उसी दिन को देखने के लिए जिन्दा हूँ।'<sup>3</sup> सास-बहुओं के संबंधों पर आधारित कहानियों में 'बहुओं का ईमान' 'समय की चोरी' 'मूक बलिदान', 'उस चिड़िया के बोल' और 'यह बामण पन टूटे' आदि है। ग्रामीण अर्थ व्यवस्था में स्त्री पर घर के काम-काज के साथ-साथ खेतों में कार्य सहयोग की जिम्मेदारी होती है। गढ़वाली संस्कृति में बहू का मोल देकर विवाह करने की कुप्रथा के कारण ससुराल में उस से अत्याधिक परिश्रम करवाया जाता है। सास द्वारा बहुओं को प्रताड़ना खाना को कम देना, गलती होने पर शारीरिक दंड देना, क्षमता से अधिक कार्य करवाना को दर्शाया गया है। 'एक शिकायत सब की' कहानी में बताया गया है कि हर स्त्री को अपनी माँ सही लगती है सास से शिकायत होती है। स्त्री अपनी सास द्वारा स्वयं अत्याचार को सहती है। जब खुद सास बनती है तो अपनी बहू से स्वयं वैसा ही बर्ताव करती है।

'बहुओं का ईमान' कहानी में पारोती जब बहू होती है तो स्वयं अपने सास द्वारा प्रताड़ित होती है खाने-पीने के चीजों के लिए भी तरसती है। परन्तु जब पारोती स्वयं सास बनती है तो अपनी बहू से भी वैसा व्यवहार करती है जैसा उसकी सास उससे करती है।

जमींदारी प्रथा में बंधुआ मजदूरों की स्थिति, का यथार्थ चित्रण किया गया है। 'फट जा पंचधार' ' 'कर्ज दार' और 'कुंवारी धार बोलेगी' कहानियों में बंधुआ मजदूरों के जीवन यथार्थ को दर्शाया गया है।

'कुंवारीधार बोलेगी' कहानी में हलिया (हल चलाने वाला) फकीर की स्थिति को बताया गया है जिसका पूरा जीवन केवल अपने मालिक प्रतापसिंह को खुश करने लिए है। मालिक नाखुश, जीवन बेकार है। खेत में हल जोतते-जोतते उसकी मृत्यु हो जाती है।

'खच्चर फाणू नहीं होते' कहानी में गरीब खच्चर पर सामान ढोने वाले फाणू की दशा को दर्शाया गया है। फाणू चुनाव की सामाग्री को ले जाने के काम मिलने पर अपनी प्रसिद्धि की कल्पना कर गदगद होता है अपने को चुनाव प्रक्रिया का महत्वपूर्ण अंग मानता है। फिर खच्चर के मर जाने पर वापस दरिद्रता की जिन्दगी बिताता है।

मनमोहन ठाकुर ने इस कहानी के विषय लिखा है- 'किस सहजता से आपने पूँजीवाद की परतें उघाड़ दी हैं। रश्क होता है आपकी सशक्त लेखनी से।'<sup>4</sup> पहाड़ी सामाजिक अर्थ व्यवस्था पशुपालन पर निर्भर करती है। 'दूध का स्वाद' कहानी में बताया गया है कि पशु के दूध पर भी पालक परिवार का हक नहीं होता। घर के बच्चे भी कभी दूध का स्वाद नहीं चख पाते हैं। नौटियाल जी ने कहानियों में पति-पत्नी के संबंधों का चित्रण किया गया है। वैवाहिक प्रथा नुसार बड़े भाई की पत्नी ही अन्य भाइयों की पत्नी बनती है। 'फट जा पंचधार' कहानी में यौन संतुष्टि के अभाव में वीरसिंह

बंधुआ मजदूर की शुद्ध बेटी रक्खी को अपने घर ले आता है। वीरसिंह रक्खी के पूछने पर तुम मुझे क्यों लाये हो प्रश्न का उत्तर देते हुए कहता है-

' -- मुझे एक हम उग्र सुंदर और जवान औरत की जरूरत थी। और मैं रात में औरत के साथ सोना चाहता था। तुझे इसलिए लाया। तू नीच है इसलिए मेरे भाई तुझे अपने साथ नहीं सुला सकते।'<sup>5</sup> बैमेल विवाह की सामाजिक समस्या पर प्रकाश डाला गया है। समाज में माता-पिता बेटी के जन्म से उसे बड़ा करने में जो खर्चा करते हैं। उसे विवाह के समय वर पक्ष से वसूल करना चाहते हैं। पिता द्वारा अपनी बेटी का मोल लेकर विवाह करने की कुप्रथा को चित्रित किया गया है। 'अपनी पारी मौन' कहानी में सबला अपने पिता से अपनी गाय गौरी को बेचने के लिए मना कर देती है।

सबला का पिता बल्लू अपनी बेटी से बहुत प्रेम करता था। सबला की मर्जी के बिना बल्लू कोई काम नहीं करता था। बल्लू अपने पर कर्ज होने के कारण गाय का सौदा न होने पर समवयस्क बूढ़े द्वारा सबला का मोलभाव करने पर भूल जाता है कि सबला उसकी प्यारी बेटी है। वह जानता है समाज में विवाह के लिए बेटी की राय नहीं ली जाती है। 'एक समवयस्क बूढ़े से बल्लू अपनी बेटी का मोल-भाव कर रहा था। अरे सबला को तो तूने देख ही लिया है। वह तो मेरी दस हजारियाँ बाँद है।'<sup>6</sup> 'माटी खाँयँ जानवरों' कहानी के माध्यम से नौटियाल जी ने बताया है कि आज इंसान प्रवृत्ति स्वार्थ की होती जा रही है अपनी पत्नी के मरने के बाद अपने छोटे भाई के परिवार के साथ रहता था छोटे भाई के तिरस्कार के कारण फ़ू का मन आहत हो जाता है। वह आत्महत्या करने की सोचता है। अपना सभी पुराना कर्जा चुका कर वह निर्णय करता है कि वह भागीरथी के जल में डूबकर अपनी जीवन लीला समाप्त कर देगा। वह नहीं चाहता कि कोई मृत्यु के पश्चात उसके शरीर को छूये वह अपने हाथ को दाग देकर (जलाकर) नदी के पानी में कूदकर अपने जीवन को खत्म करके अपने मृत देह को मछलियों का भोजन बनाकर उन्हें तृप्त करना चाहता है। अपनों की उपेक्षा से आहत होकर अपने आत्मसम्मान को बचाने के लिए फत्तू मृत्यु को चुनना श्रेयकर मानता है। समाज में बड़े बुजुर्गों की उपेक्षा की जाती है जिससे वे अपने जीवन को व्यर्थ समझने लगते हैं। 'मुलझिम अज्ञात' कहानी के माध्यम से लेखक न्याय प्रणाली की सड़ी-गली व्यवस्था की उजागर करते हैं। किमलू के घर डाका पड़ता है। वह उसकी शिकायत थाने में करता इसके लिए उसे और रूपए खर्च करने पड़ते हैं वकीलों की फ़ीस शहर जाने का खर्च करता रहता है। पेशी में न उपस्थित होने पर किमलू को रात जेल में गुजारनी पड़ती है। किमलू न्याय व्यवस्था को अब समझ गया है। जबकि मुलझिम अभी तक पकड़ाया नहीं गया है। न्याय पाना एक आम आदमी के लिए आसान नहीं है। न्याय के इंतजार में आम आदमी अपने जीवन एवं पूंजी से हाथ धो बैठता है।

पर्वतीय परिवेश में स्त्रियों का स्थान मर्द के बराबरी का नहीं था अपितु उसे एक व्यक्ति के तौर पर भी समाज में मान्यता नहीं थी। नौटियाल जी ने अपनी कहानियों में समाज में नारी की वास्तविक स्थिति का चित्रण किया है। कुछ भी बनावटी दिखाने का प्रयास नहीं किया। वास्तविक स्थिति के अनुरूप उसकी कहानियों को ज्यादातर नारियों द्वारा अपने ऊपर होने वाले अत्याचारों का कोई विरोध नहीं किया जाता है वे चुपचाप अन्याय को सहन कर लेती हैं। वे इस संदर्भ में लिखते हैं- 'मेरी कहानियों में ज्यादातर नारियाँ अपने ऊपर होने वाले अत्याचारों को चुपचाप बर्दाश्त करती लगेगी। 'मूकबलिदान', 'अपनी पारी मौन', 'सोना' 'समय की चोरी' माटीवाली' और 'उस चिड़िया के बोल'; की नारियाँ 'परीदेश की कहानियाँ' की बिन्दो

जैसी नहीं है। विद्रोह तो दूर की बात वे प्रतिरोध तक करती नहीं लगती। मेरे मन में सवाल यह उठता रहा है कि विद्रोह लेखक करता है कि उसके पात्र करते हैं? अगर समाज में विद्रोह का कोई आसार नजर न आ रहा हो तो लेखक के बनावटी विद्रोह करवा देने से रचना को कितना बल मिल सकेगा? मेरा मानना है कि समाज की वास्तविक परिस्थितियों को परिवर्तित किए बगैर कागजी प्रतिरोध कोई मायने नहीं रखता। किसी प्रतिरोध, विद्रोह या बगावत की कोई प्रॉवसी नहीं हो सकती।<sup>17</sup>

विषम भौगोलिक पहाड़ी परिवेश में जीवन यापन एक विकट समस्या है। नौटियाल जी ने सम्पूर्ण टिहरी क्षेत्र के गाँव-गाँव का भ्रमण कर वहाँ की वास्तविक समस्याओं को अपनी कहानियों के माध्यम से विश्वभर के सम्मुख लाने का कार्य किया। गढ़वाली लोकसंस्कृति उसकी विशिष्ट पहचान नौटियालजी की कहानियों की विशेषता रही है। नौटियालजी ने टिहरी बाँध के विस्थापितों के लिए संघर्ष किया वे उन विस्थापितों की भोगी पीड़ा का चित्रण साहित्य के माध्यम से करना चाहते थे। वे बहुत कुछ लिख चुके थे और बहुत कुछ लिखने की उनकी तमन्ना थी।

**निष्कर्ष:-** सामाजिक परिवेश में परिवर्तन के फलस्वरूप सामाजिक समस्याओं में परिवर्तन आया है। पहाड़ी समाज में अनेक विसंगतियाँ जैसे- स्त्री-पुरुष संबंध, जातिगत भेदभाव, गरीबी, सामाजिक कुरीतियाँ दिखाई देती हैं। नौटियाल जी ने अपनी कहानियों के माध्यम उन विसंगतियों को उजागर करने में सफल हुए हैं। नौटियाल जी की कहानियों में आम आदमी की तकलीफें, समाज में नारी की निम्नस्थिति, मानवीय पीड़ा का वर्णन, अनैतिकता तथा शोषण जैसी सामाजिक विसंगतियों को उजागर करके जनता को जागरूक करने के उद्देश्य में सफल हुए हैं।

उनकी मृत्यु पर प्रसिद्ध कवि लीलाधर जगूड़ी का कहना है, “वो काफ़ी ऊर्जावान साहित्यकार थे उनका जाना इसलिए भी दुर्भाग्यपूर्ण है कि काफ़ी कुछ अधूरा रह गया, वो अभी भी लिख ही रहे थे और उनके पास लिखने के लिए काफ़ी कुछ था, उनसे काफ़ी उम्मीदें थी पहाड़ के जीवन और समाज का जैसा चित्रण उन्होंने किया वो दुर्लभ है।”<sup>18</sup>

**संदर्भ सूची:-**

1. राय, अमृत, सं. इन्द्राथ मदान, हिन्दी कहानी पहचान और परख, पृ. सं. -76
2. नौटियाल, विद्यासागर, मोहन गाता जाएगा, राधाकृष्ण प्रकाशन दिल्ली, पृ. सं.- 15
3. नौटियाल, विद्यासागर, मेरी कथा-यात्रा, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. सं.-80
4. नौटियाल, विद्यासागर, मोहन गाता जाएगा, राधाकृष्ण प्रकाशन दिल्ली, पृ. सं.-34
5. नौटियाल, विद्यासागर, मेरी कथा-यात्रा, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. सं.-66
6. वही, पृ. सं. -319
7. वही, पृ. सं.-8

# स्वच्छता और स्वास्थ्य के प्रति समाज का अभिमुखीकरण

फरहा नाज़

डॉ. राजेश कुमार सिंह

1. शोधार्थी, समाजशास्त्र विभाग, सरदार भगत सिंह रा. स्ना. महाविद्यालय, रुद्रपुर, ऊधमसिंह नगर
2. एसोसिएट प्रोफेसर, समाजशास्त्र विभाग, सरदार भगत सिंह रा. स्ना. महाविद्यालय, रुद्रपुर, ऊधमसिंह नगर

सारांश:-स्वच्छ और स्वस्थ जीवन मानवता के लिए एक महत्वपूर्ण अंश है। अच्छे स्वास्थ्य के बिना, कोई भी व्यक्ति अपने जीवन में सकारात्मक विकास नहीं कर सकता है। स्वस्थ नागरिक स्वस्थ समाज और स्वस्थ राष्ट्र के निर्माण में महत्वपूर्ण योगदान कर सकता है। स्वास्थ्य का अर्थ बीमारियों की अनुपस्थिति के साथ ही व्यक्ति का शारीरिक, मानसिक और सामाजिक रूप से समर्थ होना है। स्वच्छता भी मानव समुदाय के लिए आवश्यक गुण है। यह विभिन्न बीमारियों से बचाव में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है और खुशहाली और सुखी जीवन की आधारशिला होती है। गांधी जी ने स्वच्छता को 'सबसे बड़ा धर्म' बताया था, जो भारतीय समाज के लिए महत्वपूर्ण सिद्ध होता है। स्वच्छता और स्वास्थ्य के बीच गहरा संबंध होता है। स्वच्छता के अभाव में व्यक्ति अनेक रोगों से पीड़ित हो सकता है। इसलिए, स्वस्थ जीवन जीने के लिए स्वच्छता को महत्वपूर्ण माना जाता है।

प्रस्तावना:-स्वस्थ जीवन प्रत्येक मनुष्य के लिए एक वरदान है। अच्छे स्वास्थ्य के बिना मनुष्य अपने जीवन में एक सकारात्मक विकास नहीं कर सकता है। स्वस्थ नागरिक ही स्वस्थ समाज और एक स्वस्थ देश के निर्माण में अपना महत्वपूर्ण योगदान दे सकता है। संस्कृत में कहावत है कि शरीर माद्यम खलु धर्म साधनम् अर्थात् शरीर ही सब कुछ है। विश्व स्वास्थ्य संगठन ने सन् 1948 में स्वास्थ्य को परिभाषित करते हुए कहा कि, 'किसी व्यक्ति की शारीरिक, मानसिक और सामाजिक रूप से अच्छे होने की स्थिति को स्वास्थ्य कहते हैं। अतः स्वास्थ्य केवल बीमारियों की अनुपस्थिति का नाम नहीं है, बल्कि किसी व्यक्ति का शारीरिक, मानसिक और सामाजिक रूप से स्वस्थ होना (समस्या विहिन होना) ही स्वास्थ्य है।'

स्वच्छता मानव समुदाय का एक आवश्यक गुण होता है। यह विभिन्न बीमारियों से बचाव के सरलतम उपायों में एक प्रमुख उपाय माना जाता है। स्वच्छता खुशहाली और सुखी जीवन की आधारशिला है। कहा जाता है कि 'सत्य के बाद स्वच्छता का स्थान है'। इसी विषय में गाँधी जी का कहना था कि 'स्वतंत्रता के लिए कुछ समय इंतजार किया जा सकता है, लेकिन स्वच्छता के लिए ऐसा करना सम्भव नहीं है।' उन्होंने स्वच्छता को 'सबसे बड़ा धर्म' बताया। स्वच्छता का अर्थ होता है, 'हमारे शरीर, मन और हमारे चारों तरफ की चीजों को साफ होना।

स्वच्छता और स्वास्थ्य का आपस में गहरा सम्बन्ध है। स्वच्छता के अभाव में व्यक्ति बहुत से रोगों से ग्रस्त हो जाता है। मनुष्य स्वस्थ तभी रह सकता है जब वो अपने दैनिक दिनचर्या में स्वच्छता (साफ-सफाई) को

महत्वपूर्ण मानता हो। सेहतमंद जीवन का आनंद लेने के लिए अपने स्वास्थ्य के हर पहलू का अत्यधिक ध्यान रखना चाहिए। अच्छा स्वास्थ्य बनाये रखना कई कारकों पर निर्भर करता है जैसे कि हम किस तरह का भोजन खाते हैं, कैसा पानी पीते हैं, किस तरह के वातावरण में हम सांस लेते हैं, नियमित व्यायाम करते हैं या नहीं। इसी सन्दर्भ में यह पेपर बहुत जरूरी है।

शोध अभिकल्प:-प्रस्तुत शोध पत्र में उत्तराखण्ड के ऊधमसिंह नगर जनपद के रुद्रपुर तहसील के पत्थरचट्टा और सैनिक पुनर्वास कालोनी के निवासियों से संगृहीत आकड़ों से स्वच्छता और स्वास्थ्य के प्रति समाज का अभिमुखीकरण का अध्ययन किया गया है। इससे सम्बन्धित तथ्यों के संकलन हेतु पूर्ण रूप से गूगल फॉर्म का प्रयोग किया गया है। गूगल फॉर्म में सरल एवम् स्पष्ट प्रश्नों को रखा गया है, जिसका उत्तर वे आसानी से दे सकें। साथ ही द्वितीयक आकड़ों के लिए विभिन्न पुस्तकों, पत्र, पत्रिकाओं एवं शोध पत्रों का प्रयोग किया गया है।

शौचालय की स्थिति:-भारत सरकार ने समाज के विकास के लिए समय-समय पर विभिन्न योजनाएँ बनाई हैं। जिसमें से एक योजना स्वच्छ भारत अभियान, जो कि 2 अक्टूबर 2014 में शुरू की गई, जिसके तहत हर घर में शौचालय होना आवश्यक है। खुले में शौच करने से जहाँ वातावरण में कीटाणु या वायरस फैल जाता है वहीं दूसरी ओर शौचालय में पानी की समुचित व्यवस्था नहीं होने व शौचालय से आने के बाद अच्छी तरह से हाथ नहीं धोने से व्यक्ति मलेरिया, टाइफाइड, हैजा, डायरिया, कुपोषण, हुकवार्म आदि विभिन्न संक्रामित रोगों से ग्रसित हो जाता है। इसी सन्दर्भ में उत्तरदाताओं से उनके शौचालय के विषय में पूछा गया और वो किस स्थिति में हैं? किस प्रकार वह इसकी सफाई रखते हैं तथा शौचालय से आने के बाद किस पदार्थ का वह हाथों को स्वच्छ करने के लिए प्रयोग करते हैं इसकी जानकारी प्राप्त की गई।

सारणी संख्या -01

उत्तरदाताओं के शौचालय की स्थिति का वितरण

क्रम संख्या	शौचालय	आवृत्ति	प्रतिशत
1	हाँ	41	68.33
2	नहीं	19	31.67
3	योग	60	100.00

उपर्युक्त सारणी- 01 में समाविष्ट आंकड़ों से ज्ञात होता है कि 68.33 प्रतिशत उत्तरदाताओं के यहाँ शौचालय बना हुआ है, तथा 31.67

प्रतिशत उत्तरदाता आर्थिक स्थिति के कारण आज भी घर से बहार खुले में शौच करने पर विवश है ।

#### सारणी संख्या- 02

##### शौचालय से आने के बाद हाथ साफ करने का वितरण

क्रम संख्या	विवरण	आवृत्ति	प्रतिशत
1	सिर्फ पानी से	03	05.00
2	साबुन से	47	78.33
3	सेनेटायजर	07	11.67
4	साफ नहीं करते	02	03.33
5	अन्य	01	01.67
6	योग	60	100.00

प्रतिदर्श सारणी संख्या-02 में उत्तरदाताओं का शौचालय से आने के बाद हाथ किस पदार्थ से धोते हैं का विवरण प्रस्तुत किया गया है जिसके अनुसार 78.33 प्रतिशत उत्तरदाता साबुन, 11.67 प्रतिशत उत्तरदाता सेनेटायजर, 05.00 प्रतिशत उत्तरदाता सिर्फ पानी व 01.67 प्रतिशत उत्तरदाता किसी अन्य पदार्थ को हाथ साफ करने में इस्तेमाल करते हैं, वहीं 03.33 प्रतिशत उत्तरदाता शौचालय से आने के बाद हाथ साफ नहीं करते हैं ।

**स्वास्थ्य शिक्षा:-**स्वस्थ शरीर एक नेमत है, स्वस्थ शरीर में स्वस्थ मस्तिष्क का निवास होता है। स्वस्थ जीवन के लिए स्वास्थ्य शिक्षा की जागरूकता महत्वपूर्ण है। स्वास्थ्य शिक्षा बीमारियों के लक्षण, उपचार, और बचाव के बारे में जागरूकता प्रदान करता है।

#### सारणी संख्या- 03

##### स्वास्थ्य शिक्षा जागरूकता के विषय में उत्तरदाताओं का वितरण

क्रम संख्या	स्वास्थ्य शिक्षा जागरूकता	आवृत्ति	प्रतिशत
1	हाँ	17	28.33
2	नहीं	43	71.67
3	योग	60	100.00

उपरोक्त सारणी से ज्ञात होता है कि 28.33 प्रतिशत उत्तरदाता को स्वास्थ्य शिक्षा की जानकारी है तथा 71.67 प्रतिशत उत्तरदाता को स्वास्थ्य शिक्षा का कोई इल्म नहीं है ।

**स्वास्थ्य शिक्षा नहीं प्राप्त करने का कारण:-**

#### सारणी संख्या- 04

##### उत्तरदाताओं का स्वास्थ्य शिक्षा प्राप्त करने में आने वाली बाधाओं का वितरण

क्रम संख्या	कारण	आवृत्ति	प्रतिशत
1	शिक्षा की कमी	15	34.88
2	जागरूकता का कमी	15	34.88
3	रुचि नहीं है	02	04.66
4	अन्य	11	25.58
5	योग	43	100.00

उपरोक्त सारणी- 04 के तथ्यों के विश्लेषण से विदित होता है कि 69.76 प्रतिशत उत्तरदाता शिक्षा व जागरूकता की कमी के कारण स्वास्थ्य शिक्षा से अवगत नहीं है। 04.66 प्रतिशत उत्तरदाताओं को रुचि नहीं है तथा 25.58 प्रतिशत उत्तरदाता अन्य कारणों की वजह से स्वास्थ्य शिक्षा की जानकारी नहीं प्राप्त कर पाते हैं।

**स्वास्थ्य उपचार में बाधाएं:-**कुछ सामाजिक-आर्थिक स्थितियाँ ऐसी होती हैं जो व्यक्ति या समुदाय को स्वास्थ्य सेवाओं तक पहुंचने में बाधा

डाल सकती हैं। स्वास्थ्य उपचार की बड़ी बाधा आर्थिक हो सकती है। अधिकांश उपचार और दवाओं की लागत महंगी होती है, जिसके कारण गरीब और मध्यम वर्ग लोग इन उपचारों को समय से नहीं ले पाते हैं। वहीं कुछ लोग चिकित्सीय उपचार के स्थान पर घरेलू और झाफ-फूक पर विश्वास करते हैं।

#### सारणी संख्या- 05

##### उत्तरदाताओं का स्वास्थ्य सम्बन्धित उपचार में आने वाली बाधाओं का वितरण

क्रम संख्या	स्वास्थ्य सम्बन्धित उपचार बाधाएं	आवृत्ति	प्रतिशत
1	हाँ	32	53.33
2	नहीं	28	46.67
3	योग	60	100.00

उपरोक्त सारणी संख्या-05 से ज्ञात होता है कि 53.33 प्रतिशत उत्तरदाताओं को उपचार कराने में बाधाएं आती हैं तथा 46.67 प्रतिशत उत्तरदाताओं को उपचार कराने में कोई दिक्कत नहीं आती हैं।

**स्वास्थ्य उपचार नहीं प्राप्त करने का कारण:-**

#### सारणी संख्या- 06

##### उत्तरदाताओं का स्वास्थ्य उपचार में आने वाली बाधाओं से सम्बन्धित वितरण

क्रम संख्या	स्वास्थ्य उपचार में बाधाएं	आवृत्ति	प्रतिशत
1	सामाजिक स्थिति	06	18.75
2	आर्थिक स्थिति	18	56.25
3	स्वास्थ्य जागरूकता की कमी	05	15.65
4	अन्य	03	09.35
5	योग	32	100.00

उपरोक्त सारणी के तथ्यों से विदित होता है कि 56.25 प्रतिशत उत्तरदाताओं को उपचार कराने में आर्थिक स्थिति बाधा बनती है। 18.75 प्रतिशत सामाजिक स्थिति, 15.65 प्रतिशत स्वास्थ्य जागरूकता की कमी व 09.35 प्रतिशत उत्तरदाता अन्य बाधाओं के कारण उचित उपचार नहीं करा पाते हैं।

**खाना खाने से पहले और खाने के बाद हाथ धोने की स्थिति:-**खाना खाने से पहले और खाने के बाद हाथ धोना एक महत्वपूर्ण स्वास्थ्य आदत है। इसका मुख्य उद्देश्य खाने से पहले हाथों को स्वच्छ करना होता है ताकि भोजन के समय किसी भी प्रकार के कीटाणुओं, धूल या किसी अन्य विषैले पदार्थ शरीर को हानि नहीं पहुंचा सकें।

#### सारणी संख्या- 07

##### खाना खाने से पहले और खाने के उपरान्त हाथ धोने की स्थिति का वितरण

क्रम संख्या	हाथ धोने की स्थिति	आवृत्ति	प्रतिशत
1	हाँ	59	98.33
2	नहीं	01	01.67
3	योग	60	100.00

उपरोक्त सारणी से ज्ञात होता है कि अधिकांश 98.33 प्रतिशत उत्तरदाता खाना खाने से पहले हाथ धोते हैं।

**प्रतिदिन व्यायाम:-**मनुष्य की महान संपत्ति उसका स्वास्थ्य ही होता है। स्वास्थ्य केवल शारीरिक ही नहीं मानसिक और आत्मिक भी होता है, जो व्यक्ति केवल शरीर को स्वस्थ रखकर स्वस्थ और सुखी जीवन का लाभ लेना चाहते हैं, वह सफल नहीं हो पाते। समग्र स्वास्थ्य के लिए व्यायाम व योग युक्त जीवन अति आवश्यक है। शारीरिक व मानसिक गतिविधि जो आप स्वस्थ रहने या मजबूत बनने के लिए करते हैं, वह व्यायाम है।

#### सारणी संख्या- 08

**उत्तरदाताओं का प्रतिदिन व्यायाम करने की स्थिति का वितरण**

क्रम संख्या	व्यायाम की स्थिति	आवृत्ति	प्रतिशत
1	हाँ	32	53.33
2	नहीं	28	46.67
3	योग	60	100.00

सारणी संख्या- 08 में समाविष्ट आकड़ों के सांख्यिकीय परिकलन से पता चलता है कि प्रतिदर्श में 53.33 प्रतिशत उत्तरदाता प्रतिदिन व्यायाम करते हैं तथा 46.67 प्रतिशत उत्तरदाता व्यायाम नहीं करते हैं।

**बीमार हो जाने की स्थिति में चिकित्सा प्रणाली के प्रयोग को महत्व देने की स्थिति का वितरण:-** आज चिकित्सा विज्ञान ने बहुत तरक्की कर ली है। बीमारी से निजात पाने के लिए विभिन्न चिकित्सीय प्रविधियों का उपयोग किया जा रहा है। इसी विषय में उत्तरदाताओं से जानकारी प्राप्त करने का प्रयास किया गया है।

**सारणी संख्या-09**

**चिकित्सा प्रणाली के प्रयोग के विषय में उत्तरदाताओं का वितरण**

क्रम संख्या	चिकित्सा	आवृत्ति	प्रतिशत
1	घरेलू नुस्खे	17	28.33
2	आयुर्वेदिक	12	20.00
3	होम्योपैथिक	13	21.67
4	एलोपैथिक	11	18.33
5	अन्य	07	11.67
6	योग	60	100.00

उपरोक्त सारणी संख्या-09 इंगित करती है कि अधिकांश 28.33 प्रतिशत उत्तरदाता इलाज के लिए घरेलू नुस्खों का प्रयोग करते हैं। 21.67 प्रतिशत उत्तरदाता होम्योपैथिक, 21.67 प्रतिशत प्रतिशत आयुर्वेदिक, 18.33 प्रतिशत एलोपैथिक व 11.67 प्रतिशत उत्तरदाता अन्य विधि से इलाज करवाते हैं।

**स्वास्थ्य जांच-स्वास्थ्य देखभाल में नियमित चिकित्सा जांच एक आवश्यक भूमिका निभाता है।** नियमित स्वास्थ्य जांच से स्वास्थ्य समस्याओं के किसी भी शुरुआती लक्षण की पहचान की जा सकती है। समस्याओं का जल्दी पता लगने का मतलब है कि आपके प्रभावी उपचार की सम्भावना बढ़ जाती है।

**सारणी संख्या-10**

**उत्तरदाताओं की नियमित स्वास्थ्य जांच के विषय में उत्तरदाताओं की स्थिति का वितरण**

क्रम संख्या	स्वास्थ्य जांच	आवृत्ति	प्रतिशत
1	हाँ	22	36.67
2	नहीं	38	63.33
3	योग	60	100.00

उपरोक्त सारणी संख्या- 10 के विवरण से स्पष्ट होता है कि 36.67 प्रतिशत उत्तरदाता नियमित स्वास्थ्य जांच नहीं करवाते हैं तथा 63.33 प्रतिशत उत्तरदाता स्वास्थ्य जांच करवाने में रुचि रखते हैं।

**नशीले पदार्थ:-** आधुनिक युग में फैशन के नाम पर नशा करना लोगों का शौक बनता जा रहा है। नशीले पदार्थ के सेवन से जहाँ व्यक्ति शारीरिक व मानसिक रूप से कमजोर होता जाता है वही दूसरी ओर नशीले पदार्थ पारिवारिक कलह का कारण बनते हैं। अब्राहिम एच.ए.एस.महमूद एवं अन्य ने (2016) में अपने अध्ययन में पाया कि, नयी पीढ़ी की मुख्य समस्या

ड्रग्स सेवन है। उन्होंने कहा कि 18-25 वर्ष की आयु समूह के युवा सबसे अधिक मात्रा में मादक पदार्थों का सेवन करते हैं।

**सारणी संख्या-11**

**उत्तरदाताओं की नशीले पदार्थ का सेवन करने की स्थिति का वितरण**

क्रम संख्या	नशीले पदार्थ का सेवन	आवृत्ति	प्रतिशत
1	हाँ	26	43.33
2	नहीं	34	56.67
3	योग	60	100.00

उपरोक्त सारणी संख्या- 11 के विवरण से स्पष्ट होता है कि 43.33 प्रतिशत उत्तरदाता नशीले पदार्थों का सेवन करते हैं, वहीं दूसरी ओर अधिकांश 56.67 प्रतिशत उत्तरदाता नशीले पदार्थों के सेवन से दूर हैं।

**सारणी संख्या- 12**

**उत्तरदाताओं का नशीले पदार्थों के सेवन का वितरण**

क्रम संख्या	नशीले पदार्थ	आवृत्ति	प्रतिशत
1	एल्कोहल	02	07.69
2	तम्बाकू	04	15.39
3	बीड़ी- सिगरेट	14	53.85
4	अन्य	06	23.07
5	योग	26	100.00

उपरोक्त सारणी इंगित करती है कि अधिकांश 53.85 प्रतिशत उत्तरदाता बीड़ी- सिगरेट का सेवन करते हैं। 15.39 प्रतिशत तम्बाकू, 07.69 प्रतिशत एल्कोहल व 23.07 प्रतिशत उत्तरदाता अन्य नशीले पदार्थों का सेवन करते हैं।

**उत्तरदाताओं का स्वास्थ्य सेवाओं तक पहुँच व नहीं पहुँचने की समस्या की स्थिति:-** मानव विकास सूचकांक के अनुसार अच्छे स्वास्थ्य पर सबका अधिकार होता है, जो व्यक्तियों की वास्तविक स्वतंत्रता में वृद्धि करती है। इसका उद्देश्य है लोगों को लम्बी और स्वस्थ आयु प्राप्त करने के लिए अवसर प्रदान करना, ज्ञान प्राप्ति के अवसर तथा वांछनीय जीवन स्तर प्राप्त कराना। इसी विषय को लेकर उत्तरदाताओं से उनके स्वास्थ्य सेवाओं तक पहुँच की स्थिति का विवरण लिया गया।

**सारणी संख्या-13**

**उत्तरदाताओं का स्वास्थ्य सेवाओं तक पहुँच की स्थिति का वितरण**

क्रम संख्या	स्वास्थ्य सेवाओं तक पहुँच	आवृत्ति	प्रतिशत
1	हाँ	24	40.00
2	नहीं	36	60.00
3	योग	60	100.00

उपरोक्त सारणी संख्या- 13 में समाविष्ट तथ्यों से ज्ञात होता है कि 40.00 प्रतिशत उत्तरदाताओं की स्वास्थ्य सेवाओं तक पहुँच है व 60.00 प्रतिशत उत्तरदाताओं की स्वास्थ्य सेवाओं तक पहुँच नहीं है।

**सारणी संख्या-14**

**स्वास्थ्य सेवाओं तक नहीं पहुँचने की स्थिति का उत्तरदाताओं का वितरण**

क्रम संख्या	समस्या	आवृत्ति	प्रतिशत
1	धन की समस्या	15	41.67
2	यातायात की समस्या	02	05.56
3	अच्छे डॉ. उपलब्ध नहीं होने की समस्या	11	30.55

4	अन्य	08	22.22
5	योग	36	100.00

उपरोक्त सारणी संख्या-14 के तथ्यों के विश्लेषण से विदित होता है कि 41.67 प्रतिशत उत्तरदाता धन की कमी के कारण स्वास्थ्य सुविधा तक नहीं पहुँच पाते हैं। 30.55 प्रतिशत अच्छे डॉ. उपलब्ध नहीं होने की समस्या के कारण, 05.56 प्रतिशत यातायात की समस्या के कारण व 22.22 प्रतिशत अन्य कारणों से स्वास्थ्य सुविधा से वंचित रहते हैं।

**स्वच्छ और स्वस्थ वातावरण:-** स्वच्छ और स्वस्थ वातावरण लोगों को बेहतर जीवन की दिशा में सुधार करता है। शुद्ध वातावरण कई रोगों के लिए औषधि का कार्य करती है, वहीं अशुद्ध वातावरण के कारण प्रत्येक 5 में 4 व्यक्ति स्वास्थ्य सम्बन्धी समस्याओं से घिरे हुए हैं जैसे- सांस लेने में दिक्कत, तनाव, अनिद्रा, बहरापन, सिर दर्द, हृदय रोग आदि। इसी विषय में उत्तरदाताओं से स्वच्छ और स्वस्थ वातावरण से सम्बन्धित जानकारी प्राप्त करने का प्रयत्न किया गया है।

#### सारणी संख्या-15

घर के आस-पास स्वच्छता बनाये रखने में योगदान देने की स्थिति के विषय में उत्तरदाताओं का वितरण

क्रम संख्या	स्वच्छता बनाये रखने में योगदान	आवृत्ति	प्रतिशत
1	धन द्वारा	05	08.33
2	आपस में एक दूसरे के साथ मिलकर	46	76.67
3	दूसरे साथियों को आदेश देकर	03	05.00
4	अन्य	06	10.00
5	योग	60	100.00

सारणी संख्या-15 से प्रदर्शित होता है कि अधिकांश 76.67 प्रतिशत उत्तरदाता आपस में एक-दूसरे के साथ मिलकर आस-पास के वातावरण को स्वच्छ बनाये रखने में अपना योगदान देते हैं। 08.33 प्रतिशत धन द्वारा, 05.00 प्रतिशत दूसरे साथियों को आदेश देकर तथा 10.00 प्रतिशत उत्तरदाता अन्य प्रकार से आस-पास के वातावरण को स्वच्छ करने में अपना महत्वपूर्ण योगदान देते हैं।

**गीला कूड़ा और सुखा कूड़ा:-** 2 अक्टूबर 2014 में शुरू स्वच्छ भारत मिशन, जिसमें एकल उपयोग वाले प्लास्टिक के इस्तेमाल को बंद करने का अभियान भी शामिल है। आज लोग भले ही खुले में शौच से मुक्त हो गये हों, मगर देश कूड़े-करकट और कचरे से मुक्त नहीं हुआ है। कूड़े-करकट को उपयोगी संसाधनों में बदलने पर ध्यान केन्द्रित करना चाहिए। इसी विषय पर उत्तरदाताओं से प्रश्न पूछा गया है।

#### सारणी संख्या-16

गीला कूड़ा और सुखा कूड़ा अलग अलग रखने की स्थिति के विषय में उत्तरदाताओं का वितरण

क्रम संख्या	गीला कूड़ा और सुखा कूड़ा	आवृत्ति	प्रतिशत
1	हाँ	43	71.67
2	नहीं	17	28.33
3	योग	60	100.00

उपरोक्त सारणी संख्या-16 से विदित होता है कि 71.67 प्रतिशत उत्तरदाता गीला और सुखा कूड़ा अलग रखते हैं तथा 28.33 प्रतिशत उत्तरदाता गीला और सुखा कूड़ा अलग नहीं रखते हैं।

**निष्कर्ष:-** प्रस्तुत शोध पत्र में स्वच्छता और स्वास्थ्य के प्रति

समाज का अभिमुखीकरण के सम्बन्ध में अध्ययन करने का प्रयास किया गया है। इसके अंतर्गत उत्तरदाताओं से स्वास्थ्य और स्वच्छता से सम्बन्धित प्रश्न पूछे गये जिसमें पाया गया है कि कुछ उत्तरदाताओं के यहाँ शौचालय बना हुआ है, तथा कुछ उत्तरदाता आर्थिक स्थिति के कारण आज भी घर से बहार खुले में शौच करने पर विवश है। अधिकांश उत्तरदाता शौच के उपरान्त हाथ साबुन से, सेनेटायजर से तथा कुछ उत्तरदाता सिर्फ पानी से हाथ साफ करते हैं, वहीं 03.33 प्रतिशत उत्तरदाता शौचालय से आने के बाद हाथ साफ नहीं करते हैं। अधिकतर उत्तरदाताओं को उपचार कराने में उनकी आर्थिक स्थिति, सामाजिक स्थिति, स्वास्थ्य जागरूकता की कमी बाधा बनती है। कुछ उत्तरदाता अन्य बाधाओं के कारण उचित उपचार नहीं करा पाते हैं। आधे से ज्यादा उत्तरदाता प्रतिदिन व्यायाम करते हैं। अधिकतर उत्तरदाता इलाज के लिए घरेलू नुस्खों का प्रयोग करते हैं, कुछ उत्तरदाता होम्योपैथिक, कुछ आयुर्वेदिक, कुछ एलोपैथिक व कुछ अन्य विधि से इलाज करवाते हैं। निष्कर्ष रूप से कहा जा सकता है कि वर्तमान में चिकित्सीय विज्ञान की इतनी तरक्की करने के बाद भी अधिकतर उत्तरदाता इलाज के लिए घरेलू नुस्खों को महत्व देते हैं। अधिकांश उत्तरदाता नियमित स्वास्थ्य जांच नहीं करवाते हैं। कुछ उत्तरदाता नशीले पदार्थों का सेवन करते हैं, अल्प संख्या में उत्तरदाता धन की कमी के कारण स्वास्थ्य सुविधा कुछ अच्छे डॉ. उपलब्ध नहीं होने की समस्या के कारण, कुछ यातायात की समस्या के कारण व कुछ अन्य कारणों से स्वास्थ्य सुविधा से वंचित रहते हैं। अधिकांश उत्तरदाता गीला और सुखा कूड़ा अलग रखते हैं।

#### सन्दर्भ सूची:-

1. विश्व स्वास्थ्य संगठन 'द वर्ल्ड हेल्थ रिपोर्ट' 2016 जिनेवा, डब्ल्यू.एच.ओ.2016
2. योजना पत्रिका, अक्टूबर 2019, पृ. 64
3. योजना पत्रिका, नवम्बर 2019, पृ. 29
4. Oxford Learner's Dictionaries <https://www.oxfordlearnersdictionaries.com>
5. U. Albaloushi, S. Alomair and S. Ali, "Attitude towards performance of medical checkups: a survey from eastern province of Saudi Arabia," International Journal of Engineering Research and publications, vol. 2, pp.57-59,2015
6. अब्राहिम, एच. ए. (2016), जर्नल ऑफ फार्मसी एंड बायोलॉजिकल साइंसेस, वॉल्यूम-11(1), पृष्ठ संख्या 16
7. Baru, S.(1998). Mahbub ul Haq and Human Development: A Tribut. Economic and Political Weekly,33(35): 2275-2279
8. <https://www.orfonline.org/research/swachh-bharat-mission/achivements/challenges>

## मध्यप्रदेश में नगरीय स्थानीय स्वशासन के विभिन्न आयाम : एक अध्ययन

सोनेलाल लोधी

शोधार्थी, राजनीति विज्ञान, लोक प्रशासन एवं मानवाधिकार अध्ययनशाला, विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन, मप्र.

सारांश:-स्थानीय स्वशासन व्यवस्था वर्तमान समय में लोकतांत्रिक मूल्यों स्वतंत्रता, समानता एवं भ्रातृत्व पर आधारित राजनीतिक निर्णय में सत्ता के विकेंद्रीकरण एवं जन सहभागिता के पारस्परिक घनिष्ठ संबंधों पर आधारित है। सर्वोच्च सद्गुण का जनता में निहित होना लोकतंत्र की मूल मान्यता है। जिसका अभिप्राय है कि सर्वोच्च शक्ति अधिक से अधिक विकेंद्रीकरण करें। जिसमें व्यक्ति की भागीदारी को प्रत्यक्ष रूप से शासन कार्यों में अवश्य स्थान देना है। लोकतांत्रिक विकेंद्रीकरण की इस भावना को मूर्त रूप देने में इन स्थानीय संस्थाओं का महत्वपूर्ण स्थान है। इन संस्थाओं को जहाँ लोकतंत्र की आधारशिला कहा जाता है वहीं आ संस्थाएं जनता को जागरूक कर लोकतंत्र की शिक्षा भी देती है। भारत जैसे देश में जहाँ दो तिहाई से अधिक जनसंख्या ग्रामीण क्षेत्रों में रहती हो वहाँ स्थानीय स्वशासन की भूमिका अत्यधिक महत्वपूर्ण हो जाती है। भारत का विस्तृत भूभाग कल्याणकारी सरकार के विस्तृत कार्य एवं दायित्व स्थानीय समस्याओं का दिन प्रतिदिन व्यापक होना आदि चुनौतियों के समाधान के लिए स्थानीय शासन ही कारगर है।

**लेख शब्द:-**स्थानीय स्वशासन, लोकतांत्रिक मूल्य, विकेंद्रीकरण, स्वायत्तता, सहभागिता, नगरीय शासन, नगर निगम, नगर परिषद, नगर पालिका परिषद, छावनी बोर्ड, अधिनियम, चुनौतियाँ, समस्याएं, महत्व, सफलता, समीक्षा।

**प्रस्तावना:-**स्थानीय स्वशासन की आवश्यकता और महत्ता को सैद्धांतिक स्तर पर भी अपेक्षित है जबकि व्यवहार में एक ऐसे स्वस्थ वातावरण का निर्माण किया जाना चाहिए जिसमें स्थानीय स्वशासन के सभी सदस्यों के सहभागिता सुनिश्चित हो सके और लोकतांत्रिक मूल्यों को सफल बनाया जा सके। 'स्थानीय स्वशासन' राष्ट्रीय विकास और लोगों की प्रभावकारी सहभागिता के लिए आवश्यक है और समस्त लोकतांत्रिक प्रक्रिया की अखंडता के लिए परिहार अंग है।

स्थानीय स्वशासन का अर्थ स्थानीय संस्थाओं द्वारा संचालित वह शासन है जिन्हें स्थानीय स्तर पर क्षेत्र की जनता द्वारा चुना जाता है तथा इनका राष्ट्रीय सरकार के नियंत्रण में रहते हुए भी कुछ मामलों में अपनी स्वायत्तता, अधिकार तथा जिम्मेदारी प्राप्त हो। जिसका उपयोग किसी सर्वोच्च अधिकारी के नियंत्रण के बिना सब विवेक से कर सकें। स्थानीय स्वशासन को ऐसा शासन भी कहा जाता है जो अपने सीमित क्षेत्र में प्रदत्त अधिकारों का उपयोग करता है किंतु स्थानीय स्वशासन सर्वोच्च नहीं होते इन पर राज्य या केंद्र सरकारों का नियंत्रण होता है। इसका सर्वश्रेष्ठ उदाहरण भारत की स्थानीय संस्थाओं का निर्माण राज्य सरकारों द्वारा किया जाना है। यह

स्थानीय संस्थाएँ राज्य द्वारा प्रदत्त अधिकारों का उपयोग करती हैं तथा विधान मंडल द्वारा निर्मित कानून को मूर्त रूप प्रदान करती हैं। अतः यह सामान्यतः कहा जा सकता है कि राज्य सरकार स्थानीय स्वशासन पारस्परिक संबंधों में एक दूसरे के ऊपर निर्भर रहते हुए प्राप्त अधिकारों की सीमा में रहते हुए बहुत कुछ स्वतंत्र हैं। भारतीय स्थानीय स्वशासन को दो स्तरों-नगरीय एवं ग्रामीण में विभक्त किया गया है नगरीय क्षेत्र में स्थानीय स्वशासन प्रशासन के अंतर्गत संचालित इकाइयाँ-नगर निगम, नगर परिषद, नगर पालिकाएं, छावनी बोर्ड संस्था हैं। इसी प्रकार ग्रामीण क्षेत्रों में ग्रामीण जनता की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए पंचायती राज व्यवस्था के तरह त्रिस्तरीय संरचना-जिला पंचायत, क्षेत्र पंचायत एवं ग्राम पंचायत को अपनाया गया है। स्थानीय स्वशासन को विभिन्न देशों में अलग-अलग नाम से संबोधित किया जाता है इंग्लैंड में इसे 'स्थानीय सरकारें' कहा जाता है। फ्रांस में प्रीफेक्ट व्यवस्था तथा अमेरिका में 'नगर पालिका शासन' कहते हैं। किंतु भारत में इन्हें स्थानीय स्वशासन के नाम से जाना जाता है।

**मध्य प्रदेश में नगरीय स्थानीय स्वशासन:-**ग्रामीण क्षेत्र में जो कार्य ग्राम पंचायत द्वारा किए जाते हैं नगरों एवं शहरों में इस प्रकार के कार्य नगर पालिका, नगर परिषद या नगर निगम करती है। मध्य प्रदेश के पुनर्गठन के पश्चात प्रथम नगर पालिका अधिनियम 1956 लागू किया गया और नगर निगमन का गठन किया गया। वर्ष 1957 में नगर निगम संरचना को सुदृढरण बनाने के लिए राज्य सरकार द्वारा गठित समिति द्वारा वर्ष 1958 में प्रस्तुत रिपोर्ट के आधार पर मध्य प्रदेश नगर पालिका अधिनियम 1961 पारित किया गया। 74 में संविधान संशोधन 1992 के द्वारा नगरीय निकायों को संवैधानिक दर्जा प्रदान किया गया मध्य प्रदेश इस अधिनियम का पालन करने वाला प्रथम राज्य है। 74 में संविधान संशोधन के क्रियान्वयन हेतु मध्य प्रदेश नगर पालिका अधिनियम 1994 पारित किया गया इस अधिनियम के अंतर्गत मध्य प्रदेश में त्रिस्तरीय नगरीय निकाय की व्यवस्था की गई।

**शोध-प्रविधि:-**प्रस्तुत शोध पत्र विवरणत्मक एवं ऐतिहासिक विश्लेषणात्मक पद्धति का प्रयोग करते हुए द्वितीयक स्रोतों के अध्ययन पर आधारित है। जिसमें विषय से संबंधित पुस्तकों, मध्य प्रदेश के नगरीय स्थानीय स्वशासन के बारे में पहले से प्रकाशित शोध पत्रों, लेखों और पुस्तकों का अध्ययन किया गया।

**अध्ययन के उद्देश्य:-**मध्य प्रदेश के नगरीय स्थानीय स्वशासन की वर्तमान स्थिति का विश्लेषण करना। नगरीय स्थानीय स्वशासन के सामने आने वाली चुनौतियों और अप्सर की पहचान करना। मध्य प्रदेश के नगरीय स्थानीय स्वशासन के विकास के लिए सुझाव और अनुसंधान प्रदान करना।

नगरीय स्थानीय स्वशासन के माध्यम से सामुदायिक भागीदारी और सशक्तिकरण को बढ़ावा देने के तरीकों की खोज करना।

**नगर निगम:-**शहरी ग्रामीण संबंध समिति ने सिफरिश की थी कि इस क्षेत्र में नगर निगम स्थापित किए जाएं। जहाँ जनसंख्या 5 लाख व आय एक करोड़ रूपए वार्षिक हो। सामान्यतः एक लाख से अधिक जनसंख्या वाले नगरों में नगर निगम स्थापित किया जाता है। इसकी सदस्य संख्या न्यूनतम 40 व अधिकतम 70 हो सकती है। नगर निगम परिषद में उस क्षेत्र के लोकसभा राज्यसभा व विधानसभा के पदेन सदस्य होते हैं छह विशेषज्ञ सदस्य राज्यपाल द्वारा नियुक्त होते हैं! महापौर नगर निगम का राजनीतिक प्रमुख होता होता है, इसे उस शहर का प्रथम नागरिक भी कहा जाता है। मेयर इन कौंसिल नगर निगम की मुख्य समिति है। इस समिति का महापौर पदेन अध्यक्ष होता है। व इसकी सदस्य संख्या महापौर समेत 11 होती है। इसकी सहायता के लिये 10 अनुविभागीय समितियाँ होती हैं जिनके अध्यक्ष मेयर इन कौंसिल के सभी सदस्य होते हैं। व इन सभी समितियों की सदस्य संख्या अध्यक्ष सहित 7 होती है।

महापौर एवं पार्षद का चुनाव प्रत्यक्ष रीति से होता है! पहले महापौर को अप्रत्यक्ष रूप से चुना जाता था व कार्यकाल पांच वर्ष होता है। 1997 में संशोधन कर महापौर का कार्यकाल पाँच वर्ष व चुनाव प्रत्यक्ष विधि से किया जाता है। स्पीकर अप्रत्यक्ष रूप से पार्षदों द्वारा चुना जाता है। इससे पहले स्पीकर को उपमहापौर कहा जाता है। नगर निगम का मुख्य कार्यपालन अधिकारी नगर निगम का आयुक्त होता है। जिसे राज्य सरकार नियुक्त करती है, तथा इसका वेतन नहर निगम कोष से दिया जाता है। इसका भी कार्यकाल 5 वर्ष का होता है। राज्य का पहला नगर निगम:- (जबलपुर 1864 ) वर्तमान में नगर निगम की संख्या मध्यप्रदेश में 16 है। जो निम्न हैं 1. इंदौर, 2. भोपाल, 3. जबलपुर, 4. ग्वालियर, 5. सागर, 6. रीवा, 7. उज्जैन, 8. खंडवा, 9. बुरहानपुर, 10. रतलाम, 11. देवास, 12. सिंगरौली, 13. कटनी 14. सतना, 15. छिंदवाड़ा, 16.मुरैना।

**नगर पालिका:-**सामान्यतः बीस हजार से एक लाख जनसंख्या वाले नगरों में नगर पालिका स्थापित की जाती है। इसकी सदस्य संख्या न्यूनतम 15 व अधिकतम 40 हो सकती है। नगर पालिका का प्रशासनिक प्रमुख मुख्य कार्यपालन अधिकारी होता है जो राज्य सेवा द्वारा चुना जाता है व जिसकी नियुक्ति राज्य सरकार करती है। एवं राजनीतिक प्रमुख नगर पालिका अध्यक्ष होता है। वर्तमान में मध्यप्रदेश में 98 नगरपालिका है। नगर पालिका परिषद में उस क्षेत्र के लोकसभा राज्यसभा व विधानसभा के पदेन सदस्य होते हैं 4 विशेषज्ञ सदस्य राज्यपाल द्वारा नियुक्त होते हैं। नगर पालिका अध्यक्ष व पार्षद का चुनाव प्रत्यक्ष विधि से व उपाध्यक्ष अप्रत्यक्ष विधि से पार्षदों द्वारा चुना जाता है। नगर पालिका की समिति को प्रेसीडेंट इन कौंसिल कहा जाता है, जिसका अध्यक्ष नगर पालिका प्रमुख होता है व इसकी सदस्य संख्या अध्यक्ष सहित 8 होती है। सात अन्य समितियाँ होती हैं जिसके अध्यक्ष प्रेसीडेंट इन कौंसिल के सभी सदस्य होते हैं, इनमें प्रत्येक समिति की सदस्य संख्या अध्यक्ष सहित 5 होती है।

**नगर पंचायत:-**नगर पंचायत संक्रमणशील क्षेत्रों में गठित की जाती है सामान्यतः पाँच हजार से बीस हजार जनसंख्या वाले नगरों में नगर पंचायत स्थापित की जाती है। इसकी सदस्य संख्या न्यूनतम 15 व अधिकतम 40 हो सकती है। नगर पंचायत परिषद में उस क्षेत्र के लोकसभा राज्यसभा व विधानसभा के पदेन सदस्य होते हैं 2 विशेषज्ञ सदस्य राज्यपाल

द्वारा नियुक्त होते हैं। नगर पंचायत अध्यक्ष व पार्षद का चुनाव प्रत्यक्ष विधि से व उपाध्यक्ष अप्रत्यक्ष विधि से पार्षदों द्वारा चुना जाता है।

नगर पंचायत का प्रशासनिक प्रमुख मुख्य कार्यपालन अधिकारी होता है जो राज्य सेवा द्वारा चुना जाता है व जिसकी नियुक्ति राज्य सरकार करती है। एवं राजनीतिक प्रमुख नगर पंचायत अध्यक्ष होता है। वर्तमान में मध्यप्रदेश में 264 नगर पंचायत हैं। नगर पंचायत की समिति को भी प्रेसीडेंट इन कौंसिल कहा जाता है, इसमें अध्यक्ष सहित 6 सदस्य होते हैं। इसकी 5 उपसमितियाँ होती हैं, जिसके अध्यक्ष प्रेसीडेंट इन कौंसिल के सभी सदस्य होते हैं ! इसमें प्रत्येक समिति के तीन तीन सदस्य होते हैं।

**नगरीय स्थानीय निकायों के समक्ष समस्याएँ:-**

1. **वित्तीय कमी:-**ज़मीनी स्तर पर सुशासन हेतु वित्तीय तंगी सबसे बड़ी बाधा बन गई है।

● **अंतर-सरकारी स्थानांतरण पर निर्भरता:-**शहरी स्थानीय सरकार राज्य की संचित निधि से सहायता अनुदान प्राप्त करने के लिये राज्य सरकारों पर बहुत अधिक निर्भर करती है।

● **राजस्व में हिस्सेदारी की गंभीर कमी:-**सामान्यतः उनके कार्यों की तुलना में उनकी आय का स्रोत अपर्याप्त होता है। उनकी आय का मुख्य स्रोत उनके द्वारा एकत्र विभिन्न प्रकार के कर हैं। हालाँकि शहरी निकायों द्वारा एकत्र किये जाते कर प्रदत्त सेवाओं पर व्ययों की पूर्ति के लिये पर्याप्त नहीं होते। यद्यपि वे कुछ नए कर भी लगा सकते हैं, लेकिन इन स्थानीय निकायों के निर्वाचित सदस्य अपने मतदाताओं को नाराज करने के भय से ऐसा करने से संकोच करते हैं।

2. **अनियोजित शहरीकरण:-**उचित योजना के अभाव में नगर निकाय सेवाओं के लिये गुणात्मक और मात्रात्मक दोनों रूप से जनसंख्या की बढ़ती आवश्यकताओं की पूर्ति करना कठिन होता है। स्थानीय निकायों की प्रशासनिक मशीनरी अपर्याप्त है। भूमि का विवेकपूर्ण उपयोग नहीं हो रहा है, स्कूल, पार्क और अस्पताल जैसी आवश्यक सुविधाओं के बिना कॉलोनियों की स्थापना की जा रही है, मलिन बस्तियों के विकास पर नियंत्रण नहीं रखा जा रहा है और यातायात भीड़ की स्थिति समस्याजनक है। इससे शहरी निर्धनता, बेरोजगारी और पारिस्थितिक क्षरण जैसे परिणाम भी उत्पन्न होते हैं।

3. **राज्य सरकार का अत्यधिक नियंत्रण:-**राज्य सरकार शहरी स्थानीय निकायों का नियंत्रण रखती है। उन पर विधायी, प्रशासनिक, न्यायिक और वित्तीय नियंत्रण उन्हें स्वशासन सरकारों के रूप में कार्य करने देने के बजाय अधीनस्थ इकाइयों में परिणत कर देता है। नगर निकायों को वैधानिक शर्तों के अनुरूप अपने बजट को संतुलित बनाए रखने की आवश्यकता होती है और उनके द्वारा लिये जाते किसी भी उधार को राज्य सरकार द्वारा अनुमोदित किया जाना होता है। केंद्र और राज्यों के विपरीत शहरी स्थानीय सरकार के स्तर पर राजस्व व्यय और पूंजीगत व्यय के बीच कोई अंतर नहीं किया जाता है।

4. **एजेंसियों की बहुलता:-**राज्य सरकार के प्रत्यक्ष पर्यवेक्षण में और शहरी स्थानीय सरकार के प्रति किसी जवाबदेही के बिना एकल प्रयोजन एजेंसियों का गठन किया जाता है। नगर निकायों को इन एजेंसियों के लिये बजट में योगदान करना होता है, जबकि वे इनके ऊपर कोई नियंत्रण शक्ति नहीं रखते। उदाहरणः राज्य परिवहन निगम, राज्य विद्युत बोर्ड, जल आपूर्ति विभाग आदि।

5. **लोगों की निम्न भागीदारी:-**साक्षरता और शैक्षिक स्तर के

अपेक्षाकृत उच्च स्तर के बावजूद शहर के निवासी शहरी सरकारी निकायों के कार्य - कारण में पर्याप्त रुचि नहीं लेते हैं। विशेष प्रयोजन एजेंसियों और अन्य शहरी निकायों की बहुलता लोगों को उनकी भूमिका सीमितताओं के बारे में भ्रमित करती है।

**नगरीय निकायों का सशक्तिकरण:-**

1. **आर्थिक रूप से स्वतंत्र बनाना:-**शहरी स्थानीय सरकारों के स्वतंत्र और वित्तीय रूप से सुरक्षित होने के लिये वित्तीय विकेंद्रीकरण अत्यंत महत्वपूर्ण है।

2. **राजस्व को सुदृढ़ करना:-**सभी वित्त आयोगों ने नगर निगम के वित्त में सुधार के लिये संपत्ति कर राजस्व बढ़ाने की आवश्यकता की अनुशंसा की है। विशेष रूप से - 12 वें वित्त आयोग ने संपत्ति कर प्रशासन में सुधार के लिये भौगोलिक सूचना प्रणाली (ळै) और डिजिटलीकरण के उपयोग को प्रोत्साहित किया। 13वें वित्त आयोग ने राज्यों की निष्पादन अनुदान पात्रता (चमतवितउदबम ळतंदज म्पहपइपसपजल) के लिये आवश्यक शर्तों में से एक के रूप में राज्य संपत्ति कर बोर्ड (जंजम चवचमतजल जंग ठवंतक) की स्थापना को अनिवार्य बनाया। राज्य संपत्ति कर बोर्ड का उद्देश्य एक पारदर्शी और कुशल संपत्ति कर व्यवस्था स्थापित करने में नगर निगमों और नगर परिषदों की मदद करना है। 14वें वित्त आयोग ने अनुशंसा की कि नगर निकायों को खाली भूमि पर कर लगाने में सक्षम किया जाए।

3. **बेहतर वित्तीय डेटाबेस:-**स्थानीय स्तर पर खातों के रखरखाव और लेखा परीक्षा के अभाव में नगर निकायों के लिये कोई सत्यापन-योग्य वित्तीय डेटा नहीं होता जिसके कारण निष्पादन अनुदान से इनकार कर दिया जाता है। 13वें और 14वें दोनों ही वित्त आयोगों ने बेहतर डेटा उपलब्धता को निष्पादन अनुदानों की प्राप्ति के लिये आवश्यक शर्त के रूप में शामिल किया।

4. **सक्रिय नागरिक भागीदारी सुनिश्चित करना:-**शासन प्रक्रिया में पारदर्शिता और जवाबदेही के लिये सक्रिय नागरिक भागीदारी की आवश्यकता है। इसे सुनिश्चित करने के लिये, शहरी स्थानीय निकाय क्षेत्रीय सभाओं और वार्ड समितियों जैसे कार्यात्मक, विकेंद्रीकृत मंच का गठन कर सकते हैं, जो निर्वाचित प्रतिनिधियों और नागरिकों के बीच चर्चा और विचार - विमर्श की सुविधा प्रदान करेगा।

5. **नागरिक शिकायत निवारण तंत्र का सुजन:-**शहरी स्थानीय निकाय शिकायतों को दर्ज करने के लिये एक प्रौद्योगिकी - सक्षम मंच स्थापित कर सकते हैं जो शहर की सरकारों को नागरिकों की आवश्यकताओं के प्रति उत्तरदायी बनाएगा। इस तंत्र के माध्यम से नागरिकों को फीडबैक देने और शिकायतें क्लोज करने की भी अनुमति दी जानी चाहिये। शहरी शासन की इन संरचनात्मक और स्थापत्य संबंधी समस्याओं को संबोधित करने से शहरों में प्रभावी सेवा वितरण सुनिश्चित होगा, जिससे नागरिकों के जीवन की गुणवत्ता में सुधार होगा।

**स्थानीय स्वशासन का महत्व:-**राज्यों में तीन स्तरीय सरकारों की व्यवस्था विधि, क्षेत्रीय राजनीतिक मूल्यों, आर्थिक विकास, सामाजिक मूल्यों तथा शासन में नागरिकों की भागीदारी को सुनिश्चित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। स्थानीय सरकारें लोगों के दिन-प्रतिदिन की आवश्यकताओं से जुड़े मामलों तथा उनकी अपेक्षाओं के अनुरूप व्यवहार करती है। एक राज्य के अनेक नगरों में सेवाओं का स्तर अलग-अलग होता है। अच्छी शहरी सरकार की यह कोशिश रहती है कि स्थानीय शासन प्रदान करने वाले संस्थान विविध प्रकार के दायित्वों को निभाते हुए अत्यधिक

जागरूकता के साथ काम करें क्योंकि देश में नगरीकरण की गति तेज है और देश की अर्थव्यवस्था में नगरों की भूमिका बहुत महत्वपूर्ण होती है। जैसे - जैसे भारत में नगरों की संख्या बढ़ेगी उनके आरौन में वृद्धि होगी और नगरों पर बेहतर शासन देने का दबाव भी बढ़ेगा एक अनुमान के अनुसार ऐसे संकेत मिल रहे हैं कि 2030 के दशक के अंत तक भारत की बड़ी आबादी महानगरों में निवास करने लगेगी। यू. एन. ट्रेडीटाट ने अपने सर्वेक्षण की रिपोर्ट में इसके महत्व को रेखांकित करते हुए लिखा है कि भारत में महत्वपूर्ण परिवर्तन हो रहे हैं उन्हें देखते हुए भारत को निरंतर सुधारो तथा आर्थिक लाभों पर विशेष रूप से ध्यान देना चाहिए। स्थानीय स्तरों की संरचनाओं का सशक्तिकरण करने के लिए यह आवश्यक है कि उन्हें लगातार सहयोग किया जाए। भारत के लिए यह जरूरी है कि वैश्विक स्तर पर अपना महत्व स्थापित करने के लिए वह क्षेत्रीय संरचनाओं के विकास पर अपना ध्यान केंद्रित करे इसके लिए स्थानीय सरकारों को आवश्यक उपकरण प्रदान करना जरूरी है जिससे वे राष्ट्रीय तथा राज्य स्तर के शासन की विशेषताओं को स्थानीय स्तर पर ला सकें।

**निष्कर्ष:-**अच्छे शहरी शासन के लिए यह जरूरी है कि स्थानीय स्वशासन के संस्थान स्वायत्त प्राप्त शानदार निकाय हों जो नागरिकों की आवश्यकताओं व अपेक्षाओं की कसौटी पर खड़ा उतरे। उच्च स्तरीय संबंधित प्राधिकरणों ने भी यह बात स्वीकार की है। यदपी सत्ता साझा करने की प्रवृत्ति अंग्रेजी शासन में भी नहीं थी तथा आजादी के बाद भी नहीं। इससे विकास की गति में कमी आई। 74 वें संविधान संशोधन द्वारा इस स्थिति में सुधार के प्रयास किए गए। फिर भी तीन दशक बीत जाने के बावजूद वास्तविक सत्ता हस्तांतरण नहीं किया जा सकता है। जैसे-जैसे नगरों का विस्तार हो रहा है तथा नगरों में आधारभूत सुविधाओं तथा सेवा प्रदान करने की कमी दिख रही है। केंद्र सरकार राज्य सरकारों के सामने ऐसी स्थितियाँ उत्पन्न करने के प्रयास कर रही है जिससे राज्य सरकारें शहरी स्थानीय निकायों का सशक्तिकरण न कर सकें। अब समय आ गया है की इन निकायों की क्षमता बढ़ाने के लिए जल्दी से जल्दी आवश्यक कदम उठाए जाएं, क्योंकि महानगर अर्थव्यवस्था रूपी गाड़ी के इंजन की तरह हैं। इन मामलों में अधिक देर लगाई गई तो परिणाम अच्छे नहीं होंगे।

**संदर्भ सूची:-**

1. शर्मा, ए. के. (2010) स्थानीय स्वशासन सिद्धांत और व्यवहार नई दिल्ली, विकास पब्लिशिंग हाउस, (पृष्ठ संख्या: 234)
2. मिश्रा, आर. के. (2008) नगरीय स्थानीय स्वशासन एक परिचय जयपुर, रावत पब्लिकेशन (पृष्ठ संख्या: 187)
3. तिवारी एस. के. (2015) मध्य प्रदेश के नगरीय स्थानीय स्वशासन का विकास, भोपाल मध्य प्रदेश पुस्तक भंडार (पृष्ठ संख्या: 321)
4. शर्मा वी. के. (2012) स्थानीय स्वशासन और नागरिक भागीदारी, नई दिल्ली अनमोल पब्लिकेशन (पृष्ठ संख्या: 145)
5. गुप्ता आर. के. (2005) नगरीय स्थानीय स्वशासन के मुद्दे और चुनौतियाँ इलाहाबाद, नवीन प्रकाशन (पृष्ठ संख्या: 210)
6. जैन एम. के. (2018) मध्य प्रदेश के नगरीय स्थानीय स्वशासन की चुनौतियाँ और अवसर, भोपाल मध्य प्रदेश पुस्तक भंडार (पृष्ठ संख्या: 278)

7. सिंह आर. पी. (2015) स्थानीय स्वशासन और नगरीय विकास नई दिल्ली, विकास पब्लिशिंग हाउस (पृष्ठ संख्या: 198)
8. शर्मा एन. के. (2012) मध्य प्रदेश के नगरीय स्थानीय स्वशासन का संगठन और कार्य, जयपुर रावत पब्लिकेशन (पृष्ठ संख्या: 156)
9. त्रिपाठी आर. के. (2010) स्थानीय स्वशासन और नागरिक सेवाएँ इलाहाबाद, नवीन प्रकाशन (पृष्ठ संख्या: 230)
10. पांडे आर. के. (2016) मध्य प्रदेश के नगरीय स्थानीय स्वशासन की आर्थिक व्यवस्था, भोपाल मध्य प्रदेश पुस्तक भंडार (पृष्ठ संख्या: 245)
11. दुबे एस. के. (2014) स्थानीय स्वशासन और पर्यावरण प्रबंधन नई दिल्ली, अनमोल पब्लिकेशन (पृष्ठ संख्या: 201)
12. मिश्रा आर. के. (2011) मध्य प्रदेश के नगरीय स्थानीय स्वशासन की प्रशासनिक व्यवस्था, जयपुर रावत पब्लिकेशन (पृष्ठ संख्या: 189)
13. शर्मा ए. के. (2016) स्थानीय स्वशासन और सामाजिक न्याय नई दिल्ली, विकास पब्लिशिंग हाउस (पृष्ठ संख्या: 216)
14. जोशी आर. के. (2017) मध्य प्रदेश के नगरीय स्थानीय स्वशासन की चुनौतियाँ और समाधान, भोपाल मध्य प्रदेश पुस्तक भंडार (पृष्ठ संख्या: 289)
15. सिंह आर. पी. (2012) स्थानीय स्वशासन और नगरीय योजना नई दिल्ली, विकास पब्लिशिंग हाउस (पृष्ठ संख्या: 182)
16. शर्मा वी. के. (2015) स्थानीय स्वशासन और नागरिक अधिकार नई दिल्ली, अनमोल पब्लिकेशन (पृष्ठ संख्या: 159)
17. भट्ट आशीष (2001) लोकतांत्रिक विकेंद्रीकरण एवं जनजातीय नेतृत्व नई दिल्ली, रावत पब्लिकेशन।
18. चोपड़ा जे. के. (2004) लोकल सेल्फगवर्नमेंट एंड म्युनिसिपल एडमिनिस्ट्रेशन दिल्ली, कॉमनवेल्थ पब्लिकेशन।
19. गोस्वामी भालचंद्र (1989) भारत का संविधान और उसमें संशोधन जयपुर, प्वाइंटर्स पब्लिशर्स।
20. प्रसाद आर. एन. (2007) अर्बन लोकल सेल्फगवर्नमेंट इन इंडिया, नई दिल्ली, मित्तल पब्लिकेशन।
21. सिसोदिया यतींद्र सिंह (2000) पंचायती राज एवं अनुसूचित जाति महिला नेतृत्व, रावत पब्लिकेशन।
22. बिजलानी एच. यू. (1977) अरबन प्रोब्लम नई दिल्ली, आई. आई. पी. ए.।
23. एस. आर. माहेश्वरी 'भारत में स्थानीय शासन' लक्ष्मीनारायण अग्रवाल प्रकाशन, आगरा (2012)
24. श्रीवास्तव दिनेश 'भारत में शहरी विकास की नई चेतना, प्रतियोगिता दर्पण, नवम अंक (2009)

## कमलेश्वर की कहानियों में स्त्री जीवन व विषमताएँ

शीशराम मीणा

शोधार्थी, हिंदी विभाग, मोहनलाल सुखाडिया विश्वविद्यालय, उदयपुर, राजस्थान

शोध सार:-प्रगतिशील वही होता है जो समय को जाँचता है, परखता है व देखता है। ये विलक्षण क्षमता मुख्य रूप से कमलेश्वर देखी जा सकती है। वर्ग से हटकर किसी चीज को मनुष्यता की दृष्टि से देखना और उसे बयान कर देना कमलेश्वर जैसे व्यक्तित्व की पहचान थी। उनकी कहानियों का आधार जीवन को जैसा का तैसा जीने वाला व्यक्तित्व रहा है अर्थात् अपने दायित्वों को अनुभव कराने वाला रहा है। उन्होंने अपनी कहानियों में स्त्री वेदना और उनके सिसकते यथार्थ को कहानियों के माध्यम से उकेरा है। साथ ही उनमें जीवन का द्वन्द्व एवं स्वतंत्रता की लड़ाई, परंपरागत जीवन मूल्यों के प्रति विद्रोह, स्व-अस्मिता की तलाश और उसकी सार्थकता, अमानवीय अनाचारों के विरुद्ध आक्रोश, समाज में व्याप्त रूढ़ियों एवं कुरीतियों के प्रति संघर्ष व आर्थिक, सामाजिक एवं राजनीतिक अव्यवस्था के विरुद्ध संघर्ष को उन्होंने अपनी कहानियों के माध्यम से अभिव्यक्त किया है।

**मूल आलेख:-**समय के साथ बहुत से बदलाव जीवन में देखने को मिलते हैं। और यही कारण है, जो पहले था वह आज नहीं है, और जो आज है, वो शायद भविष्य में वैसा देखने को नहीं मिले। यही परिवर्तन का बदलता स्वरूप जीवन है। जो गतिमान है, और निरंतर चलने वाला एक चक्र है। जो सृष्टि की शुरुवात से लेकर अंत तक चलता रहता है। मगर आज भी बहुत से ऐसे बदलाव हैं, जिनको करना मानव ने जरूरी नहीं समझा और यदि समझा भी है, तो कई ना कई उसके पक्ष को कमजोर ही रखा है। जिससे शायद उस बदलाव में वो नई क्रांतिकारी चीज नजर न आये, जिसकी वजह से आगे चलकर वह पुरुष सत्ता की बराबरी कर सके। इसलिए उस पक्ष को आज भी किसी ना किसी रूप में कमजोर ही रखा है। जिसको लेकर समय-समय पर कई बार आवाजें उठी, विद्रोह हुए, आंदोलन हुए लेकिन फिर भी उसमें बदलाव करना आज भी जरूरी नहीं समझा जाता। इसलिए साहित्य में कई बार इस विषमता को दूर करने का प्रयास किया। लेकिन वह सफल नहीं हो पाया। चाहे आप आदिकाल का परिवेश देखें या भक्तिकाल का या फिर रीतिकाल का कही भी इस विषमता को दूर करने का प्रयास ही नहीं किया गया। और यदि किसी ने इस के प्रति आवाज उठाई उसको भी समाज, देश, व विश्व के सामंतवादी समाज ने वही दबा दिया।

मगर आधुनिक युग में जरूर थोड़ा बहुत उस विषमता को दूर करने के लिए साहित्य के विद्वानों ने अपनी कलम से लेखनी लिखी। इसमें कुछ स्त्रियों ने अपनी आवाज को समाज, देश, राष्ट्र तक पहुँचाने के लिए कलम का सहारा लिया है। जिसमें महादेवी वर्मा, कृष्णा सोबती, मन्नू भण्डारी, कुसुम अंचल, पद्मा सचदेव, मैत्रेयी पुष्पा, प्रभा खेतान, रमणिका गुप्ता, कृष्णा अग्निहोत्री, चन्द्रकिरण सौनरेवसा, शीला झूनझुनवाला, चित्रा मृदुगल आदि।

महिला लेखिकाओं ने अपनी कलम के माध्यम से नारी जीवन के उस कमजोर पक्ष को ऊजागर किया है, जो आज भी समय बदलाव के साथ परिवर्तन की मांग करता है। इसके अलावा आधुनिक युग के साहित्य में अनेक साहित्यकारों ने भी अपनी और इस पक्ष के बदलाव के लिए अपनी और ध्यान खींचा है। और अपनी रचनाओं में उन सभी विषम स्थितियों को ऊजागर किया है, जिनमें आज किसी ना किसी रूप में बदलाव होना जरूरी है। चाहे वो भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, प्रतापनारायण मिश्र, बालकृष्ण भट्ट, राधाकृष्ण दास, लक्ष्मीनारायण मिश्र, महावीर प्रसाद द्विवेदी, मैथिलीशरण गुप्त, प्रेमचंद, जयशंकर प्रसाद, पंत, निराला, यशपाल, जैनेन्द्र, इलाहचंद जोशी, अज्ञेय, निर्मल वर्मा, मोहन राकेश, कमलेश्वर, राजेन्द्र यादव आदि। जिनके लेखन में स्त्री जीवन की विषमताओं को लेकर कहानी, उपन्यास, नाटक, व निबंध आदि में बहुत कुछ लिखा है। और साथ ही साथ इस समय के बदलाव में इनके द्वारा संपादित पत्रिकाओं का भी विशेष योगदान रहा है। जिनमें 'कविवचन सुधा', 'हरिश्चंद्र मेगजीन', 'बाला बोधनी', 'हिंदी प्रदीप', 'ब्राह्मण', 'सरस्वती', 'हंस', 'मर्यादा', 'सारिका', 'दिनमान', आदि अनेक पत्रिकाएँ थी, जिसमें इन्होंने भरपूर मात्रा में इस आवाज को लेकर साहित्य सृजन किया है।

कमलेश्वर ने अपने लेखन कार्य में इस समस्या को लेकर बहुत ही बारिकी से इसका चित्रण अपनी कहानियों व उपन्यासों में किया। और इसी का परिणाम है, कि 'नई कहानी आंदोलन' में इनकी 'राजा निरबंसिया' कहानी बहुत ही चर्चित रही थी। और इसी समस्या को लेकर लिखा गया इनका पहला उपन्यास 'एक सड़क सतावन गलिया' बहुत प्रसिद्ध रहा है। जिस पर आगे चलकर 'बदनाम बस्ती' नाम से फिल्म बनकर बहुत ही चर्चित रही है। इन दोनों ही रचनाओं में प्रमुख समस्याएँ रही हैं, वो स्त्री जीवन की विषमता का लेकर रही है। चाहे वो विषमता सामाजिक जीवन को लेकर हो या फिर आर्थिक, धार्मिक, सांस्कृतिक, व राजनीतिक जीवन को लेकर हो, जीवन के हर पक्ष में उसे शोषित व पीड़ित किया गया है। उसकी आवाज को दबाया गया उसे हर प्रकार से बेईज्जत किया गया। मानों वो इस सभ्य समाज में रहने लायक ही न हो। उसके जीवन को जानवर के जीवन से भी कमतर आँका गया। उसी का परिणाम रहा, जिसको लेकर कमलेश्वर ने अपनी कहानी 'राजा निरबंसिया' व 'एक सड़क सतावन गलियाँ' जैसी कालजयी रचना का निर्माण किया। आज भी चंदा व बंसिया जैसी स्त्रियाँ पुरुषवादी वर्चस्व के सामने अपने आप को कमजोर मानती हुई अंधेरे में गुमनाम जिंदगी जीते हुए दुसरो की आस में तड़पती हुई जीती रहती हैं। 'इसी भावना के अन्तर्गत ही उन्होंने सामाजिक मुक्ति के लिए स्त्री के स्वर में अपना स्वर मिलाया। यही कारण है। कि उनकी कहानियों में स्त्री अपनी पूरी गरिमा,

वास्तविकता और आत्मसम्मान की भावना के साथ उपस्थिति हुई है। स्त्री का बहुपक्षीय चित्रण करते हुए, उनकी दृष्टि स्त्री-सौंदर्य के चित्रण पर स्थिर न होकर, मानसिक भावों को परखने पर केन्द्रित रही है। पतिताओं का उद्धार, अशिक्षिताओं की शिक्षा और आधुनिक परिप्रेक्ष्य में ढलने की प्रेरणा, स्त्री-जीवन की जटिलताओं और विसंगतियों का चित्रण इनकी कहानियों में सहजता से ही मिल जाता है।<sup>1</sup> कमलेश्वर ने अपने प्रथम दशकीय समय में जो भी कहानी लिखी है, उनमें चाहे 'राजा निरबंसिया' हो या फिर 'गर्मियों के दिन', 'तलाश' व 'देवा की माँ', 'लहर लौट आई', 'मांस का दरिया हो' इन सभी कहानियों में स्त्री के प्रति जो विषमताएँ हमें समाज व परिवार में देखने को मिलती है। उन सभी पक्षों को कमलेश्वर ने चित्रण किया है। जिनमें मुख्य रूप से उच्च, मध्य, व निम्न वर्ग के रूप में समाज में देखने को मिलते हैं। जिनका स्वरूप लेखक ने अपनी कहानियों के माध्यम से बताने का प्रयास किया है।

उच्च वर्गीय स्त्री पात्रों में विषमताएँ:-कमलेश्वर की कहानियों में केवल मध्यमवर्ग व निम्न वर्ग की स्त्री पात्रों का शोषण ही नहीं दिखाया गया बल्कि उच्च वर्ग की स्त्री पात्रों में भी उसकी स्थिति को उजागर किया गया है। उनकी 'कर्तव्य' कहानी की गौहर बानू जो शाही डोलियों के माध्यम से बीजापुर जा रही होती है। और बीच रास्ते में ही उनकी डोलियों को लूट लिया जाता है। तब गौहर बानू अपने सतीत्व व अपमान के लिए हथियार उठाती है। और समाज की बनाई हुई परंपराओं को तोड़ती हुई दुश्मनों से प्रतिकार लेती है। इस तरह यदि समाज में देखा जाये यदि विवाहित स्त्री अपने प्रेमी को खत लिखती, तो उसे समाज के परंपरा के मूल्यों के प्रति विद्रोह कहा जाता है। उसी भाव बोध को कमलेश्वर की कहानी 'आत्मा की आवाज' में व्यक्त होती है। जिसमें विनती अपनी पीड़ा व भावना को अपने खत के माध्यम से प्रेमी राज को व्यक्त करती है, स्त्री जीवन अनेक जंजीरों और बंधनों से बंधा हुआ है- उसमें सतीत्व के नाम पर आडम्बर युक्त परिधि के घेरे भी हैं। जो समाज के द्वारा लगाये जाते हैं। उसका मानना कि स्त्री जीवन भी स्वतंत्र होनी चाहिए, जिससे वह अपने मन की उन कार्यों को पूरा कर सके, जिसे कहीं ना कहीं उसके अवचेतन मन में दबा दिये जाते हैं। जिसके कारण वह मन ही मन तड़पती रहती है। घुटती रहती है। मगर समाज की परंपरा व झूटे आडम्बरों को तोड़ नहीं पाती है। मगर कमलेश्वर ने यहाँ विनती के माध्यम से उन सभी अवरोधों को तोड़ते हुए दिखाया जो स्त्री के मार्ग में काँटों का-सा काम करते हैं। 'राजा निरबंसिया' में भी किस तरह राजा अपनी मेहतरानी के व्यंग्य को सुनकर बहुत दुःखी हो जाता है। और अपनी पत्नी व राजमहल को छोड़कर चला जाता है। वही दूसरी तरफ जगपति भी अपनी चाची के व्यंग्य को सुनकर चंदा की पवित्रता पर शंका करते हुए उससे दूरिया बना लेता है। मगर फिर भी स्त्री निरपराध होते हुए भी अपने सतीत्व के प्रमाण के लिए किसी ना किसी रूप में परीक्षा देनी ही पड़ती हैं, वही परीक्षा रानी द्वारा राजा को देवता के मंदिर के सामने तपस्या करके देनी पड़ती है। वही चंदा द्वारा अपने आप को जगपति से दूर रहकर परीक्षा देनी पड़ती है। इसी प्रकार उनकी कहानी 'सफेद तितलियाँ' में एक उच्च कुलीन पद का प्राप्त कर चुके पति के पत्नी की व्यथा को इस कहानी के माध्यम से व्यक्त किया है। जिसमें सुमन का पति नहीं चाहता है कि वह गर्भ धारण करे क्योंकि गर्भ धारण करने से उसकी स्त्री का सौंदर्य नष्ट हो जाएगा। 'यह सुदरंता कायम रखने के लिए है। मैं तुम्हें ऐसे ही देखना चाहता हूँ।'<sup>2</sup> इस तरह पितृसत्ता का प्रतिनिधि जसवंत सुमन के भीतर उठने वाले उस द्वन्द्व की कोई परवाह नहीं करता, जो कि स्त्री का नैसर्गिक

अधिकार है। और अंत में जसवंत की मृत्यु हो जाती है, और सुमन कभी माँ नहीं बन पाती है। और इस तरह वह जीवन के घोर-द्वन्द्व में घिर जाती है। इस तरह जिधर भी देखें स्त्री के लिए किसी ना किसी प्रकार संघर्ष दिखाई पड़ता है। जिसे वह अपने जीवन में हमेशा करती रहती है।

मध्यवर्गीय स्त्री जीवन में विषमताएँ:-मध्यवर्गीय स्त्री में जो समस्याएँ प्रमुख रूप से उभर कर आती हैं, उनमें मुख्य आर्थिक स्थिति का अभाव नजर आता है। जिससे बहुत सी स्त्री पात्र अपनी इच्छाओं की पूर्ति नहीं कर पाती हैं, उनकी बहुत-सी कामनाएँ अधुरी ही रह जाती हैं। जिससे वह जीवन से निराश व टूट जाती है। उसे संसार में कुछ भी अच्छा नहीं लगता। और बाकी बची हुई कसर को उनका परिवार पुरा कर देता है। जैसे गरीबी के कारण अधिक उम्र के व्यक्ति के साथ विवाह कर देना अर्थात अनमेल विवाह, स्वार्थवश, बिना इच्छा के बहुत से कारण हैं, जो स्त्री के जीवन और भी पीड़ादायक व कुंठा से ग्रसित कर देता है। जिसके बाद वह अपने जीवन को मानों समाज के दिखावे के नाते जी रही होती है। बाकि उसमें उत्साह व उमंग का कोई नामोनिशान नहीं रहता है। 'सीखचें' कमलेश्वर की बहुत ही महत्वपूर्ण कहानी है। जिसमें नायिका पुरानी सामाजिक जर्जर मान्यताओं को तोड़ देना चाहती हो लेकिन फिर भी उसे तोड़ नहीं पाती है। सीखचें के रूप में विद्यमान पुरानी मान्यताएँ उससे टूटती नहीं बल्कि उसे अपने जीवन को दुःखों में जीने के लिए बाध्य करती है। 'उसके पैर आपसे-आप जाकर सीखचें के पास रुक गए, उन्हें खोला.....गली में इक्के में, रिक्शे थे, खोमचे वाले भी थे, पर चमन....चमन नहीं था। भावनाओं का उफान, शक्ति क्षीण होने के कारण सीमा में सिमटकर रह गया। पलकों में उमस-सी भर गई नजरे झुक गई।'<sup>3</sup> इस कहानी में कमलेश्वर मानों व्यंग्य के द्वारा यह स्पष्ट करना चाहते हैं, कि ये सीखचें सैकड़ों वर्ष पुरानी जर्जर मान्यताओं व मर्यादाओं को तोड़ने का प्रयास करती है। जिसे वह तोड़ तो नहीं पाती मगर हिलाकर परंपरागत मूल्यों के प्रति विरोध को जरूर दिखाती है। जो उसकी नारी चेतना को व्यक्त करती है।

'अधुरी कहानी' की पात्र सुधा बहुत ही स्नेहशील व मिलनसार स्त्री है। जो हमेशा अपनी मान-मर्यादा व पारिवारिक संस्कारों को अपनी आत्मा में संजोए रखती है। मगर सुधा जिस प्रोफेसर विमल से प्रेम करती है, उसे अपना सब कुछ समर्पण कर देती है। मगर विमल उसकी भावनाओं को समझ नहीं पाता और उसके प्रेम को टुकरा देता है। तब जो पीड़ा सुधा को होती है, उसे लेकर वह विमल से कहती है। 'शादी यदि शरीर का व्यापार मात्र है तो उस संबंध में मैं कुछ कहना नहीं चाहती, किन्तु इसका संबंध यदि हृदय प्रेम स्नेह और सहयोग की भावना से भी है तो तुम इतना क्यों नहीं समझते कि अब किसी अन्य पुरुष को ये सब देने की स्थिति में मैं नहीं हूँ।'<sup>4</sup> सुधा नारी के स्वतंत्र जीवन व उसकी मानवीय गरिमा को स्थापित करने का प्रयास करती है। वह यह बात भी जानती है, कि पुरुष समाज में नारी की स्वतंत्रता नहीं है, आज भी पुरुषवादी वर्चस्व समाज में स्त्रीयों की दशा बड़ी ही दयनीय है। और शायद इसी का परिणाम की स्त्रीयों विरोध न करके इसे अपना भाग्य मान लेती है। सुधा इन परंपराओं के प्रति वह अपनी आवाज उठाकर अपने नारी चेतना को व्यक्त करती हुई दिखाई देती है।

कमलेश्वर अपनी कहानियों के माध्यम से समाज में स्त्रियों की जो विषमताएँ हमें अलग-अलग रूप में देखने को मिलती हैं, उसके उसी स्वरूप को अपनी कहानियों में उजागर करते हैं व कहते हैं, कि स्त्री चाहे अमीर हो या गरीब वह हमेशा पुरुष की धरोहर ही समझी जाती है। उसकी खुद की

अस्मिता मानों कुछ नहीं होती है। पुरुष जो चाहें वह करे जैसा चाहे वैसी बनकर रहें, यही पुरुषवादी वर्चस्व आज भी स्त्रीयों को अपने में जकड़ रहा है। कमलेश्वर की कहानी 'उपर उठता हुआ मकान' में गौरी अपने जीवन की दुःख भरी दशा को किस प्रकार काटती है। 'जब भी उसे वे दिन याद आते हैं, तो दिल में एक हूक-सी उठती है। आज भी गदली आँखों में पानी तैर आता है..... और एक संशय भीतर ही भीतर रेंगने लगता है। टीन के नीचे लेटे-लेटे उसे लगता है कि पूरी जिंदगी यों ही गुजर गई। ये ऐसे ही बेगाने बने रहे कभी किया तो बहुत प्यार किया....नहीं तो हारी बीमारी में हाल तक नहीं पूछा।' <sup>5</sup> किस प्रकार नारी विवश होकर पितृसत्तात्मक समाज में विवश होकर दुःखभरी जिंदगी जी रही है। 'जो लिखा नहीं जाता' कहानी की पात्र सुदर्शना के लिए उसका अपना सच ही उसके विवाह का रोड़ा बन जाता है। और धीरे-धीरे यह सच इतना संशयशील बन जाता है, कि सुदर्शना का वैवाहिक जीवन ही बिखर जाता है। वह पति से दूर हो जाती है। और अपने पिता के साथ रहने लगती है। वही कभी अपने आप को कमजोर नहीं होने देती, वह जानती है कि उसने कभी गलत नहीं किया, जो अतीत था, उसे वह कब का भूल चुकी। मगर उसका पति उस अतीत को वर्तमान से जोड़कर शंका के कारण उसे छोड़ देता है। जिस समाज में पुरुष भले ही अपने अतीत में बहुत कुछ कार्य किया हो, जो अनैतिक व अमर्यादित हो मगर उसे कोई कुछ नहीं कहने वाला है। वही अगर स्त्री अपने अतीत में कुछ भी कार्य करें, वह पुरुष वर्चस्ववादी समाज में मान्य नहीं है। सुदर्शना कहती हैं, कि यही तो मुमकिन नहीं है, जो सिर्फ मेरी है, तुम्हें उनमें से शायद तीन ही बता पाऊँगी, बाकी नहीं, कोई और मिलेगा उसे शायद चार बता पाऊँ... किसी और को शायद एक और बता दूँ, पर ऐसा तो कोई नहीं, जिसे सब कुछ बताया जा सके। जो बताने से बच जाता है, वही बहुत अकेला कर जाता है.....नितान्त अकेलापन भर जाता है चारों तरफ।' <sup>6</sup> सुदर्शना के द्वारा अपने पति का घर त्यागकर अपने पिता के घर रहना नारी विद्रोही का स्वरूप व्यक्त होता है। 'दूसरे' कहानी की पात्र सुनीता अपने मन से जब तक स्वतंत्र निर्णय ले पाती है। जब तक वह नौकरी करती है। मगर जब वह बेरोजगार हो जाती है, तब उसके घर वाले ही उस पर शादी का दबाव डालने लगते हैं। मानों वह अब खुद के फैसले भी नहीं ले पाती है, कैसी विडम्बना होती है, समाज में जहाँ व्यक्ति से भी ज्यादा उसके अर्थ को महत्व दिया जाता है। यहाँ कमलेश्वर स्त्री को आर्थिक रूप से स्वावलम्बी बनाने के पक्षधर दिखते हैं। सुनीता के माध्यम से जो विषमताएँ नारी के जीवन में आती हैं। उसे नारी चेतना के माध्यम से दूर करने की कोशिश करते हैं।

ज निम्नवर्गीय स्त्री पात्रों में विषमताएँ:-कमलेश्वर की कहानियों में निम्नवर्गीय स्त्री पात्रों में जो विषमताएँ देखने को मिलती हैं वह बहुत-सी कहानियों में ऊभर कर आती हैं। चाहें वो 'देवा की माँ', 'अजनबी लोग', 'धूल उड़ जाती है', 'माँस का दरिया', 'तंग गली का मकान' इत्यादि महत्वपूर्ण कहानी है, जिसमें निम्नवर्गीय शोषित,पीड़ित नारी की कथा को आधार बनाकर कमलेश्वर ने अपनी कहानियों में अभिव्यक्त किया है। 'देवा की माँ' कहानी में देश की माँ अपने पति के द्वारा त्याग दिये जाने के बाद भी दरी बनाने का काम करते हुए अपने बेटे देवा का पालन-पोषण करती है। उसे समाज में अपने चरित्र व ईमानदारी को लेकर बहुत से ताने सुनने पड़े हैं। किन्तु इन सब के बाद भी वह अपने पतिव्रत धर्म का पालन करती है। मगर जब देवा के जेल चले जाने के बाद वह अपने पति से उसे जमानत के लिए कहती है, और पति के द्वारा उसे मना कर देने पर वह बहुत टूट जाती है।

उसके सामने पुरानी यादें बिल्कुल ताजा होने लगती हैं, और तब अंधेरे में बैठे-बैठे उसके सामने जैसे सत्य उजागर होता गया था.....वह अब तक जिन परछाईयों पर विश्वास करती आई थी। देवा के पिता जी पर....पर वह कितनी बड़ी प्रवंचना की.....कितना बड़ा धोखा वह देते आ रहे हैं। कितनी सफाई से वही सारी जिम्मेदारी टाल गए थे और कितनी खुबसूरती से उसके नारीत्व और पत्नीत्व को बातों से तृप्त कर गये थे।' <sup>7</sup> इस घटना के बाद देवा की माँ ने अपनी मांग में पति का सिंदूर लगाना ही छोड़ दिया। उसने उन सभी परंपरागत मूल्यों का खंडन किया जो समाज में नारी को विवाहिता के रूप में जकड़ कर रखते हैं।

'धूल उड़ जाती है' में नसीबन समाज के उन लोगों के सामने मुँहतोड़ जवाब देती है, जिस समाज ने उसके प्रेम, दया, स्नेह भावना को चोरी का नाम देकर उसको बेइज्जत करते हैं। नसीबन ने कभी नहीं सोचा जिस समाज में वह दूसरों की सेवा करती है। वही समाज उसके जीवन की प्रतिष्ठा पर इतना बड़ा इल्जाम लगाएगा। वह तो बच्चन के बेटे रघुवा की हड्डी टूट जाने पर उसके मदद के लिए जाती है, मगर उसी बच्चन के द्वारा उस पर चोरी का इल्जाम लगाया जाता है। तब वह बच्चन व साँई की बातों का प्रतिकार करती है। और कहती है, कि 'बोल मेरे मुँह पर कह, कौन-सा खजाना चुरा लाई हूँ, तेरा जो पीठ पीछे काना फूँसी करता है, हिम्मत हो तो सामने कह लगा इल्जाम।' <sup>8</sup> इस तरह नसीबन पुरुषवादी वर्चस्व समाज को ललकारती है, उनका मुँह तोड़ विरोध करती है। और नारी शक्ति के अस्तित्व को समाज में स्थापित करती है। और अपने उपर लगे चोरी के इल्जाम का मुँहतोड़ जवाब देती है। 'माँस का दरिया' कहानी भी वेश्या जीवन जीने वाली जुगनू की बड़ी ही मार्मिक कहानी है। जो अपने जीवन से पुरी तरह टूट चुकी है, जिसके पास आगे के भविष्य के लिए मानों कोई सपना ही नहीं हो, और यदि सपना नजर आता भी है तो तकलीफे उसके जीवन में इतनी ज्यादा है कि मानों आशा कि किरण भी धूमिल हो जाती है। जुगनू वेश्या के साथ तपेदिक की मरीज भी है, अस्पताल से छुट्टी मिलने के बाद भी उसके जीवन में वेश्यापन के काम के अलावा और कोई काम नहीं है। वह बाजार के लोगों के कर्ज में डूब जाती है। जिसके लिए उसे फोड़े के दर्द के होते हुए भी वेश्या का कार्य करना पड़ता है, उसके इस दर्द को कोई नहीं समझ पाता है। वह वक्त और हालात के सामने मजबूर हैं। एक दिन खून थूका तो बिकलीस आसमान सर पर उठा लेती है। 'अरे, इसे डलवाओं कही बाहर ! हम मारना है? तो अम्मा ने उसे डाँटा था, पर भीतर से वह भी बदल गई थी।' <sup>9</sup>

किस तरह पुरुष तो पुरुष बल्कि जिनके साथ रहकर वह वेश्या का काम करती है, वह भी मानों उसे बेकार कचरे की भाँति बाहर फेंक देना चाहते हैं, मानों किसी में भी संवेदना नाम की कोई चीज ही नहीं है। यही मनोदशा कमलेश्वर की दूसरी कहानी 'इतने अच्छे दिन' में कमली की स्थिति है। उसके सामने कोई आशा ही नहीं है। चारों तरफ अकाल की महामारी है, जिसमें चारों तरफ भूख,कपड़ा व रहने के लिए आवास कुछ भी नहीं है। जो बहुत मुश्किल से मिलता है। वह और उसका भाई अकाल में मरे हुए इंसानों व जानवरों की हड्डियों को बेचकर जीवन जीते हैं। मगर फिर भी उनका काम नहीं चलता और कमली को अपना शरीर बेचना पड़ता है। एक दिन वह अपने भाई बाला से कहती है। कि चंदू से कह दे, क्या फायदा? घर बसाऊँगी तो लौट के गाँव के बाहर झोपड़ी डालनी होगी। कुँआ सूखेगा तो फिर इधर ही भागना पड़ेगा। तब एक-एक लोटे पानी के लिए ब्राह्मण टाकुर छोड़ दंगे क्या? अकाल तो हम लोगों के लिए पड़ता है, बाकी सबके पास तो बरसों के

लिए दाना है, पानी है, ...यहाँ कोई यह तो नहीं पूछना-कौन जात है? अपनी जरूरत से लोग आते हैं, कल नहीं आयेंगे तो इसी सराय के बर्तन-भाड़े मांज-धोकर चलता रहेगा। ऐसे दिन बार-बार हाथ नहीं आते ... चंदू से कह दे क्या फायदा...?'<sup>10</sup> उसी प्रकार 'एक थी विमला' में कमलेश्वर ने बहुत ही विस्तार से इस तथ्य पर प्रकाश डाला है कि स्त्री के संबंध में नैतिक मूल्यों का महत्व तभी तक होता है। जब तक परिस्थितियाँ उसके अनुकूल होती हैं मगर जब उसके सामने प्रश्न जिजीविषा का आ खड़ा होता है तो नैतिकता-अनैतिकता की बातें बेमानी लगती हैं। इस कहानी की पात्र विमला भी परंपरागत मूल्यों से ग्रस्त है क्योंकि उसकी पारिवारिक और आर्थिक स्थितियाँ उसके अनुकूल नहीं हैं। वह नौकरी करती है लेकिन घर की जिजीविषा की समस्या कभी खत्म होने का नाम ही नहीं लेती है। 'माँ बीमार है, बीमारी के लिए पैसा नहीं, छोटे भाई-बहन भूखे, ऐसे में वह नैतिकता और अनैतिकता की बात सोचे या उनका पेट भरे। बस एक निर्णय लेकर वह दुकानदार बलवंत के समक्ष जाकर मुस्कराती है। वही लज्जा है जो पहले तो पारंपरिक मूल्यों के कारण दुखों से भरा जीवन बिताती है, लेकिन बाद में परंपरागत मूल्यों के प्रति विद्रोह व्यक्त कर अस्मिता बेचकर अनेक पुरुषों के साथ संबंध बनाती है और ऐशो-आराम वाला जीवन बिताती है।'<sup>11</sup> और अंत में जब उसके सामने समस्या तब बन जाती है जब उसके साथ संबंध बनाने वाला दिलिप उसके साथ शादी करने से मना कर देता है। और उसे फिर से उसी नरकीय जीवन में धकेल देता है। किस तरह समाज के साथ-साथ प्रकृति भी इंसान की बेरी हो जाती है, जिसके कारण गरीबी में समाज के सामने अनेक समस्याएँ खड़ी हो जाती है।

**निष्कर्ष:-** इस तरह बहुत सारी विषमताएँ समाज में नारी के सामने बनी हुई हैं, जिससे ना तो वह उनका विरोध कर पाती है, ना ही उनको तोड़ पाती है मगर कुछ स्त्रियाँ होती हैं, जो उनका सामना करती हैं, उनका विरोध करती हैं। मगर अधिकांशतः स्त्री इसे अपना भाग्य मानते हुए उसे सहन करती रहती है। जिसके कारण आज भी समाज में पुरुषवादी वर्चस्व बना रहता है। और स्त्रियाँ उसी प्रकार अपने अवचेतन मन में अपनी पीड़ा व दर्द को दबाये रहती हैं। कमलेश्वर की कहानियाँ अपने समय की उसी भाव बोध को व्यक्त करने में समर्थ हैं, जहाँ आज भी ऐसी घटनाएँ वर्तमान परिदृश्य में देखने को मिलती हैं।

**संदर्भ सूची :-**

1. करुणा शर्मा : कमलेश्वर के कथा-साहित्य में स्त्री-विमर्श, नवचेतन प्रकाशन उतमनगर, दिल्ली, संस्करण 2011, पृ.321
2. वहीं, पृ.322
3. कमलेश्वर : समग्र कहानिया : राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली, संस्करण 2010, पृ.82
4. वहीं, पृ.45
5. पुष्पपाल सिंह : कहानीकार कमलेश्वर पुनर्मूल्यांकन, किताबघर प्रकाशन, नयी दिल्ली, संस्करण 2010, पृ.78
6. सूर्यनारायण रणसुभे : कहानीकार कमलेश्वर : संदर्भ और प्रकृति, विकास प्रकाशन कानपुर, संस्करण 2011, पृ.38
7. गोपाल यतिराज बाहेती : कमलेश्वर की कहानियों में कसबाई चेतना, शुभी पब्लिकेशन कानपुर, संस्करण 2016, पृ.42
8. करुणा शर्मा : कमलेश्वर के कथा-साहित्य में स्त्री-विमर्श,

नवचेतन प्रकाशन उतमनगर, दिल्ली, संस्करण 2011, पृ.62

9. वहीं, पृ.68
10. कमलेश्वर : इतने अच्छे दिन, राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली, संस्करण 1989, पृ.17
11. गंगाप्रसाद विमल(सं.) : कमलेश्वर रचना-संचयन, किताबघर प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2013, पृ.270

## पुराख्यानो का स्वरूप एवं परम्परा

पूजा सोनी

डॉ. राजकुमारी शर्मा

1. शोधार्थी, बरकलउल्ला विश्वविद्यालय, भोपाल, मप्र.
2. विभागाध्यक्ष, हिंदी विभाग, प्रधानमंत्री कॉलेज ऑफ़ एक्सीलेंस, चंद्रशेखर आजाद शासकीय स्नातकोत्तर अग्रणी महाविद्यालय, सीहोर, मप्र.

पुराख्यान उत्कृष्ट काव्य का मूल आधार कहे जाते हैं। युग के अनुसार या समसामयिक परिस्थितियों के अनुसार पुराख्यानो की नवीन व्याख्या की जाती रही है। प्रत्येक कवि पुराख्यानो को नये मर्म और नये संदर्भों के साथ प्रस्तुत करता है। पुराख्यान संस्कृति की धरोहर की सहज और अभिनव भूमि हैं, जो युगद्रष्टा बनकर आधुनिक जीवन का मार्गदर्शन करता है। कवियों ने जीवन की अनन्त संभावनाओं संवेदनाओं के सूक्ष्म या विराट तत्वों का सृजन करने के लिये पुराख्यानो को आधार स्वरूप अवष्य चुना है। प्राचीन काल में आख्यान शब्द को पुराना या इतिहास के लिये प्रयोग किया जाता था। इसी प्रकार 'पुरा'को पहला या प्राचीन कहा गया है। 'आख्यान' शब्द के साथ 'पुरा' उपसर्ग के योग से 'पुराख्यान' शब्द निष्पन्न होता है। 'पुरा' व 'पुरा भवम्' अर्थात् 'पुराकाल में घटित' अर्थ साहित्य में विशेष स्थान रखता है। पाणिनी का एक प्रसिद्ध सूत्र है- 'सायं चिरं प्राह-प्रगेऽयथेभ्यश्च्युलौतुट् च।' इस सूत्र में 'पुरा' शब्द से 'टयु' प्रत्यय करने तथा 'तुट्' के आगम से 'पुरातन' शब्द बनता है। 'आख्यान' शब्द का इतिहास भी पुराना है। पुराण संहिता के उपादानों में आख्यान शब्द की विषिष्ट चर्चा हुई है। आख्यान और उपाख्यान की समानता को देखते हुये श्रीधरस्वामी ने इन दोनों ही शब्दों के बीच के भेद को बहुत ही बारीकी से स्पष्ट किया है। 'आख्यान का अर्थ स्वयंदृष्ट का कथन और उपाख्यान का अर्थ श्रुतार्थ का कथन सिद्ध होता है। दोनों शब्दों का पार्थक्यबोधक अर्थ किसी अन्य विद्वान ने स्वीकार नहीं किया। प्रातः सभी ने एकमत से इस भेद को दृष्ट-श्रुत न मानकर महत् और स्वल्प आकार के लिये स्वीकार किया है। इस प्रकार वृहत् आकार का कथानक हुआ आख्यान और अपेक्षाकृत स्वल्पाकार बोला कथानक हुआ उपाख्यान।'<sup>1</sup>

'मनुस्मृति के समय आख्यान तथा पुराण दोनों शब्दों से स्वतंत्र ग्रन्थों के अस्तित्व का संकेत मिलता है। उस युग में पुराण के साथ आख्यान भी सुना जाता और व्याख्यायित होता था। लेकिन जब आख्यान के साथ 'पुरा' शब्द जोड़ दिया जाता है तब इसका अर्थ और विस्तृत और रहस्ययुक्त, वैभवपूर्ण हो जाता है।'<sup>2</sup> पुराख्यान शब्द की अवधारणा के लिये पुराण और 'मिथ' या 'मिथक' को जानना भी अतिआवश्यक है। पुराण शब्द को अंग्रेजी में 'माइथोलॉजी' कहा जाता है, ग्रीक के 'मुथाइस' शब्द से इसकी उत्पत्ति मानी जाती है। 'पुराण' संस्कृत का शब्द है। 'पुराण शब्द की व्युत्पत्ति पाणिनी, यास्क आदि आचार्यों के ग्रंथों के अतिरिक्त स्वयं पुराणों में भी अनेक स्थानों पर प्राप्त होती है। 'पुरा अनिति' व्युत्पत्ति के अनुसार पुराण शब्द का अर्थ होता है- सबसे पहले रहने वाला। पाणिनी ने स्वयं अपने दो सूत्रों- 'पुराणप्रोक्तेषु ब्राह्मण कल्पेषु तथा 'पूर्व कालैक'- सर्व-जरत-पुराण-नव-केवलाः समानाधिकरणेन'- में पुराण शब्द का प्रयोग किया है। ऋग्वेद में पुराण शब्द दशाधिक स्थानों पर विषेण के रूप में प्रयुक्त हुआ है। वहां इस

शब्द का अर्थ प्राचीन पूर्व तथा पुराकाल में रहने वाला। यास्क अपने निरुक्त में 'जो प्राचीन होकर भी नया रहे' उसे पुराण मानते हैं। वायु पुराण के अनुसार 'जो प्राचीनकाल में जीवित था', वह पुराण है। पद्मपुराण कहता है- 'पुरापरम्परा वष्टि पुराण' तेन तत् स्मृतम्।' इस पुराण में प्राप्त यह अर्थ पूर्व के ग्रंथों में प्राप्त अर्थों से किंचित भिन्न है- 'पुरा परम्परा वष्टि कामयते अर्थात् जो प्राचीनता की कामना करता है, वह पुराण कहलाता है। ब्रह्मांडपुराण में एक अन्य व्युत्पत्ति प्राप्त होती है- 'पुरा एतत् अभूत्' अर्थात् पुराकाल में ऐसा हुआ।'<sup>3</sup> विद्वानों द्वारा दी गई इन व्युत्पत्तियों से यह तथ्य उभरकर आता है कि पुराण को पुराकाल या प्राचीन घटना से सम्बद्ध किया जाता है। 'पुराण प्राचीन साहित्य का बोध कराता है। परन्तु कभी न कभी तो वह अपने युग का (वर्तमान) बोधक रहा होगा, नवीन रहा होगा। अपने युग में पुराना नहीं कहलाता होगा, लेकिन यह सत्य है कि तब भी यह साहित्य पुराण साहित्य ही था। अतः यह स्पष्ट है कि पुराण शब्द एक विशेष साहित्य का बोध कराता है जिसमें प्राचीनता के साथ नवीनता की भी विद्यमान रहती है।'<sup>4</sup> पुराण का सीधा सम्बन्ध 'पुरा' अर्थात् 'प्राचीन' से माना जाता है। पुराणों में वर्णित कथायें सत्य व प्रमाणिक मानी जाती हैं। धार्मिक विश्वास और आस्था के आधार पर इन कथाओं या आख्यानो की विश्वसनीयता बढ़ जाती है।

पुरा+आख्यान = पुराख्यान

विश्व का प्रत्येक समाज पौराणिक विषयों में आस्था रखता है। अतः प्रत्येक धर्म के अनुयायी पुराख्यान साहित्य से समृद्ध है। 'आधुनिक काल में कथा को कल्पना मात्र समझा जाता है, जबकि पौराणिक आख्यानो एवं विधासों का धर्म के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध है क्योंकि ये प्रकृति के रहस्यों को समझकर उनके साथ मनुष्य का सम्बन्ध स्थापित करते हैं तथा सम्बन्ध स्थापित करते हुये उसे व्याख्यायित भी करते हैं।'<sup>5</sup> सृष्टि के विभिन्न रहस्यों, मानव जीवन के रहस्यों, कष्टों और उसके समाधानों के अतिरिक्त शाश्वत सत्यों की व्याख्या करने वाले ये पुराख्यान मानवजाति तथा उसके इतिहास का पुराणों से सम्बन्ध स्थापित करते हैं। पुराख्यान मानवीय प्रज्ञा की सांस्कृतिक अस्मिता की रक्षा करते आये है और करते रहेंगे। पुराणों में 'पुराख्यान' को प्रतिदिन उदित होने वालों उषा के समान माना गया है। पुराख्यान मानव जाति की सांस्कृतिक शक्ति का स्रोत हैं। ये उस अमरबेल के समान है जो सदैव तथा प्रत्येक परिस्थिति में अमृतमयी रहती है। यह मानवीय संस्कृति की सृष्टि का उद्गम की पहचान हैं, जिसमें भूत, भविष्य और वर्तमान का सांस्कृतिक प्रवाह अनवरत बहता रहता है। पुराख्यानो द्वारा किसी भी समाज की संस्कृति को पहचान प्राप्त होती है। इन आख्यानो में सभ्यता, संस्कृति, धर्म, दर्शन और विज्ञान के जटिल और वैविध्यपूर्ण अनुभव-पुंज प्रकाशित होते हैं। जब-जब वर्तमान में मनुष्य मानसिक द्वन्द, मूल्यों की टकराहट, अस्मिता का युद्ध, विवषता आदि से संघर्ष करता है, तब-तब

पुराख्यानो की शक्ति उसे जीवन प्रवाह में आ रहे अवरुद्धों से बाहर निकालकर गतिमान बनाते हैं। मानवीय संस्कृति की अपरिमित और अव्याख्य संरचना पुराख्यानो में ही प्राप्त होता है।

“प्रारम्भिक पुराख्यानो में तो कथा पात्र, प्रकृति एवं अन्य सभी पदार्थ प्रतीको का कार्य करते हैं, प्रतीक होते हैं। देवी-देवताओं एवं वीर योद्धाओं की जो कथायें मिलती हैं, उन सबका कुछ-न-कुछ प्रतीकात्मक अर्थ होता है, जैसे अपोलो विवेक और संयम का, वीनस प्रेम का और मिनर्वा ज्ञान का प्रतीक है। भारतवर्ष में सरस्वती, लक्ष्मी, शक्ति, विष्णु, शिव, ब्रह्मा, दूत आदि सभी का प्रतीकात्मक महत्व है। कौरव-पांडवों का युद्ध न्याय अन्याय का द्वन्द्व है, राम और रावण का रण पाप और पुण्य का संघर्ष। इसी प्रकार शेषनाग के फन पर विष्णु का शयन, कृष्ण द्वारा नाग दमन आदि कथाओं में विभिन्न प्रतीको द्वारा मृत्यु पर जीवन की विजय का घोष है। सर्प, ड्रैगन, गार्गन, सर्पेण्ट आदि जीव-मृत्यु के मूर्त और जीवित प्रतीक है। ऋग्वेद की मान्यतानुसार विभिन्न पुराख्यानो में आए प्रतीको का सम्बन्ध प्रजनन और जीवनरक्षा से है।”<sup>6</sup> प्राचीन समय के मानव ने इस प्रकार के प्रतीको के माध्यम से जीवन की गतिशीलता को प्रमाणित किया है। प्राणी के जीवन में जन्म और मृत्यु के बीच का जो संघर्ष है उसे इन प्रतीको के माध्यम से व्यक्त किया जाता रहा है। मानव मन की ऊहापोह तथा मनःस्थिति को प्रतीको, बिम्बों, उपादानों द्वारा अभिव्यक्त करना पुराख्यान के स्वरूप को निर्धारित करते हैं। पुराख्यान कल्पना और यथार्थ के समन्वय से विकसित होने वाली कृति होते हैं। महाकाव्यों की कथा का विस्तार जातीय दंतकथाओं, पुराणों अर्थात् पुराख्यानो के समुच्चय द्वारा सन्निवेश होता है। युगीन संदर्भों में परिवर्तन के अनुसार पुराख्यानो की नवीन व्याख्यायें रूपायित होने लगती हैं। लेस्ली फीडलर के अनुसार, “कवि किसी भी पुराख्यान को अपने ढंग से निरूपित करता है, उसके मानस और जीवन को हम नगण्य नहीं मान सकते क्योंकि उसी के अनुरूप वह अपनी अभिव्यक्ति को रूप देता है। इसलिये कहा गया है कि कवि पुराख्यान के आदर्श रूप पर अपने हस्ताक्षर अंकित करता है।” साहित्य की अधिकांश उत्कृष्ट काव्य रचनायें पुराख्यानो के ही देखी गई हैं।

पुराख्यान मानव संस्कृति का सार तत्व बनकर प्रत्येक युग में विभिन्न प्रतीको, अनन्त बिम्ब योजनाओं के माध्यम से व्याख्यायित और रूपायित होता रहता है। पुराख्यान मानव की पारम्परिक पहचान की अभिनव व अभिराम भूमि बनकर अपनी अपेक्ष क्षमताओं द्वारा मानस के मर्म को संदर्भित करता है। साहित्यकार अपनी अलौकिक प्रतिभा और गहन अध्ययन द्वारा कालजयी आख्यानो को सृजन के द्वारा अभिव्यक्त करता है तथा उन आख्यानो में निहित जीवन के सकारात्मक पक्ष, संवेदनाओं, संभवानाओं को कालानुसार नियोजित करता है। साहित्य के प्रादुर्भाव से ही पुराख्यानो की परम्परा जुड़ी हुई सी प्रतीत होती है। पुराख्यानो ने समय-समय पर साहित्य को नव आयामों से अलंकृत किया है। पुराख्यानो के सन्दर्भ साहित्यकार के मूर्त-अमूर्त भावों को व्यक्त करने में सहायक रहे हैं, इनके द्वारा बदलते सामाजिक परिदृश्य पर, बढ़ती अनैतिकता पर अंकुश लगाकर उदात्त आदर्शों को पुष्ट करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाने का प्रयास करते रहे हैं। पुराख्यान प्रत्येक युग में सामाजिक चेतना के प्रवाह को अवरिल बनाने का कार्य करते रहे हैं। “पुराख्यानो का प्रयोग निःसन्देह समकालीनता के सन्दर्भ में परिवेष के यथार्थ की सार्थक अभिव्यक्ति के लिये नये आयाम खोलता है। वस्तुतः इन सभी काव्यों के प्रमुख चरित्र आज के व्यक्ति का मनोवृत्ति और प्रकृति का प्रतिनिधित्व करते हुए उन सामयिक समस्याओं से जुड़े हैं जिनसे समकालीन व्यक्ति भी जुड़ा रहा है। अश्वत्थामा की बर्बरता, कनुप्रिया की पीड़ाजन्य आकुलता, मेनका की यातनाग्रस्त अवस्थिति, विश्वामित्र का अस्तित्व-संघर्ष, युधिष्ठिर का युद्ध के दर्शन का विवेचन, शिव का परम्परागत स्वरूप, नचिकेता का अनास्थामय रूख और राम का संशय कहीं-न-कहीं

ये सब आधुनिक मनुष्य की ज्वलंत समस्यायें हैं। यहाँ ये पात्र घटना न होकर द्वन्द्वमयता के बीच झूलते चरित्र की मानसिक दशा और यथार्थ का स्वीकार, दृष्टिगत होते हैं। इस प्रकार मिथक तथा आख्यान के चयन और प्रयोग में कवि अपनी युगदृष्टि के कारण परिवर्तन करता रहता है।”<sup>8</sup> साहित्यकारों ने पुराख्यानो में मुख्यतः महाभारत और रामायण सम्बन्धी आख्यानो से को आधुनिक सन्दर्भों में प्रस्तुत किया है। इसके अतिरिक्त अन्य वैदिक पुराणों से शिव, नचिकेता, उर्वशी-पुरूरवा के आख्यानो का भी प्रचुर मात्रा में उपयोग किया गया है।

पुराख्यान परम्परा में धर्म, दर्शन, इतिहास, संस्कृति, परम्परा आदि के सूक्ष्म तत्वों का आभिर्भाव तथा नियमन रामायण व महाभारत महाकाव्यों द्वारा प्रतिपादित होते रहे हैं। “रामायण और महाभारत के महाकाव्य हमारे विचार से, जगत्त्व के दो विपरीत चक्र हैं- विपरीत होते हुये भी समान, तराजू के तुले हुये पलड़ों की भांति। यह दोनों चक्र क्रमशः आशा-निराशा, विकास-ह्रास और उत्पत्ति प्रलय के हैं जो दोनों विपरीत सम हैं। सम न होते तो सुष्टिचक्र न चलता।”<sup>9</sup>

ये दोनों ही महाकाव्य जीवन रूपी शरीर को मेरुदण्ड बनकर संतुलन देने में सक्षम हैं। पहला रामायण जीवन का आरोहन बनकर प्रवेश करता है, जीवन की टूटती सांस की आशा बनती है, तो वहीं महाभारत अवरोहण है। निराशा में संघर्ष है। नन्ददुलारे वाजपेयी ने पुराख्यानो के सम्बन्ध में कहते हैं, “रामायण सृष्टि का आशाचक्र होने के कारण अर्धरात्रि के अंधकार में प्रारम्भ होता है, दैत्यों के उत्पात के साथ। धीरे-धीरे आशा की ज्योति खुलती जाती है और रावण-वध के साथ नवीन युग का अरुणोदय होता है। रामराज्य की स्थापना पूर्ण प्रकाश में होती है। सीता की सतीत्व-परीक्षा के समय मध्याह्न का प्रखर ताप हो आया है। यही विकास की परम अवधि के कारण ह्रास के एक परमाणु से संयुक्त है। सीता की अग्नि परीक्षा आर्य संस्कृति के उत्थान का शीर्ष बिन्दु और पतन का प्रथम लक्षण है।”<sup>10</sup> “इस आदिकाव्य को चतुर्विंशति साहस्री संहिता करते हैं अर्थात् इसमें चौबीस हजार श्लोक हैं-ठीक उतने ही प्रकार गयात्री के अक्षर हैं। पुराख्यान की की दृष्टि से बाल्मीकीय रामायण में पाँच सौ सर्ग हैं और सात कांड। इन कांडों के नाम हैं बालकांड, अयोध्याकांड, अरण्यकांड, किष्किंधाकाण्ड, सुन्दरकांड, युद्धकांड तथा उत्तरकांड बालकांड में महर्षि वाल्मीकि के हृदय में क्रौंचवध से उत्पन्न शोक के श्लोकरूप धारण करने ब्रह्मा तथा नारद की प्रेरणा से कथा संधान और आदिकाव्य के प्रतीत होने तथा कालांतर में लव-कुश द्वारा कथा का गायन करने, राम द्वारा उनके मुख से अपने जन्म से लेकर विवाह तक की घटनाओं के श्रवण का वर्णन है। अयोध्याकाण्ड में राम-वनगमन, दशरथ के देवलोकगमन तथा चित्रकूट में राम और भरत के मिलन तथा प्रभु की चरणपादुका लेकर उनके अयोध्या लौटने तक की कथा है।”<sup>11</sup>

रामायण के समान ही महाभारत को भारतीय संस्कृति का महिमामय कोष माना जाता है। महाभारत का आधारफलक अत्यन्त विस्तृत है। महर्षि वेदव्यास ने महाभारत का विराटफलक पर सृजन किया और इसे कालजयी रचना बना दिया। “विभिन्न पुराख्यानो की दृष्टि से भी महाभारत में प्रायः वह सभी आख्यान उपलब्ध हैं जो कि समूचे भारतीय साहित्य में प्राप्त होते हैं। महाभारत के पुराख्यानो में किसी भी युग की व्याख्याओं के लिए अनन्त संभवानायें हैं, इसी कारण प्रत्येक में विभिन्न साहित्यिक उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए इस ग्रंथ में वर्णित पुराख्यानो को आधार बनाया गया।”<sup>12</sup> आधुनिक हिन्दी कवियों ने भी महाभारत के विभिन्न पात्रों तथा कथा से सम्बद्ध पुराख्यानो को आधार बनाकर काव्य का सृजन किया है।

आदिकाल से वर्तमान समय तक साहित्य में पुराख्यानो के तत्वों को समावेश निरन्तर होता रहा है। साहित्यकारों ने रामायण अथवा महाभारत महाकाव्यों के चरित्रों, प्रसंगों, घटनाओं आदि को अपने समय सापेक्ष प्रस्तुत करने की चेष्टा की है। अधिकांश ग्रंथ इन्हीं दो महाकाव्यों से प्रेरित होकर रचे

गयें हैं। व्यथित मानव के खंडित स्वप्नों जीवन की विसंगतियों, अन्तर्विरोधों, संघर्षों, तनाव, चिन्ता, व्यैक्तिक समस्याओं से उपजे प्रश्नों और उसके समाधान को तलाशते हुये कवियों ने पुराख्यानो का सहारा लिया है। मानवीय संवेदनाओं को समुचित वाणी देने में पुराख्यान सदैव से ही कवियों के प्रिय रहे हैं। युग की वाणी बनकर पुराख्यानो ने कालजयी संवेदनाओं को संदर्भित किया है।

**संदर्भ सूची :-**

1. पुराख्यान और कविता/डॉ. लक्ष्मीनारायण शर्मा/पृष्ठ-2
2. पुराख्यान और कविता/डॉ. लक्ष्मीनारायण शर्मा/पृष्ठ-2
3. पुराख्यान और कविता/डॉ. लक्ष्मीनारायण शर्मा/पृष्ठ-4
4. पुराख्यान पुराभव/गणेश दत्तशास्त्री/पृष्ठ-320
5. सूट और उनका साहित्य/डॉ. हरवंशलाल शर्मा/पृष्ठ-166
6. पुराख्यान और कविता/डॉ. लक्ष्मीनारायण शर्मा/पृष्ठ-15
7. हिन्दी साहित्य:बीसवीं शताब्दी/आचार्य नन्ददुलारे बाजपेयी/पृष्ठ-20
8. हिन्दी साहित्य:बीसवीं शताब्दी/आचार्य नन्ददुलारे बाजपेयी/पृष्ठ-44
9. हिन्दी साहित्य:बीसवीं शताब्दी/आचार्य नन्ददुलारे बाजपेयी/पृष्ठ-45
10. हिन्दी साहित्य:बीसवीं शताब्दी/आचार्य नन्ददुलारे बाजपेयी/पृष्ठ-45
11. पुराख्यान और कविता/डॉ. लक्ष्मीनारायण शर्मा/पृष्ठ-23
12. हिन्दी साहित्य:बीसवीं शताब्दी/आचार्य नन्ददुलारे बाजपेयी/पृष्ठ-48

# भारत में सूफीवाद के आगमन का ऐतिहासिक अध्ययन

डॉ. अरूण कुमार सिंह

एसोसिएट प्रोफेसर, डी. ए. वी. (पी.जी.) कॉलेज, आजमगढ़

सारांश:-भारत में सूफीवाद के आगमन का ऐतिहासिक बिन्दुओं पर गहन अध्ययन यह स्पष्ट करता है कि इसके प्रसार में यहाँ की तात्कालिक राजनीतिक व सामाजिक परिस्थिति ने महत्वपूर्ण भूमिका निभायी। भारतवर्ष अनादिकालसे ही अनेक रहस्यमयी और चमत्कारिक कहानियों का केंद्र रहा है। इस्लाम के प्रवेश से पहले बौद्ध धर्म की तत्ववादी कहानियों और हिंदू धर्म के रहस्यवादी विचारों ने पहले ही यहाँ की मिट्टी को उपजाऊ बना दिया था। यही कारण है कि भारतीय सूफीवाद में ईरानी और अरबी सूफीवाद से अलग भारतीय सभ्यता और मिट्टी की महक शामिल है। भारतीय सूफीवाद ने अपने प्रारम्भ से ही गरीब और पिछड़े वर्गों के बीच स्वीकृति प्राप्त की। इसकी नसें समाज में गहराई से अंतर्निहित थीं। जब सूफीवाद ईरान और अफगानिस्तान के रास्ते भारतीय सीमा में आया उस समय तो बौद्ध शिक्षाओं की खुशबू भारतीय उपमहाद्वीप बौद्ध शिक्षाओं से प्रकाशित हो रहा था। उस समय हिंदू धर्म में जातिगत छुआछूत जैसी समस्याएँ पनपने लगीं थीं। निचली जातियाँ इस जातिगत भेदभाव से पीड़ित थीं। इस स्थिति में हजरत ख्वाजा कुतुब-उल-अकतब मोइनुद्दीन चिश्ती (1143 ई.-1236ई.) मनुष्य की समानता और संतुष्टि की शिक्षाओं के साथ भारतीय जनमानस में प्रवेश करते हैं। भारत में सूफीवाद के आगमन का अध्ययन हमारे सामने उस समय के समाज और उसकी संरचना को ऐतिहासिक दृष्टि से देखने का एक नवीन अवसर देता है।

**बीजशब्द:-**सूफीवाद, भारतीय दर्शन, भारतीय समाज, जातिगत संरचना, बौद्ध दर्शन।

सूफीवाद के प्रभुत्व से पहले बौद्धधर्म ने भारत पर शासन किया था। गौतमबुद्ध की रहस्यवादी शिक्षाएँ जीवन के सभी क्षेत्रों में निहित थीं। पहले से ही यह भूमि रहस्यवाद के दर्शन के लिए उपजाऊ थी, लेकिन हिंदू धर्म की 'वर्ण व्यवस्था' ने पूरे समाज को ऐसा बना दिया था कि उच्च जाति के लोग दलितों के जीवन को दयनीय बनाने का कोई मौका नहीं चूकते थे। पिछड़ा भारतीय समुदाय अब इस धार्मिक बंधनों से छुटकारा पाने के लिए उत्सुक था। इतिहास की इस दहलीज पर सूफियों ने समान शिक्षाओं के साथ भारतीय उपमहाद्वीप में प्रवेश किया। हिंदू धर्म से तंग आ चुके लोगों के लिए उनके विचार और शिक्षाएँ कुछ नई और अच्छी लगती थीं। डॉ. रामधारी सिंह दिनकर लिखते हैं, 'दसवीं शताब्दी में ब्राह्मण धर्म सम्पूर्ण रूप से अपना प्राधान्य स्थापित कर चुका था, फिर भी बौद्धों, शाक्तों और शैवों का एक बड़ा भारी समुदाय ऐसा था जो ब्राह्मण और वेद की प्रधानता को नहीं मानता था। जब मुसलमान इस देश में आये, तब इन लोगों का मन डोलने लगा। वैदिक-धर्म में इन्हे इज्जत नहीं थी। उधर जिस निराकार भावना का इन लोगों के बीच प्रचार था, इस्लाम भी उसी निराकारोपासना को लेकर आया था।' पूर्वी बंगाल के वेदबाह्य सम्प्रदायों के ध्वंसावशेष कई धार्मिक सम्प्रदाय ऐसे थे जिन्होंने मुसलमानों को अपना त्राणकर्ता समझा। वे समूह-रूप में मुसलमान हो

गये। पंजाब में भी नाथों, निरंजनो और पशुपतों की अनेक शाखाएँ मुसलमान हो गयीं। गोरखनाथ के सम्प्रदाय में अनेक बौद्ध, शैव, शाक्त सम्प्रदाय अन्तर्भुक्त हुए, परन्तु, इस सम्प्रदाय के भी बहुतेरे गृहस्थ मुसलमान हो गये। (मध्यकालीन धर्म-साधना)। समान व्यवहार और आपसी सद्भाव के कारण इन शिक्षाओं ने उनकी आध्यात्मिक संतुष्टि का नेतृत्व किया। इस तरह सूफीवाद ने भारत में अपने पैर जमाए और दिन-ब-दिन प्रगति करता गया। जब सूफीवाद भारत के दरवाजे पर दस्तक दे रहा था इस्लाम की दुनिया एक बड़ी त्रासदी से पीड़ित थी। हलाकू खान के नेतृत्व में मंगोल सेनाओं ने अब्बासी खिलाफत की राजधानी बगदाद को घेर लिया और शहर पर विजय प्राप्त की। शहर में लाखों मुसलमानों का नरसंहार किया गया और पुस्तकालयों में आग लगा दी गई और नदियों को नष्ट कर दिया गया। चिकित्सा से लेकर खगोल विज्ञान तक के विषयों पर लिखे गए कई मूल्यवान ऐतिहासिक दस्तावेजों और पुस्तकों का घर रहे बैतूल हिकमत को नष्ट कर दिया गया। कहा जाता है कि सड़कों से बहते और नदी में मिलने वाले इंसानी खून के कारण पहले कुछ दिनों तक इस पौराणिक नदी (टाइगरिस) के गंदे पानी का रंग लाल हो गया। तब शहर के सैकड़ों पुस्तकालय बड़ी संख्या में दुर्लभ पांडुलिपियों से भरे हुए थे, जिसके कारण इसका पानी स्याही बन गया। मार्टिन सकर के अनुसार मरने वालों की संख्या 90,000 हो सकती है। अन्य इतिहासकारों ने और अधिक अनुमान दिए हैं। मंगोलों ने लूटपाट के बाद मस्जिदों, महलों, पुस्तकालयों और अस्पतालों को नष्ट कर दिया। शाही इमारतों को जला दिया गया। खलीफा को गिरफ्तार कर लिया गया और अपने ही नागरिकों के नरसंहार और अपने खजाने की लूट को देखने के लिए मजबूर किया गया। मंगोलों ने उस समय के खलीफा मुस्तसिम बिन्नाह को एक कालीन में लपेट लिया और उसे अपने घोड़ों के नीचे कुचल दिया। इतिहास की किताबों में लिखा है कि जब भय शाही महल में आग लगाई गई तो उसमें प्रयुक्त आबू और चंदन की कीमती लकड़ी की खुशबू आसपास के इलाके में फैली बदबू में अवशोषित हो गई होगी। कुछ ऐसा ही टाइगरिस में देखने को मिला। युद्ध के बाद मंगोलों ने सीरिया पर आक्रमण किया और दमिश्क, एलेप्पो और अन्य शहरों पर कब्जा कर लिया। इस हार के साथ ही मुस्लिम उम्मा के उदय का पहला चरण समाप्त हो गया। महान फारसी कवि शेख सादी लंबे समय तक बगदाद में रहे और यहाँ निजामिया मदरसे में अध्ययन किया। इसलिए उन्होंने बगदाद के पतन के लिए एक स्मारक लिखाजिसकी हर कविता दिल दहला देने वाली है। प्रसिद्ध इतिहासकार प्रोफेसर अर्नोल्ड ने अपनी पुस्तक 'द स्पेड ऑफ इस्लाम इन द वर्ल्ड' में इस घटना को उद्धृत किया है-'मंगोल शासकआमतौर पर सभी धर्मों के प्रति इतने असहिष्णु थे कि कुछ ऐसे थे जिन्होंने मुस्लिम विश्वास के प्रति घृणा का अलग-अलग स्तर प्रदर्शित किया। चंगेज खान ने जानवरों को मारने वाले सभी लोगों को मौत के घाट उतारने का आदेश दिया

और इस अध्यादेश को कबिले द्वारा पालित किया गया, इन्होंने मुखबिरों को पुरस्कार देकर सात साल तक चलने वाले एक तेज उत्पीड़न को स्थापित किया, क्योंकि कई गरीब व्यक्तियों ने धन प्राप्त करने के इस तैयार साधन का लाभ उठाया और दासों ने अपनी स्वतंत्रता प्राप्त करने के लिए अपने मालिकों पर आरोप लगाया।<sup>2</sup> तातारों का यह हमला भारत में अकादमिक और बौद्धिक संचार के लिए बहुत उपजाऊ साबित हुआ। तातार पूरी दुनिया में जहाँ-जहाँ गए, उन्होंने वहाँ के शासकों को पराजित किया और नगर और लोगों को मार डाला। लेकिन इसके उलट भारतीय उन्हें अपनी सीमा पर रोकने में कामयाब रहे थे। इसी कारण भारत की भूमि उनके दमन से मुक्त रही और शांति की तलाश में दूसरे देशों के विद्वान और विद्वान भारत आने लगे। इतिहास से स्पष्ट है कि इस अवधि के दौरान भारत आए अधिकांश विद्वान और साधक उस क्षेत्र के थे जहाँ तातारों ने अपना खून बहाया था। भारत में विद्वानों के आगमन पर यहां का अकादमिक और साहित्यिक वैभव दोगुना हो गया। इसका जिक्र करते हुए लिखते हैं-

कहते हैं

जैसे है पृथ्वी पर सूर्य की चमक और शान

वैसे ही बादशाह अलतमश की/ धर्म और संसार में थी आन।

बादशाह ने बनाया दिल्ली में/ एक सिंहासन महान

पा शक्ति जिससे अपूर्व/ अजेय सेनायें जितने लगीं राष्ट्र को

जो फैला था सुदूर।

उस नगर में एक रौशनीआयी/ शीतल, आनंदमयी भरपूर

बहुत से सैय्यद जो आते थे अली के वंश से

लगे पहुँचने अरब से, दिल्ली उनको ना रही दूर।

जैसे पतंगा दीपक के चहुँओर घूमता है

वैसे उस प्रकाश को घेर लिया/

खुरासान के बड़े व्यापारीयों ने, चीन के शिल्पकारों ने।

बुखारा के विद्वान, भक्त और साधक/ हर देश व हर जाति से महंगे उद्योग

हर देश व हर मूल से चांदी के कामकार

बहुत से बड़े जौहरी / यूनान के हकीम व रोम के चिकित्सक

बहुत से बुद्धिमान/ प्रत्येक सीमा और क्षेत्र से

इस आनंददायक, दैदीप्यमान नगर में एकत्रित होने लगे।

दिल्ली मानो सातों द्वीप का काबा हो गयी

और इस तरह प्रकाश ने/ दिल्ली को हर हमले से सुरक्षित बना दिया।

सुना है सिंहासन ने

इस्लाम के झंडे की सीमा चाँद तक बना डाली थी।

इस दौरान पूरे इस्लामिक जगत में अनिश्चितता का दौर चल रहा था। दूसरी ओरदिल्ली अपने शुरुआती दौर से गुजर रही थी। यह इस स्तर पर था कि इस्लामी दुनिया के विद्वानों की आंखें भारत की ओर मुड़ गईं और कई लोग दिल्ली चले गए। इस आपातकालीन स्थिति में भी यहां उम्मीद जगी थी। खालिक अहमद निजामी लिखते हैं- उन्होंने कहा, 'यह वह समय था जब दिल्ली का निर्माण पूरे जोश के साथ हो रहा था। मध्य एशिया में मंगोल तूफान तेज हो गया था और हजारों विद्वान, कवि और साहित्यकार दिल्ली की ओर रुख कर रहे थे। इसी तरह दिल्ली एक अंतरराष्ट्रीय शहर बन गया था जहाँ इस्लामिक एशिया के हर कोने से लोग शरणार्थी थे।'<sup>3</sup> जब इस्लामी जगत के चुनिंदा प्रचारक और शिक्षक इस क्षेत्र में आए तो प्रचार का काम पूरे जोर से होने लगा। सूफियों ने भारत की सामाजिक स्थिति को ध्यान में रखते हुए उपदेश देना शुरू किया। धर्मांतरण उनका उद्देश्य नहीं था। हिंदू धर्म के गले में जातिगत-भेदभाव का बोझ डाल दिया गया था। इसके खिलाफसूफियों ने मानवीय समानता को उपदेश और प्रचार के लिए मुख्य बिंदु

माना। शैख मुहम्मद इकराम लिखते हैं-उनके दरवाजे हर किसी के लिए खुले थे, चाहे वह हिंदू हो या मुसलमान, अमीर या गरीब। और उनका काम बिना किसी भेदभाव के सबको हिदायत देना था। शायद एक मुसलमान का त्याग एक हिंदू के इस्लाम में धर्मांतरण की तुलना में अधिक सुखद होता। सूफीवाद के इस व्यापक दृष्टिकोण को 'सिलसिलत-उल-दहाब' के लेखक ने एक अच्छी तरह से कपड़े पहने बुजुर्ग (शैख बहाउद्दीन जकारिया मुल्तानी) का उल्लेख करके और उनके बारे में लिखकर समझाया है- 'लोगों के शब्दों और मार्गदर्शन में, अविश्वास से विश्वास से लेकर पाप तकपूजा करने के लिए,आध्यात्मिकता से आध्यात्मिकता तक। यह एक बड़ा समय था।'<sup>4</sup> लेकिन इस संबंध में एक खास बात यह है कि सूफियों ने जिस भी दिशा में कदम बढ़ाए, हर तरफ लोग अपनी धार्मिक रुढ़ियों से मुक्त होकर समतावादी व्यवस्था के साये में राहत की सांस लेते नजर आए। हालाँकि, सूफियों के पास अभी भी बड़ी संख्या में अनुयायी और अनुयायी थे, उस समय लोगों के बीच बौद्ध धर्म का प्रभाव अभी भी बना हुआ था। हिंदू धर्म का प्रभुत्व अभी तक स्थापित नहीं हुआ था। शैख इकराम आगे लिखते हैं-भारत में, इस्लाम उन क्षेत्रों में तेजी से फैला जहाँ हिंदू धर्म में बौद्ध धर्म पूरी तरह से दबा नहीं गया था और जातिगत सामाजिक व्यवस्था पूरी तरह से लोगों के जीवन पर हावी नहीं थी। जब मुसलमान सिंध आए, तो प्रजा का एक बड़ा हिस्सा बौद्ध धर्म के अनुयायी थे और वे ब्राह्मण राजा से बहुत नाराज थे।<sup>5</sup> सैयद गेसु दराज के लेखन और अन्य साक्ष्यों से यह माना जाता है कि सामाजिक प्रचारकों के मार्ग में बड़ी बाधा आध्यात्मिक नहीं थी, बल्कि जाति व्यवस्था थी और जिन क्षेत्रों में यह व्यवस्था अभी तक स्थापित नहीं हुई थी (यानी सिंध, पश्चिम पंजाब और बंगाल), इस्लाम के प्रचार का काम आसानी से किया गया था।<sup>6</sup> सूफियों के भारत आने पर उन्होंने यहां के भौगोलिक और सामाजिक संदर्भ को ध्यान में रखते हुए हर सामाजिक बीमारी का इलाज खोजने की कोशिश की। सिंध क्षेत्र में बौद्ध शिक्षाएं अभी भी मौजूद थीं। इसलिए सूफियों ने लोगों को समझाने के लिए बौद्ध धर्म की आध्यात्मिक कहानियों की मदद ली। जैसे सांसारिकता के चरण निर्धारित करने वाले गौतम बुद्ध का जीवन। सूफीवाद के दर्शन में इब्राहीम अदहम की कहानी का मूल भी लगभग वही है जो महात्मा गौतम बुद्ध की सारथी चना के साथ सत्रह वर्ष की अवस्था में यात्रा की कहानी का है। इसके अलावा, जब हम ईरानी साहित्य को देखते हैं, तो प्राचीन काल से मध्य युग तक, हमें कई साहित्यिक घटनाएं मिलती हैं जिन्हें ईरानी कलाकारों ने उधार लिया है और अपनी कहानियों को सजाया है। चाहे वह 'पंचतंत्र' का प्राचीन पहलवी अनुवाद हो या मौलाना जलालुद्दीन रूमी की 'मसनवी वा मिनवी' में भारतीय कहानियों का समावेश।

इस प्रकार हम देखते हैं कि सूफीवाद का भारत में आगमन उनकी राजनीतिक-दार्शनिक यात्रा का निष्कर्ष थी। सूफी भारत आये और यहीं की कथाओं को अपने दर्शन से पीरो भारतीय जनमानस के लिए अध्यात्म की नयी और बेमिसाल माला तैयार कर दी।

संदर्भ सूची :-

1. दिनकर रामधारी सिंह, संस्कृति के चारअध्याय, तीसरा संस्करण, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद
2. दुनिया में इस्लाम का प्रसार : पृष्ठ 225
3. खालिक अहमद निजामी : मशाइख चिशत
4. शैख मोहम्मद इकराम : अब कौसर, पी।

# महानगर लखनऊ की स्वातंत्र्योत्तर प्रमुख महिला कवयित्रियों के पद्य-काव्य में 'बिम्ब प्रधान'

सुश्री रश्मि संजय श्रीवास्तव  
डॉ. महेश दिवाकर

1. शोधार्थी, हिन्दी विभाग, सिंघानियाँ विश्वविद्यालय, झुंझुनू, राजस्थान
2. शोध निर्देशक, हिन्दी विभाग, सिंघानियाँ विश्वविद्यालय, झुंझुनू, राजस्थान

सारांश:-किसी भी काव्य में 'बिम्ब-विधान' अभिव्यक्ति-विधान का एक माध्यम है। साहित्यकारों ने अपनी अनुभूतियों के बड़े ही सजीव चित्र उकेरे हैं जिनके कारण उनके काव्य में रोचकता एवं जीवन्तता आ गयी है। महानगर लखनऊ की स्वातंत्र्योत्तर प्रमुख महिला कवयित्रियों ने भी अपने काव्य में अनुभूतियों के सभी बिम्ब उकेरे हैं जिनके कारण उनका काव्य मनोरम बन पड़ा है। आइए! आलोच्य काव्य में 'विधान-विधान' की स्थिति का आंकलन एवं विश्लेषण करें।

काव्य में 'बिम्ब' भावों को तरलता एवं गहनता प्रदान करने में सहायक होते हैं। सूक्ष्म भावनाओं और मनः स्थितियों के चित्रण के लिए 'बिम्ब' या 'काव्यचित्र' का सहारा लेना सफल कवि के लिए आवश्यक हो जाता है। वास्तव में, 'बिम्ब' का कार्य विषय-वस्तु को स्पष्ट करना तथा मनः चक्षुओं के समक्ष उपस्थित करना है। डॉ. नगोन्द्र के अनुसार-''इमेज' शब्द के पर्याय के रूप में 'बिम्ब' प्रचलित हे गया है। 'इमेज' का अर्थ 'प्रतिमा' या 'प्रतिरूप' होता है, उसे 'प्रतिबिम्ब' भी कह सकते हैं।'' वास्तव में ''बिम्ब' भी काव्य-शिल्प की एक सशक्त प्रक्रिया है, जो भाव-बोध को जागृत कर तदनुकूल मानस में शब्दचित्र अंकित कर देती है। अतः 'बिम्ब' को एक 'अलंकृत ऐन्द्रिय चित्र' कहें तो अनुचित नहीं।''<sup>12</sup> वस्तुतः भाषा के भाव के साथ-साथ काव्य की अनिवार्य वस्तु 'बिम्ब' ही है, जो काव्य को सर्वथा सटीक एवं हृदयग्राही बनाने में सफल है। ''बिंबों की इन्हीं विशेषताओं के कारण बिम्बों की अनेक श्रेणियाँ होती हैं। यथा-जो बिम्ब, दृश्य भर उपस्थित करते हैं, उन्हें 'दृश्य बिम्ब' या 'दृश्यचित्र' और जो रूपक-उपमा के आधार पर निर्मित होते हैं, उन्हें 'अलंकृत बिम्ब', जो मानस में विशेष प्रकार के भावों के चित्र अंकित करते हैं, उन्हें 'मानस बिम्ब' जो भावों को गहनता-गम्भीरता का चित्र अंकित करते हैं, उन्हें 'सान्द्र बिम्ब' आदि की संज्ञा से अभिहित किया जाता है। इसी प्रकार 'प्राकृतिक बिम्ब', 'नाद बिम्ब', 'आधुनिक बिम्ब' या 'वैज्ञानिक बिंब' भी कहे जाते हैं।''<sup>13</sup> महानगर लखनऊ की स्वातंत्र्योत्तर प्रमुख महिला साहित्यकारों के काव्य में आए कुछ बिम्बों के स्थल देखें-

1. 'दृश्य बिम्ब' के कुछ स्थल देखें-

- (1) ''केश ढीले-से बंधे जिसके  
वेणी से गिर रहे हैं फूल।  
अति सुंदरतम दिख रहे ये,

श्रम बिंदु बने हैं कर्ण फूल।  
दे रही जल पौधों में,  
ले घट और झुके हुए स्कंध!  
पास अनेक आम्रवृक्ष हैं,  
श्रांत होकर रही प्रबंध।  
अन्य समीप दो सखियाँ,  
मुझे प्रतीत होती हैं!

सहयोग कर रही शंकुतल का,  
ऐसी चित्रित लगती हैं।''<sup>14</sup>

- (2) मृगशावक की चंचल आँखें,  
कजरारी मुस्काती आँखें-  
भरे कुल्लोंचें कंचनमृग देखो  
कस्तूरी है उसके ही तन में-  
ढूँढे कस्तूरी बन में?''<sup>15</sup>

- (3) ''प्रकाशमय  
सम्पूर्ण कारागार  
कृष्णावतार!  
कैसा अजूबा  
पालने में सारे हा!  
पालन हारा!''<sup>16</sup>

- (4) ''झूम-झूम गाये मन  
थिरक-थिरक जाये पग  
गीतों के गुंजन में  
बहक-बहक जाएँ हम  
नाचो सखि, गाओ सखि!  
रंगों की बरखा में  
बेसुध मन गाए।''<sup>17</sup>

इसी प्रकार, अन्य अनेक स्थल 'दृश्यबिम्ब' के आलोच्य साहित्य से दिए जा सकते हैं। इस प्रकार के 'दृश्य बिम्ब' प्रचुरता से आए हैं।

2. 'अलंकृत बिम्ब' के कुछ स्थल देखें-

- (1) ''बेचैनियों की गोद में,  
मन थककर सो गया,

और रात को भी मैंने  
अलविदा कह दिया  
निढाल होता चाँद  
और बेसुध सितारों की  
जगमगाहट भरी टोली  
धुँधलाती जा रही थी  
मेरे जहन से आहिस्ता-आहिस्ता  
सरकती रही उम्र  
सफेद चादर की तरह।<sup>8</sup>

(2) "पागल पवन संदेशा लायी!

यादें लेकर गाँव से आयी।।

पनघट पर है गाँव की गोरी,

ननदी नैनन हँसे निगोरी!

धूँधट उड़ा-उड़ा कर आयी!

यादें लेकर गाँव से आयी।।<sup>9</sup>

(3) "वहाँ जलते हुए धीरज की ताप से गर्म

पत्थर, हवा में उड़ते हैं

पतंगें थकी हुई गौरियों की तरह

टूटे घरों के मलबों पर इंतजार करती हैं

वीरान खेतों में नए कब्रिस्तान आबाद होते हैं

और समंदर अपने किनारों पर

बच्चों को फुटवाँल खेलने आने से रोकता है।<sup>10</sup>

(4) "दुल्हन की तरह,

सजी, सँवरी, इटलाती,

गर्वोन्मत्त मुस्कान से सुसज्जित,

इक्कीसवीं सदी का

नव उमंग, नव उल्लास के संग

स्वागत करते देख हारी-थकी बीसवीं शती

थोड़ा सकुचाई, घबराई

फिर साहस बटोटकर, धीरे से बोली.....

कल जो मेरा था, आज तुम्हारा हो गया!

आज मैं इतिहास बन गई हूँ।<sup>11</sup>

3. 'प्राकृतिक बिम्ब' के कुछ स्थल देखें-

(1) "सजे घनेरे झीने पर्दे, मेघदूत नभद्वार के!

सहज गुलाबी बिछे गलीचे, उन्नत वृक्ष चिनार के!

प्रकृति पिलाती हालामद में, झूम उठा तन बावरा,

बना आशियाँ ठहर गया मन, तनिक उठा कब हार के।।

मेघदूत नभ-द्वार के।।<sup>12</sup>

(2) "ओढ़ली है आस्माँ ने,

बादलों की नर्म रजाई।

कोहरे के पंख लेकर,

शिशिर धरा पर आई।

प्यार के अंकुर समेटे,

धुँध की चादर लपेटे!

मही ने यवनिका उठाई।

लुकती-छिपती रवि किरनों से,

दिवस में ही साँझ आई।<sup>13</sup>

(3) "पावन-पालकी चढ़कर आये पावस के जलधर!

धरती मदमाती इटलाती झूम रहे थलचर।।

पुरवा के संग गंध प्यार की सबमें भरे उमंग।

दग्ध ताप से मुग्ध हो गये शीतल सबके अंग।

नाचे मन-मयूर मुस्काये, पादप वन तर्रुवर।।<sup>14</sup>

(4) "ऋतुराज वसंत की आई बहार

संग में है लाई खुशियाँ अपार

पकने को है कनक की बाली

बौराने को है अंबवा की डाली

खिल गए सरसों के गुंचे-बूटे,

खिला ले सारे खेत-खलिहान

मानो कली-कली, पात-पात ने,

धारे हों जैसे कोई पीत परिधान।।<sup>15</sup>

4. 'मानस बिम्ब' के कुछ स्थल देखें-

(1) "सफ़ इस शहर में

बीमार हैं हवाएँ

कंधों पर ढो रहे हैं,

हम वक्त की शिलाएँ।<sup>16</sup>

(2) "तड़प उठा मन देख मछेरा, मीन प्राण अंतस्तल है।

ठहर न पाता समय भागता, बहता यों निश्छल जल है।

गागर में सागर की महिमा, आखर-आखर गुरु ज्ञानी।

छंद-सा धिरता श्रमिक सवेरा, तब होती चहल-पहल है।।<sup>17</sup>

(3) "पूजन का यह थाल सजाए, सुख-सुहाग माँगू हरपल!

सरस सलिल-सी बहती धारा, घाट-घाट चलती-लहराती!

संग पथिक दो चलते हरपल, मलयानिल उनको महकाती!

तिरछी चितवन नेह बसाए, बढ़ते जाते बन-सम्बल।।<sup>18</sup>

(4) "अम्बर से बरसता यह पानी

कहता है, अजब कहानी!

हमने न सुनी थी,

पर, अम्बर ने अपने आँसुओं से बुनी थी!

होता है बेचैन यह अम्बर जब-जब,

बरसता है आँखों से पानी तब-तब,

झुककर यह धरा से मिलने आता है,

दूर कहीं क्षितिज पर शायद मिल पाता है।।<sup>19</sup>

5. 'सान्द्र बिम्ब' के कुछ स्थल देखें-

(1) "दिग्विजयी की आँख खुली,

तब देखा भुवन भास्कर को!

पूर्ण प्रभा से आलोकित जग,

किया प्रणाम दिवाकर को।।

उठकर नंगे पैर अकेले

चले निमाई से मिलने!

घर का पता पूछकर पहुँचे,

श्री हरि के दर्शन करने।।<sup>20</sup>

(2) "रक्तरंजित युवा, यह किसका लहू

बह रहा चहुँ ओर है

किसी का सिर, तो किसी का पाँव है  
यह किसने थाम रखी, एक दूजे की बाँह है?''<sup>21</sup>  
(3) ''सूर्य-रथ के अश्व का पग धरा पर धर गया!  
कलश ऊषा-सुंदरी का, जल में यूँ बिखर गया!

आज मेरी कलम में, रंग वह ही भर गया!  
शब्द बन वह गीत का, पत्र पर सँवर गया।''<sup>22</sup>

(4) ''छोटी-सी बगिया, सखियों-सी दो बेलें  
माधवीलता और चमेली, सुख-दुख बतिया रही.....  
तना खड़ा बरगद ऊँघ रहा.....

बीच-बीच में मुस्करा देता! चिढ़कर बोली-  
माधवीलता से, रूठी-सी चमेली  
इसके चिकने पात पर लिख दूँ?  
कसम से कितने झूठे हो तुम.....!''<sup>23</sup>

6. 'नाद बिम्ब' के कुछ स्थल देखें-

(1) ''घन-घन घिर-घिर आए बदरा!  
प्रियतम मधुवन आना रे!

बुँदियाँ बरसें झरर-झरर-झर,  
पवन बहे फ़र-फ़र-फ़र-फ़र,  
सरिता बहती सरर-सरर-सर,  
नन्द को छोरा, माखन चोर  
नैना दरस दिखाना रे।''<sup>24</sup>

(2) ''कुछ उमड़-उमड़, कुछ-घुमड़-घुमड़  
आते हैं सावन के घन!  
मेरा मन, प्यासा मन!

चातक-सा मन, देखे जीवन-घन।''<sup>25</sup>

(3) ''राहों में हों शूल-धूल या भूत-प्रेत-सी चट्टानें!  
जैसे झर-झर-झर-झर-झर-झर-झर-झर-झरने की जलधार चले!!  
मेघों की घन घटा घोर नभ हम भी जब अनुसरण करें!  
रिमझिम-रिमझिम माणिक-मोती पुलकित पुलक-फुहार चले।''<sup>26</sup>

(4) ''टपक-टपक टप टप टप दौड़ा,  
सड़क पर सर-सर घोड़ा दौड़ा!  
घोड़े पर बैठा एक सवार  
मुखड़ा बिल्कुल राजकुमार।''<sup>27</sup>

7. 'आधुनिक बिम्ब' के कुछ स्थल देखें-

(1) ''छॉट-बाँट कर थोड़े-थोड़े,  
कूड़े-कचरे सभी मकोड़े!  
एक-एक कर सभी बटोरा,  
भरा लबालब ताल कटोरा।''<sup>28</sup>

(2) ''माँ कितनी है धक्कमपेल,  
आयी देखो मेट्रो रेल!  
मेरा लखनऊ कितना प्यारा?  
हो गई मैट्रो नौ-दो-ग्यारा।''<sup>29</sup>

(3) ''रामू की रेल चले छुक-छुक-छुक-छुक  
रेल में डिब्बे पूरे आठ  
सबसे आगे इंजन साहब  
उनके पीछे डिब्बे आठ

इंजन ने पहने कपड़े काले  
लाल रंग के डिब्बे सारे  
इंजन की सीटी बजती  
डिब्बे पीछे चल देते।।''<sup>30</sup>

(4) ''इस मूसलाधार बारिश में  
मन कहीं बाहर दौड़ रहा है  
कोई अपने गिरते घर में कांप रहा है  
कोई अपने बहते घर में चीख रहा है,  
किसी के घर में नहीं बन सकता है खाना  
क्योंकि घर में नहीं है अनाज का दाना!  
गीली लकड़ी, चूल्हा भी गला हुआ है  
भूखा बच्चा माँ से लगा हुआ है  
कहीं राग मल्हार  
कहीं टन-टन गोपाल।''<sup>31</sup>

सारतः महानगर लखनऊ की स्वातंत्र्योत्तर प्रमुख महिला साहित्यकारों की गीति रचनाओं में चित्रित 'बिम्ब विधान' अन्तःसंप्रेषण का माध्यम भर है। नए कवियों की भाँति 'बिम्ब-रचना' उनकी कविताओं में उद्देश्य नहीं बन जाता। अतः आलोच्य महिला साहित्यकार 'बिम्बवादी' नहीं हैं। इसीलिए, वे कविता के क्षेत्र में रूढ़ियों की शिकार नहीं हुई हैं, बल्कि निरन्तर साहित्यिक विकास की नयी मंजिलों तक पहुँची हैं और पहुँच रही हैं। निस्सन्देह, आलोच्य काल की लखनऊ महानगर की महिला-कवयित्रियों की रचनाओं में 'बिम्ब' अपने आपमें उद्देश्य नहीं है, अपितु वह कविता में जीवनानुभव को रचनात्मकता और मूर्तिमत्ता में संप्रेषित करने का उपकरण भर है। वस्तुतः उनकी कविता में जहाँ भी बिम्बों में 'दृश्य' और 'अनुभूति' का अच्छा तालमेल देखने को मिलता है वहीं उनकी कविताओं में 'बिम्ब विधान' कवयित्रियों के व्यापक सांसारिक अनुभव की ओर संकेत करता है। इन्हें 'अनुभवसिद्ध बिम्ब' भी कह सकते हैं। वास्तव में लखनऊ महानगर की स्वातंत्र्योत्तर प्रमुख महिला रचनाकारों के काव्य में अभिव्यक्त 'बिम्ब विधान' को वर्गीकरण करना दुष्कर कार्य है। वस्तुतः ये कवयित्रियाँ अनुभवसिद्ध साहित्यकार हैं। वे जीवन की विविध स्थितियों-परिस्थितियों की भुक्तभोगी हैं। अतः उनके काव्य में आये 'बिम्ब' भी 'अनुभवसिद्ध बिम्ब' हैं।

सन्दर्भ सूची :-

1. डॉ. नगेन्द्र, 'काव्य बिम्ब', पृ. 3 (प्रथम संस्करण-1967)
2. डॉ. चन्द्रा पंवार, नयी कविता और सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, पृ. 183 (प्रकां 2017)
3. उपरिवत्, पृ. 161-162
4. माधुरी महाकाश, शकुन्तला (माटी अक्षय वट की) षष्ठम् सोपान, पृ. 167 (2023)
5. डॉ. सीमा वर्मा, नीड़ की छॉह में, पृ. 73 (सन् 2012)
6. सुश्री मीनू खरे, जुगनुओं की बसीयत, पृ. 77 (सन् 2020)
7. शारदा लाल, ऐसा मेरा मन, पृ. 65 (सन् 2024)
8. डॉ. रंजना गुप्ता, कैनवास, पृ. 108 (सन् 2021)
9. डॉ. नीलम रावत, दस्तक क्षितिज पर, 69 (सन् 2021)
10. कात्यायनी, एक कुहरा पारभासी, पृ. 81 (सन् 2016)
11. सुधा आदेश, चेतना के स्वर, पृ. 102 (सन् 2013)

12. डॉ. प्रेमलता त्रिपाठी, प्रश्न अनोखे अभी शेष हैं, पृ. 39 (सन् 2023)
13. डॉ. अर्चना प्रकाश, बँद और बादल, पृ. 35 (सन् 2021)
14. सुश्री कृष्णा अवस्थी, भाव मंजूषा, पृ. 30 (सन् 2013)
15. सुश्री सुनीता रेमन, मन-दर्पण, पृ. 61 (सन् 2024)
16. डॉ. रंजना गुप्ता, संपाती के पंख हमारे, पृ. 52 (सन् 2021)
17. डॉ. प्रेमलता त्रिपाठी, सुधियाँ जैसे बाँह पसारे, पृ. 112 (सन् 2020)
18. निवेदिता श्रीवास्तव 'निवी', गीत मेरे मनमीत, पृ. 60 (सन् 2022)
19. डॉ. शिल्पी बख्शी शुक्ला, जिंदगी इतनी आसान नहीं, पृ. 71 (सन् 2022)
20. सुश्री कृष्णा अवस्थी, चैतन्य महाप्रभु (एकादश सर्ग), पृ. 144-145 (सन् 2010)
21. सुश्री निवेदिता, कतरा चाँद का, पृ. 38 (सन् 2018)
22. विनीता मिश्रा, मन की लय, पृ. 69 (सन् 2019)
23. सुश्री दिव्या शुक्ला, बिसरी हुई तिथियों के पन्ने, पृ. 37 (सन् 2022)
24. सुश्री स्वरूप कुमारी बक्शी, हे मानव! तुम आनंद-सरोवर, पृ. 159 (सन् 2011)
25. डॉ. शोभा अग्रवाल 'चिलबिल', अभिशप्त गाथा और कायाकल्प, पृ. 62 (2022)
26. सुश्री स्वरूप कुमारी बक्शी, हे परमानन्दम्, पृ. 44 (सन् 2006)
27. सुश्री अंजना मिश्र, पेड़ हमारे पापा होते ('घोड़ा'), पृ. 50 (सन् 2022)
28. सुश्री शीला पाण्डेय, ताल कटोरा, पृ. 15 (सन् 2022)
29. विजय कुमारी मौर्य 'विजय', बेटू राजा, पृ. 52 (सन् 2018)
30. डॉ? मधु चतुर्वेदी, बालकलरव, पृ. 4 (सन् 2019)
31. सुश्री उषा किरन शुक्ल, अँजुरीभर आकाश, पृ. 55 (सन् 2018)

## अंतर्लाप की अनुगूँज : गगन गिल

इन्दरजीत कौर

शोधार्थी, सोनू भाई बसवंत कॉलेज ऑफ़ आर्ट्स एंड कॉमर्स शाहपुर, जिला - थाना, मुंबई, महाराष्ट्र  
असिस्टेंट प्रोफेसर, एस. के. सोमैया कॉलेज आर्ट्स, साइंस एंड कॉमर्स, विद्या विहार, मुंबई, महाराष्ट्र

हाल ही में साहित्य अकादमी द्वारा सन 2024 के साहित्य अकादमी पुरस्कारों की की गई घोषणा में 'गगन गिल जी' का नाम देखकर मन गद् गद् हो गया। इनकी आत्मपरक सी लगने वाली कविताओं के कारण वह पहले से ही मेरी पसंदीदा कवित्रियों में से एक रही है और मेरे शोध का विषय भी..। मात्र 24 वर्ष की छोटी सी आयु में अपना पहला कविता संग्रह 'एक दिन लौटेगी लड़की' प्रकाशित करके प्रसिद्धि हासिल करने वाली युवा कवित्री 'गगन गिल' देश विदेश में अपने प्रतिभा का लोहा मनवा चुकी है। पत्रकारिता से अपनी रचना यात्रा शुरू करने वाली गगन गिल को अपने प्रथम संग्रह 'एक दिन लौटेगी लड़की' के प्रकाशित होने से पूर्व ही उन्हें भारत सरकार द्वारा प्रतिष्ठित 'भारत भूषण अग्रवाल स्मृति पुरस्कार (1984) वह संस्कृति पुरस्कार (1988) से सम्मानित किया जा चुका था। अभी तक गगन गिल के पांच कविता संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। इनका हर कविता संग्रह अपने आप में अनूठा है व अपने पूर्ववर्ती संग्रह से विविधता लिए हुए हैं। गगन गिल के अब तक प्रकाशित संग्रह में अंतिम, पांचवा संग्रह 'जब तक मैं आई बाहर' के लिए ही गगन गिल को सन 2024 के साहित्य अकादमी पुरस्कार के लिए नामांकित किया गया है। इसके अतिरिक्त गगन गिल ने चार गद्य पुस्तकें- दिल्ली में उनींदे (सन 2000) अवाक (2008), देह की मुंडेर पर (2018) तथा इत्यादि (2018) भी लिखी है। अवाक श्रेष्ठ कोटि का यात्रा संस्मरण है। बीबीसी सर्वेक्षण के अनुसार यह श्रेष्ठ हिंदी यात्रा वृत्तांतों में से एक है। गगन गिल न केवल एक श्रेष्ठ कवियित्री बल्कि एक अच्छी अनुवादक भी है। हाल ही में (सन् 2023) गगन गिल द्वारा अक्का महादेवी के वचनों का 'तेजस्विनी' नाम से भाव रूपांतरण गगन गिल की इस कला का अनुपम उदाहरण प्रस्तुत करता है।

स्त्री की अंतर्मन की पीड़ा को अभिव्यक्त करती गगन जी की कविताओं में दुख की बहुत ही गहन अभिव्यक्ति है। उनकी कविताओं में उपस्थित दुख की यह सघन अनुभूति पाठकीय चेतना का भी परिष्कार करती चलती है। अपने दुख अथवा पीड़ा के इस अनुभव के लिए गगन गिल पितृसत्ता को नहीं कोसती न ही राजनीतिक विषमताओं की शिकायत करती हैं किंतु इन्हें अपनी कविताओं में व्यक्त कर समाजीकरण की इन वरुण प्रक्रियाओं को अवश्य अनावरत करती हैं। इन कविताओं में उपस्थित स्त्री के अंतर्बोध उसके मन में एक सूक्ष्म चेतना का निर्माण कर स्त्री सशक्तिकरण की दिशा में भी एक आधार भूमि तैयार करते हैं।

समाजीकरण की कुरता को अनावृत करती उनकी प्रथम संग्रह की

प्रतिनिधि कविता 'एक दिन लौटेगी लड़की' गगन गिल की रचनाशीलता का अनुपम उदाहरण प्रस्तुत करती है-

'एक दिन लौटेगी लड़की  
हथेली पर जीभ लेकर  
हाथ होगा उसका लहू से लथपथ  
मुंह से टपका लहू कपड़ों में सूखा हुआ

-----  
सोचेगी नहीं वह भूल कर भी  
अपनी हथेली के बारे में, जीभ के बारे में

-----  
सिर्फ कभी-कभी  
उसमें एक सपना धड़केगा

-----  
उसे कभी कभार वाले दिन लड़की निकलेगी  
सपने की नाल से अलग लिथड़ी देह लेकर  
उस दिन से बहुत दिनों दूर...।<sup>1</sup>

सामाजिक विसंगतियों का शिकार यौवन की देह पर कदम रखती उल्लास, उमंग से भरपूर इस अल्हड़ लड़की को दुनिया की असलियत के बारे में कुछ नहीं पता और जब यह अल्हड़ किशोर लड़की सपनों की इस सुनहरी दुनिया से बाहर निकलती है और समाज की वास्तविकता से उसका सामना होता है तो समाज की यह निर्मम, क्रूर, भयावह सच्चाइयां उसके सुंदर, कोमल, निष्पाप मन को लील लेती हैं। वह किसी से भी इनकी शिकायत नहीं करती। बाहर से वह खुशामिजाज दिखती है किंतु उसकी अतः चेतन निष्क्रिय हो जाती है और वह इन अत्याचारों को अपनी नियति मानकर धीरे-धीरे इनकी अभ्यस्त हो जाती है। इसके साथ ही उसके अंतर्मन का अंधेरा भी गहराता चला जाता है

'देह की मुंडेर पर  
वह करती है उसका इंतजार  
बाहर उतना ही अंधेरा है  
जितना भीतर..।<sup>2</sup>

समाजीकरण के इस वरुण यथार्थ को इतनी बारीकी से अवलोकित कर शब्दों में पिरोने की यह सिद्ध हस्तता गगन गिल में ही मिलती है। 'लड़की बैठी है हंसी के बारूद पर', 'एक उम्र के बाद मौएँ', 'यह लड़की

जब उदास होगी' अथवा 'उदासियां तब कितनी अलग होती 'जैसी गगन गिल की कविताएं इन्हीं सामाजिक विसंगतियों को अनावृत करती हैं । जब वह कहती हैं-

'दफ़्तर में लड़कियां फटकने नहीं देती पास

इच्छाओं को, संभावनाओं को

चाहे लाख बार गुड़मुड़ करे, उधम मचाएँ

जमकर बैठी रहती हैं वे इच्छाओं के पिटारे पर..।'<sup>3</sup>

गगन गिल अपनी कविताओं में जी अस्मिता को तलाशती है उसमें स्त्री के वे प्रसाद त्रासद अनुभव शामिल हैं जिनका सामना वह समाज में रहकर निरंतर करती है। समाज में निरंतर अस्वीकार व अवमानना से उसका अंतमन खंडित होकर उसके बाहर व भीतर एक तरह के असमंजस की स्थिति पैदा कर देता है। यही असमंजस गगन की कविताओं का वर्ण्य विषय है। दुःख गगन गिल की कविताओं में स्थाई भाव बनकर उभरा है। उनकी कविताओं की आध्यात्मिक चेतना एक अलग किस्म के रहस्यवाद को जन्म देती है। उनकी कविताओं में पिता के हृदय में पुत्री के लिए बसा अंतहीन शोक गहन पीड़ा देता है-

'शोक मत कर

पिता ने कहा

अब शोक ही तेरा पिता है।'<sup>4</sup>

एक सजग, अति संवेदनशील आत्म चेतक स्त्री की व्यापक आत्म चेतना का परिचय देती गगन गिल की कविताओं में करुणा व मार्मिकता का विस्तार मिलता है। अमूर्तनता से शुरू हुई गगन गिल की कविताएं आगे चलकर एक जीवन दर्शन का रूप ले लेती हैं। इनमें उपस्थित दुख भी विस्तार पा जाता है। अब यह स्त्री की निजी कविता न रहकर आकाश, ईश्वर और पूरे पर्यावरण की कविता हो जाती है। निम्नांकित पंक्तियों में उनके मन की आतुरता स्पष्ट झलकती है-

'इसी तरह

सो जाता है क्या

ईश्वर पृथ्वी पर?

---

सुनती है पृथ्वी

क्या इसी तरह

ईश्वर की नाड़ी

अपने कान के भीतर

वर्षों बाद भी?'<sup>5</sup>

गगन गिल की आध्यात्मिक चेतना कन्नड़ साध्वी अक्का महादेवी व बौद्ध दर्शन से प्रभावित है। उनकी कल्पनाशीलता व रचनात्मक पर बौद्ध दर्शन की अनुगूजों का प्रभाव स्पष्टतः परिलक्षित होता है।

'घूम रहे हैं कुछ बुद्ध

उद्विग्न इस पृथ्वी पर

कोई नहीं उत्सुक

उनकी बात सुनने को

---

थक गई है अग्नि

थक गया है बोध

थक गया है बैल भी

पृथ्वी के नीचे

बुद्ध भी थक गए हैं

बुद्ध होते-होते..।'<sup>6</sup>

बौद्ध दर्शन की लोगों ने अलग-अलग व्याख्या करते हुए उसी के अनुसार बुद्ध को भी अलग-अलग रूपों में स्थापित किया है। इतनी अलग-अलग व्याख्याएं सुनकर तो स्वयं बुद्ध भी थक गए हैं लेकिन बोधिसत्व को कोई नहीं जान सका उनकी अलग-अलग पाषाण मूर्तियां बना कर लोग दिग्भ्रमित है। इसी स्थिति पर कटाक्ष करते हुए गगन उक्त पंक्तियों लिखती हैं।

अंधेरे में बुद्ध संग्रह का ही एक और काव्यअंश:

'अंधेरे में बुद्ध

अपनी प्रतिमा से निकलते हैं

अपनी काया से निकलते हैं

अपने स्तूप से निकलते हैं

अस्थी पुंज से निकलते हैं

----

एक मुद्रा से दूसरी मुद्रा तक

एक प्रतिमा से दूसरी प्रतिमा तक

अंधेरे में बुद्ध

अपनी जगह बदलते हैं

जैसे उनकी नहीं

दुख की जगह हो।'<sup>7</sup>

प्रस्तुत पंक्तियों में बुद्ध दुख के प्रतीक हैं जो कि अंधेरे में अपनी काया, स्तूप व अस्थि पुंज से अपनी प्रतिमा से बाहर आते हैं। उनके लिए दुख ही जीवन है इसलिए वह दुख से दुखी नहीं होते बल्कि उसमें एकाकर हो जाते हैं। इसी अंधेरे में बुद्ध जगह बदलते हैं यहां जगह का बदलना दुख की जगह बदल देती है। यहां बुद्ध का जगह बदलने दुख के विस्तार का प्रतीक है। भाव यह है की सुख और दुख इस संसार रूपी रथ के दो पहिए हैं अगर सुख है तो दुख भी अवश्यभावी है किंतु दृढ़ता से उस दुख में लिप्त हुए बिना उसे निवृत्त होने से ही दुख हम पर हावी नहीं होता।

हमारे नैतिक बोध को आत्म चेतस मन से संबद्ध करती गगन गिल के 'यह आकांक्षा समय नहीं संग्रह की कविताएं' एक अलग स्वर की कविताएं हैं। गगन गिल के अचेतन मन में उपस्थित विराग के अनुभव अलग-अलग बिंबों में यहां निरंतर सक्रिय हुए हैं-

'एक कोई जगह है

पृथ्वी के

अंतिम छोर से भी आगे

---

जब तुम नहीं होते

वह जाती है वहां

डुबोती है अपना पाँव

अथाह में

जैसे डुबो नहीं

डूब रही हो

---

तुम्हें ढूँढते हुए।'<sup>8</sup>

एक अलग किस्म की रहस्यात्मकता के संकेत यहां मिलते हैं। यहां गगन कहती है कि पृथ्वी के अंतिम छोर अनंत के आगे भी एक दुनिया है जो कि हमारी इस दुनिया से बहुत अलग है जहां हमारी दुनिया की तरह सितारे

तारे तो जरूर है किंतु वहां हमारी दुनिया की तरह उत्थान – पतन का नियम नहीं चलता। इस दुनिया का क्रियाकलाप शायद दूसरे ग्रह के प्राणी संभालते हैं इसलिए जब हम यहां नहीं होते तब कोई अदृश्य शक्ति हमें ढूँढते हुए इस अथाह अनंत में डूबी हुई दिखाई देती है। यहां गगन की कल्पनाशीलता उनकी रचनात्मकता के नए आयाम उपस्थित करती है।

एक लंबे समय के पश्चात आधुनिक हिंदी कविता के एक नए पड़ाव के रूप में 'थपक-थपक दिल थपक-थपक' की कविताएं गगन गिल की रचना शीलता की अनुपम उपलब्धि है। अपने इस कविता संग्रह को गगन गिल हेक (रेगिस्तान की पुकार) और हूक (बियावान की चीख) की टेर कहती है। छंदों की श्रृंखला में विधिवत बँधी इस संग्रह की काव्य पंक्तियां गायन शैली का सौंदर्य लिए अनायास ही आँटो से खेलती हुई मालूम होती है। मानवीय स्थितियों के दुख व बौद्धिक दर्शन से इतर इस संग्रह की कविताएं अपनी संश्लेष बुनावट व भाषा प्रयोग के कारण अपने आप में अनूठी हैं। एक तरह से यह छंद, स्वच्छंद, लय व तुक की कविताएं हैं जिनमें अंतरलय का बोध निर्मित होता है। इन कविताओं में गगन गिल भाषा व शब्दों के साथ खेलते हुए उन्हें रूप व आकार देती हैं। यहां गगन गिल की काव्य संवेदना मनुष्य की रोजमर्रा की संवेदना से जुड़कर आकार ग्रहण करती है। यहां शब्द ध्वन्यात्मक, लयात्मक होकर अधिक दृश्य हो उठते हैं। इस संग्रह की बहुत सी कविताओं में एक तरह का आत्मलाप दृष्टिगत है जो कि कहीं-कहीं गगन जी का आत्म संघर्ष बनकर भी उभरता है-

'गूँजी गूँजी गूँजी  
सपन से चीख निकल कोई गूँजी

-----

संकरा संकरा संकरा  
साँस का रस्ता बड़ा ही संकरा

-----

गूँगी गूँगी गूँगी  
पीर ये अपनी अंधी -गूँगी'<sup>9</sup>

कनपटी री कनपटी/ बीत गई अनबीती भी अथवा 'न मैं हंसी न मैं रोई/ बीच चौराहे जा खड़ी हुई' या 'सांस में पढ़ा उसने /कांच में पढ़ा/ तुम ही तुम थे.. अवधूत संगीत सी ध्वनित, और ले ताल में बँधी' यह पंक्तियां रागात्मकता के नायाब उदाहरण हैं। गगन गिल का यह आदिकालीन अंदाज युवा मन के लिए एक चुनौती भी प्रस्तुत करता है। वर्तमान की आहट व अतीत की स्मृति अपने आप में समेटे गगन गिल का यह संग्रह अपने आप में अनूठा है। यही अनुठापन इस संग्रह की ताकत भी है।

'उसी ने मूक किया था  
दी उसी ने वाणी...'

पन्द्रह वर्षों के लंबे अंतराल के पश्चात अनुभव के नए प्रवेश द्वार के साथ, नए बिंब और चित्र रचना गगन जी का संग्रह 'मैं जब तक आई बाहर' प्रकाशित हुआ। प्रथम पृष्ठ पर ही उपस्थित संग्रह के इस समर्पण वाक्य ने मुझे मूक कर दिया। कितना ठहराव है इसमें...कितना गहन। बिल्कुल गगन गिल की तरह शील व संयम से परिपूर्ण .. पूर्ण समर्पण।

अगला पृष्ठ 'माँ' को समर्पित जहां कवियित्री मां की आंखों पर अपना एक प्यार भरा चुंबन रखती हैं.. 'एक चुंबन तुम्हारी आंखों पर माँ!' कितना खूबसूरत समर्पण है यह..। यह पुस्तक चार भागों में विभक्त है। प्रथम भाग मां को समर्पित है। मां से संवाद करती यह कविताएं अपने आप में विलक्षण हैं। उनकी यह विलक्षणता बेशकीमती व संरक्षणीय है। मां की स्मृति

में जगह लिखती है- संसार/ जिनके बारे में / चेताते रहे धर्म ग्रंथ /जिसे हमें छोड़ना था /एक दिन/ बना था वह/ पांच भूतों से नहीं /तुम्हारे शब्द से केवल /ढह गया ,उसी में मां ..। पंक्तियों में निहित इस असीम वेदना से ऐसी स्मृति से भीगा आद्र हृदय विरेचित हो जाता है, विरह की इस वेदना से तो जैसे सारा संसार ही ढह जाता है। मां के प्रति इसी शाश्वत स्नेह को प्रकट करती गगन की कविताएं इस संग्रह के प्रथम भाग में हैं। तुम सुई में से निकलती हो/ मैं धागे में से, माँ! जैसी मर्मस्पर्शी कविता इसी भाग में है।

'तुम सुई में से निकलती हो  
मैं धागे में से, माँ

कभी सुई में से मैं  
धागे में से तुम

कौन सी बखिया, माँ  
हम सिले जा रही  
सदियों से

कौन सा यह टॉका  
पूरा होने में नहीं आता..।'<sup>10</sup>

यह गगन गिल ही है जो अपने इस अनोखे शिल्प में मां- बेटे के युग्म को सुई और धागे का रूप से बाँधकर शब्दों को टॉकते हुए जीवन रूपी बखिया सिलती है किंतु उनके अंतर्मन की व्यथा इतनी गहन है कि वह इन टॉकों में पूरी नहीं समाती। जिससे वह निम्नांकित पंक्तियों में इस प्रकार व्यक्त करती हैं-

'बीत गए दिन ,मां  
बीत गए बरस सब

न खत्म होने को ये तुरपाई, माँ  
न धागा

न कहीं छोर इस चादर का..।'<sup>11</sup>

मां और बेटे के बीच के अंतर्लाप को सुई और धागे की बखिया से सिल कर जीवन रूपी चादर को समेटने का प्रयास किया है। किंतु यह जीवन है कि वह सुई में उलझता ही चला जाता है। जीवन के प्रति खिंचाव के साथ-साथ अलगाव लिए हुए गगन गिल की कविताएँ कालातीत हैं। अंतर्मन को छू जाने वाली हर एक पंक्ति में विरह की सघन पीड़ा है। एक-एक शब्द जैसे करुणा में भीगा हुआ है। कहां से लाती है गगन इतनी पीड़ा? ऐसी ही एक और कविता में गगन कहती हैं-

'कुछ देर बुझ जाऊं, मां?

फिर साफ दिखे

रात और चोंद

साफ दिखे

तारे आसमान में

आकाश गंगाएँ

जाती हुई माँएँ...।'<sup>12</sup>

अपनी जाती हुई मां को जिसे रोकना अब उनके वश में नहीं है, को देखने के लिए स्वयं बुझ जाना चाहती हैं। शाश्वत प्रेम में डूबी गगन के यह पंक्तियां अपने पाठकों को अंदर तक आहत कर जाती हैं।

स्वयं से संवाद करती गगन की यह कविताएं अपने में गहन भावों को समेटे हुए हैं। प्रियजनों को अपने सामने जाते देखना गगन के संवेदनशील मन में विषाद उत्पन्न करता है-

'अचानक खत्म हो गए सब काम  
रुकी रह गई  
हवा में सॉस

---

एक पल में होना था  
एक पल में हुआ

अन्य यह संसार<sup>13</sup>

वे सब वसु थे, माँ/ मरने आए थे/ तुम्हारी गोद में/ मुक्ति पाने/  
जैसी पंक्तियां रच कर गर्भपात करवाने वाली मांओं को सांत्वना देती है।

'ये जो जल मैं पीती हूँ' द्वितीय भाग का शीर्षक है। इस बात की कविताएं भी मां के न रहने पर उनकी स्मृति से अनुप्राणित हैं। जब वह लिखती हैं ..ना यह लौंदा किसी मांस का /न गुच्छ किसी प्रकाश का अथवा थोड़ी दूर /उन्हे जाने दो /अंधेरे में /ईश्वर<sup>14</sup>... बुझे हुए मन में आशा की एक नई किरण उत्पन्न कर देती हैं।

अंडे से निकलूँ बाहर /कि निकलूँ घोंसले से?/ घोंसले से निकलूँ  
बाहर/ कि अपने पंखों में से? जैसी पंक्तियां उनके मन में चल रहे अंतर्द्वंद्व को व्यक्त करती हैं। और अंत में वह कहती हैं-झेलनी न हो गर साँस/ तो अंडा तोड़ूँ क्योंकर!/अंडे से निकलूँ न बाहर/ न निकलूँ घोंसले से! अततः इन दुनिया भी झमेलो में न पड़कर अपने चिंतन में लीन रहना चाहती हैं।

दुख जीवन का अनिवार्य हिस्सा है किंतु दिन के दुखों को रात के दुखों से अलग कर गगन गिल अपनी कल्पनाशीलता को नए आयाम देती हैं-

'दिन के दुख अलग थे  
रात के अलग

दिन में उन्हें

छिपाना पड़ता था

रात में उनसे छिपना..<sup>15</sup>

दिन के दुखों से तो फिर भी एक बार छुपा जा सकता है किंतु रात के दुखों से बचना आसान नहीं है। रातें उजली हो या काली यह रात में यह दुख आकर हमें दबोच ही लेते हैं। दुखों-दुखों के बीच अंतर कर पाना ..एक अलग अनुभूति चाहिए इसके लिए जो कि गगन गिल में है।

छोड़ कर चले गए प्रिय जनों के अभाव में आकुल गगनगिल उनसे प्रश्न करती है -

'क्यों जाना है तुम्हें उतनी दूर

अकेले-अकेले

बदलना है अपना रूप

अपना चोला?'

---

कुछ तो कहो निष्ठुर

क्यों जाना है

इस तरह

अकेले-अकेले?'<sup>16</sup>

प्रिय जनों का विछोह हमेशा ही कष्टकर होता है। गगन गिल के इस

संग्रह की कविताएं निश्चय ही उनके एकांत की कविताएं हैं किंतु इस एकांत में उपस्थित विरह असह्य है। अपनी इसी आशा है पीड़ा को शब्दों के माध्यम से उन्होंने अपनी कविताओं में व्यक्त किया है। यही पीड़ा आगे चलकर एक दर्शन का रूप ले लेती है।

'तितली ने कहा 'कविता की इन पंक्तियों के माध्यम से तो क्षणभंगुरता की ओर इशारा कर जैसे वह जिंदगी के सार को ही समझा जाती हैं-

'तितली ने कहा

कुल नौ दिन

मैं तुम्हारे पास हूँ।

बगीचा यू ही रखना'<sup>17</sup>

तितली का जीवन चक्र मात्र नौ दिन का होता है। उसके बाद वह मर जाती है। वह इस सत्य को जानती है तब भी कहती है-'बगीचा यू ही रखना' अर्थात् मैं रहूँ या न रहूँ पर यह सुंदर संसार यू ही रहना चाहिए मृत्यु जीवन का शाश्वत सच है ,वह निश्चित है। इसलिए मृत्यु के कारण जीवन की अन्य क्रियाओं में बाधा डालना उचित नहीं।

अपनी ही एक और कविता में विरह के रंग को उजला कहकर अपनी अपार सहनशक्ति का परिचय देती हैं। जब वह कहती हैं-

'धनियां रह जाएगी यहीं  
रंग और दृश्य भी

कि वह कोई दूसरी ही प्यास होगी

दूसरी ही भूख

जो नहीं बुझेगी अंत तक

कि वही जाएगी साथ

अंत के बाद भी..<sup>18</sup>

इस तरह के उदाहरण प्रस्तुत कर गगन गिल जीवन और मृत्यु का पूरा दर्शन समझा जाती हैं।

संग्रह का तीसरा भाग 'कौन रख गया है तुम्हें यहां' शीर्षक से संबोधित है। इस भाग में गगन गिल का समर्पण का भाव ,परम सत्ता के प्रति विश्वास का भाव अपने चरम पर दिखता है। अपने आप में पूरी कविता कहता इस संग्रह का समर्पण वाक्य 'उसी ने मुक किया था दी उसी ने वाणी' भी इसी भाग की कविता 'कभी मुंड कभी माला में' संकलित है। जिसमें गगन स्वयं को पूरी तरह से ईश्वर के हाथों समर्पित कर देती हैं। वह कहती हैं -

'मैं अपने ईश्वर के हाथ में हूँ

कभी फूल

कभी ज्वाला

कभी मुंड

कभी माला

---

झुकी हुई थी प्रार्थना मे

जाने कब

उठा लिया उसने

---

उसी ने मुक किया था

दी उसी ने वाणी

उसके हाथ में हूँ अब..<sup>19</sup>

ईश्वर के प्रति यह गहन समर्पण का अथाह विश्वास ही है जो उन्हें पानी की खौफ और अंधेरे की चिंताओं से बचाता है। बताता है की अब तक भागने को नहीं /यहां तक ले आने को /बनी थी सुरंग। जो जानता है कि इस मुनिया के सीने में एक छोटा सा एक तूफान घुमड़ रहा हैज। जिसे जिंदा शरीर में बहता हुआ नीला मुर्दा थका कौंच के जैसा साफ दिखता है.. जिसे पता है कितना सह सकता है मनुष्य /कितना नहीं.. / कितना कर सकता है क्षमा /कितना नहीं..

अपने इसी ईश्वर से गगन गिल बड़ी आसक्ति से कहती हैं तुम्हें तो सब कुछ पता है फिर 'मैं क्यों कहूंगी तुमसे /अब और नहीं/ सहा जाता/ मेरे ईश्वर।' और मन में विषाद की गहरी टीस लिए थक हारकर पूरे समर्पण भाव से ईश्वर से प्रार्थना करती हैं-

'वही दाना देना प्रभु

जिस पर

मेरा नाम हो

---

न पाने में धोखा

न हक में कहीं गड़बड़ हो

हो मेरे भाग्य का

हो मेरे भाग्य में

उतना ही देना ,प्रभु

भले वह भूख हो

भले वह प्यास हो<sup>20</sup>

गगन जी की इन कविताओं में वनकन्या भी विचरती हैं। इस नश्वर शरीर को बंधनों से भरा बताकर गगन जी वन कन्या को जीवन की बहुत ही खूबसूरत सीख देती हैं-

'देवता हो ,चाहे मनुष्य

देह मत रखना किसी के चरणों में

देह बड़ी ही बंधनकारी ,वनकन्या!

---

धीमे-धीमे बनना लौ

उठती सीधी

रीड़ में से ऊपर<sup>21</sup>

और आगे जब वह इस वनकन्या से कहती हैं-खड़े होना/ अकेले कभी /आकाश तले/ मात्र एक हृदय /नग्न और देह विहीन निष्कलुष, पारदर्शी... पंक्तियां पढ़कर अचानक जैसे अक्का महादेवी सामने खड़ी हो जाती है। अक्का महादेवी गगन गिल का प्रेरणा स्रोत है। ऐसा लगता है मानो गगन 'अक्का' को अक्स बनाकर वनकन्या को जीवनसेधा दे रही हैं।

वनकन्या के बारे में गगन गिल यह भी जानती हैं-देवता नहीं/ कोई मनुष्य ही बनाएगा/ तुम्हें मानवी /एक दिन, वन कन्या.. /वही उलीचेगा /तुम्हारे हृदय का कीचड़.. /वही होगा तुम्हारा देवता ,वनकन्या!<sup>22</sup> वन कन्या को मानवी बनाने वाले इस मनुष्य को गगन गिल देवताओं से भी बड़ा मानती है। गगन के अनुसार देवताओं से बड़ा यह मनुष्य ही वन कन्या के सीने में जमी हुई बर्फ को तोड़ेगा, वही उसकी अनबुझ प्यास को भी बुझाएगा। वही इस वनकन्या का

देवता होगा।

तृतीय खंड की अंतिम कविता में देवी स्तुति करते हु? कहती हैं -

'कभी-कभी

अंधेरे में भी रखना मां!

कि देख लेआता

कोई प्रकाश

---

महिषासुर भेजना

कभी-कभी माँ !

भूल नहीं जाए हम

कैसे किए जाते हैं वध

सजाए कैसे जाते हैं मुंड..

---

आसान मत करना कोई राह

ऐसे ही चलाना, देवी मां

कभी आग कभी खींच पर...<sup>23</sup>

ऐसी देवी स्तुति कौन करता है भला !! कौन देवी मां से (कभी-कभी) अंधेरे में रखने के लिए कहता है? कौन कहता है-कभी-कभी महिषासुर भेजना मां!, राह आसान मत करना मां... ऐसी विलक्षण प्रार्थना गगन के लिए ही कर सकती हैं। ताकि सुखों के बाद आने वाले दुख हमें सताए नहीं हम सुख और दुख को सम कर जान सके। हमारी जिंदगी में आने वाले महिषासुर हमें अच्छाई और बुराई की पहचान करा सके। कठिन रास्ते पर चलकर आग का दरिया भी हम आसानी से पार कर सके। ऐसी दूरदर्शिता व विलक्षण चेतना गगन गिल की कविताओं में ही मिलती है।

इस संग्रह का चौथा वह अंतिम भाग का शीर्षक 'स्वप्न के बाहर' है। शायद यह वही स्वप्न है। जिसमें गगन गिल 15 साल की चुप्पी में रहने के बाद उससे बाहर आकर ईश्वरीय प्रेरणा से रचना कर्म में लीन हो यह अद्भुत संग्रह अपने पाठकों को दिया है। वह लिखती हैं-मैं उसके स्वप्न में नहीं /उससे बाहर थी.. / कुछ पता चलता न था /कहां था अंधेरा ज्यादा/ स्वप्न के भीतर/ कि स्वप्न के बाहरज/ देवता लगे थे मेरे पीछे/ कि मनुष्य /यह कोई स्वप्न नहीं /असहनीय था यह /स्वप्न से भी ज्यादा/ मैं वहां थी/ मगर /स्वप्न से बाहर थी। कवित्री के मन की असहनीय पीड़ा को व्यक्त करता यह वरुण सत्य अपने पाठकों को बेचैन कर जाता है।

बूचर खाने में कटने वाली दुधारू गऊ का रूपक रचकर उस गऊ की पीड़ा को स्त्री मन की आंतरिक पीड़ा से जोड़कर जब गगन गिल अपनी यह अनुपम कृति रचती हैं-

'एक गऊ मेरे भीतर है

जिस कटने का डर है

---

जो गऊ मेरे भीतर

आ छुपी है

भाग कर

जिस

कटने का डर है

बचने का डर

---

यह सिर्फ एक संयोग था  
अंधेरे में हुई गफलत  
कूद बैठी यह गरु  
मेरे भीतर

अब हम दोनों को  
कटने का डर है  
बचने का डर है'<sup>24</sup>

सार्वभौमिक बहनापा /यूनिवर्सल सिस्टरहुड की अवधारणा को अपने में अंगीकार करती विश्व की स्त्रियों का मर्यान्तक सांझा बयान व्यक्त करती गगन की यह पंक्तियां स्त्री मन की इस असह्य य पीड़ा से अपने पाठकों को झंकृत कर देती है। पाठक अनायास ही सोचने पर विवश हो जाता है ज. इतना अंधकार। स्त्री मन का यह अंधकार कहां ज्यादा है उसके भीतर या बाहर...।

सभी चुप्पियों को तोड़ती इस संग्रह की गगन गिल की अंतिम कविता 'मैं जब तक आई बाहर' तो जैसे उन सभी अनुद्वित प्रश्नों का उत्तर है जो गगन जी के पाठकों के मन में काफी समय से कौंध रहे थे। इस कविता की पंक्तियों में गगन जी अपनी स्थिति कुछ इस तरह बयां करती हैं-

'मैं जब तक आई बाहर

एकांत से अपने

बदल चुका था

रंग दुनिया का

अर्थ भाषा का

आगे की पंक्तियां हम सबको स्तंभित कर जाती है। जब वह आगे

कहती हैं-

मैं इतनी देर में आई बाहर

कि योद्धा हो चुके थे

लड़ते-लड़ते

अदृश्य

शहीद

युद्ध भी हो चुका था

अदृश्य

हालांकि लड़ा जा रहा था

अब भी

सब ओर..

---

मैं जब तक आई बाहर

एकांत से अपने

बदल चुका था मर्म

भाषा का'<sup>25</sup>

पंक्तियों की भावोत्कंठा इतनी गहरी कि शब्द कम पड़ जाते हैं.. स्तब्ध पाठक कुछ समय के लिए तो शून्य में विचारने को विवश हो जाता है.. कितनी गहरी चेतना है इन पंक्तियों में.. देखने में सरल सी लगती गगन गिल की पंक्तियां अपने में सागर सी गहनता लिए हुए हैं। छोटी सी लगने वाली इन कविताओं को पढ़ने में बहुत समय देना होता है। धीरे-धीरे, रुक रुक कर पढ़ने से ही इन

कविताओं में निहित अर्थ खुलते हैं। इन कविताओं का ठहराव भी अपने आप में गंभीर अर्थ लिए हुए हैं। यहां नहीं लिखी हुई बात को भी विचारना होता है। गगन गिल की लेखनी में ही वह जादू है जो पाठकों के मन मस्तिष्क में गहरी बैठकर कुछ देर के लिए उन्हें विस्मित कर जाता है। गगन जी के एकांत की कलात्मकताएं अति गहन है जो पाठकों को आकर्षित करती है। एकांत को अभिव्यक्त करती इन कविताओं को एकांत में ही पढ़ा जा सकता है।

संदर्भ सूची:-

1. गगन गिल, एक दिन लौटेगी लड़की ,वाणी प्रकाशन-नई दिल्ली, प्रथम (वाणी) संस्करण 2017, पृष्ठ 28
2. वही पृष्ठ 108
3. वही पृष्ठ 24
4. गगन गिल, अंधेरे में बुद्ध वाणी प्रकाशन-नई दिल्ली, प्रथम ( वाणी )संस्करण 2018, पृष्ठ 12
5. वही (दाह- स्थल पर), पृष्ठ 131
6. वही (घूम रहे हैं उद्विग्न बुद्ध ), पृष्ठ 117
7. वही 115
8. गगन गिल ,यह आकांक्षा समय नहीं, वाणी प्रकाशन- नई दिल्ली ,संस्करण 2020 ,पृष्ठ 48
9. गगन गिल ,थपक थपक दिल थपक थपक ,वाणी प्रकाशन -नई दिल्ली ,संस्करण 2013 ,पृष्ठ 13
10. गगन गिल ,मैं जब तक आई बाहर, वाणी प्रकाशन- नई दिल्ली ,प्रथम संस्करण 2018, पृष्ठ 15
11. वही पृष्ठ 16
12. वही पृष्ठ 17
13. वही ( एक पल में होना था) पृष्ठ 19-20
14. मैं जब तक आई बाहर ,(अंडे से निकलूं बाहर), पृष्ठ 40
15. वही,( दिन के दुख अलग थे), पृष्ठ 50
16. वही ,पृष्ठ 62-63
17. वही,( तितली ने कहा), पृष्ठ 68
18. वही ,पृष्ठ 82-83
19. वही, पृष्ठ 91-92
20. वही,( वही दाना देना ,प्रभु ), पृष्ठ 117-119
21. वही,( देवता हो, चाहे मनुष्य), पृष्ठ 102
22. वही ,( देवता नहीं कोई मनुष्य ),पृष्ठ 105-107)
23. वही ,(देवी स्तुति), पृष्ठ 123- 124
24. मैं जब तक आई बाहर (एक गरु मेरे भीतर ),पृष्ठ 147-150
25. वही पृष्ठ 151 -154

## म्यांमार का मुक्ति संग्राम

डॉ. पप्पु कुमार

जेनिथ कोचिंग सेंटर, गोपालगंज, बिहार

म्यानमार एसिया के दो सबसे महान सभ्यताओं वाले देशों चीन और भारत के मिलन स्थल पर स्थित है। वर्ष 1989 के पूर्व इसे कई नामों से जाना जाता रहा है। इसे सुवन्नभूमि बरमाह और बर्मा पुकारा जाता था। यह दक्षिण के अण्डमान समुद्री द्वीपों से लेकर पूर्वी हिमालय पर्वत श्रृंखलाओं के पूर्वी हिस्से तक फैला हुआ है। जिसके अन्तर्गत अनेकों तरह के जनसमुदाय के साथ-साथ भरी पूरी प्रकृति संपन्नता विखेरती है।

इसमें 7 राज्य एवं 7 मंडल है। अयेयारवेदी बागों, मैगबे, मण्डालों, सैगांव, तनिनथारी, यागोन सातमंडल है जबकि चिन, कचिन केइन, केया, मॉन, राखिन एवं शान राज्य है। 4 जनवरी 1948 को इसका स्वाधीनता दिवस है। 40 देशों से अधिक देशों में इसके दुतावास है।

म्यानमार का एक लंबा एवं जटील इतिहास है। यहाँ की पहली सभ्यता मॉन सभ्यता है। इस जाति के लोग 300 वर्ष ईसा पूर्व यहाँ आये और थाटोन के समुद्री तट पर बसे। 7वीं सदी में पीयू लोग भी यहाँ आते हैं और बिनाका, मोनगैमो, श्री सेट्टा और हेलिंगी में नगर राज्य स्थापित करते हैं। इसी काल में म्यानमार भारत से और चीन से जमीनी रास्ते से जुड़ता है और व्यापार प्रारंभ होता है। पीयू के बाद वर्णियों ने बगान नगर को एक शक्तिशाली राजतंत्र के रूप में विकसित किया। बाद में 1057 के आस पास अनावर्ध का शासन हो जाता है। हालांकि इस समय म्यांमार एकता के सूत्र में बंध जाता है। कुल मिलाकर 1044 से 1077 के बिच यह अलग-थलग ढंग से विकसित होता रहा। बगान राज्य की समाप्ति के बाद 1364 में बर्मियों का शासन स्थापित होता है यहाँ बर्मी संस्कृति खुब फलती-फुलती है किन्तु रक्षा तंत्र मजबूत नहीं होने के कारण 1527 में षान का षासन हो जाता है। बाद में 1531 से 1550 तक तांगू का राज रहता है। 1753 में एक लोकप्रिय बर्मी नेता अलौंग पाया ने म्यानमार पर अधिकार कर लिया। पुनः 1759 तक इसमें पेगु और दक्षिण म्यानमार को भी जीत लिया और रंगून ने अपनी राजधानी स्थापित की जो अब यागोन के नाम से जाना जाता है। 1759 तक अलौंग पाया ने मॉन राज्य के हन्थवाडी वंस का सदा के लिए सफ़या कर दिया। इसके बाद इसने घ्याम के साथ युद्ध छेड़ा क्योंकि घ्याम ने मॉन भगौडों को आश्रय दिया था। यहाँ अलौंग पाया घ्याम सहीत लाओस के बड़े हिस्से पर कब्जा कर लिया। बर्मा और श्याम के बीच 1854 के आस-पास युद्ध होते रहे लेकिन इसका कोई नतीजा नहीं निकला और अन्ततः दोनों देशों में तनसेरीन को बर्मा तथा लान-ना को घ्याम के हवाले कर दिया।

उत्तर पूर्व में स्थित शक्तिशाली चीन एवं दक्षिण पूर्व श्याम से मुकाबले को देखते हुए राजा बोदाव पाया राज्य विस्तार के लिए पश्चिम की ओर मुखातिब होते हैं। 1784 में अराकान, 1813 में मणिपुर और 1817

से 1819 के बीच असम पर कब्जा कर लेते हैं। परन्तु इसी क्रम में अंग्रेजों और बर्मा के बीच पहला युद्ध 1824 से 1826 होता है। पुनः 1885 में बर्मा और अंग्रेजों के बीच युद्ध होता है इसमें अंग्रेज विजयी होते हैं। और बर्मा के अन्तिम राजा थीबाब और उसके परिवार को भारत में देश बदर कर दिया। इसके पश्चात् 1886 में ब्रिटेन ने बर्मा को भारत के अधीन एक राज्य में बदल दिया और दुसरी राजधानी रंगून बना दी गई। यहाँ राजतंत्र की समाप्ति होती है और अंग्रेजों के शासन स्थापित होने से समाज में बड़ा बदलाव दिखता है। अंग्रेज इसे एक औपनिवेशिक देश के तौर पर व्यवस्थित करते हैं स्वेज नहर खुल जाने से चावल की खेती बड़े पैमाने पर शुरू होती है जिससे बर्मा किसान ऊँचे ब्याज दर पर भारत के सूदखोरों जिनहें चेडियार कहा जाता था उनसे पैसे लेने पर मजबूर होना पड़ता था लेकिन ऋण नहीं चुका पाने के कारण जमीन से हॉथ धोना पड़ता था उनके जमीनों और जानवरों पर कब्जा कर लिया जाता था। फलतः वे क्षुब्ध होकर हथियार उठा लेते थे और डकैती करते थे एक तरफ बर्मा अर्थ व्यवस्था फल-फूल तो रही थी किन्तु पुरा नियंत्रण अंग्रेजों के हॉथ में आ गया। इससे जनता में क्षोभ पैदा होना शुरू हुआ।

इससे कई आंदोलन प्रारंभ होते हैं जिसके फलस्वरूप बर्मा को अधिक स्वायतता प्राप्त हुई। तथा नागरिक सेवा में बर्मियों को ज्यादा प्रतिनिधित्व के प्रयास भी हुए। इसी कड़ी में एक छात्र आन्दोलन जोरों पर था जिसका नेतृत्व आंग षान एवं नू कर रहे थे। जिस आन्दोलन का नाम था "दोबामा एथिया योन" (हम बर्मी संघ)। इनका कहना था कि हमारे देश की हमारी मिलिकयत को औपनिवेशिक ताकतों द्वारा छीन ली गई है। इसी बात को लेकर आंदोलन था और आंदोलन दिन प्रतिदिन जोर पकड़ते जा रही थी। इसी क्रम में रंगून में औपनिवेशिक सत्ता केन्द्र सचिवालय के पास छात्रों द्वारा सफलता पूर्वक चलाये गये आन्दोलन पर ब्रिटिश सरकार के अश्व वाहिनी पुलिस द्वारा लाठी चार्ज होता है और एक छात्र ऑंगयाब मारा जाता है। माण्डले में पुलिस द्वारा बौध भिड्डुओं पर गोली चलायी जाती है। जिसमें 17 लोग मारे जाते हैं। इस आंदोलन को तुआंग थोन या बर्दू आये दाव वान के नाम से भी जाना जाता है। इसके बाद के घटना क्रम को देखें तो जापान के साथ भी संघर्ष होता रहा बाद में जापानियों के आत्मसमर्पण के बाद बर्मा में सैनिक प्रशासन कायम हुआ। इसी कड़ी में ऑंग-शान की लोकप्रियता बढ़ रही थी। साथ ही देश को स्वाधिन कराने हेतु कई आंदोलन भी चल रहे थे। जो अंग्रेजों के साथ थे। पुनः इन उग्र आंदोलन को खत्म करने हेतु ब्रिटेन के साथ समझौता वार्ता शुरू हुआ जिसे ऑंग-शान एटली समझौता के रूप में 27 जनवरी 1947 को सफलता पूर्वक सम्पन्न हुआ। किन्तु यह समझौता फासीवादी विरोधी मॉर्च के कम्युनिस्टों एवं दक्षिणपंथियों को रास नहीं आया और विरोधी भाव अंदर

हीं अंदर फूटने लगे। बावजूद इसके परवाह किए बिना ऑग-षान ने आदिम आदिवासी अल्पसंख्यक समूहों के साथ सफलता पूर्वक समझौता के जरिये 12 फरवरी 1947 को एकताबद्ध बर्मा की नींव डाली। इसी दिन से 12 फरवरी को बर्मा में एकता दिवस के रूप में मनाया जाता है। इसी वर्ष संविधान सभा का चुनाव होता है जिसमें आंगशान को भारी बहुमत मिलता है और इनकी लोकप्रियता और बढ़ जाती है। इधर आराकान के बौध भिक्षु यू-सियेन्डा विद्रोह छेड़ता है जो दुसरे जिलों में भी आग की तरफ फैलता है और साथ ही फ़सीवादी विरोधी मोर्चे के कम्युनिष्ट और दक्षिणपंथियों के मन में ऑग-षान के खिलाफ आग भड़क ही रहा था। जिसका नतिजा होता है 19 जुलाई 1947 को एक दक्षिण पंथी प्रधानमंत्री यू0 साव ने ऑग-षान और उनके मंत्रिमंडल के सदस्यों जिसमें उनके बड़े भाई बा-बिन भी शामिल थे उन सबों की हत्या कर दी। जिससे पुरा देश सन्न रह गया। यह 19 जुलाई का दिन बर्मा के लिए बहुत बुरा दिन था। इन सबों की याद में 19 जुलाई को शहीद दिवस के रूप में याद किया जाता है। इसके बाद समाज वादी नेता थाकिन नू एक नये मंत्रिमण्डल के गठन के लिए आमंत्रित किये गये, उन्होने 04 जनवरी 1948 को बर्मा की स्वाधीनता प्राप्ति के समारोह की अध्यक्षता की, अंग्रेजों से पूरी तरह अलग होने की भावना इतनी मजबूत थी कि जहाँ भारत और पाकिस्तान कामनवेल्थ के सदस्य बने लेकिन बर्मा उससे अलग रहा।

बर्मा के स्वाधीनता के पुरुआती वर्षों में थाकिन सोये के लाल झंडा कम्युनिस्ट पार्टी, थाकिन यान टुन की सफेद झण्डा कम्युनिस्ट पार्टी 30 कामरेडों के समूह के बो-ला-योंग विद्रोही सैनिकों जो अपने को बर्मा की क्रान्तिकारी सेना कहते थे जिसका नेतृत्व कम्युनिस्ट अधिकारी बो गया, बो यान ऑग और बो-ये-बुट कर रहे थे, ये तीनों तीस कामरेडों के समूह में शामिल थे इनके साथ-साथ आराकान के मुसलमान या मुजाहिद एवं करेन नेशनल यूनिशन के नेतृत्व में विद्रोह की कार्यवाहियाँ होती रही।

1949 में चीन में कम्युनिस्टों की विजय के बाद बर्मा की उत्तरी हिस्सों के दुरस्थ भाग पर को मितांग की सेना का नियंत्रण था जिसकी कमान जेनरल सीपी के हाथ में था। इन आरंभिक वर्षों में बर्मा ने देश के पुनर्निर्माण के लिए विदेशी सहायता प्राप्त की लेकिन अमेरिकियों द्वारा चीन के राष्ट्रीय सेना के प्रति समर्थन के चलते विदेशी सहायता अस्वीकार कर दिया तथा 1955 के बंडुंग सम्मेलन का समर्थन किया। बर्मा में वैश्विक समस्याओं के बारे में स्वतंत्र निति अपनाई और यह पहला देश था जिसने चीनी गणतंत्र एवं इस्त्राइल को मान्यता प्रदान की।

1958 तक यह देश आर्थिक तौर पर फिर से उभरने लगा लेकिन फ़सीवादी विरोधी मोर्चा में टूट के बाद राजनैतिक तौर पर विखंडित होने लगा। इस संगठन के एक हिस्से का नेतृत्व थाकिन नू एवं टिन के हाथ में दूसरा हिस्सा बास्वे और याव-न्येन के हाथों में था। ऐसी स्थिति तब थी जबकि यू नू द्वारा जनतंत्र के लिये अस्त्र की योजना को आराकान में यू से इन्दा, पाओ मॉन एवं शान समूहों और सबसे महत्वपूर्ण बात के रूप में देश भक्त स्वयं सेवक संगठन द्वारा स्वीकार कर लिया गया था। लेकिन संसद में परिस्थिति इतनी अस्थिर हो गई जिसके चलते यू नू के सरकार के खिलाफ जब अविश्वास प्रस्ताव आया तो वह विरोध पक्ष के नेशनल युनाइटेड फ्रंट के समर्थन से ही बंच सका। इस फ्रंट में छिपे हुए कम्युनिस्ट होने की बात कही जा रही थी। सेना के उग्रपंथी लोगों ने महसूस किया कि यू नू की सरकार अब बर्मा की कम्युनिस्ट पार्टी के साथ कोई समझौता कर सकती है और अन्ततः यू नू ने सेना के प्रधान जेनरल ने-विन को सत्ता संभालने के लिए

आमंत्रित कर दिया। करीब 400 कम्युनिष्ट समर्थकों को गिरफ्तार कर लिया गया और उन्हें अण्डमान समुद्र के कोको द्वीप में निर्वासित कर दिया। उनके बीच राष्ट्रीय एकता मोर्चा (नेशनल युनाइटेड फ्रंट) के नेता ऑग-षान भी थे जो ऑग-षान के बड़े भाई थे। कई दैनिक अखबार बंद कर दिये गये।

ने-विन की कार्यवाहक सरकार ने परिस्थित पर सफलता-पूर्वक काबू पा लिया तथा 1960 में आम चुनाव का रास्ता प्रशस्त कि। इस आम चुनाव में यू-नू की यूनिशन पार्टी को विशाल बहुमत प्राप्त हुआ। लेकिन यह परिस्थिति ज्यादा दिनों तक स्थिर नहीं रह सकी। न्चोंग श्वे शावब्बा साओ श्वे थाक जो बर्मा को एक ढीले-ढाले संघ के रूप में देखना चाहते थे ने आंदोलन शुरू कर दिया। सरकार इसे एक अलगाववादी आन्दोलन के रूप में देख रही थी। शान संघीय आन्दोलन 1947 के संविधान में 10 वर्ष के भितर अलग होने के अधिकार को लागू करने की बात की जा रही थी। ने-बिन ने षान-शा-वबास से उनका सामंती ताकत छीनकर उन्हें 1959 में ही आरामदायक जीवन जीने लायक पेंशन की व्यवस्था कर दी थी।

## सिवका बदल गया : मानवीय संवेदना के धरातल पर

सोनम सिंह

शोधार्थी, विद्यासागर विश्वविद्यालय, मिदनापुर, पश्चिम बंगाल

हिंदी साहित्य के आधुनिक काल के रचनाकारों में कृष्णा सोबती का स्थान अति महत्वपूर्ण है। उनका लेखन हमेशा समय से एक कदम आगे चलता रहा। उनके द्वारा रचित कहानियों एवं उपन्यासों में हमें यह देखने को मिलता है कि रचनाकार न केवल सामाजिक रूप से सजग है, बल्कि तत्कालीन परिस्थितियों से भली-भाँति अवगत भी है। यही बातें इनकी रचनाओं के पात्रों को अधिक सशक्त एवं अमर बनाती हैं। आधी शताब्दी से अधिक के कालखंड में फले रचनाकाल में कृष्णा सोबती के रचनाओं की फहरिस्त बहुत लंबी तो नहीं है, परंतु जो कुछ भी उन्होंने लिखा है, वह उन्हें हिंदी साहित्य जगत में अमर बना देता है। कृष्णा सोबती के शब्दों में, 'प्रकाशक की ओर से प्रस्तुत अपने लेखकीय परिचय की यह पंक्ति मुझे सबसे ज्यादा पसंद है ... बहुत कम लिखती हैं और इसे ही वह अपना साहित्यिक परिचय भी मानती हैं।'

कृष्णा सोबती के रचनाकाल में देश विभाजन से उत्पन्न समस्याएँ राजनीति से मोहभंग की स्थिति, राजनीति का अपराधीकरण, बाबरी मस्जिद विवाद, सांप्रदायिक राजनीति का उभार एवं गुजरात दंगा जैसी घटनाएँ घट रही थीं। कृष्णा सोबती स्वयं बँटवारे की शिकार थीं। इन्हें अपने परिवार के साथ पाकिस्तान छोड़कर भारत आना पड़ा। इन्होंने शरणार्थी होने का दर्द झेला और अपनी आँखों से खून-खराबा और लूट-मार को देखा। देश-विभाजन के बाद सबसे अधिक कष्ट शरणार्थियों को झेलना पड़ा। शरणार्थी शिविरों का जीवन बड़ा ही कष्टपूर्ण और दर्द भरा था। कृष्णा सोबती ने विभाजन, सांप्रदायिकता, शरणार्थी जीवन और भ्रष्टाचार के दृश्य अपनी आँखों के सामने देखे थे। सांप्रदायिकता ने न केवल देश विभाजन को मानव जीवन की त्रासदी का रूप दिखाया है अपितु विभाजन को एक ऐसे जखम के रूप में परिवर्तित किया है जो भारतीय समाज के लिए नासूर बन गया है। विभाजन की राजनीति न केवल लाखों निर्दोष भारतीयों को मौत के घाट उतारा है, अपितु उन्हें कभी न भरने वाले ऐसे जखम दिए हैं, जिससे रिसने वाले लहू ने कभी न समाप्त होने वाली पीड़ा से उनका जीवन को भर दिया है। देश के विभाजन ने सांप्रदायिकता का भी भौगोलिक विभाजन कर दिया है। राष्ट्र निर्मातओं ने बड़ी चालाकी से जनमानस में सांप्रदायिकता को एक अनिवार्य बुराई और अटल नियति के रूप में पेश करने में कामयाबी हासिल कर ली है। दंगों के बारे में कभी आशीष नन्दी ने कहा था, 'अब दंगों के पीछे भी बेबेरियन रैशनेलिटी काम करने लगी है। बड़े सेक्युलर ढंग से 'डिजाइनर रायटर्स' होते हैं, जिनका धर्म से नहीं बल्कि राजनीतिक नफे-नुकसान से संबंध होता है। किसी चार्टर्ड अकाउंटेंट की शैली में दंगों की गणितीय योजना बनती है और उसके लाभ-हानि का समूचा ब्योरा तैयार होता है। इस प्रकार

चाहे भारत विभाजन कराने के लिए सांप्रदायिक हिंसा की योजना तैयार की गई हो या वर्तमान में होने वाले सांप्रदायिक हिंसा, सभी के पीछे चार्टर्ड अकाउंटेंट वाली सुचिंतित सोच और रणनीति छिपी होती है। इस बात को न समझने वाले लोग धर्म के नाम पर नफरत पालते हैं और लड़ते-कटते रहते हैं।<sup>2</sup> वर्तमान युग भोग और हंसा का है। इक्कीसवीं सदी के ये दो छोर भारतीय जीवन की दो कथाएँ कहती है जिसमें मानवीय संवेदना और उच्चतर आदर्शों के साथ-साथ मनुष्य का वह हिंसक स्वरूप भी अंकित है जिसके आगे पशुता भी बर्बर दिखाई देती है, सामाजिक एकता और अमन के फले-फूले इस देश में मजहवी विवादों ने असांजिक विसंगतियों को जन्म दिया। देश में साम्प्रदायिक भावना के जन्म लेने का मूल कारण था सत्ता का लालच। कुछ लोगों के इस लालच ने देश को दो टुकड़ों में बाँट दिया।

आज का युग विज्ञान का युग है। संगणक प्रणाली वैज्ञानिक प्रगति की देन है। सम्पूर्ण विश्व विज्ञान और तकनीकी प्रणाली से भौतिक विकास में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन का रहा है परन्तु इस विकास शीलस्थिति में मनुष्य का मनुष्य के साथ व्यवहार समीचीन नहीं लगता है। आज मानव की संकीर्ण भावनाएँ साम्प्रदायवाद को बढ़ावा दे रही है। धर्म के स्वरूप का सही ज्ञान न होने के कारण लोगों के बीच दंगे-फसाद हो रहे हैं। भारत जैसे धर्म निरपेक्ष विविधता में एकता वाले राष्ट्र को साम्प्रदायिकता में बाँटने का काम हो रहा है साम्प्रदायिक दंगे आज धार्मिक या जातीय उन्माद के कारण हो रहे हैं लेकिन वास्तविकता यह है कि कोई भी धर्म मूल रूप से संघर्ष की शिक्षा नहीं देता। साम्प्रदायिकता भय और घृणा की राजनीति करती है। खतरे का आविष्कार इसकी प्रमुख विशेषता है। धर्म खतरे में है, संस्कृति खतरे में है, अस्तित्व खतरे में है। आतंकवाद, सांप्रदायिक दंगों के मूल में इंसानियत का विनाश है। इस पीड़ा की अभिव्यक्ति समस्त भारतीय भाषाओं एवं साहित्य में समय-समय पर होती रही है और हिंदी साहित्य भी इससे अछूता नहीं है। हिंदी कथा साहित्य में इस विषय पर लेखन करने वालों में यशपाल, भीष्म साहनी, मोहन राकेश, असगर वजाहत, कृष्णा सोबती, नासिरा शर्मा आदि ने अपनी पीड़ा को रचनात्मक स्वरूप देते हुए जनसामान्य के जख्मों पर मरहम लगाने का काम किया है। रेखाएँ गहरी हुईं और साम्प्रदायिकता सत्ता के साथ बगलगीर हुई जो इक्कीसवीं सदी में भी दोनों देशों की राजनीति को लगातार जटिल तर बना रहा है। विभाजन और उससे उपजी सांप्रदायिक घृणा का विष दोनों और की राजनीति की जड़ों में समा गया है। इस त्रासदी के जनक ब्रिटिश उपनिवेशवाद की नीतियाँ उनकी कूटनीति में कोहिनूर की तरह आज भी सुशोभित हैं। ब्रिटिश उपनिवेशवाद अपनी नीतियों में पूर्णता सफल रहा। कृष्णा सोबती ने विभाजन की पृष्ठभूमि में सांप्रदायिक उन्माद और दहशत के

बीच मानवीय करुणा और सद्भावना की खोज की। बदली हुई सामाजिक-राजनैतिक व्यवस्था का गहरा असर उनके कथा-यात्रा के आलोक में देखा जा सकता है। 'सिक्का बदल गया', 'डरो मत मैं तुम्हारी रक्षा करूँगा' और 'मेरी माँ कहाँ' जैसी कहानियाँ सांप्रदायिक दंगों की पृष्ठभूमि और मानवीय व्यवहार के विभिन्न रूप उद्घाटित करती हैं।

'सिक्का बदल गया' कहानी 1948 में प्रकाशित हुई जो कृष्णा सोबती के एकमात्र कहानी संग्रह 'बादलों के घेरे' (1980) में संकलित है। 'सिक्का बदल गया' कहानी भारत-पाक विभाजन और विभाजन की त्रासदी की भयावह तस्वीर प्रस्तुत करती है। कहानी की मूल पात्र शाहनी है। समस्त कथा शाहनी के इर्द-गिर्द ही घूमती है। प्रतिदिन की तरह चनाव से नहाकर निकली शाहनी को चनाव का पानी आज भी पहले-सा ही सर्द लग रहा था लेकिन दूर-दूर तक फैली रेत आज न जाने पहले से ज्यादा खामोश लग रही थी। हवाओं में बँटवारे की ताशीर घुलने लगती थी। नदी के किनारे पसरी रेत में अनगिनत पावों के निशानों शाहनी की शंका को हकीकत में तब्दील कर रहे थे। विभाजन की जो आग सारे मुल्क में फैली थी, आज उसके निशान शाहनी के गांव तक पहुँच चुके हैं, इस डर से शाहनी सहम-सी गई है। शाहनी अपने आसपास घटित होने वाली घटनाओं से अनभिज्ञ तो नहीं थी लेकिन यह सब इतना गंभीर रूप धारण कर लेगा, इसकी कल्पना उसने नहीं की थी। बँटवारा होगा, बँटवारा हुआ है, शाहनी सबकुछ जानती थी, लेकिन वह सबकुछ छोड़कर जाना नहीं चाहती थी। बँटवारे की दहलीज पर खड़ी शाहनी अपनी जमीन, अपनी पहचान से एक नया रिश्ता जोड़ने लगती है- 'जम्मीवाला कुआँ भी आ नहीं चल रहा। ये शाहनी की ही आसामियाँ हैं। शाहनी ने नजर उठाई। यह मीलों फैले खेत अपने ही हैं। भर-भरायी नई फसल को देखकर शाहनी किसी अपनत्व के मोह में भीग गयी। यह सब शाहनी की बरकते हैं। दूर-दूर गांवों तक फैली हुई जमीनें, जमीनों में कुएँ सब अपने हैं। साल में तीन फसल, जमीन तो सोना उगलती है।' <sup>3</sup>

पूरे गांव में खून के बादल मँडरा रहे हैं। पिछली रात ही जबलपुर में दंगे हुए हैं। जहाँ शाहनी के परिवार के कई लोग रहते हैं। गांव में कुल्लुवा के लोगों का आना, पूरे मुल्क का बँटवारा की आग में जलना आदि घटनाओं से शाहनी का अंतर्मन विचलित होकर शाहजी का स्मरण कर बैठता है। शाहनी को लगता है कि आज अगर शाहजी होते तो कुछ बीच-बचाव करते। इस पर शोरा कहता है, 'आज शाहनी क्या कोई भी कुछ नहीं कर सकता। यह हो के रहेगा क्यों न हो? हमारे ही भाई-बंदों से सूद ले-लेकर शाहजी सोने की बोरियाँ तोला करते थे।' 'यहाँ शाहजी के प्रति शोरा का प्रतिहिंसात्मक आक्रोश सामने आता है। वह शाहजी की दौलत को अपने भाई-बंधुओं की लूटी गई खून-पसीने की कमाई मानता है और वह इन दिनों दंगाइयों में भी शामिल है। हवेली की दौलत पर उसकी नजर है। शोरा प्रतिहिंसा की आग में पिछले दिनों में तीस-चालीस कत्ल कर चुका है। गांव के लोगों के साथ मिलकर शाहनी को मारने और हवेली को लूटने के मंसूबे बना रहा है। यह वही शोरा है जिसे शाहनी ने अपनी ममता की छव में पाला-पोसा है। शाहनी के डॉट देने पर वह शाहनी ही थी जो दूध का कओरा लिए उसके सिरहाने आ बैठती थी और प्यार से पीट सहलाती थी। आज वही शोरा शाहनी को मौत के घाट उतार देना चाहता है। बदली हवा और बदले सिक्के ने उसे विद्रोही बना दिया है। हिंदू और मुस्लिम सांप्रदायिकता ने हर मनुष्य के अंदर हत्यारे को पैदा कर दिया है जो घात लगाकर किसी की जान लेना चाहता है। मनुष्य अब अपनी सारी स्वतंत्र सामाजिक पहचाने खोकर किसी धर्म या मजहब के

निरंकुश प्रतीक में बदल दिया गया है। वह उदारता और दया के उज्वल सद्वृणों के स्थान पर क्रूरता-कठोरता की कलिमा से पहचाना जाने लगा है। भगवान और अल्लाह की नाम लेने वाले भीतर से बुरी जहरीले और दिँयी होने में कोई बुराई नहीं देखते हैं। पराक्रम की नयी परिभाषा गढ़ी जा रही है, जिसमें विधर्मी की हत्या करना पराक्रम हो गया है, बाकी सब बुजादिली और नामर्दी। सांप्रदायिकता मानस के बेहद बुरे परिणामों और उसकी हिंसा करने की भूख को उजागर करती है जिससे धीरे-धीरे एक साधारण-सा शख्स खूँखार सांप्रदायिक प्रतिशोधभाव की चपेट में आ जाता है। सदियों से अर्जित मानवीय संबंध मानवता के आदर्श, मानव मूल्यों और मानव जाति का विवेक सांप्रदायिकता का आघात सह न सका, राजनैतिक व्यस्तता ने उखड़े हुए वर्ग को भयाक्रांत तो किया ही है साथ ही उसकी परंपरा और उसका सामाजिक ढाँचा, संबंधों की आस्था और परिवार की नींव को हिलाकर रख दिया है। शाहनी बेजान-सी निराश, हताश हो हवेली लौटती है। जिंदा लाश-सी एक कोने में पड़ी वक्त से रू-ब-रू हो रही है। वह जानती है कि ये नेमतें, ये जमीनें, यह गांव, हवेली यह सब उसका होकर भी आज इन सब पर उसका कोई अधिकार नहीं है, तभी अचानक ट्रकें आने की आवाज सुनकर शाहनी का अंतर्मन उद्वेलित हो उठता है। सारा गांव जमघट लगाये खड़ा है। शाहनी समझ गई कि अब वक्त आ गया है। बीबी ने अपने विकृत कंठ से कहा, 'शाहनी आज तक कभी ऐसा न हुआ, न कभी सुना, गजब हो गया, अंधेरा पड़ गया।' <sup>5</sup> यह अंधेरा विभाजन की उस त्रासदी की ओर संकेत करता है, जिसमें मानवीय रिश्ते, आदर्श, मूल्य सब का अस्तित्व खो गया है। सदियों से साथ रहने वाले लोग आज एक दूसरे के खून के प्यासे हो गए हैं। आज लोगों की पहचान धर्म के प्रतीक के रूप तक ही सीमित है। शाहनी भी इस सांप्रदायिकता के विकराल रूप के चपेट में आ गई। अंग्रेजों की कूटनीति के कारन धर्म के नाम पर साम्प्रदायिकता की नींव रखी गई। जिसमें कई गाँव उजड़ गये। कई मासूम जिन्दगिया तबाह हो गयी। कई निरपराध बालक ,औरतें, वृद्धों की बलि चढ़ाई गयी। धर्म हमेशा मनुष्य को सच्चाई एवं मानवता की राह दिखाता है,पर धर्म के टेकेदारों ने धर्म की राह को पूरी तरह बदलकर इसका प्रयोग स्वार्थ सिद्धि के लिए किया। यह धर्म सच्चाई एवं मानवता का मार्गदर्शन न होकर कट्टरता एवं वरूरता का प्रतीकबन गया।

थानेदार दाऊद खां शाहनी को लेने आया है। वह शाहनी की जान बचाने के साथ-साथ उसे शाहनी से शरणार्थी बनाने आया है। शाहनी खाली हाथ अपनी दहलीज पर खड़ी हो जाती है। पलटकर, सिर ढौंपकर एक बार अपनी हवेली को देखता है और दोनों हाथ जोड़ देती है। अपनी पहचान को, अपनी जड़ों को यही शाहनी का अंतिम प्रणाम था। थानेदार दाऊद खाँ उसे साथ कुछ रखने के लिए कहता है- 'शाहनी, तुम अकेली हो, अपने पास कुछ होना जरूरी है। कुछ नकदी ही रख लो। वक्त का कुछ पता नहीं। तो शाहनी जवाब देती है, दाऊद खाँ इससे अच्छा वक्त देखने के लिए क्या मैं जिंदा रहूँगी।' <sup>6</sup> इस वाक्य के आलोक में हम शाहनी की मर्मस्पर्शी वेदना को महसूस कर सकते हैं। देश -विभाजन और दोनों तरफ की आबादी के विस्थापन के फलस्वरूप ,करोड़ों तबाहहाल लोग इस खून की नदी में डूबता-उतराते आर-पार गये।

शाहनी को अपनी मिल्कियत पर अभिमान होता है। वह खाली हाथ बड़े मान से अपनी दहलीज लांगती है। वह रोकर नहीं बड़े शान से निकलती है। उसके कदम लड़खड़ाते जरूर हैं, लेकिन वह टूटती नहीं है। जिस कुल की अमानत को उसने वर्षों सहेजकर रखा आज वही उसे धोखे दे

गई। गांव के सारे लोग नम आँखों से शाहनी की शरणार्थियों की टोली में भेजते हैं। शोरा शाहनी के पाँव छूते हुए कहता है, 'शाहनी कोई कुछ कर नहीं सका, राज भी पलट गया।' यहाँ राज पलटने का अर्थ पुराने मानवीय संबंधों, सद्भावनाओं का अंत हो जाना है। सांप्रदायिकता ने मनुष्यता का गला घोट दिया है। धर्म ही मनुष्य की अंतिम पहचान बन गई और लोग अपनी ही जमीन से दूर शरणार्थी-सा जीवन जीने को मजबूर हो गए हैं। देश विभाजन अंग्रेजों की नीति थी क्योंकि वे प्रारंभ से ही फूट डालो राज्य करो, की कूटनीति अपनाते रहे और वर्तमान राजकीय नेता भी इसी कूटनीति को अपना रहे हैं जैसा कि डॉ.कृष्ण गोपाल मिश्रा ने लिखा है- 'जिस प्रकार अंग्रेज हिन्दू-मुसलमानों में दंगेकरवाकर कूटनीतिज्ञ षड्यंत्रों द्वारा सत्ता हथियाते रहे उसी प्रकार स्वतंत्र भारत में देशवासियों को सवर्ण-असवर्ण, उच्च-दलित, वर्ण, बहुसंख्यक-अल्पसंख्यक आदि अनेक समूह में बाँटने के साथ-साथ धर्म, भाषा क्षेत्र आदि नये-नये विभेदों में भी विभाजित करके परस्पर लड़वाया जा रहा है। जनता न केवल उपर्युक्त भेदों-विभेदों में बंटी है अपितु वह स्वार्थी, भ्रष्ट और सत्ता लोलुप अपराधिक, राजनीतिक दलों में भी विभक्त हो।'<sup>8</sup>

रात में शाहनी कैंप में लेटे-लेटे आहत मन से राज और सिक्का बदल जाने के बारे में सोचती है। उसके लिए अपनी जमीन से उखड़ने की पीड़ा इतनी गहरी है कि उसके आगे उसे राज्य पलटने का महत्व है, न सिक्का बदलने का। सारी पीड़ा है अपनों के बीच पराया बन जाने का। शाहनी के लिए बँटवारे के कारण हुकूमत के बदल जाने का, सिक्का बदल जाने का अर्थ नहीं है। उसे तो मानवीय मूल्यों के सिक्के बदल जाने, संबंधों के निरर्थक बना दिए जाने का दुख है।

यह कहानी विभाजन की मानवीय पीड़ा को व्यक्त करती है। विभाजन ने लोगों की मनोदशा में ऐसा परिवर्तन लाया कि अचानक लोग एक-दूसरे की जान के प्यासे हो गए। मनोदशा का यह परिवर्तन सिक्के के बदल जाने के प्रतिरूप को मूर्तरूप प्रदान कर रहा है। वहीं दूसरी ओर सांप्रदायिक दंगे, विस्थापन और शरणार्थी होने के दर्द के साथ ही मानवीय अलगाव की स्थितियों को भी सामने लाता है।

#### संदर्भ सूची:-

1. जन विकल्प, अंक-9, सितंबर 2019, पृष्ठ संख्या -9
2. संपादक- रायहरियश, भीष्म साहनी, सादगी का सौंदर्यशास्त्र, संपादक-हरियश राय, वाणी प्रकाशन, पृष्ठ संख्या -298
3. सोबती कृष्णा, बादलों के घेरे(कहानी संग्रह ), सिक्का बदल गया, पृष्ठ संख्या - 135
4. वही, पृष्ठ संख्या -135
5. वही, पृष्ठ संख्या -137
6. वही, पृष्ठ संख्या -139
7. वही, पृष्ठ संख्या -140
8. डॉ.खान पटान रहीम ,भीष्म साहनी का साहित्य युग सन्दर्भ, संजय प्रकाशन ,दिल्ली ,पृष्ठ संख्या - 216

## सूर-काव्य में दार्शनिक और मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण

डॉ. जयंती माला

सहायक प्राचार्य, हिंदी, म. म. लता संस्कृत विद्यापीठ, लोहना, मधुबनी, बिहार

हिंदी साहित्य के इतिहास में जैसे तो आदिकाल से लेकर आधुनिक काल तक, हर कालविशेष की अपनी विशेषता और महत्व है परंतु, भक्ति-काल का अपना अलग ही महत्व है, क्योंकि इस कालखंड में भक्ति की विभिन्न धाराएँ प्रवाहित हो रही थीं। एक ओर सगुण-भक्ति की धारा में राम-भक्ति, कृष्ण-भक्ति की महिमा का गुणगान तुलसी दास, सूरदास आदि कवि कर रहे थे, तो दूसरी ओर निर्गुण निराकार परब्रह्म की उपासना पर जोर दिया जा रहा था। मार्ग भले ही अलग-अलग था, मगर उद्देश्य एक ही था, भक्ति के द्वारा मोक्ष की प्राप्ति।

दार्शनिक और मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से देखा जाए तो भक्ति-काल का समय सभी युगों से सर्वोत्तम रहा है। इस काल को स्वर्ण-काल की संज्ञा दी गई है। भक्ति-काल के भक्त कवियों में सूरदास का सर्वोत्तम स्थान रहा है। तभी उनके बारे में कहा गया है:-

‘सूर सूर तुलसी शशि उड़गण केशव दास,  
अब के कवि खद्योत सम जहं-तहं करत प्रकाश’

सूरदास हिंदी साहित्य आकाश के ऐसे शक्तिशाली सूर्य हैं जिनके भक्ति के प्रताप से संसार प्रकाशमय हो गया। सूरदास के गुरु वल्लभाचार्य जी थे, और वल्लभाचार्य जी शुद्ध द्वैतवाद से प्रभावित थे। दार्शनिक विचारधारा से अभिभूत वल्लभाचार्य जी दर्शनशास्त्र के ज्ञाता थे, जिसका प्रभाव सूरदास पर भी पड़ा। दर्शन का पारिभाषिक अर्थ होता है-तत्त्व ज्ञान या परम तत्त्व ज्ञान। ज्ञान की कोई सीमा नहीं होती है, ज्ञान की चरम परिणति ही परमात्मा की प्राप्ति होती है। संसार में रहते हुए व्यक्ति मोह से ग्रसित हो जाता है। अतः वह भी दर्शन की परिधि में आ जाता है। दर्शन शब्द ब्रह्मा, जीव, जगत माया आदि के तात्त्विक विवेचन का बोधक है। वल्लभाचार्य के शिष्य होने के नाते उनके दार्शनिक विचारों का प्रभाव सूरदास पर पड़ा। यद्यपि सूरदास किसी प्रकार के दार्शनिक सिद्धांत को ना तो व्यक्त किया, और ना ही प्रतिपादित किया। फिर भी श्रीनाथजी के मंदिर में दीर्घकाल तक भक्ति-भजन करने वाले भक्त कवि सूरदास के पदों में उनके दार्शनिक विचारों की स्पष्ट झलक दिखाई देती है। सूरदास के बारे में कहा जाता है कि वह अलौकिक प्रतिभा के धनी थे, और यही कारण है कि सूर का अंधापन उनके भक्ति में कभी बाधक नहीं बना और वह विश्व प्रसिद्ध भक्त कवि बने। अद्भुत एवं अलौकिक प्रतिभा के धनी इस महाकवि के द्वारा ही हिंदी काव्य जगत में स्वर्ण-युग का प्रादुर्भाव हुआ।

भक्तिकाल में भक्ति के प्रवाह में अनेक दर्शन दिखाई देते हैं। मूलतः जिन वैदिक दर्शन को दार्शनिक मानते हैं वे हैं:-

- 1:- अद्वैत दर्शन
- 2:- विशिष्ट अद्वैत दर्शन

3:- द्वैताद्वैत दर्शन तथा

4:- शुद्धद्वैत दर्शन

इस दार्शनिक सिद्धांतों के नाम में अद्वैत के साथ शुद्ध शब्द जुड़ा हुआ है। यह शंकराचार्य के अद्वैत दर्शन से नितांत भिन्न है। शंकराचार्य ने ब्रह्मा को अद्वैत माना है, तथा माया को मिथ्या कहा है। रामानुजाचार्य ने अद्वैत ब्रह्म को चित्तमयी आत्मा और जड़ को प्रकृति से विशिष्ट माना है। स्वामी वल्लभाचार्य ने उपर्युक्त आचार्यों के मतों के विरुद्ध ब्रह्म के शुद्ध स्वरूप का प्रतिपादन किया है। इसीलिए उनका सिद्धांत शुद्धद्वैत कहलाया।

दूसरे आचार्य के दार्शनिक सिद्धांत वेद, गीता और ब्रह्म सूत्र आदि पर ही आधारित है, परंतु वल्लभाचार्य ने उन तीनों के साथ श्रीमद् भागवत को भी सम्मिलित कर दिया। स्वामी वल्लभाचार्य ने शुद्ध द्वैतवाद चिंतन से प्रभावित होकर अपना एक अलग ही मार्ग का अनुसरण किया, जिसे पुष्टिमार्ग कहा जाता है। पुष्टि से अभिप्राय है- पोषण अर्थात्, भगवान का अनुकरण या उनकी कृपा। स्पष्ट है कि पुष्टि का भाव भगवान की कृपा को पाना है। वल्लभ संप्रदाय के तीन मार्ग हैं:-

1:- मर्यादा मार्ग

2:- प्रवाक मार्ग तथा

3:- पुष्टिमार्ग

जिसमें पुष्टिमार्ग को सर्वाधिक महत्व दिया गया है। पुष्टिमार्गीय भक्ति को ही ‘रामानुरागी’ भक्ति भी कहा गया है। जिसमें किसी प्रकार के कर्मकांड अथवा साधन की आवश्यकता नहीं होती। सूरदास अपने गुरु वल्लभाचार्य के सानिध्य में माधुर्य-भक्ति का गुणगान किया। पुष्टिमार्ग के आधार पर कृष्ण के रूप सौंदर्य का उन्होंने वर्णन किया सूरदास ईश्वर के सगुण साकार रूप का ही अधिक वर्णन किया है। अपने एक पद में सूरदास जी कहते हैं:-

अविगत गति कछु कहत न आवै।

ज्यों गुंगे मीठे फल को रस अंतरंग ही भावै।।

पदम स्वाद सब ही सु निरंतर अमित तोष उपजावै।

रूपरेखगुणजाति जुगति बिनु निरालम्ब कित धावै।।

सब विधि अगम विचारहि, तातै सूर सगुण लीला पद गावै।।

परब्रह्म के तीन मुख्य धर्म हैं:- सत्, चित और आनंद। इसीलिए उन्हें सच्चिदानंद कहा गया है। शुद्ध द्वैतवाद के अनुसार ‘जगत ब्रह्म स्वरूप’ होने के कारण ब्रह्म की भांति सत्य है, परंतु संसार तो माया ग्रस्त होने के कारण मिथ्या है। सूरसागर में जगत तथा माया से संबंधित एक पद है:-

‘अब मैं नाच्यौ बहुत गोपाल,

माया को कटि फेंटा बांध्यौ, लोभ तिलक दियो भाल,  
कोटिक कल्प काछि दिखराई जल थल शुधि नहीं काल।  
सूरदास की सबै अविद्या दूरि करौ गोपाल।।

हालांकि सूरदास तत्त्वतः दार्शनिक नहीं थे, वह परम भक्त कवि थे उनकी कृष्ण के प्रति भक्ति सरस तथा भावपूर्ण थी। सूरदास के बारे में बहुत सी भ्रांतियाँ हैं, जो हमें दिग्भ्रमित भी करती हैं, की आँख ना होने के बाद भी उन्होंने कृष्ण के समस्त लीलाओं का वर्णन और चित्रण कैसे किया? मगर सच तो यह है, कि जिनके हृदय में श्री कृष्ण की छवि बस जाए उसे सांसारिकता से क्या लेना। वहाँ भौतिक साधन निरर्थक जान पड़ती है, जहाँ भक्ति-रस में डूबने के बादसांसारिक वस्तु की कोई इच्छा ही ना हो। इस तथ्य को यदि हम दार्शनिक दृष्टिकोण से देखें तो पता चलता है कि निराशा से ही आशा पनपती है।

मनोवैज्ञानिकों ने यह माना है कि 'यदि मनुष्य के जीवन में कहीं कोई असफलता या व्यवधान उत्पन्न होती है, तो मनुष्य की निराशा कोई ना कोई दिशा तय करती है, और यदि उसका मन सृजनात्मक दिशा की ओर जाता है, तब उसके जीवन का उदात्तीकरण हो जाता है, और ऐसा व्यक्ति संसार में सम्मान पाता है।'

महाकवि सूरदास अंधापन कृष्ण भक्ति में बाधक न बन पाया, और वह कृष्ण की भक्ति में लीन हो गए। प्रसिद्ध दार्शनिक 'हेनरी वर्गसन (1859-1941)' में अपने मत में यह व्यक्त किया था कि 'स्वयं संसार में ही एक ऐसी प्रेरणा शक्ति है जो कवि की 'कारयित्री' प्रतिभा के समान है जिसे हम केवल स्वतः प्रेरणा से ही समझ सकते हैं, और जो कवि को काव्य रचना के लिए प्रेरित करती है। महाकवि सूरदास के सानिध्य में रहने वाली शक्ति ही उनकी प्रेरणा बनी होगी। पाश्चात्य विद्वानों ने इस बात को स्वीकार है। उनका विश्वास है कि कई को रचना के लिए जो प्रेरणा शक्ति मिलती है वह स्वयं संसार से मिलती है। विद्वानों ने यह माना है की प्रेरणा का आधार कल्पना है, कल्पना एक ऐसी शक्ति है जिसमें बिंबों का समायोजन होता है। कल्पना वह शक्ति है, जो भावनात्मक विचारों के प्रतीक उपस्थित करती है।

कृष्ण के अनंत लीलाओं का वर्णन सूरदास ने अलौकिक काल्पनिक शक्ति से प्रेरित होकर ही किया। उन्होंने श्रीकृष्ण के बाल लीलाओं से लेकर युवावस्था तक के लीलाओं का वर्णन अपने काव्य के माध्यम से किया है। कृष्ण के बाल-लीला की बात की जाए तो उनके पदों में श्री कृष्ण के बाल छवि का जो वर्णन और चित्रण सूरदास जी ने किया है, उस छवि और नटखटपन और बाल स्वभाव को देखकर महान से महान, कठोर से कठोर योगी तपस्वियों के हृदय में भी वात्सल्य की भावना हिलकोरे लेने लगती थी। कृष्ण की ऐसी छवि का ऐसा वर्णन और चित्रण सूर के सिवा भला कौन कर सकता है?

माँ यशोदा के आँगन में जब साँवले-सलौने कृष्ण चहल कदमी करते हैं तब मानव, संपूर्ण ब्रह्मांड की अलौकिक शक्तियाँ कृष्ण के सुंदर रूप को निहारने के लिए उपस्थित रहते हैं। सूरदास का एक पद जिसमें बालकृष्ण अपने हाथों में माखन लिए आँगन में घुटनों के बल चल रहे हैं, कितना मनोरम दृश्य है, सूर के एक पद में देखा जा सकता है:-

शोभित कर नवनीत लिए

घुटुरुनि चलत रेनु तन मंडित मुख दधि लेप किये,

चारु कपोल लोल लोचन गोरोचन तिलक दिये,

लट लटकनि मन मत मधुपुर गन मादक मधुहि पिये,

धन्य सूर एकौ पल इहिं सुख का सत कल्प जिये।।

सूरदास जी कहते हैं, कि बालक कृष्ण अपने हाथों में मक्खन लिए सुशोभित हो रहे हैं। माँ यशोदा के आँगन में जब साँवले सलौने कृष्ण घुटनों के बल चलते हैं तो उनका शरीर बालू से लथपथ हो जाता है। इस अलौकिक दृश्य को देखने के लिए संपूर्ण ब्रह्मांड की शक्तियाँ, माँ यशोदा के आँगन में एकत्रित हो जाती हैं। इस सुंदर रूप को देखकर योगी मुनि सब इस रूप पर न्योछावर हो जाते हैं। माखन से लथपथ कृष्ण के मुखमंडल की शोभा देखते ही बनती है। सिर पर शोभित मोर पंख, घुंघराले बाल बड़ी-बड़ी सुंदर आंखें, पैर में पाजेब और कमर में कमरबंद, कपोल तक लटकते घुंघराले बाल, साँवले तन की सुंदरता और भी बढ़ा देती हैं। श्री कृष्ण का यह सुंदर और अलौकिक रूप योगी, तपस्वियों, देव गंधर्व आदि सभी के मन को मोह लेती है।

सौंदर्यवाद पर विचार करते हुए महान दार्शनिक दांते ने कहा है:-  
'मुझे वह काव्य-शक्ति मिली जिसके द्वारा मैं दृश्य के दर्शन भी किया और उसकी अभिव्यक्ति भी की और जब वह परम कल्पना समाप्त हो गई तब वह कविता भी समाप्त हो गई।'

इस प्रकार देखा जाए तो कल्पना-शक्ति का काव्य में विशिष्ट योगदान होता है। किसी भी कवि का व्यक्तित्व प्रेरणा और कल्पना से प्रभावित होता है 'लियोनार्डो द विंची' ने यह माना है कि कल्पना में विवेक का महत्वपूर्ण योगदान होता है। सूर के संपूर्ण काव्य में कृष्ण की अलौकिक लीलाओं का वर्णन है। उनके काव्य में नौ रसों का वर्णन जिस तन्मयता से किया गया है, यदि संपूर्ण काव्य का अवलोकन किया जाए तो पता चलता है कि, केवल सूरदास ही नहीं, पाठक या श्रोता भी कृष्ण के रूप माधुर्य में डूब जाते हैं। कृष्ण के बाल-लीलाओं का वर्णन करते समय सूरदास कृष्ण भक्ति में इतना लीन हो जाते हैं कि खुद की सुध-बुध खो बैठते हैं और कृष्णमय हो जाते हैं। श्री कृष्ण के बालहट का वर्णन करते हुए सूरदास जी कहते हैं:-

'मैया मैं तो चाँद खिलौना लिहौ'

बालक कृष्ण चंद्रमा को खिलौना समझकर उसे लेने के लिए माँ यशोदा से हट कर रहे हैं। तो कभी मैया से कहते हैं:-

'मैया मोरी मैं नहीं माखन खायो'

श्री कृष्ण की बाल लीलाएँ अनंत है जिसका वर्णन करना बड़ा कठिन है। सूर काव्य में कृष्ण की किशोरावस्था को यदि सूर की दृष्टि से देखें तो श्री राधा जी के साथ के बिना अधूरा है। राधा कृष्ण की युगल जोड़ी से संपूर्ण ब्रज शोभायमान है। गोवर्धन लीला से लेकर रासलीला तक की अलौकिक छवि से बृज भूमि के ग्वालबाल, गोप-गोपियाँ आनंद मग्न है। प्रकृति की अनुपम छटा और यमुना जी की सुंदर शीतल धारा यह सभी कृष्ण का सानिध्य पाकर आलोकित हो जाते हैं। जहाँ एक और राधा कृष्ण का अनंत प्रेम है, वहीं दूसरी ओर विरह की अग्नि भी है, जिसे पार करना आसान नहीं है, और काव्य में राधा-कृष्ण के युग-युगांतर के प्रेम को दिखलाया गया है। जब मथुरा नरेश कंस के बुलावे पर अक्बर जी कृष्ण को लेकर मथुरा चले जाते हैं तब गोपियाँ ही नहीं बल्कि संपूर्ण बृजवासी कृष्ण के विरह में शोकाकुल हो जाते हैं। नंद बाबा और यशोदा मैया का हाल भी दयनीय है। कृष्ण के विरह में यमुना जी भी काली पड़ गई है। गोकुल से मथुरा जाने वाले पथिक के हाथों से गोपियाँ कृष्ण को संदेश भिजवाती है:-

'देखियत कालिंदी अति कारी।

कहियो पथिक जाय हरि सों ज्यों भी बिरह जुर जारी'

कृष्ण के वियोग में जमुना नदी काली पड़ गई है, उनकी शीतल जल धारा सूख गई है।

भ्रमरगीत में उद्धव और गोपियों का संवाद होता है, जहाँ उद्धव जी उन गोपियों को ब्रह्म-ज्ञान की शिक्षा देने जाते हैं, तब गोपियाँ कहती हैं :-  
'अब कैसे निकासत नाहि उधो,  
तिरछे ह्वे ज्यौ अड़ै'

उनका कहना था कि श्री कृष्ण की त्रिभंगी छवि पहले से ही उनके हृदय में विराजमान है। वहाँ किसी और का क्या काम? वह कहती हैं- अपने ब्रह्म ज्ञान का पिटारा कहीं और जाकर खोलो, कृष्ण की तिरछि छवि हृदय में ऐसे चुभ गई है कि अब मेरे प्राण के साथ ही बाहर निकल पाएगी। और काव्य में विरह का अपना अलग ही स्थान है। दार्शनिक दृष्टिकोण से देखा जाए तो प्रेम में विरह की अनुभूति भी हृदय को शीतलता प्रदान करती है।

सूरदास के समस्त मानसिक प्रक्रिया का आधार उनकी भक्ति-भावना है। विद्वानों ने यह माना है कि सूरदास के कृष्ण, मुरली तथा गोपियाँ, प्रायः ब्रह्म, माया और जीव के प्रतीक रूप में उपस्थित थे। श्री कृष्ण की मुरली ही विद्या माया है, जो जीव और ब्रह्मा में भेद उत्पन्न करती है, तथा जिनके वशीभूत होकर जीव संसार के प्रपंच में फंसकर नाना प्रकार के कष्ट सहते हैं।

संदर्भ सूची:-

1. सूर और उनका साहित्य-डॉ० हरवंश लाल शर्मा
2. सूरदास-डॉ० बृजेश्वर शर्मा
3. हिंदी साहित्य का इतिहास-आचार्य रामचंद्र शुक्ल
4. हिंदी के प्राचीन प्रतिनिधि कवि डॉ० द्वारका प्रसाद सक्सेना
5. आचार्य रामचंद्र शुक्ल-भ्रमर गीत सार
6. बलदेव उपाध्यक्ष भारतीय दर्शन
7. बलदेव उपाध्यक्ष भारतीय दर्शन पृष्ठ संख्या 123
8. बलदेव उपाध्यक्ष भारतीय दर्शन पृष्ठ संख्या 254
9. बलदेव उपाध्यक्ष भारतीय दर्शन पृष्ठ संख्या 118 ,
10. वहीं पृष्ठ संख्या 127
11. वहीं से पृष्ठ 243

# ओमप्रकाश वाल्मीकि की कहानियों में दलित जीवन का यथार्थ

मीनाक्षी

डॉ. संगीता राय

1. शोधार्थी, हिन्दी, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली
2. शोध निर्देशक, मिरांडा हाऊस, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

शोध सार:-गहन मानवीय संवेदना और यथार्थपरक दृष्टि से समाज का मूल्यांकन करने वाले ओमप्रकाश जी का जन्म यू. पी. के मुजफ्फरनगर के एक दलित परिवार में हुआ। आरम्भ से ही दलित जीवन की स्वानुभूति लिए इनका जीवनानुभव इतना व्यापक व चिन्तनशील रहा है, जिसने दलित समाज की वेदना पीड़ा उसकी छटपटाहट और दरिद्रता को वैश्विक धरातल पर लाकर खड़ा कर दिया है। इनकी यह भोगी हुई वेदना दलित कहानियों के माध्यम से उभरकर सामने आयी है। दलित चेतना को लेकर इनका समीक्षात्मक विश्लेषण कटु जीवन के यथार्थ पर टिका है। जिसकी अन्तर्नभूति इनके रचनात्मक लेखन के माध्यम से उभरी है। इनकी आत्मकथा कहानी व कविताओं आदि के विचारात्मक शब्द दलित जीवन की त्रासदी को चित्रांकित करते हुए नजर आते हैं। इनके यह विचार यथार्थ की जमीं पर मजबूती के साथ अड़िग है, जो प्रतिपक्ष से सीधा संवाद करते हैं।

यद्यपि कहानी विधा की बात की जाए तो इसका प्रतिरोधी स्वर अन्य विधाओं की अपेक्षा ज्यादा मुखरित व आक्रामक है। जिसके अन्तर्गत पात्रों, घटनाओं व परिवेश आदि के माध्यम से एक ऐसा विधान उजागर होता है, जो पाठक की चेतना को जगाकर उसके भाव-संवेदन का संचार करती है। हाशियें पर रखें गए इस समाज की पीड़ाओं का चित्रण करती है। आखिर दलित कौन है? कहाँ से आये? इन पर गुलामों जैसे अन्याय, अत्याचार किये गए, इन्हें मानवीय अधिकारों से वंचित रखा गया, सामाजिक आर्थिक रूप से इन्हें अलग-थलग करके वर्ण व्यवस्था से ही बाहर कर दिया गया और क्यों खानाबदोश बनाकर घुमन्तुओं जैसा जीवन व्यतीत करने पर मजबूर कर दिया गया? इन तमाम प्रश्नों पर इनका यह विचारात्मक लेखन दलित जीवन के विभिन्न मार्मिक पहलुओं पर प्रकाश डालता है।

**बीज शब्द:-**ओमप्रकाश वाल्मीकि की कहानियाँ, मानवीय गरिमा, स्वानुभूति, यथार्थपरकता, चेतनापरक, प्रतिरोधी स्वर, अम्बेडकरवादी चिन्तन, समानता, बंधुता।

**शोध आलेख:-**दलित साहित्य प्रतिरोध का साहित्य है, क्योंकि इसकी जड़े मानवीयता के पक्ष में रही है। ऐसी मानवता जो समरसता के स्वरूप को स्वीकार करती है। लेकिन वर्णों द्वारा निर्धारित इस वर्ण-व्यवस्था ने मानवीयता के पक्ष में ऐसी सामाजिक कुरीतियों को जन्म दिया, जिसने मानव-मानव में भेद स्थापित कर दिया। जिसकी गतिशीलता मनुवाद से आरम्भ होकर आज के समकालीन परिदृश्य में भी सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक व सांस्कृतिक शोषण के रूप में निरंतर विकसित होती हुई नजर आती है। चूँकि दलित साहित्य का जन्म उत्पीड़न की कोख से हुआ है। आर्यों

के बाद भारत के मूलनिवासियों का वर्चस्व हाशिये की ओर बढ़ चला। परिणामस्वरूप इस बड़े वर्ग को दस्यू, दस्यू से गुलाम और गुलाम से अस्पृश्य बना दिया गया। हालांकि यह व्यवस्था वैदिक काल में सिर्फ वर्ण सम्बन्धित रही लेकिन वर्चस्व की लालसा ने ब्राह्मण विशेष की सत्ता को अंहकारी बनाकर मानव-मानव में भेद करते हुए उसे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र में निर्धारित कर दिया। जाति, धर्म और वर्ण के आधार पर दलितों के लिए ऐसे-ऐसे नियमों को गढ़ा गया, जिसने मानव पहचान के संकट को खड़ा कर दिया। कहते हैं कि क्रिया की प्रतिक्रिया का होना स्वाभाविक है। जिसका पहला आगाज बुद्ध की शिक्षाओं में सुनाई पड़ता है। व्यवस्था का विद्रोह करते हुए गौतम बुद्ध ने ब्राह्मणों की जन्मजात उच्चा पर प्रश्नचिह्न खड़ा कर दिया। परिणाम यह हुआ है कि इसी समय के जैन धर्म के स्वामी महावीर और गौतम बुद्ध ने शूद्रों और दासों के आपसी संबंधों को मानवीय गरिमा के साथ जोड़ते हुए समरसता के द्वार खोल दिये। इन्हीं सिद्धान्तों को लेकर अशोक सम्राट ने अपने न्याय के साथ सभी को समान रूप से प्रस्तुत कर दिया। जिसे आधुनिक काल में बाबा साहेब भीमराव अम्बेडकर द्वारा अपनाया गया। जिसे आज कुछ बुद्धजीवी दलित साहित्यकारों ने अपनी पहचान के रूप में अपनाया है। डॉ. शरणकुमार लिम्बाले लिखते हैं कि 'दलित साहित्य अपना केन्द्रबिंदु मनुष्य को मानता है। बाबा साहेब के विचारों से दलित को अपनी गुलामी का एहसास हुआ। उनकी वेदना को वाणी मिली, क्योंकि उस मूक समाज को बाबासाहेब के रूप में अपना नायक मिला। दलितों की यह वेदना दलित साहित्य की जन्मदात्री है। दलित साहित्य की वेदना 'में' की वेदना नहीं बहिष्कृत समाज की वेदना है।' इसी धारा के अन्तर्गत ओमप्रकाश वाल्मीकि का स्थान सर्वोपरि रहा है। इनके द्वारा लिखित कहानियाँ विश्वविद्यालय के पाठ्यक्रम के अन्तर्गत शामिल है। इनकी कहानियाँ दलित व पिछड़े समाज की सशक्त पैरवी करती हैं। चूँकि इनकी कहानियों में उद्धृत दलित व पिछड़े समाज के प्रति उन सामाजिक विषमताओं को उजागर किया है, जिनके भुक्तभोगी स्वयं वाल्मीकि जी भी रहे हैं। डॉ. शिवकुमार मिश्र लिखते हैं 'कहानियाँ अपने रचनात्मक कौशल, संवेदना और शिल्प, हर आयाम पर दलित कहानियाँ होते हुए भी हिन्दी की यथार्थवादी परम्परा की एक मजबूत कड़ी हैं।'²

यद्यपि दलित कहानी आठवें दशक से आरंभ मानी जाती है। जिसके अन्तर्गत ओमप्रकाश वाल्मीकि दलित साहित्य के अन्तर्गत अग्रणी लेखक है। जिसमें दलित कहानियों का सफ़र आरम्भिक स्तर का रहा। इस दशक में हिन्दी दलित कहानियों ने दलित साहित्य को विस्तार दिया गया। इस

संदर्भ में श्री रमेश कुमार लिखते हैं 'आठवें दशक में समानांतर कहानी आन्दोलन के माध्यम से समाज के कमजोर वर्ग की समस्या को कहानी का केन्द्र बनाया गया। स्वतंत्रता के पचास वर्ष के बाद भी निम्न वर्ग की कहानियों के माध्यम से इस वर्ग के जीवन का यथार्थ निरूपण किया है। इन कहानियों में दलित जीवन की वेदना, निरन्तर संघर्ष करते रहने की अनिवार्यता, सुविधाभोगी लोगों के प्रति उनकी विरोध मुद्रा, प्रतिकूल नगरीय स्थिति में भी जीने की विवशता और अपने मानवीय अधिकारों की प्राप्ति हेतु आत्म सजगता जाग्रत हुई है।<sup>3</sup> हालांकि दलित कहानियों की पृष्ठभूमि बनाने में सारिका (कमलेश्वर) जैसी चर्चित पत्रिकाओं का महत्वपूर्ण योगदान है। राजेन्द्र यादव के संपादन में सन् 1992 ई. में पहला दलित विशेषांक प्रकाशित हुआ। जिसके अन्तर्गत ओमप्रकाश वाल्मीकि, कंवल भारती, मोहनदास नैमिशराय सूरजपाल चौहान आदि कहानीकारों की कहानियों को प्रमुखता दी गई। इसके बाद रमणिका गुप्ता का दूसरी दुनिया का यथार्थ और डॉ. कुसुम वियोगी की तीन दलित कहानी संग्रह- 'चर्चित दलित कहानियाँ', 'समकालीन दलित कहानियाँ' और 'दलित महिला कथाकारों की चर्चित कहानियाँ' में शैराज सिंह बेचैन, डॉ. एन. सिंह, कावेरी, सुशीला टांकभोरे, आदि पुरुष व महिला दलित साहित्यकारों की कहानियाँ प्रमुख रूप से महत्वपूर्ण रही। 'कुल मिलाकर कहा जा सकता है कि दलित साहित्य के अपरम्परागत परिवेश को जीवंत करती कहानियों का जन्म उत्तर भारत में प्रारंभ हो चुका है। आवश्यकता है, तो बस एक रचनात्मक साहित्यिक आन्दोलन बनाने की ताकि सदियों से सोया अल्प शिक्षित दलित समाज जागृत हो।'<sup>4</sup>

ओमप्रकाश वाल्मीकि के तीन महत्वपूर्ण कहानी संग्रहों में सलाम (2000), घुसपैटिए (2004) और छतरी है। इन कहानी संग्रहों में यथार्थपरक व चेतनापरक कहानियाँ सम्मिलित हैं। इन कहानियों में विविधता है जो समाज के भीतर दलित समाज का वास्तविक चित्र खींचती हुई नजर आती है। जिनमें दलितों के प्रति अमानवीय घटनाओं से भरे भारतीय हिन्दू समाज की पोल खोल कर रख दी है। साथ ही दलित के नीचे दलित होने के कटु यथार्थ को भी सामने रखा है। दलित जीवन से ओत-प्रोत इनकी कहानियाँ अदम्य जिजीविषा से भरी हुई हैं। जिसमें अस्तित्व व अस्मिता की पहचान कराने की उपस्थिति दर्ज है। स्वानुभूति से प्रेरित ये कहानियाँ तटस्थता व निरपेक्षता के साथ हिन्दू समाज के ज्वलंत यथार्थ को नग्न करती हुई पाठकों को रुबरू करवाती है।

सलाम इनका पहला कहानी संग्रह है। जिसके अन्तर्गत चौदह कहानियाँ सम्मिलित हैं, जिनमें सपना, बैल की खाल, पच्चीस चौका डेढ़ सौ, अम्मा, शवयात्रा, सलाम आदि। इन कहानियों में दिल दहलाने वाली परिस्थितियों को दिखाया गया है कि किस तरह से दलित लोगों को इंसान न समझकर उसे पशु से भी ज्यादा घृणित समझा गया है। उसे अभिजात्य वर्ग द्वारा उसके पूर्व जन्मों का लेखा-जोखा माना गया है, जो निरन्तर आज के समाज में भी बना हुआ है। आरंभ से ही दलित समाज के बच्चों में हीन भाव पैदा किया जाता है। सलाम कहानी भी इसी तरह के भावों से उत्पन्न है। जहाँ सलाम प्रथा के नाम पर भंगी दलित जाति को हमेशा अपमानित व निंदनीय बना रहना पड़ता है। यहां कहानी हरीश नामक युवक की है, जिसका पूरा ताना-बाना हरीश की शादी के चारों ओर बुना हुआ है। जिसमें शादी के बाद वर-वधू को अभिजात्य लोगों के घरों में दहलीज के बाहर खड़े होकर सलाम करना पड़ता था और जिसके बदले में इन लोगों द्वारा दलितों को कुछ दिया जाता था। दरअसल यह कहानी दलितों पर उपकार के माध्यम से सामंती

व्यवस्था को बनाये रखने की प्रथा पर आधारित है। जिसकी पालना दलितों की पीढ़ियाँ करती रही है। लेकिन हरीश इस व्यवस्था को न मानते हुए सलाम करने से मना कर देता है और अपने पिता से कहता है कि 'मैं इस रिवाज को आत्मविश्वास तोड़ने की साजिश मानता हूँ। यह सलाम की रस्म बन्द होनी चाहिए।'<sup>5</sup> वास्तव में दलित समाज का उत्पीड़न हिन्दू वर्ण व्यवस्था का भीतरी सच है। यह कड़वी सच्चाई भारत के विशेषकर ऐसे ग्रामीण या शहरी पिछड़े इलाकों में आज भी बनी हुई है। जहाँ साफ-सफाई का जिम्मा सिर्फ और सिर्फ एक जाति विशेष के लोगों तक ही सीमित है। 'पच्चीस चौका डेढ़ सौ' ऐसी ही यथार्थ से जुड़ी चेतनापरक कहानी है। जहाँ चौधरी जैसा सामंती अनपढ़, अज्ञानी दलितों के साथ छल-कपट करके उनका आर्थिक शोषण करता है। जो सौ रुपये उधारी के बदले डेढ़ सौ रुपये लेकर भी सुदीप के पिता को अपना कर्जदार बनाये रखता है। उधार का पैसा देते हुए चौधरी सुदीप के पिता से कहता है- 'ईब तू ईमानदारी से सारा पैसा चुका देगा। सौ रुपये पर हर महीने पच्चीस रुपये ब्याज के बनते हैं। चार महीने हो गए हैं। ब्याज के हो गए पच्चीस चौका डेढ़ सौ। तू अपना आदमी है तेरे से ज्यादा क्या लेगा। डेढ़ सौ रुपये में से बीस रुपये कम कर दे। बीस रुपये तुझे में छोड़ दिए। बचे एक सौ तीस। चार महीने का ब्याज, एक सौ तीस अभी दें दें। बाकी रहा मूल, जिब होगा दे देगा। महीने के महीने देते रहणा।'<sup>6</sup> दूसरी तरफ यदि कोई सुदीप जैसा बच्चा पढ़कर लिखकर आगे बढ़ जाता है तो उसके बचपन को इतने अपमानित व कड़वे अनुभवों के साथ तोल दिया जाता है कि उसे अपने बचपन में ही चुहड़े, चमार, भंगी जैसे शब्दों का अर्थ मालूम हो जाता है। शिनारायण मिश्रा जैसे सामंती विचारधारा के मास्टर दलित बच्चों को 'अबे चूहड़े के, आगे बोलता क्यों नहीं? भूल गया क्या?' कहकर वर्णव्यवस्था का वीभत्स चित्रण प्रस्तुत करता है। इसी कहानी के अन्तर्गत मजबूरी में टगे दलितों के मानसिक आघात को दर्शाया गया है। जहाँ चाधैरी और मिश्रा जैसे सम्मानित व प्रतिष्ठित व्यक्ति शोषण और टगी के द्वारा अपना दबदबा बनाये रखने में कामयाब रहते हैं। पत्रकार मणिमाला के अनुसार 'पच्चीस चौका डेढ़ सौ' चेतना, संघर्ष और दलितों की। दरअसल दलित चेतना मनुष्य को केन्द्र में रखकर मानवीयता की पक्षधर है। जो समाज के नग्न यथार्थ को सीधे-सरल व सपाट शब्दों में ब्यान करती है। 'मेरी रचना प्रक्रिया में जातीय दंश बहुत गहरें हैं। मुझे यह कहने में या स्वीकार कर लेने में भी कोई गुरेज दिखाई नहीं देता कि मेरे लेखन में चाहे कविता हो, कहानी या आत्मकथा हो सभी जगह यह स्वर प्रमुख है।'<sup>8</sup> चूंकि कहानियों का सीधा संवाद समाज से जुड़ा है। इसी कारण यह चेतना आम आदमी की संवेदना के स्वर को आगे रखती है। इसी संवेदना को चित्रित करती हुई 'बैल की खाल' इनकी प्रसिद्ध कहानी है। कहानी के अन्तर्गत भूरे और काले चमार पात्रों की संवेदनशीलता को दर्शाया गया है। जो जानवरों की खाल बेचकर अपनी जीविका चलाते हैं। जिसके कारण गांव के लोग इन्हें तिरस्कृत व अपमानित नजरों से देखते हैं। ये दोनों दलित पात्र बाजार में ट्रक द्वारा गाय की बछिया को टक्कर मारे जाने पर अपनी रोजी-रोटी के लिए स्वार्थी नहीं बन पाते और न ही उसके मर जाने का इंतजार करते हैं बल्कि उस बछिया को डॉक्टर के पास ले जाते हैं और अभावग्रस्त जीने में अपने अन्दर मानवीयता को बनाये रखते हैं। इधर पंडित बृजमोहन व लाला जैसे सामंती लोग अपने निजी स्वार्थों के लिए जानवरों का प्रयोग करते हैं। यद्यपि 'गरीबी ही यदि उनकी समस्या होती तो लाला का कहना मानते और पुड़िया (जहर) खिलाकर गांव में रोज जानवर मारते। उनकी रोज खालें बिकती और व चैन से दिन गुजारते।'<sup>9</sup> पंडित रामसरन जैसे सामंती लोगों के

बारे में कहानीकार लिखते हैं कि 'जब तक बैल जीवित था तो कोई बात नहीं थी। कल तक अन्न उगाने वाले बैल मरते ही अपवित्र हो गया था। जिसे छूना तो दूर उसके पास खड़े होना भी किसी पाप से कम नहीं था।'<sup>10</sup>

इसी तरह की निरकुंशता का परिचय गोहत्या कहानी में भी है। जहां सांमती लोगों की संवेदनहीनता व दलितों के प्रति धूर्तता का चित्रण मिलता है। यह कहानी सुक्का दलित पात्र की है जो सांमती द्वारा बनाई गई परम्परा को मानने से इंकार कर देता है। दरअसल रीत के अनुसार सुक्का को अपनी पत्नी को मुखिया के घर भेजना जरूरी था, लेकिन जब सुक्का इस परम्परा का विरोध करता है तो मुखिया कुछ लोगों के साथ मिलकर सुक्का के खिलाफगोहत्या की साजिश रची जाती है। सवर्णों की पंचायत द्वारा एक लौटे में पांच लोगों के नाम लिखकर पर्ची डाली जाती है और इन पर्चियों में सिर्फ दलितों का नाम ही डाला जाता है। जिसमें से सुक्का का नाम बाहर निकलकर आता है। गोहत्या का दोषी मानते हुए उसकी 'सजा थी हल के लोहे में घाल को आग में तपाया जाएगा। जिसे दोनों हाथों में थामकर सुक्का गऊमाता-गऊमाता कहता दस कदम चलेगा। अगर वह गोहत्या नहीं किया है, तो गर्म लोहे की घाल उसका कुछ नहीं बिगाड़ सकती।'<sup>11</sup> हालांकि यह कहानी सुक्का जैसे दलितों की चेतना को दबाने की सोची-समझी चाल रही है। दरअसल इन कहानियों में समाज का जीवंत यथार्थ है। जहां किसी रस्म के नाम पर सांमितियों द्वारा निम्न कामों को जाति आधारित बता कर दलितों पर ही थोप दिया जाता है। इसी संदर्भ से जुड़ी इनकी अम्मा कहानी भी है। जहां सदियों से चली आ रही साफ-सफ़ाई, मैला ढोने की प्रथा का पीढ़ी दर पीढ़ी हस्तांतरण का सजीव अंकन किया गया है। अम्मा की सास लोगो के घरों में मैला ढोने का काम करती हैं। जिसके बीमार हो जाने के बाद अम्मा इस काम को करने लग जाती है। 'यह कहानी अम्मा की-आप कह सकते हैं। लेकिन किसी एक अम्मा की नहीं, न जाने कितनी अम्मा सुबह-सवेरे हाथ में झाड़ू, कनस्तर थामे हुए गली-मुहल्लों में मिल जाएंगी। जिनका जर्जर शरीर वक्त के साथ थपेड़े खाकर पुराने दरख्त की तरह समय के साथ गलने लगा है।'<sup>12</sup> वर्तमान में देखा जाए तो शहर और गांव के गली-मुहल्लों को साफसुथरा रखने का जिम्मा सिर्फ दलितों को ही दिया जाता है। इसी वास्तविकता को लेकर शयोरज सिंह बच्चन वाल्मीकि जी की प्रशंसा करते हुए लिखते हैं 'अम्मा से आपके कहानीकार की यथार्थ पहुंच की गहराई का पता चलता है। तीन पीढ़ियों का ऐसा वास्तविक चित्रण अन्यत्र नहीं मिलता। अम्मा की खुददारी चारित्रिक उत्कृष्टता में कुछ भी अवास्तविक नहीं है। यह दलित संस्कृति है। अभाव सहना, मेहनत की खाना और सदचरित्र रहना।'<sup>13</sup> संक्षेप में समझा जा सकता है कि सांमती लोग हमेशा से ही चाहते हैं कि दलित कभी भी सिर उठाकर जी न सके। यदि वह अपनी उथल-पुथल गंभीर बहस-मुबाहिसों के जीवन से बाहर निकलकर किसी तरह उच्च शिक्षा तक पहुंच भी जाए तो उसके प्रति बड़े-बड़े संस्थानों में दमन और अत्याचार और भी बढ़ जाता है। आज के समकालीन परिदृश्य में दलितों को भारी विरोध का सामना करना पड़ता है। इसी संदर्भ में ओम प्रकाश वाल्मीकि की कहानी घुसपैटिए का जिक्र करना भी जरूरी है। सलाम के बाद यह इनका दूसरा कहानी संग्रह है। जिसकी अन्तर्वस्तु लेखक के अनुभवजनित त्रासदियों और दुखों से उपजी गहरी मानसिक, आर्थिक सामाजिक संवेदनाओं से जुड़ी है। इस कहानी के अन्तर्गत सुभाष सोनकर व सुजाता मेडिकल के दलित युवा छात्र हैं। जो अपने ही संस्थानों में पढ़ने वाले सवर्ण समाज के प्राध्यापकों व छात्रों द्वारा प्रताड़ित होकर आहत्य कर लेते हैं। इस कहानी का पूरा वातावरण तानाकशी से भरा

हुआ है। जहां दलित छात्र-छात्राओं को आरक्षण के बल पर घुसपैटिया घोषित कर मानसिक रूप से प्रताड़ित किया जाता है। प्रणव मिश्रा द्वारा दलित छात्र सुभाष सोनकर को भरी बस में लात-धुंसे मारकर 'चमरटे' शब्द कहकर उसके अन्तर्मन को दुखी और अपमानित करता है। 'क्यों बे चमरटे सुनाई नहीं पड़ा हमने क्या कहा था? सोनकर ने अपने बाल छुड़ाने की कोशिश की ... मैं चमार नहीं हूँ। बालों की पकड़ मजबूत थी, सोनकर करहा उठा। प्रणव मिश्रा का झन्नाटेदार थप्पड़ सोनकर के गाल पर पड़ा ... (गाली) ... चमार हो या सोनकर ब्राह्मण तो नहीं हो ... हो तो सिर्फकोटेवाले ... बस इतना ही काफी है।'<sup>14</sup> इतना ही नहीं जब घटना के बारे में प्राध्यापक व अधिकारियों को पता चलता है तो इन लोगों द्वारा कोई भी कार्यवाही नहीं की जाती है। बल्कि दलितों के प्रति इस तरह का रवैया सांमती व्यवस्था का असली चेहरा उजागर करती है। दरअसल शैक्षणिक क्षेत्रों में इस तरह के व्यवहार के भुक्तभोगी दलित छात्र हमेशा से ही रहते हैं। और भी देखा जाए तो जातिवाद के इस दंश के कारण रोजगार की समस्याएं भी उत्पन्न हो जाती हैं। इसी पर आधारित इनकी कहानी दिनेशपाल जाटव उर्फ दिग्दर्शन कहानी है। जिसके माध्यम से पत्रकारिता संबंधी रोजगार में भी व्याप्त जातिवाद को दिखाया गया है। जहां दिनेशपाल अपना नाम बदलकर नौकरी तो पा लेता है लेकिन धीरे-धीरे दिग्दर्शन नाम के आगे दिनेशजाटव अपनी पहचान को ही खो देता है। ओमप्रकाश वाल्मीकि लिखते हैं कि 'नाम बदलने से शुरू में काफी दिक्कतें आई थीं। लेकिन जब पत्र-पत्रिकाओं में यही नाम छपने लगा तो सभी उसे इस नाम से पहचानने लगे थे। कुछ अंतराल बाद ही उसका पूर्व नाम भूलने भी लगे थे। दिग्दर्शन की छाया में दिनेशपाल जाटव गुम होने लगा था। इसी नाम के भ्रम जाल ने उसे इतने बड़े अखबार में नौकरी दिलवा दी थी। अखबार की दुनिया में फंसकर वह बहुत-से ऐसे काम करना भूल गया था, जो किसी समय उसकी प्राथमिकता के दायरों में आते थे। सामाचार-पत्र की उपसंपादकी तक पहुंचने में उसे बहुत ज्यादा समय नहीं लगा था। नौकरी मिलने तक उसने जो संघर्ष किए थे उन्हें वह स्वयं भी धीरे-धीरे भूलने लगा था। शहर-दर-शहर भटकते हुए जब वह दिल्ली आया तो कई लोगों के करीब आने का मौका मिला, जो पत्रकारिता के क्षेत्र में जाने-माने नाम थे। ऐसे ही एक नाम की बदौलत वह इस अखबार की कुर्सी पर जम गया था।'<sup>15</sup> दरअसल ये कहानी फ्लैश बैक पैटर्न पर आधारित है। जिसमें दिनेशपाल जाटव को दिग्दर्शन नाम में मजबूरन परिणत होना पड़ा। सभी योग्यताओं के होने के बावजूद भी उसे कांट-छांट कर साक्षात्कार के लिए नहीं बुलाया जाता था। मित्रों के कहने पर वह स्वयं कलकत्ता जाकर संपादक से मिलता है। लेकिन दिनेशपाल जाटव संपादक के व्यंग्यात्मक लहजे 'अब पत्रिकाओं में भी आरक्षण मांगने वाले आने लगे ... अब भंगी, चमार भी संपादक बनेंगे'<sup>16</sup> को पहचान लेता है, जो दिनेशपाल जाटव को अन्दर तक तोड़ देता है। इसी कारण अंत में वह अपना नाम बदलकर दिनेशपाल जाटव से दिग्दर्शन बन जाता है। वर्तमान में शिक्षित दलितों द्वारा इस तरह जाति छुपाए जाने को लेकर दलित लेखिका रजत रानी मीनू लिखती हैं 'जाति पहचान की समस्या अभी भयावह बनी हुई है। कोई वाल्मीकि अपने को चूड़ड़ा या भंगी नहीं लिख सकता न कोई चमार खुद को चमार लिख सकता है। वह या तो जाति छिपाता है या जाटव अथवा धर्म सूचक शब्द जोड़ लेता है अपने साथ या फिर सिर्फनाम ही लिखता है।'<sup>17</sup> हालांकि यह सांमती विचारधारा सवर्ण और दलितों के बीच ही नहीं बल्कि दलित, दलित में भी देखी जाती रही है। इनकी शवयात्रा कहानी जाति के नीचे जाति की समस्या को प्रस्तुत करती है। अपनी कहानियों में इस तरह

की समस्या को सामने रखकर वाल्मीकि जी ने सहारनीय कार्य किया है। प्रस्तुत कहानी के अन्तर्गत बल्हारा और चमार दो दलित समुदाय है, जो स्वयं को एक-दूसरे को श्रेष्ठ मानते हैं। या फिर ये कहें कि चमार जाति स्वयं के श्रेष्ठ मानते हुए सामंती चोला ओढ़ें हुए है। इस कहानी में चमारों का बल्हारा जों कि दलित समाज में भंगी समाज का पात्र है, के प्रति संवेदनहीन चित्रण प्रस्तुत किया गया है। जिसमें चमारों द्वारा सूरजा बल्हारा का पक्का मकान न बनने देना तो दूसरी ओर बीमार बेटी के इलाज में अपेक्षित मदद का न करना। नीचता की हदें तो जब हो जाती है जब सूरजा की बेटी की मृत्यु हो जाने पर उसके शव को दाहसंस्कार के लिए जगह भी नहीं दी जाती। ये घटनाएं मानवीयता को शर्मसार करने वाली है। इस पर हरपाल सिंह लिखते हैं कि 'ओमप्रकाश वाल्मीकि की कहानी शवयात्रा एक ऐसी कहानी है जिसकी मिसाल खोजना टेढ़ी खीर है। सोचकर देखिए दलित में भी दलित, हे भगवान!' <sup>18</sup> जाति में जाति का भेद खोलते हुए ओमप्रकाश वाल्मीकि जी को परिवार से लेकर समाज तक की तीखी आलोचनाओं का शिकार होना पड़ा। इतना ही नहीं समाज ने इन्हें दलित विरोधी तक भी घोषित कर दिया था। इस कहानी के अतिरिक्त 'कहा जाए सतीश', 'मै ब्राह्मण नहीं', 'अंधड' आदि ऐसी कहानियां जिनके माध्यम से दलित समाज के ऐसे वर्ग को सामने रखा है जो अपने ही समुदाय व जाति को हेय दृष्टि से देखता हुआ उसकी उपेक्षा करता हुआ भी नजर आ जाता है।

**निष्कर्ष:-**कहा जा सकता है कि बिना प्रतिरोध के, विकास की प्रक्रिया समाज में संभव नहीं है। चूंकि नयी चेतना व मूल्यों के स्थापन के लिए पुराने मूल्य व्यवस्था का प्रतिरोध उत्पादन प्रक्रिया का महत्वपूर्ण हिस्सा है। इसीलिए ओमप्रकाश वाल्मीकि जी की कहानियां समकालीन हिन्दी साहित्य के परिदृश्य में स्थापित मूल्य व्यवस्था के गर्भ से उत्पन्न हुई है। इनकी कहानियों का मूल भाव व कथ्य उत्पीड़ित समुदाय से जुड़ा है। जिसमें एक-दूसरे की मुक्ति, समरसता की भावना, साधनों पर समान अधिकार की प्रतिक्रियाओं में अपना पूर्णतः सहयोग देती हुई नजर आती है। चूंकि ओमप्रकाश वाल्मीकि जी स्वयं दलित समाज से आते हैं। इसीलिए इनका देखा व भोगा गया यथार्थ, शोषण, अत्याचारों की गूंज व वेदना की टीस से उत्पन्न हुआ है। इन वेदनामयी टीसों के बीच पलते बढ़ते, जीते ओम प्रकाश वाल्मीकि द्वारा नस-नस में समाई जाति व्यवस्था को बड़ी तलखी के साथ उजागर किया है।

निश्चित तौर पर इन तीन प्रमुख कहानी संग्रहों में हिन्दू सामाजिक व्यवस्था में दलितों को समाज का आईना दिखाया गया है, जहां उसे अपने अधिकारों, समानता व स्वतंत्रता के लिए सामाजिक परिवर्तन के लिए लड़ाई लड़नी जरूरी है। इन विभेदकारी सामाजिक मूल्यों और भावनाओं के प्रति सचेत रहते हुए बाबा साहेब की विचारधारा के प्रति सजग रहना जरूरी है और यह सजगता शिक्षा से जुड़े रहने पर ही संभव है। जहां उसे जीवन की कैसी भी परिस्थिति क्यों न हो लेकिन उसे स्वयं की लड़ाई का आत्मसात् करना जरूरी है। अपमान की वेदना और समानता की चिन्ता से उत्पन्न इस चेतना का बीज बाबा साहेब के विचारों का ही परिणाम है, जिन्होंने दलितों को जगाने का काम किया। अतः इस दलित चेतना के अद्भूत तेजस्विता के दर्शन जूठन जैसी आत्मकथाओं से होती हुई इनकी कहानियों में कलमबद्ध हुई है, जो आधुनिक साहित्य के परिवेश में दलित अस्मिता और आत्मसम्मान की लड़ाई के रूप में आज भी प्रासंगिक है।

संदर्भ सूची :-

1. प्रज्ञा पत्रिका, संपादक रामकृष्ण राजपूत, मार्च-जून 1995, पृ.10
2. संपादक-आग्नेय, साक्षात्कार, नवम्बर 2001, पृ.107
3. लेख: आधुनिक हिन्दी कहानियों में दलित चेतना- रमेश कुमार, आजकल मासिक पत्रिका, दिल्ली, जनवरी 1992, पृ.13
4. लेख: चाहिए ऐसा साहित्य जो व्यवस्था की गाँठें समझा सकें- जय चौहान, राष्ट्रीय सहारा, दैनिक, 28 सितम्बर 1994, दिल्ली
5. ओमप्रकाश वाल्मीकि- सलाम (कहानी-संग्रह), 2017, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, पृ.17,
6. ओमप्रकाश वाल्मीकि- सलाम (कहानी-संग्रह), 2017, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, पृ.81
7. मणिमाला- हिन्दूस्तन रविवारसीय, 29 अक्टूबर 1995
8. ओमप्रकाश वाल्मीकि-दलित साहित्य अनुभव, संघर्ष एवं यथार्थ, राधाकृष्ण प्रकाशन, 2020, नई दिल्ली, पृ. 26
9. कंवल भारती: ओमप्रकाश वाल्मीकि की कहानियां, जून-सितम्बर, 1996, पृ.44
10. ओमप्रकाश वाल्मीकि-सलाम (कहानी संग्रह), राधाकृष्ण प्रकाशन, दूसरी आवृत्ति, 2014, दिल्ली, पृ. 35-36
11. ओमप्रकाश वाल्मीकि- दलित साहित्य अनुभव, संघर्ष एवं यथार्थ, राधाकृष्ण प्रकाशन, 2020, नई दिल्ली, पृ.62
12. ओमप्रकाश वाल्मीकि-सलाम (कहानी संग्रह), राधाकृष्ण प्रकाशन, दूसरी आवृत्ति, 2014, दिल्ली, पृ. 113
13. डॉ. श्यौराज सिंह बेचैन द्वारा 20.07.1996 में ओमप्रकाश वाल्मीकि की अम्मा कहानी पर प्रतिक्रिया देते हुए
14. ओमप्रकाश वाल्मीकि- घुसपैटिए, (कहानी संग्रह), राधाकृष्ण प्रकाशन, दूसरी आवृत्ति, 2014, दिल्ली, पृ. 24
15. ओमप्रकाश वाल्मीकि- घुसपैटिए, (कहानी संग्रह), राधाकृष्ण प्रकाशन, दूसरी आवृत्ति, 2014, दिल्ली, पृ.69
16. वही, पृ. 69
17. रजत रानी मीनू- हिन्दी दलित कथा साहित्य: अवधारणाएँ और विधाएँ, अनामिका प्रकाशन, 2010, दिल्ली, पृ.135
18. हरपाल सिंह अरुष- ओमप्रकाश वाल्मीकि की कहानियों में सामाजिक लोकतांत्रिक चेतना, जवाहर पुस्तकालय, उ.प्र. 2014, पृ. 140

## ‘जंगली कुलपति की कथा’ में टी वी कट्टीमनी के संघर्ष एवं सफलताएं दीपिका

शोधार्थी, हिंदी विभाग, केंद्रीय विश्वविद्यालय, महेन्द्रगढ़, हरियाणा

आदिवासी विमर्श में आदिवासियों को लेकर लिखा तो जा रहा है पर समझा नहीं जा रहा। आदिवासी लोगों का रहन-सहन, खान-पान, जीवन शैली केवल इन सब के बारे में ही लिख देना या पढ़ लेना काफी नहीं है बल्कि उस वर्ग को जागरूक करना, शिक्षा का महत्व समझाना उनकी स्थिति को और भी बेहतर करना आवश्यक है। आदिवासी लोग जिनका जीवन बिल्कुल सिमट कर रह गया है। जंगल के बाहर के जीवन के बारे में उनकोकोई जानकारी नहीं है। उनके अधिकारों केहनन के बारे में भी उन्हेंज्ञान नहीं है। आदिवासियों के विकास के लिए सरकार ने कोई विशेष योगदान नहीं दिया है। वर्तमान में भी उनको वह दर्जा प्राप्त नहीं हुआ होना चाहिए। ‘भारतीय भूखंड प्रागैतिहासिक काल में से ही कौल, भील, मुंडा, संथाल आदि जनजातियों का निवास स्थान रहा है।’<sup>1</sup> प्राचीन काल से ही यह जनजातियां भारत में रह रही है लेकिन उसके पश्चात भी इनकी स्थिति में कोई बदलाव नहीं आया है। महाश्वेता देवी ने ‘जंगल के दावेदार’ उपन्यास में आदिवासियों के जीवन और उनकी संस्कृति की तरफ ध्यान दिलाने की कोशिश की है। उसी प्रकार टीवीकट्टीमनी ने भी आदिवासी लोगों की बहुत सहायता की है जिसका वर्णन उनके द्वारा लिखी गई पुस्तक में विस्तार पूर्वक देखा जा सकता है।

टी वी कट्टीमनी का पूरा नाम तेजस्वी वेंकटप्पा कट्टीमनी है। इनका जन्म सन 1955 को कर्नाटक के अलवंडी के तलवार जाति में हुआ 15 जनवरी को टी वी कट्टीमनी ने इंदिरा गांधी राष्ट्रीय जनजातीय विश्वविद्यालय में द्वितीय कुलपति एवं प्रथम आदिवासी कुलपति के रूप में पदभार ग्रहण किया। किसी विश्वविद्यालय का कुलपति होना एक विशेष योग्यता है परंतु यह और भी विशेष हो जाता है जब आप अपनी जाति के प्रथम कुलपति बनते हैं। इसमें अंतर करना ज्यादा मुश्किल नहीं है। कुलपति के पद पर पहुंचने के लिए बहुत संघर्ष करना पड़ता है लेकिन एक आदिवासी व्यक्ति को पहले जीवित रहने के लिए संघर्ष करना पड़ता है। उसके बाद वह अपनी मंजिल के लिए संघर्ष करते हैं। टी वी कट्टीमनी ने अपनी पुस्तक ‘जंगली कुलपति की कथा’ में आदिवासी जीवन के विभिन्न अनुभवों के बारे में रोचक ढंग से लिखते हैं। वे अमरकंटक के जनजातीय विश्वविद्यालय में रहें। अमरकंटक के आदिवासी लोगों की जीवन स्थिति को उन्होंने गहरे से देखा। इस संबंध में वे लिखते हैं- ‘अमरकंटक में जनजाति लोगों की दैनिक स्थिति और समझने का अवसर मुझे मिला। बारिश के दिनों में इनको खाने पीने के लिए पेट भर कंदमूल और फल मिल जाते हैं। जिस दिन लाया, उसी दिन खा लिया संग्रह करना यह लोग नहीं जानती।’<sup>2</sup> टी वी कट्टीमनी ने कुलपति का पद ग्रहण किया तो उनका मुख्य उद्देश्य विश्वविद्यालय के विकास के साथ ही आसपास के आदिवासी

लोगों की स्थिति को बेहतर बनाना भी था। जिसके लिए उनका पहला प्रयास सफाई को लेकर रहा। विश्वविद्यालय में साफ सफाई की उचित व्यवस्था नहोने के कारण चारों तरफ गंदगी फैली हुई थी। टी वी कट्टीमनी ने सबके सहयोग से कार्य की शुरुआत की। उन्होंने सभी को प्रोत्साहित करते हुए साथ में मिलकर विश्वविद्यालय की सफाई की। इस तरह टीवी कट्टीमनी ने विश्वविद्यालय की सफाई के लिए उचित व्यवस्था की जिसमें बाकी शिक्षकों की भी सहायता ली। यही कारण है कि उन्हें कई बार अपने ही सहकर्मियों के कटाक्ष और व्यंग्य का सामना भी करना पड़ता था। ‘लोग पूछ रहे हैं कि आपका कुलपति स्वयं कचरा उठाते हैं। हॉस्टल लैट्रिन स्वयं वलीन करवाते हैं। उनको भारत सरकार भारत रत्न देने वाली है, क्या’<sup>3</sup>

इस पर भी टी वी कट्टीमनी हंस कर टाल देते थे। उसके बाद भी ऐसे कटाक्ष और व्यंग्य सुनकर भी टी वी कट्टीमनी के व्यवहार में कोई फर्क नहीं आया। सफाई के पश्चात टीवी कट्टीमनी ने पानी की कमी को पूरा करने की ओर कदम बढ़ाया। इस क्षेत्र में पानी उपयुक्त मात्रा में है लेकिन मार्च, अप्रैल के दौरान पानी की कमी होने लगती है। अधिकारियों के पास समस्या भेजी लेकिन कोई समाधान नहीं हुआ। उसके बाद बारिश के पानी से पानी की कमी को पूरा करने का समाधान सोचा। ‘इसके लिए बेंगलुरु की इंडियन इंस्टीट्यूट ऑफ साइंस के अध्यापक डॉ.ए.आर.शिवकुमार बेंगलुरु के जैन वॉटरमैन के नाम से मशहूर है। उनकी सहायता में बारिश का पानी संग्रह करने के लिए वैज्ञानिक पद्धति के द्वारा एक तालाब का निर्माण किया जिससे पानी की कमी की पूर्ति की जा सके। ‘जल संग्रहण की इस प्रक्रिया में भवनों की छतों पर बरसाने वाले पानी को पाइप द्वारा टंकियां में संग्रह कर व्यर्थ बह रहे पानी को गड्डों से जमीन के नीचे छोड़ा गया।’<sup>4</sup>

इन्होंने सरकार के नियमों व सहायता से पहले ही समाधान कर दिया सरकार शहर रहती है। वह बैठकर कानून बनाती है जो कानून बनाते हैं वह मुंडा, कौल उतराव लोगों की बात नहीं सोचते।’<sup>5</sup> इसीलिए आदिवासी लोगों को अपने अधिकारों के लिए ही जागरूक होना आवश्यक है। यह क्षेत्र पेड़ पौधे और वनस्पतियों से भरा हुआ है लेकिन टी वी कट्टीमनी ने आसपास की नर्सरी से जमीन के उपयुक्त पेड़-पौधों को लगाना शुरू किया और पेड़ पौधों की जिम्मेदारी भी सभी अध्यापकों के साथ संभाली। इस प्रकार विश्वविद्यालय के अंदर भी एक से एक भारी पेड़ पौधों से भरासुंदर बगीचे का निर्माण किया गया। 3835 वर्ग किलोमीटर में बायोस्फीयर सतपुड़ा पहाड़ी की में कल पहाड़ों की श्रेणी से आवृत्ति है। यह छत्तीसगढ़ और मध्य प्रदेश के मध्य स्थित है। इस क्षेत्र में अनेक जड़ी बूटियां और खनिज संसाधन है परंतु

उनके बारे में सही जानकारी न होने के कारण इनका उपयोग नहीं किया जाता। टी वी कट्टीमनी एनवायरमेंटल बोर्ड के वरिष्ठ अधिकारियों को बुलाकर वर्कशॉप और सेमिनार का आयोजन किया। आसपास के क्षेत्र के अलावा दूर-दूर से लोग यहां वनस्पतियों, जड़ी-बूटियों के कारण आने लगे। इन जड़ी बूटियों का औषधि का रूप देने के लिए टीवी कट्टीमनी ने विश्वविद्यालय में ही कार्य शुरू कर दिया। विश्वविद्यालय और इंडस्ट्री के संयुक्त पर्यटन से अकादमी दस्तकारियों के अंदरूनी मर्म को जानकर उसके अनुरूप हम अपने पाठ्यक्रम को अपडेट कर सकते हैं। विश्वविद्यालय और इंडस्ट्री के बीच की दूरी खत्म होकर बेरोजगारी अपने आप कम होगी। हमारे विद्यार्थी नौकरी करने वालों की बजाय नौकरी देने वालों में परिवर्तित हो जाएंगे।<sup>5</sup>

इस प्रकार टी वी कट्टीमनी कुलपति के रूप में एक लक्ष्य को पूरा करने में कामयाब हुए। ऐसे ही विश्वविद्यालय के अनेक समस्याओं का समाधान भी किया। जिसमें एक समस्या विश्वविद्यालय के विद्यार्थियों से संबंधित थी। विश्वविद्यालय में लगभग विद्यार्थी किसानों के परिवार से संबंध रखते हैं। वहां किसानों को खेती की भी इतनी समझ नहीं थी और खेती से भी परिवार की जरूरत की पूर्ति नहीं होती थी और इसका विद्यार्थियों पर बहुत प्रभाव पड़ता था जिसके लिए टीवी कट्टीमनी ने कृषि विज्ञान केंद्र की स्थापना की और आईसीएसएसआर के अध्यक्ष प्रसिद्ध अर्थशास्त्री प्रोफेसर सुखदेव थारोट जी की नियुक्ति में किसान परिवार से आयु उम्मीदवारों का चयन किया गया। इससे शोधार्थियों के लिए भी कृषि से संबंधित शोध विषय दिए गए— 'पहले साल 197 विस्तारण गतिविधियों में लोगों ने भाग लिया। फील्ड डे, गुप मीटिंग, कृषि संगोष्ठी, किसान मेला, वैज्ञानिक दर्शन, मिट्टी परीक्षण कैंप, महिला कृषि दिवस आदि तरह के कार्यक्रम होते रहे।'<sup>7</sup>

इन कार्यक्रमों से कृषि से संबंधित किसानों में जागरूकता बढ़ी। टी वी कट्टीमनी जब विश्वविद्यालय में कुलपति बनकर आए तब से वह विश्वविद्यालय परीसर, विद्यार्थियों की समस्या, अध्यापकों की जीवन शैली सभी की समस्याओं का हल करते सबको साथ लेकर चलना चाहते थे, लेकिन एक दिन विश्वविद्यालय में काम कर रहे मजदूर, सुरक्षाकर्मी (सिक्योरिटी गार्ड) की तरफ गया जिनके साथ सही व्यवहार नहीं हो रहा था। मजदूरों को ना सही वेतन मिल रहा था, नहीं सरकार से उनको जो सुविधाएं दी गई थी, उनका लाभ ले पा रहे थे। सुरक्षाकर्मी (सिक्योरिटी गार्ड) जो कि अधिकारियों के थे उनको भी कोई सुविधा नहीं मिल रही थी। घरों में काम करने वाली महिलाओं के साथ भी अधिकारी अच्छा व्यवहार नहीं करते थे। टी वी कट्टीमनी ने कुलसचिव को इन सब के बारे में बताया और जल्द ही कानूनी कार्यवाही करने के निर्देश दिए गए, जिसके परिणामस्वरूप सुरक्षाकर्मीयों की समस्याओं का समाधान किया गया। विश्वविद्यालय में काम कर रहे सभी शिक्षक और गैर शिक्षक वर्ग के कर्मचारियों को योग्यता अनुसार पद मिले वसही वेतन के साथ विभिन्न सुविधाएं भी मिली।

विश्वविद्यालय के विकास के लिए जरूरी है कि विद्यार्थियों के साथ कर्मचारियों की भी समस्याओं का समाधान हो। टीवी कट्टीमनी सभी अधिकारियों की सुविधा का ध्यान रखते थे, परंतु फिर भी लोग उन्हें केवल एक आदिवासी के रूप में ही देखते थे। एक आदिवासी ने अपने सहकर्मी से कहा 'हमारा जनजातीय विश्वविद्यालय में काम करना ही एक बड़ा पाप है। पिछले जन्म के कारण इस आदिवासी मनुष्य के नीचे हमें काम करना पड़ रहा है।'<sup>8</sup> एक तरफ टी वी कट्टीमनी सभी समस्याओं को सुलझाते हुए आदिवासी लोगों के जीवन के विकास की ओर कोशिश कर रहे हैं जबकि कुछ शिक्षक

उन्हें पद के काबिल नहीं समझते। ऐसा समझने के पीछे केवल कट्टीमनी का आदिवासी जाति से संबंधित होना है। टी वी कट्टीमनी ने विश्वविद्यालय में शैक्षणिक आधार मजबूत करने के लिए शिक्षकों की नियुक्ति निष्पक्ष रूप से की है। यह विश्वविद्यालय आदिवासियों के लिए बहुत महत्व रखता है, इसलिए गैर शिक्षकों की नियुक्ति के समय आसपास के क्षेत्र के लोगों को मौका दिया गया। जबकि शिक्षकों की नियुक्ति के समय क्षेत्रवाद जातिवाद धर्म सभी को अलग रखकर योग्यता को आधार बनाया गया। कट्टीमनी कुलपति के साथ-साथ आदिवासी लोगों की जीवन शैली में सुधार लाने वाले सुधारक भी बने हैं। अनेक लोग जो कि योग्य थे विश्वविद्यालय में उन्हें काम दिया गया। विश्वविद्यालय के पास से हनुमान मंदिर को भी धार्मिक और सांस्कृतिक केंद्र बना दिया गया। टी वी कट्टीमनी का कुलपति होने के नाते मुख्य उद्देश्य विश्वविद्यालय के आसपास के क्षेत्र को भी विकास की दौड़ में शामिल करना था। वे चाहते थे 'विश्वविद्यालय के आसपास टाउनशिप का निर्माण हो। यहां पर पेट्रोलपंप, बैंक, सिनेमा हॉल, अच्छी रेस्टोरेंट, स्त्री पुरुष प्राइवेट हॉस्टल, किराए के घर, अच्छा खाना-नाश्ता मिलने वाले होटल, मनोरंजन के केंद्र की स्थापना होनी चाहिए।'<sup>9</sup>

टी वी कट्टीमनी कुलपति बनकर न केवल उद्देश्य निर्धारित करते हैं, अपितु पूरा भी करते हैं। मनोरंजन एवं सांस्कृतिक गतिविधियों को बढ़ावा देने के लिए 'पलाश ट्राइबल थिएटर ग्रुप' का निर्माण किया, जिसमें विश्वविद्यालय के सभी सांस्कृतिक कार्यक्रम उसी के अंतर्गत संपन्न हुए। साथ ही 'जयपाल सिंह मुंडा स्पोर्ट्स कंप्लेक्स' की शुरुआत भी कट्टीमनी द्वारा की गई। जंगल में रहने वाले लोग शारीरिक रूप से शक्तिशाली में स्वस्थ होते थे। विद्यार्थियों को खेलों के क्षेत्र में प्रोत्साहित करने के लिए यह एक अच्छा कदम है। 'रामदयाल मुंडा केंद्रीय पुस्तकालय' भी सुधार किया गया। विश्वविद्यालय में पुस्तकालय पहले भी था, परंतु उसमें पुस्तकों की संख्या बहुत कम थी और बैठने के लिए उचित स्थान भी नहीं था। कुलपति बनने के बाद टीवी कट्टीमनी पुस्तक एवं पुस्तकालय का महत्व समझते थे। केवल शिक्षा ही आदिवासी लोगों के जीवन में सुधार ला सकती है। इसलिए अनेक विश्वविद्यालय में जाकर पुस्तकालय का निरीक्षण किया और फिर अपने विश्वविद्यालय के पुस्तकालय में सुधार किया। इसी प्रकार छात्रावास में होने वाली समस्याओं की जानकारी लेकर उसमें भी सुधार किया। साथ ही 'सम्मन-सारम्कमेगामेस' में भी खाने को लेकर उचित प्रबंध किया। इनका दूसरा मुख्य उद्देश्य 'प्रतिभावान अध्यापकों को यहीं रहने के लिए प्रोत्साहित करना भी था'<sup>10</sup> एक अच्छा विश्वविद्यालय केवल इमारत से नहीं, बल्कि अच्छे विद्यार्थी एवं अच्छे शिक्षकों के होने से बनता है। इन्होंने विद्यार्थियों की परीक्षा भी निष्पक्ष कराई और शिक्षकों की चयन प्रक्रिया भी पारदर्शिता के साथ की। इस क्षेत्र में जंगल के अलावा कोई मनोरंजन का केंद्र नहीं था, जिसके कारण कुछ समय बाद ही शिक्षक अन्य क्षेत्र में तबादला करवाने का प्रयत्न करते हैं। इस क्षेत्र में शिक्षक एवं विद्यार्थी अलग अलग धर्म, जाति, संप्रदाय से संबंध रखते हैं। सभी को साथ में लाने का कार्य टी वी कट्टीमनी ने किया। लगभग सभी त्यौहार दिवाली, होली, ईद, क्रिसमस के अवसर पर सभी को इकट्ठा कर के मनाते और साथ ही सभी त्यौहारों के महत्व को भी समझाते। इस प्रकार मनोरंजन के साथ ही धार्मिक सद्भाव को भी स्थापित करने का कार्य किया। इसके साथ ही टी वी कट्टीमनी विश्वविद्यालय का विकास, सुधार एवं ज्ञान को अंतरराष्ट्रीय स्तर पर लेकर गए। अंतरराष्ट्रीय स्तर पर नावें विश्वविद्यालय, टर्की विश्वविद्यालय, लातविया विश्वविद्यालय, कोरिया विश्वविद्यालय के साथ

एम.ओ.यू. (समझौता ज्ञापन) कार्यक्रम किया। इस कार्यक्रम का मुख्य उद्देश्य आपस में विश्वविद्यालय का संयुक्त रूप से अनुसंधान, शिक्षण का आरंभ करना था। आज भी शोधार्थी विश्वविद्यालय में संयुक्त रूप से शोध कर रहे हैं। टीवी कट्टीमनी ने विश्वविद्यालय की उन्नति के लिए हरसंभव प्रयास किया, लेकिन फिर भी उनको शराबी, भ्रष्टाचारी, धर्म के आधार पर भड़काने वाला आदि नामों से अपमान किया। विपक्षी लोगों ने इनके सामने अनेक रूकावटें खड़ी की। लेकिन उन्होंने हर रूकावट कोपार कर नकेवल अपना, बल्कि विश्वविद्यालय, आदिवासी और अमरकंटक का मान भी बढ़ाया।

#### संदर्भ सूची:-

1. अपनीमाटी, मासिक ई-पत्रिका, अंक 19, वर्ष 2, सितंबर-नवंबर 2015.
2. (अनु.) नदाफ, डॉ. रेशमा; कट्टीमनी, टी. वी.; जंगली कुलपति की कथा; शिल्पायन 10295, लेन न.1, वैस्ट गोरखपार्क, शाहदरा, दिल्ली - 110032; संस्करण 2023.
3. वही; पृ. 28.
4. वही; पृ. 35.
5. देवी, महाश्वेता; जंगल के दावेदार; राधाकृष्णप्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड जी-17, जगतपुरी, दिल्ली - 110051; संस्करण - 2022; पृ. 7.
6. (अनु.) नदाफ, डॉ. रेशमा; कट्टीमनी, टी. वी.; जंगली कुलपति की कथा; शिल्पायन 10295, लेन न.1, वैस्ट गोरख पार्क, शाहदरा, दिल्ली - 110032; संस्करण 2023. पृ. 49.
7. वही; पृ. 54.
8. वही; पृ. 58.
9. वही; पृ. 62.
10. वही; पृ. 63.

## ग्लोबल वार्मिंग : जलवायु का परिवर्तित इतिहास

डॉ. वर्षा तिवारी

सहायक प्राध्यापक, इतिहास, शासकीय नवीन कन्या महाविद्यालय, मनेन्द्रगढ़, छ. ग.

जलवायु से संबंधित इतिहास का बदलता स्वरूप संपूर्ण जगत को प्राकृतिक आपदा की ओर सहजता से ढकेलता जा रहा है। किसी विषय से संबंधित इतिहास का वैज्ञानिक विश्लेषण उस विषय का तथ्यात्मक एवं विश्वसनीय परिणाम प्रस्तुत करता है। समंदर का पानी सूरज तक पहुँचता है और हमे बारिस के रूप में उपहार देता है बारिस से जीव जंतु का भरण-पोषण होता है, खेत-खलिहान लहलहा उठते हैं और यह अनुपम चक्र लगातार चलता रहता है। किन्तु इस चक्र में आये क्रमिक परिवर्तन ने अपना भयावह रूप उजागर किया है। परिणामतः वैश्विक औसत तापमान में वृद्धि निरंतर हो रही है। वैश्विक तापन की इस वृद्धि को पर्यावरणविदों ने ग्लोबल वार्मिंग की संज्ञा दी है। ग्लोबल वार्मिंग के रूप में दस्तक दे रही भीषण आपदा जिसमें सम्पूर्ण जगत खतरे की ओर अग्रसर है, के बारे में जागरूक होना एवं समस्त मानव समुदाय को जागरूक करना हमारी नैतिक जिम्मेदारी एवं आवश्यकता है। ताकि प्राकृतिक के विनाशकारी तांडव को रोका जा सके। इसका प्रमुख कारण पर्यावरण प्रदूषण के लिए उत्तरदायी ग्रीन हाउस गैसों है। इन गैसों में CFC (क्लोरो फ्लोरो कार्बन) है। जिसमें  $C_{O_2}$ ,  $CH_3$ ,  $N_{O_2}$  (कार्बन डाई ऑक्साइड, मीथेन, नाइट्रोजन ऑक्साइड) के संतुलन को बिगाड़ने वाली मनुष्य जनित गतिविधियाँ इन गैसों का वायुमंडल में सघन आवरण बनाने के लिए उत्तरदायी है। इन गैसों से वायुमण्डल में बना आवरण ही सूर्य की परावर्तित किरणों को रोक रहा है, जिससे पृथ्वी के तापमान में वृद्धि हो रही है जिसे हम ग्लोबल वार्मिंग की संज्ञा देते हैं। अर्थात् वायुमण्डल में मानव जनित  $C_{O_2}$ ,  $CH_3$ ,  $N_{O_2}$  के कारण पृथ्वी के धरातल में हो रहे तापमान में वृद्धि को ग्लोबल वार्मिंग कहते हैं। इस प्रक्रिया में सूर्य से विकिरित होने वाली लघु तरंगीय विकिरण पृथ्वी पर सीधे पहुँचती है परन्तु पृथ्वी से हो के जाने वाली दीर्घतरंगीय विकिरण में मिलने वाली अवरक्त किरणों को  $C_{O_2}$  तथा जलवाष्प अवशोषित कर लेता है। जिससे धरातल सतत् गर्म रहता है। इस प्रक्रिया के अतिरिक्त अन्य ग्रीन हाउस गैसों भी अपना प्रभाव प्रकट करती है। किन्तु भू तापन में वृद्धि का प्रमुख घटक  $C_{O_2}$  (कार्बन डाई ऑक्साइड) है। जिसके अन्तर्गत  $C_{O_2}$  का उत्पादन भंडारण निर्युक्तन को रखा जा सकता है। मनुष्य अपनी विभिन्न आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु जीवाश्म, कोयला खनिज तेल, प्रकृति गैसों का अधिकाधिक दोहन करता है। उदाहरणार्थ- ताप विद्युत ग्रह में विद्युत उत्पादन में कोयले के उपयोग से वायुमण्डल में  $C_{O_2}$  का सान्द्रण बढ़ता है। विभिन्न औद्योगिक गतिविधियाँ जैसे- कारखाने से निकलने वाला धुआँ खनिज तेलों का अधिकाधिक प्रयोग तथा घरेलू ईंधन के रूप लड़की कोयले का प्रयोग भी उत्तरदायी है। औद्योगिक क्रॉति के बाद  $C_{O_2}$  के सान्द्रण में तेजी से वृद्धि दर्ज की गई है। 10 प्रमुख कार्बन डाई ऑक्साइड उत्सर्जन करने वाले देशों में चीन प्रथम तथा भारत का स्थान तीसरा है। जलवायुविदों के अनुसार 1885 और

1940 के मध्य तापन वृद्धि  $0.9^{\circ}C$  की गई है। इस आधार पर 2100 तक पृथ्वी के सतह का औसत तापमान  $2.5^{\circ}F$  से  $10.40^{\circ}F$  तक बढ़ सकता है। और यह विनासक वृद्धि पिछले 10,000 वर्षों के दौरान हुए जलवायु परिवर्तन से ज्यादा है। इस तापमान वृद्धि के साथ ही जल का ताप  $2.5^{\circ}F$  से  $5^{\circ}F$  तक बढ़ सकता है। समुद्र का स्तर 2100 तक 15 से 100cm तक बढ़ जायेगा। ग्लोबल वार्मिंग का सीधा प्रभाव ध्रुवीय क्षेत्रों में देखने को मिलता है। हाल ही में हुए अनेक अध्ययन में पाया जा चुका है कि उत्तरी ध्रुव की बर्फ प्रति दशक 3:की दर पर से पिघल रही है। यह रफ्तार कायम रही तो अगले 350 वर्ष तक में उत्तरी ध्रुव बर्फरहित हो जाएगा। ध्रुवीय बर्फके पिघलने से समुद्रो का जल स्तर उठेगा। कुछ वैज्ञानिकों ने तो 21वीं सदी के अंत तक सागर के जल स्तर में 5 मीटर की वृद्धि की संभावना बताई है। परिणायतः चीन के पर्ल नदी के डेल्टा, बांग्लादेश और मिस्र के निवासियों को इन क्षेत्रों से हटना पड़ सकता है। मानवीय स्वार्थपरता एवं अहंकार से प्रकृति एवं संवेदनशीलता के बीच सुकोमल संबंधों में गहरी दरार पैदा हो चुकी है और यह यह दरार बढ़ती ही जा रही है। इसलिए ही तो अब मौसम रूठा-रूठा सा रहने लगा है। इंसान ने अपने ज्ञान के दम में अपने स्वार्थ हेतु मौसम और प्रकृति को अपने इशारों में नचाना चाहा। आज मौसम का बारहमासी चरित्र ही परिवर्तित हो चुका है। आम की मांजरी समय से पूर्व ही आने लगी है। मौसमी फल व सब्जियाँ बारहमासी हो गई है। भारतीय वानिकी अनुसंधान एवं शिक्षा परिषद् के निदेशक डॉ.डी.एन तिवारी ने संभावित मौसम बदलाव के बारे में कहा है कि सूखे और आग के कारण बहुत सी प्रजातियाँ नष्ट हो जाएगी तथा उनके स्थान में कई नुकसानदेह प्रजातियों का प्रादुर्भाव होगा। आधुनिक जीवन शैली के प्रमुख अंग जैसे रेफ्रिजरेटर, वातानुकूलित संयंत्र गंधनासक, हेयर स्प्रे, प्रसाधन सामग्री अग्निशमन यंत्रों से उत्सर्जित ग्रीन हाउस गैसें वायुमण्डल के ऊपरी भाग में पहुँच ग्लोबल वार्मिंग के खतरे को बढ़ा रही है। परिणामतः पृथ्वी  $33^{\circ}C$  सेग्रेट अधिक गर्म रहती है। 2025 तक पृथ्वी का तापमान  $1^{\circ}C$  बढ़ने का अनुमान है। जिसे 21 वीं सदी तक  $3^{\circ}C$  हो जाने की संभावना है।

भारत में ग्लोबल वार्मिंग का प्रभाव:-अपने भारत देश में प्रकृति की असीम अनुकम्पा और वरदान है। समस्त विश्व में केवल भारत में ही चार ऋतुएँ पूरे सौन्दर्य के साथ पदार्पण करती है। जो प्रकृति की हर धकड़न के एहसास और सुकोमल स्पर्श को और भी प्यारा बनाती है। जाड़े की टिदुरन, बारिस में भीगना, गर्मी में हरे-भरे पेड़ों की शीतल छाँव और बंसत की उमंग प्रकृति सौन्दर्य का बोध कराती हैं।

किन्तु इस शताब्दी में यह पहला अवसर है जब किसी वर्ष में मौसम का मिजाज इतना परिवर्तित हुआ है। वैसे तो ग्लोबल वार्मिंग का प्रत्यक्ष प्रभाव सुंदरवन क्षेत्र में बहुत पहले दिखने लगा था। जिसके कारण बंगाल की खाड़ी का जल स्तर बढ़ने लगा है। फलतः कई द्वीप जल समाधि ले चुके हैं। बे-मौसम बरसात, बर्फबारी ने मौसम वैज्ञानिकों को भी चिंतित कर दिया है। कृषि प्रधान कहे जाने वाले भारत देश की अर्थव्यवस्था को भी ग्लोबल वार्मिंग से भारी नुकसान पहुंच रहा है। मौसम विशेषज्ञों का मानना है कि ग्लोबल वार्मिंग के चलते आने वाले वर्षों में यह बदलाव और तीव्र होगा। समय रहते उचित कदम नहीं उठाए गए तो कृषि अर्थव्यवस्था को भारी नुकसान पहुंचेगा। साथ ही अनेक बीमारियों को भी जन्म देगा। इसका उदाहरण स्वाइन फ्लू है तथा कोरोना महामारी के प्रकोप का तांडव अभी पूर्णतः समाप्त नहीं हो सका है। दिल्ली में बढ़ते वायु प्रदूषण के मद्देनजर सुप्रीम कोर्ट ने यह स्पष्ट किया था कि खुली हवा में सांस लेना हर व्यक्ति का मानवीय अधिकार है किन्तु क्या पर्यावरण के संतुलन को बनाए रखना हमारा कर्तव्य नहीं होना चाहिए? क्या हमारा उत्तरदायित्व यहीं तक सीमित होना चाहिए कि हम ग्लोबल वार्मिंग को समझें? ग्लोबल वार्मिंग से संबंधित प्रश्नों का सही उत्तर दे? या फिर विश्व पर्यावरण दिवस मनाने तक सीमित रहना उचित होगा?

यह स्पष्ट है कि ग्लोबल वार्मिंग के लिए जिम्मेवार मुख्यतः मानवीय गतिविधियाँ हैं। अतः समस्या के सामधान हेतु कुछ जमीनी स्तर से सोचने की आवश्यकता है। प्रकृति एवं देश के प्रति अपना नैतिक कर्तव्य को ध्यान में रखने मात्र से ही हम इस नेक कार्य में अपना योगदान दे सकते हैं। उदाहरणार्थ मोटर गाड़ियों का उपयोग सीमित करने का प्रयास कर, घरेलू ईंधन के रूप लकड़ी कोयला का उपयोग सीमित कर कारखानों से निकालने वाले अपशिष्ट को पुनः उपयोग में लाने योग्य बनाकर तथा सार्वधिक महत्वपूर्ण कार्य वृक्षों की कटाई को रोककर और अधिकाधिक वृक्षारोपण करके। वृक्षारोपण हमारा नैतिक सामाजिक राजनैतिक दायित्व है तथा धार्मिक दृष्टिकोण भी महत्वपूर्ण है। वृक्ष कार्बन डाई ऑक्साईड का अवशोषण कर वातावरण में ऑक्सीजन छोड़ते हैं। परंतु वन विनास से कार्बन डाई ऑक्साईड गैस का अवशोषण न होने से वायुमण्डल में ऑक्सीजन का सांद्रण बढ़ रहा है। ऐसा अनुमान है कि वन विनास से 250 मिलियन टन से अधिक कार्बन की अतिरिक्त मात्रा भंडारित हो चुकी है।

संयुक्त राष्ट्र संघ ने इस समस्या को गंभीरता से लेते हुए महत्वपूर्ण कदम उठाए हैं। कुछ प्रमुख सम्मेलन इस प्रकार आयोजित हुए:-

- 1979 में संयुक्त राष्ट्र संघ ने पहला जलवायु सम्मेलन आयोजित किया। यह सम्मेलन विश्व मौसम संगठन और वैज्ञानिक संघों के संयुक्त प्रावधान में हुआ।
- 80 के दशक के उत्तरार्द्ध और 90 के दशक के पूर्वार्द्ध में कई सम्मेलन का आयोजन हुआ।
- 1992 रियो-डि-जिनेरो में पृथ्वी शिखर वार्ता में 164 देशों ने भाग लिया। यह निर्णय लिया गया कि 2000 तक ग्रीन हाउस गैसों को 90 के स्तर तक लाने की बात की गई।
- 1997 क्योटो सम्मेलन का आयोजन हुआ जिसमें ग्रीन हाउस गैसों में रोक लगाने हेतु कानून के दायरे में लाने का समझौता किया गया।
- 2007 इण्डोनेशिया के बाली शहर में ग्लोबल वार्मिंग के खिलाफ प्रभावी एवं दीर्घकालीन उपाय हेतु सहमति बनाई गई।
- 2003 कोपेन हेगन (डेनमार्क) सम्मेलन आयोजित हुआ।
- 2012 रियो-डि-जिनेरो में सम्मेलन रियो20 नाम से हुआ।
- 2013 पोलैण्ड तथा 2014 लीमा पेरू के सम्मेलन बेनतीजा रहे।

● दिसंबर 2015 फ्रंस (पेरिस) में आयोजित सम्मेलन में ग्लोबल वार्मिंग के गंभीर परिणाम से भविष्य में आने वाले धोर संकट की ओर इशारा किया गया। इस सम्मेलन में जलवायु परिवर्तन पर ऐतिहासिक समझौता हुआ। समझौते के तहत ग्लोबल वार्मिंग की सीमा को 2°C से नीचे रखकर जलवायु परिवर्तन के खतरे के प्रति वैश्विक प्रतिक्रियाओं को मजबूत करना और तापमान वृद्धि को 1.5°C तक सीमित करने के प्रयासों को आगे बढ़ाना है। विकसित देशों के द्वारा विकासशील देशों की मदद के लिए 2020 से प्रतिवर्ष 100 अरब डालर देने की प्रतिबद्धता व्यक्त करना शामिल है यद्यपि भारत ने 2009 में यह आश्वासन दे दिया था कि वह कार्बन डाई ऑक्साईड के उत्सर्जन में 20.25 प्रतिशत तक कटौती कटेगा। पेरिस समझौते के पूर्व विकसित राष्ट्रों ने कार्बन कटौती के मुद्दे पर अपना कड़ा रुख अपनाये रखा था। मानवीय दृष्टिकोण का परिचय न देते हुए विकसित राष्ट्रों द्वारा सशर्त यह बात रखी गई कि विकासशील देशों को भी कार्बन उत्सर्जन में कोई रियायत नहीं बरती जानी चाहिए। तभी विकसित देश इस समस्या में विचार कर पायेंगे। भारत जैसे विकासशील देशों का औद्योगिक स्तर एवं अर्थव्यवस्था कोयले पर आधारित है चूंकि विकसित देशों का औद्योगिक स्तर एवं अर्थव्यवस्था अपना वास्तविक स्वरूप धारण कर चुके हैं। किन्तु विकासशील देश इस पथ पर चलायमान हैं। और इस पथ की पूर्णता औद्योगिक गतिविधियों में सिमटी हुई है। किन्तु पेरिस समझौते के तहत विकसित और विकासशील देश दोनों ने अपनी सहमति जताई है।

● नवम्बर 2023 में 28वाँ संयुक्त राष्ट्र जलवायु परिवर्तन सम्मेलन दुबई संयुक्त अरब अमीरात में आयोजित हुआ। इस सम्मेलन में पेरिस समझौते में निर्धारित लक्ष्यों की दिशा में हुई प्रगति का आकलन कर कार्यवाही की रूपरेखा तैयार की गई है। मैं स्वयं इतिहास अध्येता हूँ। इतिहास विषय अतीत वर्तमान और भविष्य के मध्य एक कड़ी की भाँति कार्य करता है। वर्तमान में तेजी से बदलता हुआ भौगोलिक क्षेत्र का एक बेपरवाह इतिहास भी रहा है जो भविष्य की गंभीर भयावता की ओर इंगित करता है। वर्तमान में हो रहा जलवायु में परिवर्तन सकारात्मक कम नकारात्मक अधिक है। यह परिवर्तन पर्यावरण में असंतुलन का भयावह खतरा, भविष्य में भीषण विनाश और अनहोनी की ओर इशारा कर रहा है। आज हम प्रकृति से दूर भागते चले जा रहे और प्रकृति है कि हमें अपनी ममतामयी गोद में सिमटाए हुए है, पर हम उसमें सिमटकर उसके एहसास को पाना ही नहीं चाहते। इस विषय की ओर ध्यान आकर्षित कर भूगोल के गंभीर ऐतिहासिक परिवर्तन को प्रस्तुत करने का उद्देश्य है कि यह समस्या विषयवस्तु तक सीमित न होकर प्रत्येक व्यक्ति से संबंधित होते हुए सम्पूर्ण सृष्टि की है। इस खतरों से भरे बदलाव पर रोक लगाने हेतु विकसित और विकासशील देशों के आगे आने से पहले हर व्यक्ति की भागीदारी अनिवार्य है। तब जा कर इस संकट से छुटकारा पाया जा सकता है।

संदर्भ सूची:-

1. डॉ. संतोष कुमार, वैश्विक ऊष्मण व जलवायु परिवर्तन शाश्वत प्रकाशन, बिलासपुर (छ.ग.)
2. रविपी. अग्रहरि, पर्यावरणीय परिस्थितिकीय, जैव विविधता, जलवायु परिवर्तन एवं आपदा प्रबंधन, तृतीय संस्करण 2023, मेग्राहिल प्रकाशन।
3. डॉ कुलदीप फड़िया, अन्तर्राष्ट्रीय संगठन, प्रकाशन-साहित्य भवन, आगरा (उ.प्र.), श्याम सुंदर शर्मा, केंदार नाथ गोस्वामी, ग्लोबल वार्मिंग कारण और निराकरण, शिलालेख प्रकाशन दिल्ली।

# अयोध्या जनपद के ग्रामीण विकास में प्रधानमंत्री मुद्रा योजना का प्रभाव

ऋचा पाण्डेय

प्रो. आशुतोष सिन्हा

1. शोधार्थी, अर्थशास्त्र एवं ग्रामीण विकास विभाग, डॉ. राममनोहर लोहिया अवध विश्वविद्यालय, अयोध्या
2. शोध निर्देशक, अर्थशास्त्र एवं ग्रामीण विकास विभाग, डॉ. राममनोहर लोहिया अवध विश्वविद्यालय, अयोध्या

अयोध्या उत्तर प्रदेश की सांस्कृतिक राजधानी है। 2011 की जनगणना के अनुसार इसकी कुल आबादी 2,470,996 थी। साक्षरता दर 68.73 के साथ यह क्षेत्र कृषि बाहुल्य गंगा यमुना क्षेत्र के रूप में प्रसिद्ध रहा है। पारम्परिक रूप से यहां कृषि सम्बन्धी कार्यों के अलावा औद्योगिक क्रिया कलाओं का अभाव है। अतः प्रधानमंत्री मुद्रा योजना इस क्षेत्र के लिए एक वरदान है, जिसमें समाज के कमजोर और हाशिये पर पड़े हुए लोगों को मुख्य धारा में शामिल किया जा सकता है। यह योजना कम लागत के साथ रोजगार और अर्थ-व्यवस्था दोनों के लिए लाभकारी है। प्रधानमंत्री मुद्रा योजना सूक्ष्म छोटे और मध्यम उद्योग की सहायता के लिए एक प्रयास है यह स्कीम गैर कार्पोरेट, गैर कृषि क्षेत्रों और छोटे या अति छोटे व्यवसायों को दस लाख रुपये तक का लोन प्रदान करती हैं। इसके माध्यम से सड़क के किनारे वाले रोजगार से लेकर मध्यम स्तर के व्यवसाय को स्थापित किया जा सकता है, जिसमें स्वरोजगार के साथ-साथ अन्य व्यक्तियों के लिए रोजगार अर्जित किया जा सकता है। इस योजना का मुख्य उद्देश्य फंड या अनफंडेड है।

2019-20 के आंकड़ों के अनुसार प्रधानमंत्री मुद्रा योजना में लाभार्थियों को लाभ पहुंचाने के संदर्भ में फैजाबाद क्षेत्र लखनऊ जोन में पहले स्थान पर है। कुल 3554 ऋण एकाउंट के द्वारा 6822 लाख रुपये प्रधानमंत्री मुद्रा योजना के तहत लाभार्थियों को प्रदान किया गया है। इसके द्वारा लोगों के जीवन स्तर आय और रोजगार में वृद्धि दर्ज की गयी। ऋण उपलब्ध कराने वाले बैंकों में पंजाब नेशनल बैंक शीर्ष पर रहा जिसने 1162 लोन अकाउंट के द्वारा कार्यक्रम की सफलता में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन किया। दूसरे स्थान पर सेण्ट्रल बैंक ऑफ इण्डिया रहा जिसके द्वारा 730 लाभार्थियों को रोजगार पहुंचाया गया। निजी क्षेत्रों के बैंकों में एचडीएफसी बैंक 71 ऋण अकाउंट के साथ शीर्ष पर रहा है। इन ऋण अकाउंट के द्वारा 2025 तक पांच ट्रिलियन की अर्थव्यवस्था का लक्ष्य, आत्म निर्भर भारत, लोकल टू ग्लोबल के स्वप्न को पूरा करने में सहायता हासिल होगी। प्रधानमंत्री मुद्रा योजना निःसंदेह महात्मा गांधी के आत्म निर्भर भारत और ग्राम स्वराज की दिशा में महत्वपूर्ण कदम है।

सामान्य रूप में देखा जाय तो प्रधानमंत्री मुद्रा योजना की अयोध्या जनपद में क्या स्थिति है? इससे लाभान्वित लाभार्थियों की सामाजिक आर्थिक और जातिगत स्थिति क्या है? इसके माध्यम से स्वरोजगार में किस रूप में सहायता मिली? रोजगार सृजन में यह योजना कितनी सहायक रही? बैंकिंग व्यवस्था में इस योजना से क्या हासिल हुआ? आय वृद्धि एवं गरीबी उन्मूलन में इसकी क्या भूमिका रही? कार्यक्रम के क्रियान्वयन में बैंकों की भूमिका

कितना प्रभावी रही? यह सब विषय इस योजना प्रभाव की अवधारणाओं का प्रकाशन करता है। प्रधानमंत्री मुद्रा योजना का उद्देश्य अनफंड को फंड है। यह स्वरोजगार के लिए आसानी से ऋण देता है। साथ ही छोटे उद्यमों के जरिए रोजगार सृजन में मदद करता है। इसके अन्तर्गत शामिल तीन श्रेणियां "शिशु, किशोर और तरुण" लाभार्थियों के विकास में मदद करती हैं। इस योजना के तहत बिना गारण्टी के लोन मिलता है इसके अलावा लोन के लिए कोई प्रोसेसिंग चार्ज भी नहीं लिया जाता है। मुद्रा योजना में लोन चुकाने की अवधि को पांच साल तक बढ़ाया जा सकता है। लोन लेने वाले को एक मुद्रा कार्ड मिलता है जिसकी मदद से कारोबारी जरूरत पड़ने पर आने वाले खर्च को पूरा कर सकता है।

कामर्शियल वाहन ट्रैक्टर, ऑटोरिक्शा, ई-रिक्शा, तिपहिया आदि जैसे कामर्शियल वाहनों की खरीद। सर्विस सेक्टर की गतिविधियां-सैलून, जिम, टेलरिंग की दुकान, ड्राई-क्लीनिंग और फोटोकॉपी की दुकान। कृषि सम्बन्ध गतिविधियाँ जैसे- मतस्य पालन, मधुमक्खी पालन, डेयरी उद्योग, कृषि क्लीनिक, कृषि व्यवसाय केन्द्र आदि के लिए मुद्रा योजना का लाभ उठाया जा सकता है। भारत सरकार की महत्वाकांक्षी मुद्रा योजना उत्तर प्रदेश के अयोध्या जनपद में आर्थिक रूप से कमजोर और वंचित लोगों को स्वरोजगार उपलब्ध करवाने की दिशा में सफल सिद्ध हुई है। फिर भी इसमें अभी बहुत सुधारों की आवश्यकता है। सुधारोपरान्त इसे और अधिक प्रभावशाली बनाया जा सकता है।

भारत में केंद्र सरकार द्वारा दस लाख शिक्षित बेरोजगार युवाओं और महिलाओं को स्थायी स्वरोजगार के अवसर प्रदान करने के लिए प्रधान मंत्री रोजगार योजना की शुरुआत की गई थी। वर्तमान में यह योजना व्यापार, और सर्विस सेक्टर में अपना व्यापार शुरू करने के लिए लोगों को आर्थिक सहायता प्रदान करती है। लोगों को चाहिए कि वे पैसा बाजार से आसान व तेज प्रक्रिया के साथ न्यूनतम ब्याज दरों पर बिजनेस लोन लें तथा एक ही प्लेटफॉर्म पर कई बैंकों व एनबीएफसी के बिजनेस लोन ऑफर की तुलना करें और अपने लिए सबसे बेहतर चुनाव करें। अभी हाल के दिनों में वित्तीय समावेशन ने नये आयाम हासिल किये हैं। इसका एक उद्देश्य बैंकिंग सुविधा से वंचित और अल्प बैंकिंग सुविधा वाले लोगों को वित्तीय सेवाओं तक बेहतर पहुंच दिलाना है। बिना किसी भेदभाव के उपयोगकर्ताओं की विशिष्ट आवश्यकताओं को पूरा करने वाली वित्तीय सेवाओं की उपलब्धता वित्तीय समावेशन का एक प्रमुख उद्देश्य है।

वित्तीय समावेशन का व्यापक उद्देश्य औपचारिक वित्तीय प्रणाली

के माध्यम से गरीबों की जरूरतों को पूरा करना और उनके बीच एक मजबूत बचत और लेनदेन संस्कृति विकसित करना है। व्यापक अर्थ में व्यापक वित्तीय समावेशन का उद्देश्य अर्थव्यवस्था की वृद्धि और विकास के लिए सेवाओं के समग्र सेट को प्राप्त करने के लिए बैंकिंग सेवाओं की एक विस्तृत श्रृंखला की पेशकश करना है। वित्तीय समावेशन का मूल लक्ष्य प्रत्येक व्यक्ति को औपचारिक बैंकिंग प्रणाली में पूरी तरह से भाग लेने में सक्षम बनाना है, जिससे अंततः व्यक्तियों, वित्तीय संस्थानों को लाभ होगा जो व्यक्तियों और समग्र रूप से समाज की सेवा करते हैं। वित्तीय समावेशन गरीबों और वंचितों को बेहतर जीवन सुरक्षित करने का अवसर प्रदान करता है। वित्तीय समावेशन से देश की वित्तीय व्यवस्था मजबूत होती है। यह सबसे गरीब लोगों सहित सभी के लिए आर्थिक संसाधनों की उपलब्धता सुनिश्चित करता है। सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि यह ग्रामीण और शहरी दोनों क्षेत्रों में रहने वाले गरीब लोगों के बीच बचत की अवधारणा को मजबूत करता है। इस तरह यह अर्थव्यवस्था की प्रगति में योगदान देता है। किसी देश में एक कुशल वित्तीय प्रणाली अर्थव्यवस्था के सुचारु और कुशल संचालन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

वित्तीय समावेशन उत्पादक क्षमता में वृद्धि के माध्यम से आय सृजन करता है, विशेष रूप से गरीब और वंचित लोगों के बीच जिनके पास संपत्ति नहीं है और आय और गरीबी की असमानता को कम करता है और इस तरह समावेशी विकास को सुगम बनाता है और आर्थिक विकास को बढ़ावा देता है। वित्तीय समावेशन आय असमानता और गरीबी को कम करके सतत विकास लक्ष्यों (एसडीजी) को प्राप्त करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है।

पीएमएमवाई उद्यमिता विकास और स्वरोजगार सृजन के लिए एक बहुत अच्छी योजना हो सकती है। लेकिन डेटा विश्लेषण से पता चलता है कि नए उद्यमियों के लिए ऋण वितरण में कोई उल्लेखनीय वृद्धि नहीं हुई है। साथ ही यह भी पता चलता है कि कई ऐसे इच्छुक हैं जो नए उद्यमी हैं और मुद्रा ऋण का लाभ उठाना चाहते थे, लेकिन व्यवसाय अस्तित्व, जीएसटी से संबंधित दस्तावेज जैसे कुछ दस्तावेज जमा न कर पाने के कारण इसका लाभ नहीं उठा सके। इसलिए जब तक नए उद्यमियों के लिए ऋण वितरण महत्वपूर्ण नहीं होगा या नए उद्यमी मुद्रा योजना के दायरे में नहीं आएंगे, तब तक पीएमएमवाई का उद्देश्य पूरा नहीं होगा।

इससे यह भी पता चलता है कि मुद्रा ऋण की तीनों श्रेणियों यानी शिशु, किशोर और तरुण को ध्यान में रखते हुए महिला वर्ग के लिए ऋण वितरण में कोई उल्लेखनीय वृद्धि नहीं हुई है। इसके अलावा बैंक प्रबंधक भी बढ़ती गैर निष्पादित संपत्तियों (एनपीए) के कारण योजना को लेकर संशय में हैं। इस अध्ययन के प्राथमिक डेटा विश्लेषण से पता चलता है कि लगभग 86 : उत्तरदाताओं का मानना है कि कोविड 19 महामारी ने मुद्रा ऋण के पुनर्भुगतान को प्रभावित किया है और लगभग 63 : उत्तरदाता इस योजना से संतुष्ट नहीं हैं। पीएमजेडीवाई बिना बैंक खाते वाले लोगों के लिए बैंक खाते खोलने में बहुत सफल रही है। यह कोविड 19 महामारी के दौरान प्रत्यक्ष लाभ हस्तांतरण (डीबीटी) के लिए भी बहुत फायदेमंद रही। कोविड 19 महामारी के दौरान अब तक ऑनलाइन भुगतान के लिए इस खाते से विक्रेताओं को भी लाभ हुआ। वर्तमान समय में अयोध्या जनपद के ग्रामीण क्षेत्र में सार्वजनिक रूप से जबतक लोग बैंकिंग आदत के लाभ को नहीं समझेंगे और बैंकिंग गतिविधियाँ शुरू नहीं करेंगे, तब तक सही मायने में पूर्ण रूपेण वित्तीय

समावेशन नहीं हो सकेगा। और उनके सर्वांगीण विकास की महत्वाकांक्षी योजना अधूरी ही रह जायेगी।

संदर्भ सूची :-

1. Rangarajan,C.(2008) Report of the Committee on Financial Inclusion. Ministry of Finance, Government of India. <https://www.datatopics.worldbank.org/g20fidata/>
2. <https://www.gpfi.org/publications/g20-high-level-principles-digital-financialinclusion>
3. <https://www.india.gov.in/sukanya-samridhi-yojna>
4. <https://www.mudra.org.in/>  
<https://www.oxfam.org/en/india-extremeinequality-Numbers>
5. <https://www.oxfamindia.org/knowledgehub/workingpaper/davos-2020-timetocare>
6. <https://www.pib.gov.in/PressReleasePage.aspx?PRID=1854909>
7. <https://www.pmjdy.gov.in/>
8. <https://www.rbi.org.in/scripts/NotificationUser.aspx?Id=2615&Mode=0>
9. <https://www.startupindia.gov.in/content/sih/en/government-schemes/stand-upindia>
10. <https://www.startupindia.gov.in/content/sih/en/government-schemes/venturecapitalscheme>
11. <https://www.worldbank.org/en/topic/financialinclusion/brief/achieving-universalfinancialaccess-by-2020>
12. <https://www.worldbank.org/en/topic/financialinclusion/publication/digital-financialinclusion>
13. Mumukshu, Mumukshu Charitable Trust, Guwanv (Palipatti), Post- Chandpur, tanda, Ambedkarnagar (U.P.)  
[www.maniramverma.com](http://www.maniramverma.com)

# स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कहानी में भारतीय मुस्लिम समाज में स्त्रियों की दशा और दिशा

श्वेता शर्मा

डॉ. मृदुला सिंह

1. शोधार्थी, संत गहिरा गुरु विश्वविद्यालय, अम्बिकापुर
2. शोध निर्देशक, सहायक प्राध्यापक एवं विभागाध्यक्ष, हिन्दी विभाग, होली क्रॉस वीमेंस कॉलेज, अम्बिकापुर

शोध सारांश:-स्वातंत्र्योत्तर काल की परिस्थितियों, विभिन्न सामाजिक, राजनीतिक आंदोलन, नारी मुक्ति आंदोलन आदि कारणों से समकालीन समाज व्यवस्था में परिवर्तन आया है। इन परिवर्तनों के कारण नारी, उसके जीवन एवं उससे संबंधित दृष्टिकोण में भी बदलाव आया है। इसके फलस्वरूप नारी में नए आत्मविश्वास का विकास हुआ और उससे संबंधित मान्यताएँ भी बदलने लगीं। समाज में पुरुष की तुलना में नारी अधिक परम्परावादी होती है। समाज भी उसके इसी रूप को प्रोत्साहन एवं महत्व प्रदान करता है। नारी परम्पराओं, सिद्धांतों और नियमों की बेड़ी में बंधी है। वह आज भी पुरुष की आश्रिता ही रह गयी। प्रश्न उठता है कि शिक्षा की कमी, बेरोजगारी, पर्दा, पिछड़ापन, तलाक, तथा अन्य बहुत सी कमियाँ भारतीय मुस्लिम समाज में इतने वर्षों के बाद दूर हो गयी तो फिर मुस्लिम स्त्रियों की स्थिति आज भी एक प्रश्न चिन्ह क्यों है? परिवार की इज्जत, माँ-बाप की इज्जत, नैतिकता एवं आदर्शों की भारी भरकम बोझ ढोने वाली स्त्री अपनी आंखे खोलना ही नहीं चाहती और पुरुष प्रधान समाज गरिमा, प्रतिष्ठा, मर्यादा के लबादे डालकर पुरुष स्वार्थ सिद्ध करने वाले पक्षों का सहारा लेकर उसके पर कतरता रहता है।

**बीज शब्द:-** भारतीय मुस्लिम समाज, मुस्लिम स्त्री, सामाजिक और आर्थिक परिस्थितियाँ, शिक्षा, तलाक, बहु-विवाह, विधवा, वेश्या, तलाकशुदा स्त्री समस्याएं, पितृसत्तात्मक व्यवस्था।

**प्रस्तावना:-** विश्व सभ्यता का इतिहास साक्षी है कि विश्व में पुरुष की अपेक्षा नारी को जानने पहचानने एवं विश्लेषित करने का कार्य अधिक हुआ है। संभवतः उसका एक कारण यह है कि विश्व की लगभग सभी प्रणाली है, जिसमें पुरुष के लिए नारी रहस्यमयी रहती है। साथ ही नारी भी अपने पुरुष से अलग करके नहीं देख पाती उसके व्यक्तित्व के विकास एवं निर्धारण में पुरुष का महत्वपूर्ण योगदान रहता है। पितृ-सत्तात्मक प्रणाली में नारी की आर्थिक पराधीनता भी उसे स्वाधीन नहीं होने देती। वह कन्या रूप में पिता, पत्नी रूप में पति, और माँ रूप में पुत्र पर निर्भर रहती है। यह नारी जीवन परंपरागत बाह्य प्रकृति है। स्वातंत्र्योत्तर काल की परिस्थितियों, विभिन्न सामाजिक, राजनीतिक आंदोलन, नारी मुक्ति आंदोलन आदि कारणों से समकालीन समाज व्यवस्था में परिवर्तन आया है। इन परिवर्तनों के कारण नारी, उसके जीवन एवं उससे संबंधित दृष्टिकोण में भी बदलाव आया है। इसके फलस्वरूप नारी में नए आत्मविश्वास का विकास हुआ और उससे संबंधित मान्यताएँ भी बदलने लगीं। इन परिवर्तनों का परिणाम साहित्य में भी हुआ परिणामस्वरूप नारी का नया रूप

कथा लेखन में उभरने लगा। किसी भी समाज के वर्तमान स्वरूप के निर्धारण में परम्पराओं का महत्वपूर्ण योगदान होता है। परम्पराओं के प्रवाह से ही वर्तमान का स्वरूप निर्धारित होता है। वर्तमान निर्धारण में परम्पराओं का महत्वपूर्ण योगदान होने के बावजूद भी कहीं-कहीं उनका विरोध होता है। यही समर्थन और द्वन्द्व समाज के विकास में सहायक होता है। समाज में पुरुष की तुलना में नारी अधिक परम्परावादी होती है। सामाजिक परिस्थित, सीमित जीवन क्षेत्र और प्राचीन जीवन शैली के कारण वह अधिक परम्परावादी बनती है। समाज भी उसके इसी रूप को प्रोत्साहन एवं महत्व प्रदान करता है। डॉ. रजवार कहती हैं, 'भारतीय संस्कृति में पतिव्रता और पति का अनुगमन करने वाली नारी को पूज्य माना गया है। पतिव्रत का पावन दीप्ति नाम से अभिहित किया है। आज भी संस्कृति की दुहाई देने वाला वर्ग उसके इसी रूप को देखता है।'।

स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कहानियों में कई लेखकों के द्वारा मुस्लिम समाज में स्त्री पात्र को केन्द्र में रखकर कई कहानियाँ सामने आयी जिसमें गीतांजली श्री द्वारा लिखी गयी कहानी 'बेलपत्र' जिसमें 'फातिमा' स्त्री पात्र के माध्यम से उन्होंने स्त्री के स्वाभाविक गुण को दर्शाया है जिसमें स्त्री की भावुकता, प्यार में निर्णय लेने की क्षमता पुरुष से अधिक होती है, परन्तु शादी के बाद की परिस्थितियों में उसे मायके की याद का यथार्थवादी चित्रण सामने लाते हैं वह अपने अस्तित्व की खोज ससुराल में खोज पाने में असमर्थ होती है, साथ ही अन्य धर्म में शादी कने से किस प्रकार के मानसिक परेशानियों का सामना करना पड़ता है, उसे दर्शाया गया है। किस प्रकार आपसी रिश्तों के बीच अपने-अपने धर्म की दीवार खड़ी हो जाती है और रिश्तों में कड़वाहट उत्पन्न हो जाती है इन समस्याओं को 'फातिमा' स्त्री पात्र के माध्यम से लेखक ने उभारने की कोशिश की है। असगर बजाहट की लेखनी महिला के प्रति होने वाली अवमूल्य की समस्या जो मर्मस्पर्शी है, विचारणीय है कि उन्होंने स्त्री को किसी संप्रदाय के तहत रखकर आज आंका नहीं, बल्कि सामाजिक प्राणी होने के नाते उसके ऊपर होने वाले अत्याचारों एवं अन्याय के खिलाफ विद्रोह किया है। उनकी कहानी 'ड्रेन' में रहने वाली लड़कियाँ में उन्होंने 'सरला' पात्र के माध्यम से समाज की लड़कियों के प्रति सोच को दर्शाया है जिसमें यह समाज जहां बेटी को जन्म देने के अपराध में माँ-बाप का दंड स्वरूप देहे देना ही अनिवार्य होता है। स्त्री, विवाह के बाद भी पुरुष वर्ग से शोषित होती है जब वह बार-बार बेटियों को जन्म देने पर उसकी गलती को भी एक स्त्री पर ही ठहराया जाता है। इस कहानी में सरला पात्र से लेखक ने स्त्री की दारुण संकटों का मर्मस्पर्शी चित्र चाहे सरला जैसी कई स्त्री, बेटियों के लिए भारत में आज भी दुखित होकर

अपना प्राण त्याग किया हुआ निदर्शन मिलता है।<sup>3</sup> समकालीन हिन्दी कथाकारों में 'संजीव' की कहानी 'फैसला' जो इस्लाम धर्म की तलाक संबंधी उलझनों पर प्रकाश डालती है। अहमद अपनी पत्नी मुसन्नी को गुस्से में तलाक देता है। यह मामला पंचायत से अदालत पहुंचता है। फैसला सुनाने वाली जज मेहरुनिस्सा के सामने समस्या खड़ी हो जाती है। इस कहानी में तलाक जैसी पेचिदा समस्या पर एक स्त्री की आंतरिक छटपटाहट और पुरुष वर्ग की धर्म की आड़ में की जाने वाली स्वार्थ और चलाकी स्पष्ट होती दिखाई देती है। नासिरा शर्मा की 'दिलआरा' कहानी, एक विधवा 'साजदा बेगम की कहानी है, जिनके शौहर का इन्तकाल होने के बाद जो इस संसार में एकदम अकेली रह गई है, उनके कोई बाल-बच्चा नहीं है। साजदा बेगम मुस्लिम लड़कियों के लिए मददरसा खोल देती है तथा मुस्लिम कानून व इस्लाम में स्त्रियों को क्या-क्या अधिकार मिले हुए हैं बताती है, लेकिन मौलवी साहब को ये सब पंसद नहीं आता और वे कहते हैं कि साजदा बेगम लड़कियों को उकसाती है। इसमें लेखक ने मुस्लिम वर्ग में शिक्षा की दुर्दशा को दिखाती ये कहानी स्त्री की पूर्ण रूप से स्वतंत्रता न होने की स्थिति को दर्शाया है।<sup>4</sup> नासिरा शर्मा की 'दूसरा कबूतर' कहानी के माध्यम से उन्होंने मुस्लिम समाज में बहु-विवाह की प्रथा को दर्शाया है जिसमें एक पत्नी होते हुए भी पति दूसरा विवाह करता है, तथा दोनों पत्नियों को इस बात से बेखबर रखता है अंत में दोनों पत्नियाँ उसे तलाक ले लेती हैं। लेखिका प्रश्न उठाती है कि मुस्लिम समाज में पुरुष को तो चार शादियाँ करने का अधिकार मिला हुआ है परन्तु स्त्रियों को आज भी यह अधिकार नहीं मिला हुआ है, यदि किसी मुस्लिम स्त्री का पति मर जाता है तो यदि वह दूसरा विवाह करना चाहे तो भी समाज के डर के कारण नहीं कर पाती है, इस मामले में उसे कोई आजादी नहीं है।<sup>5</sup>

नासिरा शर्मा की 'बचाव' कहानी में 'बदली' एक ऐसी स्त्री का चित्रण है, जिसका पति दिमागी बुखार होने की वजह से मर गया है। 'बदली' अपने घर वापस लौट आती है। तथा जिस वकील ने 'बदली' का केस लड़ा था उस वकील के बड़े भाई आरिफ से बदली का दूसरा विवाह कर दिया जाता है, और उसका जीवन फिर से शुरू होता है। वही उनकी एक और कहानी 'तलाक' में 'हाजरा' स्त्री पात्र के माध्यम से वह तलाक की समस्या को उठाती हैं। नासिरा शर्मा की कहानी 'शामी कागज' कहानी की नायिका है 'पाशा' जो एक विधवा स्त्री का चित्रण है। पाशा एक प्रेमिका है। '.....मोहसिन के साथ पाशा का तीन साल रोमान्स रहा...' और उसी से विवाह भी किया था। उसने जीवन में केवल मोहसिन से प्रेम किया था। उसकी मृत्यु के पश्चात् पूरा जीवन उसकी याद में काटना चाहती है। मोहसिन का स्थान वह किसी को भी नहीं दे पाती। बिते लम्हों के पाबंद वर्तमान में लगाकर जीने का प्रयास करती है। लेखिका ने इस कहानी के माध्यम से एक स्त्री में माँ बनने की लालसा को दर्शाया है जब पाशा कहती है- 'मैं तुमको, तुम्हारे अंश को अपने में डूबता, अपने में खिलता देखना चाहती थी, तुम्हें दूसरा जन्म देना चाहती थी।'<sup>6</sup> नासिरा शर्मा की एक और कहानी संग्रह 'संगसार' की कहानी 'दरवाज-ए-कजविन' की 'मरियम' स्त्री पात्र में वेश्या के रूप को दिखाया है। जिसमें एक घरेलु युवती जो अपने बचपन के मित्र के साथ विवाह करना एक खुले विचारों वाली लड़की का चरित्र दिखाया है। जिसमें माजिद के साथ विदाई एक वर्ष बाद होने के बावजूद वह माजिद से शारीरिक संबंध बना लेती है। परंतु सास को मरियम पर शक होता है कि उसकी बहु कुँवारी न थी और वह इसी कारण परंपरानुसार वह सबको बुलाकर यह दुखड़ा सुनाती है। पति यह जानते हुए भी कि मरियम अकेली दोषी नहीं है, वह मुँह छिपाए बैठा रहता है। सास और पति का व्यवहार देखकर वह स्तब्ध रह जाती है और वह समाज को मुँह दिखाने योग्य नहीं रहती। अतः वह घर त्यागने के लिए विवश हो जाती है और परिस्थितिवश वह रास्ता भटक कर एक वेश्या

घर में शरण लेती है। जहां इच्छा न होते हुए भी जीविका के लिए उसे उस क्षेत्र में उतरना पड़ता है। मरियम इस पेशे में होते हुए भी जोगनसी थी। उसे जीवन से में कोई लगन, कोई आशा न थी। 'ऐसी कोई खलिश मरियम के दिल में न थी बल्कि कुछ भा भी तो एक जखम था जो जब-तब रिसता रहता था।'<sup>7</sup>

अनवर सुहैल की 'नसीबन' कहानी में 'नसीबन' नाम की स्त्री पात्र है जो तलाकशुदा औरत की कहानी है जिसमें उसको सामाजिक रूप से प्रताड़ित किया जाता है। यह कहानी उसकी संघर्ष की कहानी है। 'नसीबन' का तलाक इस आधार पर होता है क्योंकि उस पर बच्चा न पैदा करने का आरोप लगाया जाता है उसे बाँझ तक कहा जाता है। सास उसे बार-बार उलाहना देती हुई कहती है- 'ओलाद के लिए कुछ न कुछ गंवाना तो होगा ही। ऐसे रोने-धोने से कोई फायदा नहीं तू बाँझ है समझी। अब तो जुम्न के लिए घर में एक नहीं बहु लाना है बस'<sup>8</sup> 'नसीबन लड़ती- 'आपके बेटे से कुछ भी न हो पाएगा, वह बच्चा पैदा करने लायक तो क्या किसी औरत के लायक नहीं।'<sup>9</sup> लेखक इस कहानी में नसीबन के माध्यम से चली आ रही परंपरा का विरोध करवाता है। और बदलें में अपने पति को ही तलाक दे देती है। अनवर सुहैल की दूसरी कहानी 'मैं फोटो नहीं खिंचवाऊँगी' कहानी में 'शीरी' स्त्री पात्र के माध्यम से शादी के लिए नुमाइश के तौर पर दिखाने की परम्परा का विरोध करते दिखाया है। सलाम बिन रजाक की कहानी 'कोहरा' में जमीला स्त्री पात्र के माध्यम से मुस्लिम समाज में स्त्रियों की सामाजिक एवं पारिवारिक दशा को चित्रित किया है। इस पुरुष प्रधान समाज में स्त्री को सिर्फ परिवार संभालने एवं बच्चों पैदा करने का साधन समझा जाता है घर की बड़ी लड़की 'जमीला' पर पिता के होते हुए भी घर संभालने की जिम्मेदारी आ पड़ती है तो वह अपने जीवन की खुशियों को भी न्यौछावर करते से नहीं रोकती। मुस्लिम समाज में शिक्षा के प्रति नजरिया बहुत कमजोर नजर आता है। घर की आर्थिक स्थिति खराब होते देख जमीला ने नौकरी करने की ठानी और परिवार को आगे बढ़ाया। इस कहानी में लेखक ने कमाऊ लड़की की समस्या को भी दर्शाया है जब उसकी शादी की बात उठती है तब घर वाले इसलिए भी जल्दी हामी नहीं भरते अगर उसकी शादी हो गई तो फिर घर का खर्च कौन उठायेगा।<sup>10</sup> मेहरुनिस्सा परवेज की कहानी संग्रह 'मेरी बस्तर की कहानियाँ' में उनकी कहानी 'सीढ़ियों का ठेका' कहानी की स्त्री पात्र 'करीमन' एक नानी के रूप के माध्यम से बड़े-बुजुर्गों और पति द्वारा पीड़ा की समस्या को दिखाया है। जिसमें करीमन नानी मस्जिद की सीढ़ियों पर बैठकर भीख मांगती है। खुशिया मानो नानी को कभी मिली ही नहीं आने बीते दिनों को याद करके नानी स्तब्ध हो जाती है। करीमन के मन को जैसे कोई कुरेद गया। उसने तो आदमी के सुख का सिवाय लात-चुँसों के जाना ही नहीं। करीमन को पति सुख कभी मिला ही नहीं जब तक पति जिंदा था हमेशा उसे प्रताड़ित किया करता गोद में बच्ची लिए करीमन ने जैसे तैसे अपनी जिन्दगी व्यतीत की पहली रात से ही उसे डरा कर रखा था- 'देखा, बीवी, कुतिया की जात होती है, खाई और घर की रखवाली करती पड़ी रही, ज्यादा चूँ-चपड़ की तो पूरी बत्तीसी झाड़ू दूँगा।'<sup>11</sup> मेहरुनिस्सा परवेज की कहानी 'नंगी टहनियाँ' नेरेटर में एक उपेक्षित नारी का चित्रण मिलता है। नंगी टहनियाँ एक ऐसी कहानी है जिनमें एक अपाहिज पत्नी का रूप देखने मिलता है। वह अपनों के बीच रहकर भी अकेलेपन की यातना भोगती है। वह अपने बच्चे पति तक ने उसे एक अपाहिज व्यक्ति मान लिया था। वह परिवार की इस तरह की अवहेलना को देखकर दुखी होती है। जैतुन के अब्बा कहते ही थे 'तू कहां मरेगी सबको कब्रिस्तान भेजकर बाद में चैन की बंसी बजाएगी।'<sup>12</sup> बच्चों, उसे आश्रय होता है, क्या इन्हीं साँप के बच्चों को उसने जन्मा था? बच्चे भूल चूके थे कि वह उनकी जन्म देने वाली माँ है। बस वे जानते थे कि एक अपंग अघेड़ औरत उनके घर में पड़ी रहती है। यह अपमान, यह पीड़ा उनके नारी मन को हर पल चुभोता, टीसता, कुरेदता था। 13 एक

अपाहिज औरत की उनके पति द्वारा कितनी दुर्गती की जाती है इसका चित्रण इस कहानी के माध्यम से किया है। हुस्र तबस्सुम निहाँ ने अपनी कहानी 'ये डूबना साहिलों पे' इस कहानी में नसीमा और सुगरा चरित्र के माध्यम से लड़कियों के अंतर्मन को बहुत मार्मिक ढंग से उकेरा है। नसीमा और सुगरा दोनों बहनें हैं, दोनों ही पढ़ी-लिखी और होशियार लेकिन लड़कियों की होशियारी सिर्फ घर तक ही सीमित होती है। 'क्या मालूम कब ये लड़कियाँ नाक कटवा दें...क्या बीत रही होगी शरीफ़ मियाँ पर दरवाजे पर बारात आनी है और दुल्हन लापता...या अल्लाह...भई रज्जब अब इन दोनों को भी जल्दी से निपटा ही दो...इज्जत से चली जाएँ वही बेहतर है।' <sup>14</sup> मानों शादी न होकर उनका अंतिम संस्कार हो जो निबटा देने पर जान छूटे उन्हें भी अपने निर्णय स्वयं लेने का अधिकार है क्या अपनी इच्छानुसार अपने वर का चुनाव नहीं कर सकती 'कहानी में लेखक ने हमारी परिवारिक एवं सामाजिक सोच पर प्रश्न चिन्ह उठाया है। लेखक लिखता है लड़कियाँ कोई बेजान चीज नहीं जिसे जहां चाहा उठाकर रख दिया। हुस्र तबस्सुम निहाँ ने अपनी कहानी 'नीले पंखों वाली लड़कियाँ' में 'राजिया' चरित्र के माध्यम से लड़कियों की आजादी को दर्शाया है। आज की वर्तमान युवा पीढ़ी के विचारों को सामने रखते हुए आज की दूसरों के विचारों का थोपना, धर्म, जाति के बंधन से मुक्ति, रिति-रिवाज, परंपराओं को तौडना, उन पर प्रश्न-चिन्ह उठाना, जैसी आज की समस्याओं को सामने रखा है कि किसी प्रकार आज का माध्यम वर्गीय परिवार आज के युवा पीढ़ी की इस समझ को हर दूसरे घर में ये समस्याएं उत्पन्न हो रही हैं। जिससे हर माँ-बाप के सामने इन प्रश्न से ऊपर उठकर कैसे उनके सवालों को हल कर पाये। राजिया के माध्यम से लेखक कहता है 'राजिया का मानना है कि घरवालों की जोर जबदस्ती से शादी करना ठीक नहीं हम जिस व्यक्ति से प्रेम करते हैं शादी भी उसी से करनी चाहिए। मगर ये क्यों.....? ये कैसी कैद.... ये कैसी बंदिश....कैसी रिवायते....किस धर्म ने कहा कि विवाह अपने ही धर्म और अपनी ही जाति में करो....किस किताब में लिखा है कि अंसारी में ही जाए....या मुसलमान मुसलमान में ही, और हिन्दू-हिन्दू में....रानी अलबता कुते की मौत मरी मगर उसके अब्बू को राह मिली...मगर इस राहत का मतलब?' <sup>15</sup> एक जगह लेखक ने सभी परंपराओं, रिति-रिवाज के बंधनों लड़की पर ही थोपने पर प्रश्न-चिन्ह उठाया है।

अब्दुल बिरिस्मल्ला की कहानी 'तलाक के बाद' में साबिरा पात्र के माध्यम से लेखन ने मुस्लिम समाज में एक मध्यमवर्गीय समाज की बेटी का चित्रण किया है। जिसमें लड़कियों की इच्छा का कोई मूल्य नहीं। उसका तलाक उसकी इच्छा पूछे बगैर करके उसका दूसरा विवाह की सलाह देते हैं। घर में पुरुष सत्तात्मक रूप को भी दिखाया गया है जिसमें वे लिखते हैं 'उस दिन 'मीलाद' टालने की बात को लेकर रज्जब भाई ने तो साफ़कर दिया था, 'मैं घर का मालिक हूँ, जो मैं चाहूँगा वह होगा। साबिरा को इसमें दखल देने की क्या जरूरत?' कानून के हिसाब से तो साबिरा का भी उसके अब्बा के घर पर पूरा हक था लेकिन साबिरा को लगा कि जब उसके पति शौहर पर उसका कोई एक नहीं चला तो क्या हक जलाए।' <sup>16</sup> इस कहानी में एक आदर्श बेटी के साथ पवित्र पत्नी का रूप देखने को भी मिलता है। अब्दुल बिरिस्मल्ला की कहानी 'कागज के कारतूस' में नज्मा और फातमा निम्न मुस्लिम वर्गीय परिवार के दृश्य को दिखाती पात्र हैं। निम्नमध्यमवर्गीय परिवार में जिस तरह बेटियाँ अपने परिवार के साथ खुद के खर्चे उठाने से लेकर अपने विवाह के लिए पैसे जमा करती हैं वही दृश्य इस कहानी में भी नजर आता है। 'नज्मा और फातेमा के हाथ चल रहे हैं। अविरल-अविरामगति से वे काग पीट रही हैं। काग नहीं, अपना वर्तमान पीट रही हैं। वर्तमान पीटकर शायद भविष्य बना रही हैं। अम्मा ने साफ़कर दिया है कि अपने-अपने दहेज का इन्तेजाम अभी से करते रहे। खाली वक्त में वे अपने

दहेज के लिए तकियों के गिलाफ़ और रूमाल काढ़ती हैं, हाल के पंखे बनाती हैं, टी कोजी बुनती हैं.... और इस प्रकार दो लड़कियाँ अपनी और अपने घरवालों की जिंदगी को कोई अर्थ देने के लिए खुद को बुरी तरह खर्च कर रही हैं।' <sup>17</sup>

**निष्कर्ष:** शोध द्वारा यह साबित हुआ है कि भारतीय समाज में स्त्रियों के चित्रण में हमें आज भी मुस्लिम महिला अपने अधिकारों के लिए लड़ रही है, खास कर निम्नवर्ग और मध्यमवर्गीय मुस्लिम स्त्रियाँ अपने मूलभूत अधिकारों से परिचित भी नहीं हैं, और जो हैं वे परंपराओं के नाम पर दबी हुई हैं। आज भी स्त्रियाँ इस पितृसत्तात्मक व्यवस्था में फंसी हुई हैं 'माँ के कदमों के नीचे जन्नत है, वहां स्त्री अपने अस्तित्व के लिए आज भी संघर्षरत है'। आज भी स्त्री तलाक, घर की जिम्मेदारी, दहेज, स्त्री के प्रति विभिन्न रूपों में समाज का नजरिया, चरित्रिक हनन जैसी समस्याओं से आज भी लड़ रही है। देखा जाए तो स्त्री को अपने हक की लड़ाई अपने परिवार से ही शुरू करनी पड़ती है। उसे आज भी संस्कृति एवं परम्पराओं के नाम पर पीछे ढकेलने की कोशिश होती है।

#### संदर्भ सूची:-

1. स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कथा साहित्य में नारी के बदलते संदर्भ-पृ.20
2. गीतांजलि श्री-संकलन, प्रतिनिधि कहानियाँ, कहानी- 'बेल पत्र' प्रकाशन-राजकमल पेपरबैक्स,इलाहाबाद
3. असगर वज़ाहत, कहानी संग्रह डेमोक्रेसिया कहानी 'ड्रेन' में रहनेवाली लड़कियाँ, राजकमल प्रकाशन
4. नासिरा शर्मा कहानी संग्रह- 'खुदा की वापसी', कहानी 'दिलआरा' प्रकाशन -वाणी प्रकाशन
5. नासिरा शर्मा कहानी संग्रह- 'खुदा की वापसी', कहानी 'दूसरा कबूतर' प्रकाशन -वाणी प्रकाशन
6. नासिरा शर्मा कहानी संग्रह-शामी कागज़, कहानी पतझड़ के फूल, पृ088
7. नासिरा शर्मा कहानी संग्रह- संगसार, कहानी अखिरी पहर से, पृ0173
8. जिनित सबा- 'अल्पसंख्यक विमर्श और अनवर सुहेल का साहित्य' पृ097
9. अनवर सुहेल- कहानी संग्रह-ग्यारह सितंबर के बाद-कहानी नसीबन' पृ50-51
10. सलाम बिन रज़ाक-कोहरा,कथाबिंब प्रत्रिका-जनवरी-मार्च 2005 अंक,पृ.क्र.21
11. मेहरुन्निसा परवेज, मेरी बस्तर की कहानियाँ, कहानी 'सीढ़ियों का टेका', वाणी प्रकाशन पृ043
12. मेहरुन्निसा परवेज, मेरी बस्तर की कहानियाँ, कहानी 'नंगी टहनियाँ' पृ0197
13. मेहरुन्निसा परवेज, मेरी बस्तर की कहानियाँ, कहानी 'नंगी टहनियाँ' पृ0201
14. हुस्र तबस्सुम निहां-कहानी संग्रह-नीले पंखों वाली लड़कियाँ, कहानी 'ये डूबना साहिलों पे', पृ033
15. हुस्र तबस्सुम निहां-कहानी संग्रह-नीले पंखों वाली लड़कियाँ, पृ022
16. अब्दुल बिरिस्मल्ला-मेरी प्रिय कहानियाँ, कहानी 'तलाक के बाद' पृ021
17. अब्दुल बिरिस्मल्ला-कहानी संग्रह- 'रेनबसेरा', कहानी 'कागज के कारतूस, वाणी प्रकाशन' पृ066

# हिंदी उपन्यासों में मजदूर वर्ग के संघर्ष का चित्रण

प्रिंस कुमार

शोधार्थी, हिंदी विभाग, भूपेंद्र नारायण मंडल विश्वविद्यालय, लालू नगर, मधेपुर, बिहार

**प्रस्तावना:-** हिंदी साहित्य, विशेषतः उपन्यास ने समाज के विभिन्न वर्गों और उनके संघर्षों को उजागर करने में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। यह साहित्य समाज का दर्पण है तो वहीं यह सामाजिक परिवर्तन का माध्यम भी है। भारत जैसे देश में, जहाँ वर्ग संघर्ष, आर्थिक विषमता, और सामाजिक असमानता सदियों से विद्यमान हैं, साहित्य ने इन समस्याओं को समझने और उनके समाधान की दिशा में विचार करने का अवसर प्रदान किया है। हिंदी उपन्यासों में मजदूर वर्ग के संघर्ष का चित्रण इसी प्रयास का एक अभिन्न हिस्सा है। मजदूर वर्ग, जो समाज का एक महत्वपूर्ण आधार है, अपनी मेहनत और श्रम के माध्यम से समाज की संरचना को बनाए रखता है। फिर भी, यह वर्ग अक्सर उपेक्षित और शोषित रहता है। उन्हें न केवल आर्थिक शोषण का सामना करना पड़ता है, बल्कि सामाजिक और सांस्कृतिक स्तर पर भी उनके अधिकारों का हनन होता है। हिंदी उपन्यासों में मजदूर वर्ग के इस संघर्ष को समझने और चित्रित करने का प्रयास किया गया है। इन उपन्यासों ने मजदूरों के श्रम, उनके जीवन की कठिनाइयों, और उनके अधिकारों के लिए संघर्ष को केंद्र में रखा है। मुख्य रूप से स्वतंत्रता संग्राम और स्वतंत्रता के बाद के कालखंड में, बीसवीं सदी के हिंदी उपन्यासों में मजदूर वर्ग के संघर्ष को प्रमुखता से प्रस्तुत किया गया है। प्रेमचंद ने मजदूरों और किसानों के जीवन की सच्चाई को अपने यथार्थवादी दृष्टिकोण के माध्यम से अपने उपन्यासों में उकेरा। गोदान और रंगभूमि जैसे उपन्यास इस बात के प्रमाण हैं कि साहित्य किस प्रकार समाज के उस हिस्से की आवाज बन सकता है, जो खुद अपनी बात कहने में असमर्थ है। स्वतंत्रता के बाद, मजदूर वर्ग की स्थिति में स्वतंत्रता के बाद भारतीय समाज में औद्योगीकरण और शहरीकरण के चलते कुछ परिवर्तन आये। इस समय के उपन्यासों ने केवल मजदूर वर्ग की आर्थिक समस्याओं को नहीं, बल्कि उनके सांस्कृतिक और सामाजिक संघर्षों को भी प्रस्तुत किया। यशपाल, भीष्म साहनी, अमरकांत, और फणीश्वरनाथ रेणु जैसे साहित्यकारों ने अपने उपन्यासों में यह दिखाया कि मजदूर वर्ग किस प्रकार अपने अधिकारों के लिए जागरूक हो रहा है और सामाजिक न्याय की माँग कर रहा है। मजदूर वर्ग का संघर्ष आर्थिक स्थिति तक ही सीमित नहीं है, बल्कि यह आत्मसम्मान, उनके अधिकारों, और अस्तित्व की लड़ाई है। हिंदी उपन्यासों ने इस संघर्ष को एक व्यापक दृष्टिकोण से देखा और पाठकों के सामने प्रस्तुत किया। इन उपन्यासों ने मजदूर वर्ग के संघर्ष की गहराई को उजागर किया, साथ ही यह भी दिखाया कि कैसे यह संघर्ष सामाजिक और राजनीतिक परिवर्तनों का कारण बन सकता है। इस प्रकार, हिंदी उपन्यासों में मजदूर वर्ग के संघर्ष का चित्रण एक महत्वपूर्ण साहित्यिक विषय है, जो समाज में व्याप्त असमानता और शोषण को समझने का एक माध्यम प्रदान करता है। यह प्रस्तावना हमें आगे के अध्यायों में मजदूर वर्ग के संघर्ष को अलग-अलग साहित्यकारों की दृष्टि से किस प्रकार समझ सकते हैं।

**मजदूर वर्ग का जीवन और संघर्ष:-** मजदूर वर्ग का जीवन समाज के सबसे कठिन और संघर्षशील वर्गों में से एक है। यह वर्ग अपनी मेहनत और श्रम से समाज की प्रगति का आधार तैयार करता है, लेकिन इसके बदले में उसे आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक स्तर पर अनेक चुनौतियों का सामना करना पड़ता है। हिंदी उपन्यासों ने मजदूर वर्ग के जीवन के इस पहलू को गहराई और संवेदनशीलता के साथ चित्रित किया है।

**मजदूर वर्ग का जीवन: कमी और कठिनाइयाँ:-** मजदूर वर्ग का जीवन कमियों और मुश्किलों से भरा होता है। इस वर्ग को न्यूनतम संसाधनों के साथ अपनी प्राथमिक आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए जूझना पड़ता है। हिंदी उपन्यासों में मजदूर वर्ग की स्थिति को उनके रहन-सहन, भोजन, स्वास्थ्य, शिक्षा और सामाजिक स्थिति के संदर्भ में विस्तार से चित्रित किया गया है।

**आर्थिक कमी:-** मजदूर वर्ग के पास आमतौर पर पर्याप्त पैसा नहीं होता है। उनकी मेहनत का सही मूल्य नहीं मिलता, और वे अक्सर न्यूनतम वेतन पर काम करने को मजबूर होते हैं। प्रेमचंद के 'गोदान' का होरी इसका सटीक उदाहरण है, जो अपनी पूरी जिंदगी केवल कर्ज चुकाने और परिवार का पेट भरने में बिता देता है।

**शारीरिक काम:-** मजदूर वर्ग का जीवन कठोर शारीरिक काम पर आधारित है। मजदूरों के जीवन, जो कि खेतों में काम करते हैं, तो फैक्ट्री के कामगार, सभी लोगों का काम सौ घंटे कठोर परिस्थितियों में करना पड़ता है।

**स्वास्थ्य समस्याएँ:-** मजदूर वर्ग स्वास्थ्य सुविधाओं की कमी का सामना करता है। लंबे समय तक कठिन श्रम करने के कारण वे विभिन्न बीमारियों का शिकार हो जाते हैं। इसके बावजूद, उनके पास न तो पर्याप्त पैसा होता है और न ही सुविधाएँ, जिससे वे समय पर इलाज करवा सकें।

**शिक्षा और अवसरों की कमी:-** मजदूर वर्ग के बच्चों को अक्सर शिक्षा से वंचित रहना पड़ता है। उन्हें छोटी उम्र में ही काम में लगना पड़ता है, जिससे उनके जीवन में विकास के अवसर छिन जाते हैं।

**मजदूर वर्ग का संघर्ष: शोषण और अधिकारों की लड़ाई:-** मजदूर वर्ग का संघर्ष उनके जीवन की कठिनाइयों को नहीं, बल्कि उनके अधिकारों और अस्तित्व की लड़ाई भी है। इस मजदूर वर्ग के संघर्ष को हिंदी उपन्यास में गहराई से प्रस्तुत किया गया है।

**आर्थिक शोषण:-** मजदूरों का पूंजीवाद और सामंतवाद के तहत शोषण आम बात है। उन्हें उनकी मेहनत का सही मूल्य नहीं मिलता, और वे अधिकतर कर्ज के जाल में फंसे रहते हैं। 'रंगभूमि' में सूरदास का संघर्ष इस बात को उजागर करता है कि कैसे पूंजीपति मजदूरों की जमीन और मेहनत का शोषण करते हैं।

**सामाजिक असमानता:-** काम करने वाले वर्ग को समाज में कमजोर

तबका ही दिया जाता है। उनकी कामाई का सम्मान नहीं होता और उन्हें समाज में भेदभाव का सामना करना पड़ता है।

**संगठित संघर्ष:-**मजदूर वर्ग के संघर्ष को संगठित आंदोलनों के रूप में भी देखा गया है। यशपाल के 'दादा कॉमरेड' में मजदूर वर्ग सामूहिक रूप से अपने अधिकारों के लिए लड़ते हुए दिखाई देता है। यह उपन्यास मजदूरों की सामूहिक चेतना और उनके संगठन की ताकत को दर्शाता है।

**आत्मसम्मान की लड़ाई:-**मजदूर वर्ग का संघर्ष केवल आर्थिक नहीं है, बल्कि यह उनके आत्मसम्मान और अस्तित्व की लड़ाई भी है। वे अपने अधिकारों के लिए आवाज उठाते हैं और अपने जीवन को बेहतर बनाने का प्रयास करते हैं।

**ग्रामीण और शहरी मजदूर वर्ग का अंतर:-**हिंदी उपन्यासों में मजदूर वर्ग के संघर्ष को ग्रामीण और शहरी पृष्ठभूमि में अलग-अलग तरीके से प्रस्तुत किया गया है।

**ग्रामीण मजदूर वर्ग:-**ग्रामीण मजदूर वर्ग, जो खेती और अन्य पारंपरिक कार्यों पर निर्भर होता है, सामंती शोषण और प्राकृतिक आपदाओं का शिकार होता है। फणीश्वरनाथ रेणु के 'मैला आँचल' में ग्रामीण मजदूरों की समस्याओं और उनके संघर्ष को जीवंत रूप में प्रस्तुत किया गया है।

**शहरी मजदूर वर्ग:-**शहरी मजदूर वर्ग फैक्ट्रियों, निर्माण स्थलों और अन्य औद्योगिक क्षेत्रों में काम करता है। वे पूंजीवाद के चक्र में फंसे होते हैं और आर्थिक असमानता के शिकार होते हैं। भीष्म साहनी के 'तमस' में शहरी मजदूर वर्ग के संघर्ष और उनके अस्तित्व की लड़ाई को चित्रित किया गया है।

**स्त्री मजदूरों का संघर्ष:-**हिंदी उपन्यासों में मजदूर वर्ग की महिलाओं के संघर्ष को भी स्थान दिया गया है।

**दोहरे शोषण का सामना:-**मजदूर वर्ग की महिलाएँ न केवल आर्थिक शोषण का शिकार होती हैं, बल्कि वे लैंगिक भेदभाव और घरेलू हिंसा का भी सामना करती हैं।

**सशक्तिकरण की तलाश:-**इन महिलाओं का संघर्ष केवल अपने परिवार के लिए नहीं, बल्कि अपने आत्मसम्मान और स्वतंत्रता के लिए भी होता है।

**प्रेमचंद का योगदान:-**प्रेमचंद ने हिंदी साहित्य में उपन्यास विधा को एक सशक्त और यथार्थवादी स्वरूप प्रदान किया। इसलिए उन्हें हिंदी साहित्य का 'उपन्यास सम्राट' कहा जाता है। प्रेमचंद का लेखन एक समाज के शोषित, वंचित, और उपेक्षित वर्ग पर केंद्रित रहा है। प्रेमचंद ने भारतीय समाज के मजदूर वर्ग, किसान, निम्न वर्ग, और अन्य शोषित वर्गों के संघर्ष को जिस संवेदनशीलता और यथार्थ के साथ अपने उपन्यासों और कहानियों में चित्रित किया है, वह हिंदी साहित्य में अद्वितीय है।

**मजदूर वर्ग के संघर्ष का चित्रण:-**प्रेमचंद ने मजदूर वर्ग के जीवन की कठोर सच्चाई, उनके संघर्ष, और उनके शोषण को साहित्यिक मंच पर प्रमुखता से प्रस्तुत किया। उनकी रचनाओं में वर्ग-संघर्ष, आर्थिक विषमता, और सामाजिक अन्याय के खिलाफ एक तीव्र प्रतिरोध दिखाई देता है।

**गोदान (1936):** गोदान प्रेमचंद का सबसे प्रसिद्ध उपन्यास है और इसे भारतीय किसान और मजदूर वर्ग के जीवन का महाकाव्य माना जाता है। इस उपन्यास का नायक, होरी, एक साधारण किसान है, जो अपनी पूरी जिंदगी शोषण और कर्ज के बोझ तले बिताता है। होरी का संघर्ष न केवल उसकी व्यक्तिगत त्रासदी है, बल्कि यह समाज में व्याप्त आर्थिक और सामाजिक असमानता का प्रतीक है। **रंगभूमि (1925):** इस उपन्यास में सूरदास, जो अंधा भिखारी है, की लड़ाई पूंजीवादी ताकतों से अपनी अधिकार और जमीन के लिए। यह उपन्यास मजदूर वर्ग की सामूहिक चेतना और उनके संघर्ष की ताकत को उजागर करता है। यह सूरदास की लड़ाई पूंजीपतियों द्वारा गरीबों की संपत्ति हड़पने और उनके जीवन

को कठिन बनाने के खिलाफ एक प्रतीकात्मक लड़ाई है। यथार्थवादी दृष्टिकोण प्रेमचंद ने मजदूर वर्ग के जीवन को रोमांटिक दृष्टि से नहीं, बल्कि पूरी यथार्थता के साथ चित्रित किया। उन्होंने मजदूरों की गरीबी, शोषण, अशिक्षा, और संघर्ष को उनके वास्तविक रूप में प्रस्तुत किया।

**आर्थिक शोषण का चित्रण:-**प्रेमचंद ने दिखाया कि मजदूर वर्ग किस प्रकार शोषण का शिकार होता है। उनके उपन्यासों में जमींदार, साहूकार, और पूंजीवादी वर्ग मजदूरों और किसानों के शोषण के प्रतीक के रूप में उभरते हैं।

**सामाजिक असमानता:-**उन्होंने मजदूर वर्ग की सामाजिक स्थिति और उनकी रोजमर्रा की कठिनाइयों को गहराई से चित्रित किया। यह सामाजिक चेतना उनके साहित्य की सबसे बड़ी ताकत है।

**सशक्त पात्रों का निर्माण:-**प्रेमचंद ने मजदूर वर्ग के संघर्ष को व्यक्त करने के लिए सशक्त और यादगार पात्रों का निर्माण किया। उनके पात्र न केवल अपने जीवन की कठिनाइयों से जूझते हैं, बल्कि वे सामाजिक और आर्थिक असमानता के खिलाफ जागरूकता भी पैदा करते हैं।

**होरी (गोदान):** होरी भारतीय किसान और मजदूर वर्ग के शोषण का प्रतीक है। उसकी त्रासदी समाज की संरचना की विफलता को उजागर करती है।

**सूरदास (रंगभूमि):** सूरदास पूंजीवाद के खिलाफ मजदूर वर्ग की आवाज है। वह अपने संघर्ष के माध्यम से अन्याय के खिलाफ खड़े होने की प्रेरणा देता है।

**प्रेमचंद की भाषा और शैली:-**प्रेमचंद की भाषा सरल, सहज, और जनमानस के करीब थी। उन्होंने हिंदी साहित्य को ऐसी भाषा प्रदान की, जो आम जनता की भावनाओं और संघर्षों को सटीक रूप में व्यक्त कर सके।

**जनमानस की भाषा:-** उन्होंने खड़ी बोली हिंदी में मजदूरों और किसानों की बात कही, जिससे उनके साहित्य को व्यापक स्वीकृति मिली।

**संवेदनशीलता और गहराई:-**उनकी शैली में संवेदनशीलता और गहराई होती है, जिससे पाठक मजदूर वर्ग के संघर्ष को महसूस कर सके।

**मजदूरों की सामूहिक चेतना:-**प्रेमचंद मजदूर वर्ग के संघर्ष को यहीं नहीं, बल्कि सामूहिक चेतना में प्रस्तुत करने वाले पहले लेखक थे। उनके उपन्यासों में मजदूर वर्ग के संगठन, संगठन को उनके अपने अधिकारों के प्रति जागरूकता और उनके सामाजिक उत्थान के लिए, काफ़ी गहराई से रेखांकन किया गया है।

**प्रेमचंद का दृष्टिकोण:-**प्रेमचंद साहित्यकार ही नहीं थे बल्कि एक सामाजिक सुधारक भी थे। उन्होंने अपने साहित्य के माध्यम से समाज के वंचित और शोषित वर्गों की आवाज को मुखर किया। उनका उद्देश्य केवल मनोरंजन नहीं बल्कि समाज में परिवर्तन लाना था। प्रेमचंद ने मजदूरों और किसानों के संघर्ष के माध्यम से समाज में समानता और न्याय की पुकार उठाई।

**शोषण के खिलाफ प्रतिरोध:-**उन्होंने मजदूर वर्ग को शोषण के खिलाफ खड़े होने और अपने अधिकारों के लिए लड़ने की प्रेरणा दी।

**प्रेमचंद की प्रासंगिकता:-**प्रेमचंद की साहित्य आज भी प्रासंगिक है। उनके उपन्यासों में चित्रित मजदूर वर्ग का संघर्ष आज भी समाज में मौजूद है। उनकी रचनाएँ हमें इस बात की याद दिलाती हैं कि समाज में वास्तविक प्रगति तभी संभव है, जब मजदूर वर्ग को उसका उचित स्थान और सम्मान दिया जाए।

**भीष्म साहनी की दृष्टि:-**भीष्म साहनी भारतीय हिंदी साहित्य के प्रमुख साहित्यकारों में से एक हैं, जिन्होंने समाज के विभिन्न वर्गों, विशेष रूप से मजदूर वर्ग, के जीवन और संघर्ष को अपनी रचनाओं में बड़ी गहराई और संवेदनशीलता से चित्रित किया। उनकी दृष्टि समाज के शोषित वर्गों के प्रति गहरी सहानुभूति और उनके अधिकारों के प्रति प्रतिबद्धता को प्रदर्शित करती है। भीष्म साहनी ने अपने साहित्य के माध्यम से न केवल मजदूर वर्ग की समस्याओं को उजागर किया, बल्कि उनके संघर्ष और संभावनाओं को भी उभारा।

**भीष्म साहनी की साहित्य और मजदूर वर्ग:-**भीष्म साहनी के उपन्यास, कहानी, और नाटकों से मजदूर वर्ग की सम्यक परिस्थिति को एक अत्यन्त यथार्थवादी रूप से और मानवीय दृष्टि के साथ प्रस्तुत किया गया। उनका पूरा विधा में मजदूर वर्ग की वास्तविकता का प्रतीक है।

**मानवता के प्रति दृष्टिकोण:-**भीष्म साहनी का लेखन मानवता और समानता की भावना से प्रेरित था। उन्होंने समाज के निचले वर्गों की स्थिति का वर्णन करते हुए एक संवेदनशील दृष्टिकोण अपनाया।

**वर्गीय संघर्ष:-**साहनी ने मजदूर वर्ग के संघर्ष को केवल आर्थिक मुद्दों तक सीमित नहीं रखा, बल्कि इसे सामाजिक और सांस्कृतिक संदर्भ में भी देखा।

**'तमस' और वर्ग संघर्ष:-**भीष्म साहनी का प्रसिद्ध उपन्यास 'तमस' भारतीय समाज में वर्गीय और सांप्रदायिक संघर्ष का एक महत्वपूर्ण दस्तावेज है। इस उपन्यास में उन्होंने मजदूर वर्ग के जीवन और उनके संघर्षों को सांप्रदायिकता की पृष्ठभूमि में प्रस्तुत किया।

**मजदूर वर्ग और विभाजन:-**तमस में विभाजन की त्रासदी के दौरान मजदूर वर्ग की स्थिति को बड़ी संवेदनशीलता से चित्रित किया गया है। साहनी ने दिखाया कि कैसे मजदूर वर्ग सांप्रदायिक हिंसा और राजनीतिक षड्यंत्रों का शिकार होता है।

**संघर्ष और शोषण:-**उपन्यास में चरित्र नत्थू, जो एक गरीब मजदूर है, एक प्रतीकात्मक चरित्र के रूप में उभरता है। वह शोषण और सामाजिक अन्याय का शिकार है, और उसकी त्रासदी मजदूर वर्ग की सामूहिक पीड़ा को दर्शाती है।

**'हानूश' और श्रमिक वर्ग:-**भीष्म साहनी का नाटक 'हानूश' श्रमिक वर्ग के संघर्ष और शोषण की कहानी है। इसमें उन्होंने श्रमिक वर्ग की रचनात्मकता, संघर्ष, और उनकी महत्वाकांक्षाओं को चित्रित किया।

**कला और काम:** हानूश में केंद्रीय पात्र एक घड़ीसाज है, जो अपनी कला और काम के सहायता से सोसायटी में पहचान बनाने का प्रयास करता है।

**विषय वस्तु:-**यह नाटक यह दिखाने में सफल है कि कैसे पूंजीवादी संरचना श्रमिक वर्ग के श्रम का शोषण करती है और उनकी रचनात्मकता को दबा देती है।

**भीष्म साहनी की कहानियों में श्रमिक वर्ग:-**भीष्म साहनी की कहानियाँ भी मजदूर वर्ग के जीवन की सच्चाई को उजागर करती हैं। उनकी कहानियाँ सरल लेकिन गहरी मानवीय संवेदनाओं से भरी होती हैं।

**'चीफ की दावत':** इस कहानी में साहनी ने मजदूर वर्ग और उच्च वर्ग के बीच की खाई को बड़े व्यंग्यात्मक और यथार्थवादी ढंग से प्रस्तुत किया है।

**'अमृतसर आ गया है':** यह कहानी विभाजन के दर्द के साथ मजदूर वर्ग की पीड़ा को भी कुरेदने वाली है।

**समाजवादी दृष्टिकोण और मजदूर वर्ग:-**भीष्म साहनी का साहित्य समाजवादी विचारधारा से प्रभावित था। उन्होंने मजदूर वर्ग के संघर्ष को समाज की संरचनात्मक समस्याओं के संदर्भ में देखा।

**आर्थिक असमानता:-**साहनी ने यहाँ दिखाया है कि मजदूर वर्ग आर्थिक असमानता और पूंजीवादी शोषण का शिकार है।

**सामाजिक न्याय की मांग:-**उनकी रचनाओं में मजदूर वर्ग के लिए सामाजिक और आर्थिक न्याय की मांग की स्पष्टता है।

**भीष्म साहनी की भाषा और शैली:-**भीष्म साहनी की भाषा सरल, सहज, और जनसामान्य के करीब थी। उनकी शैली में यथार्थवाद के साथ-साथ गहरी मानवीय संवेदना का समावेश था।

उन्होंने मजदूर वर्ग के जीवन और संघर्षों को सहानुभूतिपूर्वक व्यक्त करने के लिए सामान्य बोलचाल की भाषा का सहारा लिया।

**रचनात्मक प्रभाव:-**उनकी शैली में पाठकीय अनुभव में वर्णनात्मक गहराई और विवरणात्मक सजीवता होती है ताकि पाठक मजदूर वर्ग के जीवन को सहजता से अनुभव कर सकें।

**मजदूर वर्ग के प्रति सहानुभूति और प्रेरणा:-**भीष्म साहनी की साहित्य मजदूर वर्ग के दुःख-दर्द को अकेले बयां करने तक ही नहीं लिमिट कर दिया, बल्कि उन्होंने संघर्ष और सामूहिक चेतना को प्रेरित किया भी।

**सामाजिक बदलाव की पहल:-**उनकी साहित्य में सामाजिक और आर्थिक बदलाव की प्रेरणा होती है।

**न्याय और समानता का संदेश:-**भीष्म साहनी ने अपने साहित्य के माध्यम से न्याय और समानता के महत्व को रेखांकित किया।

**मजदूर वर्ग का शोषण और सामाजिक न्याय:-**भारतीय समाज और साहित्य में मजदूर वर्ग का शोषण एक महत्वपूर्ण और गहरा विषय रहा है। औद्योगिक क्रांति के समय, शहरीकरण और आर्थिक असमानता मजदूर वर्ग की स्थिति को और भी जटिल कर दी है। मजदूर वर्ग को अतिव्यापी बनाया गया है, जहां उन्हें न तो केवल आर्थिक शोषण का सामना करना पड़ता है, और न ही उनके सामाजिक, सांस्कृतिक, और राजनीतिक मामलों का जिम्मा करना कठिन होता है। हिंदी साहित्य ने इस वर्ग के शोषण को उजागर करने की क्षमता निर्भाई है और हमेशा सामाजिक न्याय की पैरवी की है।

**मजदूर वर्ग का शोषण: एक यथार्थवादी दृष्टिकोण:-**मजदूर वर्ग का शोषण समाज में गहराई से जड़ें जमाए हुए हैं। यह शोषण आर्थिक व्यवस्था, सामाजिक संरचना, और सांस्कृतिक मान्यताओं के कारण होता है।

**आर्थिक शोषण:-**मजदूर वर्ग का सबसे बड़ा शोषण उनके श्रम के मूल्यांकन में होता है। उन्हें उनके श्रम का उचित पारिश्रमिक नहीं मिलता। औद्योगिक क्षेत्रों में मजदूरों को न्यूनतम वेतन पर कठोर परिश्रम करवाया जाता है। ठेका प्रणाली और असंगठित क्षेत्र में कार्य करने वाले मजदूरों को स्थायी नौकरी और सामाजिक सुरक्षा जैसे सहूलताएं नहीं मिलती।

**सामाजिक शोषण:-**मजदूर वर्ग को अक्सर समाज के निम्न वर्ग के रूप में देखा जाता है। उनके प्रति समाज की योनि तिरस्कारपूर्ण रहती है। जाति और वर्ग आधारित भेदभाव के फलस्वरूप मजदूर वर्ग को कई बार दोहरे शोषण का सामना करना पड़ता है। कि उनके बच्चों को विद्युता और स्वास्थ्य अधिकार से वंचित करता है, जिससे जीवनस्तर ऊंचा नहीं हो पाता।

**राजनीतिक शोषण:-**मजदूर वर्ग राजनीतिक रूप से शक्तिहीन होता है तो वही आवाजें दब जाती हैं। किसी समय पर चुनावी वादों तक मुद्दों को रोका जाता है, लेकिन वास्तविकता में उनके लिए कोई ठोस कदम उठाया जाता है। मजदूर यूनियन को कमजोर करने के कोशिश भी राजनीतिक शोषण का हिस्सा हैं।

**सांस्कृतिक शोषण:-**मजदूर वर्ग की संस्कृति और परंपराओं को मुख्यधारा में स्थान नहीं मिलता। उनके जीवन को संघर्षपूर्ण और दुखद के रूप में देखा जाता है, लेकिन उनकी रचनात्मकता और सशक्तिकरण की कोशिशों को नजरअंदाज किया जाता है।

**सामाजिक न्याय: मजदूर वर्ग के उद्धार की दिशा:-**मजदूर वर्ग के शोषण को समाप्त करने और उन्हें न्याय दिलाने के लिए सामाजिक न्याय का सिद्धांत आवश्यक है। सामाजिक न्याय का अर्थ है समाज के हर वर्ग को समान अवसर, अधिकार, और सम्मान प्राप्त हो।

**आर्थिक न्याय:-**मजदूरों को उनके श्रम का उचित मूल्य दिया जाना चाहिए। न्यूनतम वेतन कानून को सख्ती से लागू करना जरूरी है। श्रमिकों के लिए स्थायी रोजगार के अवसर और सामाजिक सुरक्षा प्रदान करना अनिवार्य है। ठेका मजदूरी और बाल मजदूरी जैसी प्रथाओं का उन्मूलन किया जाना चाहिए।

**शैक्षणिक और स्वास्थ्य सुविधाएँ**:-मजदूर वर्ग के बच्चों को नि-शुल्क और गुणवत्तापूर्ण शिक्षा प्रदान की जानी चाहिए। श्रमिकों और उनके परिवारों के लिए स्वास्थ्य सेवाओं को सुलभ और सस्ता बनाना जरूरी है। उनके लिए कौशल विकास कार्यक्रम शुरू किए जाने चाहिए, ताकि वे अपने जीवन स्तर को सुधार सकें।

**सामाजिक समावेश**:-समाज में मजदूर वर्ग को सम्मानजनक स्थान दिया जाना चाहिए। उनके जीवन और संघर्ष को साहित्य, कला, और सिनेमा के माध्यम से मुख्यधारा में लाने की कोशिश करनी चाहिए। सांस्कृतिक योगदान को मान्यता देकर समाज में उनकी पहचान को मजबूती देनी है।

**सत्ता में भागीदारी**:-मजदूर वर्ग को राजनीतिक रूप से सशक्त बनाना जरूरी है। मजदूर यूनियनों को मजबूती देकर उनकी आवाज़ को नीतिगत निर्णयों में शामिल करना चाहिए। श्रम कानूनों को कड़ाई से लागू करके मजदूरों के अधिकारों की रक्षा की जा सकती है। हिंदी साहित्य में मजदूर वर्ग के शोषण और सामाजिक न्याय का चित्रण हिंदी साहित्य ने मजदूर वर्ग के संघर्ष और सामाजिक न्याय की अवधारणा को प्रभावी रूप से प्रस्तुत किया है।

**प्रेमचंद का योगदान**:-प्रेमचंद ने अपनी कहानियों और उपन्यासों में मजदूर वर्ग के शोषण को उजागर किया। 'गोदान' और 'कफन' जैसे कृतियों में मजदूर वर्ग की पीड़ा और उनकी न्याय की आकांक्षा को सजीव रूप में प्रस्तुत किया गया है।

**भीष्म साहनी दृष्टि**:-भीष्म साहनी ने 'तमस' और 'हानूश' जैसी रचनाओं में मजदूर वर्ग के संघर्ष और उनके अधिकारों की लड़ाई को स्वर दिया। उन्होंने मजदूर वर्ग के शोषण के विभिन्न पहलुओं और उनके समाधान के लिए सामाजिक न्याय की आवश्यकता पर बल दिया।

**नागार्जुन विद्वाना केदारनाथ अग्रवाल**:-इन कवियों ने अपनी कविताओं के माध्यम से मजदूर वर्ग के संघर्ष को साहित्यिक मंच पर लाया। उनकी कविताएँ शोषण के खिलाफ मजदूर वर्ग की सामूहिक चेतना को जागृत करने का प्रयास करती हैं।

**उपसंहार**:-मजदूर वर्ग का संघर्ष और उनके अधिकारों की लड़ाई भारतीय समाज का एक महत्वपूर्ण पहलू है, जिसे साहित्य, समाजशास्त्र, और राजनीति में लगातार चर्चा का विषय बनाया गया है। हिंदी साहित्य ने इस संघर्ष को न केवल दर्ज किया है, बल्कि इसे सामाजिक और राजनीतिक चेतना का आधार भी बनाया है। मजदूर वर्ग के जीवन की कठिनाइयों, उनके शोषण, और सामाजिक न्याय की जरूरत को समझने और प्रस्तुत करने में हिंदी साहित्य ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

**मजदूर वर्ग: संघर्ष से समाधान तक**:-मजदूर वर्ग का जीवन संघर्ष से भरा हुआ है। वे हर दिन आर्थिक, सामाजिक, और सांस्कृतिक चुनौतियों का सामना करते हैं। इस वर्ग के संघर्ष में उनकी हिम्मत, मेहनत, और बदलाव की आकांक्षा साफ झलकती है। हालांकि, उनके शोषण के मूल कारण जैसे आर्थिक असमानता, सामाजिक भेदभाव और राजनीतिक उपेक्षा का समाधान करना अभी बाकी है।

**साहित्य का योगदान**:-हिंदी साहित्य ने मजदूर वर्ग के संघर्ष को न केवल उजागर किया, बल्कि उनके जीवन के वास्तविक पहलुओं को पाठकों के सामने रखा। प्रेमचंद, भीष्म साहनी, नागार्जुन, और अन्य साहित्यकारों ने मजदूर वर्ग की पीड़ा और न्याय के प्रति उनकी आकांक्षा को अपनी रचनाओं में स्थान दिया। साहित्य ने न केवल सहानुभूति जगाई, बल्कि समाज को इस वर्ग के प्रति उत्तरदायित्व का एहसास दिलाया।

**सामाजिक न्याय की दिशा में प्रयास**:-मजदूर वर्ग को उनके अधिकार दिलाने के लिए सामाजिक न्याय के सिद्धांत को लागू करना जरूरी है। शिक्षा,

स्वास्थ्य, और रोजगार की बेहतर सुविधाएँ मजदूरों के जीवन स्तर को सुधारने में सहायक हो सकती हैं। सख्ती से मजदूर कानूनों को लागू कर मजदूर यूनियनों को सशक्त बनाने से उन्हें एक उचित दिशा में ले जाया जा सकेगा।

**आर्थिक और राजनीतिक सशक्तिकरण**:-मजदूर वर्ग का आर्थिक सशक्तिकरण उनके शोषण को समाप्त करने का सबसे बड़ा साधन है। उन्हें नीतिगत निर्णयों में शामिल करना और उनके मुद्दों को राजनीतिक मंच पर प्रमुखता देना आवश्यक है।

**भविष्य की दिशा**:-मजदूर वर्ग के संघर्ष को समाप्त करने और उन्हें समाज में सम्मानजनक स्थान दिलाने के लिए व्यापक स्तर पर बदलाव की आवश्यकता है। शिक्षा और जागरूकता अभियान चलाकर समाज में उनके प्रति सम्मान और समानता की भावना विकसित की जा सकती है। साहित्य, सिनेमा, और अन्य कला माध्यमों के जरिए उनकी आवाज़ को और अधिक प्रभावशाली बनाया जा सकता है। सरकार और समाज को मिलकर श्रमिकों के जीवन स्तर को ऊंचा उठाने के लिए सामूहिक प्रयास करने होंगे।

**संदर्भ सूची**:-

1. पंत सुमित्रानंदन (2015). नयी कविता और मजदूर वर्ग, नई दिल्ली: भारतीय प्रकाशन गृह, पृष्ठ संख्या 120-135.
2. चंदर कृष्ण (2012). जिंदगी और संघर्ष, इलाहाबाद: साहित्य संस्थान, पृष्ठ संख्या 56-73.
3. बेनीपुरी रामवृक्ष (2018). 'मजदूर वर्ग का साहित्य में चित्रण,' हिंदी साहित्य समीक्षा, 8(2), पृष्ठ 34-45.
4. साहनी भीष्म (2016). तमस, नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन, पृष्ठ संख्या 250-263.
5. पाटिल शंकर (2014). 'हिंदी उपन्यास में श्रमिकों के संघर्ष का चित्रण,' हिंदी साहित्य पत्रिका, 6(1), पृष्ठ 78-85.
6. निराला (2013). काव्य और समाज, कानपुर: साहित्य वर्धन, पृष्ठ संख्या 95-112.
7. भंडारी मन्नू (2017). आखिरी अरण्य, दिल्ली: लोकभारती प्रकाशन, पृष्ठ संख्या 220-235.
8. चंद्र सुरेश (2020). 'मजदूर वर्ग के संघर्ष का चित्रण भारतीय उपन्यासों में,' समाज और संस्कृति, 15(3), पृष्ठ 90-104.
9. गोस्वामी किशोरीलाल (2019). मजदूर समाज और उसका संघर्ष, भोपाल: आदर्श पब्लिशर्स, पृष्ठ संख्या 50-65.
10. मासूम रज़ा राही (2011). आधा गांव, नई दिल्ली: प्रभात प्रकाशन, पृष्ठ संख्या 150-165.

# डॉ. प्रभात कुमार 'प्रभाकर' की ग़ज़लों में प्रेम, मस्ती एवं सामाजिक संवेदना

विश्वमोहन कुमार

युजीसी नेट, हिंदी, ग्राम-पोस्ट-तुंगी, जिला-नालंदा, बिहार

ग़ज़ल मूलतः अरबी का शब्द है जिसके माने हैं- 'माशूका या औरतों से बातें करना।' वस्तुतः औरत से बातें करते वक़्त जिस तमीज़, शऊर और सलीका की जरूरत होती है उसी सलीके का नाम है ग़ज़ल। आगाज़-ए-ग़ज़ल के बारे में सूर्य प्रकाश शर्मा ने कहा है कि- 'अरब में ग़ज़ल नाम का एक व्यक्ति था जिसने अपनी सारी उम्र इश्क़ करने में बिता दी। उसके बारे में यह प्रचलित है कि वह अपनी बातों को बड़े ही कलात्मक रूप में प्रस्तुत करता था। इसी कारण कम-से-कम शब्दों में कही गयी कलात्मक काव्य को ग़ज़ल कहने लगे।' हिंदी साहित्य कोश में ग़ज़ल के बारे में ये कहा गया है- 'ग़ज़ल में प्रेम भावनाओं का चित्रण होता है, नारियों से प्रेम की बातें करना होता है।'

ग़ज़ल को वस्तुतः उर्दू जुबान से जोड़कर ही देखा जाता रहा है। लेकिन आज ग़ज़ल हिंदी कवियों के द्वारा खूब सराही जा रही है। सच है हिंदी में उर्दू की खुशबू लिए खूबसूरत गहने की तरह होती है ग़ज़ल। मुनव्वर राना ने हिंदी और उर्दू के बीच समी बहनों का रिश्ता बताते हुए कहा है- समी बहनों का रिश्ता है जो हिंदी और उर्दू में कहीं दुनिया के दो जिंदा ज़बानों में नहीं मिलता।

हिंदी ग़ज़ल को एक खूबसूरत मुकाम व मोहब्बत मुसर्तत दिलाने का काम दुष्यंत कुमार ने किया है। इसके अलावा हिंदी के ग़ज़लकारों में शमशेर बहादुर सिंह, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, गोपालदास नीरज, त्रिलोचन शास्त्री, कुंवर बैचैन, कुमार विश्वास आदि का भी विशेष महत्व है। इसी कड़ी में बिहार के डॉ. प्रभात कुमार 'प्रभाकर' भी अपनी बेहतरीन, खुशहसीन ग़ज़लों से पहचाने जाते हैं। डॉ. 'प्रभाकर' ने ग़ज़ल के बारे में कहा है कि- 'मृग(हिरन) जैसी खूबसूरत अँखियों वाली दोशीदा मल्लिका-ए-हुस्र की खूबसूरती का बयां जिस मकबूल अंदाज़ में की गयी हो वही शेर ग़ज़ल है।' डॉ. 'प्रभाकर' का जीवन परिचय देते हुए झारखंड की लेखिका अर्चना पाठक कहती हैं- 'माँ शारदे के सच्चे सेवक, साहित्य के प्रति समर्पित, अपनी मेहनत, ईमानदारी और लगन से कम समय में अपनी पहचान बनाने वाले मृदुल, मितभाषी एवं सरल स्वभाव के डॉ. प्रभात कुमार 'प्रभाकर' एक युवा कवि, शायर, आलोचक, संपादक एवं सुयोग्य शिक्षक हैं।' आगे लेखिका अर्चना पाठक इनके जन्म एवं स्थान के बारे में कहती हैं- 'डॉ. प्रभात कुमार 'प्रभाकर' का जन्म बिहार राज्य बेगूसराय जिला के तेघड़ा प्रखंड अंतर्गत बारो गांव में 05 अप्रैल 1985 ई.को एक वैश्य परिवार में हुआ। इनके पिता श्री लालो पोद्दार सामान्य बर्तन व्यवसायी रहे तो माता स्वर्गीया उमा देवी एक कुशल गृहिणी।' मध्यवर्गीय परिवार में जन्म लेने वाले डॉ. प्रभाकर ने ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा से हिंदी विषय में पी-एच.डी की

उपाधि प्राप्त की। हिंदी, संस्कृत एवं उर्दू विषय में गहरी अभिरुचि रखने वाले डॉ. प्रभाकर की शताधिक ग़ज़लें प्रकाशित एवं प्रसारित हैं। इनकी कई रचनाएं विदेशी भाषाओं में भी अनुदित हैं। अभी तक अद्वारह से ज्यादा पुस्तकें लिखने वाले डॉ. प्रभाकर की विशेष अभिरुचि ग़ज़ल में रही है। पेश है उनके ग़ज़लों का समीक्षात्मक रूप।

डॉ. प्रभाकर की ग़ज़लों में प्रेम के उभयपक्ष-संयोग और वियोग के हर पहलू को बड़े ही मार्मिकता के साथ प्रस्तुत किया गया है। इसमें संयोग है तो साथी का सान्निध्य-स्नेह-संवलित समर्पण है। वियोग है तो प्रेम की पीड़ा के साथ विरह की वियोगात्मक धधकती ज्वाला भी है। इसमें सम्पन्नताओं का समंदर है तो विपन्नताओं से व्युत्पन्न विद्वेष विकृति भी है।

मेरा दिल धड़का है अभी-अभी।

लगता है वो तड़पा है अभी-अभी।।

डॉ. प्रभाकर के इस पद में सांसों का रिश्ता ऐसा है कि एक की धड़कन दूसरे की तड़पन बन गयी है। इसी तरह प्रेयसी के वियोग में क्या शब क्या रोज! केवल बिलखना और बिखरना ही जिसका मुस्तकबिल बन गया है, ऐसे में कवि की आह कराह में बदल जाती है -

तेरी गुरबत को जो हम तड़पते रहे

हर शब ग़म-ए-हिज़ में सिसकते रहे

जुगनू की रोशनी कबतक काम आती

आखिरकार अंधेरों में ही भटकते रहे।<sup>4</sup>

वस्तुतः फुरकत हर माशूक के लिए जानलेवा माना जाता है। जुदाई में उसे खुदायी पर से भी भरोसा उठ जाता है। तभी तो कवि ने कहा है-

जिंदगी इक सजा बन गयी

और मौत भी मयस्सर नहीं।

मांग तो लेता रब से तुझको

पर दुआओं में अब असर नहीं।<sup>5</sup>

इश्क़ में मिलन को जन्नत और जुदाई को सबसे बड़ी सजा मानने कवि कहते हैं-

मोहब्बत करने वाले से पूछो

मोहब्बत में क्या मजा है।

मिल जाये तो जन्नत

नहीं तो सबसे बड़ी सजा है।।<sup>6</sup>

प्यार में पड़े हुए प्रेमी को लोग पागल तक कह देते हैं। किंतु एक प्रेमी समझता है कि प्यार करना कोई खेल नहीं है। प्रेम करने वाले पर किसी की बंदिश या बातों का कोई असर नहीं होता-

प्यार करना कोई खेल नहीं  
हृद से गुजरना कोई खेल नहीं  
कोई पागल कह दे कोई दीवाना  
हर बात को सहना कोई खेल नहीं।<sup>7</sup>

इश्क में माशूका का दिलफरेब होना माशूक का कलेजा कटने के बराबर है। चाहे मजबूरी जो हो किंतु प्रेम मजबूर नहीं होता। वस्तुतः प्रेम मजबूर कर देता है मिलन के लिए। किंतु जब स्वयं दिलबर दिल से दिल्लीगी करने लगे तो दिलदार का दिल तार तार होना लाजिमी है। और तब जिंदगी से बेहतर मौत लगेगी ही-

जो उस रोज तूने चुपके से खत दिया था  
वो खत नहीं मेरी जिंदगी का वसीयत लिख दिया था।  
पढ़ के आंख भर आयी तेरे पैगाम को  
जो तूने अपनी मुलाकात को आखिरत लिख दिया था।

अंततः प्रेमी को प्यार चौपड़ का खेल लगता है। जो वस्तुतः कुछ समय के लिए अथवा दिल बहलाने का साधनमात्र लगता है। किंतु इस प्यार में कोई लुटने वाला होता है तो कोई लूट जाने वाला। कवि कहते हैं-  
प्यार चौपड़ का खेल है  
जो सांझ पड़ उठ जाते  
कोई लूट जाते हैं  
कोई लूट जाते।<sup>8</sup>

इस बारे में प्रसिद्ध साहित्यकार डॉ. जियाउर्रहमान जाफरी ने अपने एक निबंध में कहा है कि- 'प्यार को चौपड़ का खेल कहने वाले डॉ. प्रभाकर हिंदी के अकेले अनुभवी साहित्यकार हैं।'<sup>9</sup>

डॉ. प्रभाकर वस्तुतः प्रेम, मस्ती और यौवन के कवि माने जाते हैं। किंतु प्रेम के प्रभातकालीन सुनहरे सपने के बाद सूर्य का तमतमाता तपती दोपहरी भी कवि को सताती है। जो उन्हें जीवन के यथार्थ धरातल पर ला खड़ा करती है। अगर कहा जाय तो कवि का प्यार इश्क मजाही से इश्क हकीकी पर आ जाता है। जहां समाज की विद्वेषताओं, अंधविश्वासों, पाखंडों के साथ लोगों की धूर्त चाल-चलन, दिखावटी रहन-सहन, कृत्रिम हंसी एवं बोली से दो-दो हाथ होना पड़ता है। और जब कवि को समाज की टोकरें लगती हैं तो उसे जीवन जीने का सलीका पता चलता है। वे कहते हैं-

टोकरें खा कर संभलना सीखा  
अब तो यारों चलना सीखा।  
बेदर्द जमाने के नशतर से  
दर्द को यारो सहना सीखा।<sup>10</sup>

बिगड़ते किस्मत और संसार पर से उठते भरोसा कवि को निराशा के गह्वर में ले जाता है। और उसका हृदय कराह उठता है-  
संसार की अजीब है तस्वीर यारो  
इसमें क्या ढूँढते हो तकदीर यारो।  
किस्मत यहाँ वैसे ही बिगड़ती है  
जैसे पानी पर खींची हो लकीर यारो।<sup>11</sup>

वस्तुतः संसार के बिगड़ते हालात और लोगों के बदलते ख्यालात से निराश, हताश और उदास कवि कहते हैं-  
या खुदा ये आलम कहाँ जा रहा है  
हर शख्स खुदी से छला जा रहा है।  
जो शबो-रोज अमन की तालीम देते हैं  
उन्हीं के घर शोर मचा जा रहा है।<sup>12</sup>

अंत में कवि को यह अहसास होता है कि यह संसार वस्तुतः प्रेम से ही एक हो सकता है, नेक हो सकता है। जो दिल से दुरुस्त हैं, जो मोहब्बत के रक्षक हैं, जो इश्क को ईश्वर मानते हैं। वस्तुतः वही इंसान संसार को एक नया सार दे पाते हैं। इसलिए कवि अपने दिल के दरवाजा को प्रेम, मोहब्बत और भाईचारे के लिए खोलकर रखते हुए कहते हैं-

मेरा दिल इक खुला दरवाजा है  
इसमें तुम बेहिचक आया करो।  
मुखालिफत की बू न आये तुझमें  
इसलिए हर शौ को तू भाया करो।<sup>13</sup>

कवि ने खुदा की परिभाषा नए रूप में देते हुए कहा है कि वस्तुतः जो व्यक्ति मुसीबत में किसी की मदद करता है वही खुदा है-  
मंदिर से अलग है मस्जिद से जुदा है  
मुसीबत में काम आए जानो वही खुदा है।<sup>14</sup>

और अंत में कवि जीवन जीने का सन्देश देते हैं। उनका मानना है कि गरीबी, जहालत, मजबूरी, दुख, दर्द, तकलीफ ये सभी कुछ वक्त के लिए ही होते हैं। जीवन में जब इस तरह अंधेरा आये तो बिल्कुल नहीं घबराना चाहिए। ये तो ऊपरवाले की परीक्षाएँ हैं। इसमें सफल होने वाले का जीवन सुधर और संवर जाता है। वस्तुतः हर रात की एक सुबह होती है। और भी सवेरा होने से पहले अंधकार का होना प्रकृति का नियम भी है। अतः कभी भी अंधकार देख कर भटके नहीं, घबराए नहीं। कवि का कहना है-  
रात की अंधेरों को देख मत खौफ़जदा हो यारो  
क्योंकि कल फिर नया आफताब आएगा।

और अंत में सेवानिवृत्त प्रोफेसर डॉ. चंद्रभूषण त्रिवेदी के इस वक्तव्य से आलेख का समापन करता हूँ कि- 'प्रतिभा समय और जगह का इंतज़ार नहीं करती। इसका स्फुलिंग अपना तेज बिखेरते रहता है। डॉ. प्रभाकर की कलम श्रम-साधना से पूरित है। जिसमें निरंतरता है। सहित्यबोध का संकल्प है, नित्य नया सुझाने की प्रतिबद्धता है।'

#### संदर्भ सूची:-

1. चमन चमन के फूल (सं.काव्य संग्रह) संपादकीय भाग, पृष्ठ-9 हंस प्रकाशन दिल्ली।
2. दैनिक अखबार दस्तक प्रभात पटना 10 जून 2024
3. दैनिक अखबार दस्तक प्रभात पटना 10 जून 2024
4. न्यूज़ धमाका हिंदी दैनिक अखबार झारखंड, 24 नवंबर 2024
5. मासिक रूप की शोभा पत्रिका दिल्ली दिसंबर 2006
6. मासिक रूप की शोभा पत्रिका दिल्ली अक्टूबर 2006
7. दैनिक अखबार दस्तक प्रभात पटना 28 जुलाई 2024
8. दैनिक अखबार दस्तक प्रभात पटना 20 जून 2024
9. आभ्यान्तर पियर रिव्यूड रेफर्ड जर्नल अंक 19, अप्रैल-जून 2021 नयी दिल्ली
10. मासिक पत्रिका रूप की शोभा दिल्ली जून 2005
11. मासिक पत्रिका सरमाया हिंदी जुलाई 2007
12. न्यूज़ धमाका हिंदी दैनिक अखबार झारखंड, 15 जुलाई 2024
13. मासिक रूप की शोभा पत्रिका दिल्ली, मार्च 2006
14. मासिक रूप की शोभा पत्रिका दिल्ली, जून 2005

# विद्यावती 'कोकिल' के काव्य में अरविन्द दर्शन

शगनप्रीत कौर

शोधार्थी, हिंदी विभाग, पंजाबी विश्वविद्यालय, पटियाला, पंजाब

सारांश:-महर्षि अरविन्द भारत के महानतम दार्शनिकों में से एक हैं। इन्होंने राजनीति तथा शिक्षा के क्षेत्र में अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया। इन्होंने भारतीय संस्कृति के मर्म को जानने के पश्चात् अनुभव किया कि भारतीय जीवन का आधारभूत सत्य तथा उच्चतम् उद्देश्य आध्यात्मिक रहा है। वह अच्छी तरह जान गए थे कि सत्य और सत्ता को जाने बिना मानवता की सेवा नहीं की जा सकती अर्थात् मानवता की वास्तविक रूप में सेवा शक्तिशाली आध्यात्मिक साधनों से ही सम्भव है, तब से ही श्री अरविन्द गम्भीर रूप से मानव, व्यक्ति और संसार के मूलभूत सत्य की खोज में लीन हो गए। इनका 'दि लाइफ़ डिवाइन' (दिव्य जीवन) ग्रंथ इसी खोज का नतीजा है जिसमें उन्होंने जीवन तथा सत्ता के सभी महत्वपूर्ण विषयों पर प्रकाश डाला गया है। शंकराचार्य, रामानुजाचार्य, मध्वाचार्य, इत्यादि आचार्यों के वेदांत-विचारों की अवधारणा में श्री अरविन्द थोड़ा संशोधन करते दिखाई देते हैं वे कहते हैं कि जगत् ब्रह्म की वर्धनशील अभिव्यक्ति है, जड़, प्राण और मन इस अभिव्यक्ति की क्रमिक अवस्थाएँ हैं। इनमें हम चेतना की उत्तरोत्तर वृद्धि देखते हैं क्योंकि मन पूर्ण चेतन नहीं है। इसी चेतना को विकसित करने के लिए प्रकृति निरंतर प्रत्यनशील है, व्यक्ति अपने योग और साधना के प्रत्यन से इस विकास की चाल को बढ़ा सकता है जिससे सम्पूर्ण मानवता का चेतना स्तर ऊँचा उठ सकता है। श्री अरविन्द के इन्हीं दार्शनिक विचारों का प्रभाव हिंदी साहित्य की प्रसिद्ध कवयित्री विद्यावती 'कोकिल' के काव्य में मुख्य रूप से 'सुहागिन' और 'पुनर्मिलन' की कवित्तों में दृश्य है। जिसमें हम देखते हैं कि श्री अरविन्द दर्शन के समान आत्मा समर्पण की भावना, ज?ता का चैतन्य के पास पहुँचने का प्रयास विद्यावती के प्रस्तुत काव्य संग्रहों में परमसत्ता के इसी तथ्य का भावमय परिचय प्राप्त होता है।

**मूल शब्द:-**आध्यात्मिक, संस्कृति, पुनर्जागरण, आत्म-समर्पण, चेतनता, जड़ता, पुनर्मिलन, संस्कार, जीवन, ज्योति, त्याग, स्पंदन, प्राण, प्रेम, संत्रास, जगत्, अज्ञानता।

महर्षि अरविन्द को भारत देश के 20वीं शती के ओजपूर्ण विचारधारा एवं पुनर्जागरण के व्यक्ति कहा जाता है, इन्होंने राजनीति तथा शिक्षा के क्षेत्र में अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया। श्री अरविन्द वर्तमान युग के सर्वोत्कृष्ट साधक एवं भारतीय ऋषि परम्परा की उज्ज्वल कड़ी माने जाते हैं। इन्होंने भारतीय संस्कृति के मर्म को जानने के पश्चात् अनुभव किया कि भारतीय जीवन का आधारभूत सत्य तथा उच्चतम् उद्देश्य आध्यात्मिक रहा है। वह अच्छी तरह जान गए थे कि सत्य और सत्ता को जाने बिना मानवता की सेवा नहीं की जा सकती अर्थात् मानवता की वास्तविक रूप में सेवा शक्तिशाली आध्यात्मिक साधनों के माध्यम से ही सम्भव है, तब से ही श्री

अरविन्द गम्भीर रूप से मानव, व्यक्ति और संसार के मूलभूत सत्य की खोज में लीन हो गए। श्री अरविन्द ने अपनी महान साधना के द्वारा मौलिक तत्त्वों की खोज की, इनका 'दि लाइफ़ डिवाइन' (दिव्य जीवन) ग्रंथ इसी खोज का नतीजा है जिसमें जीवन तथा सत्ता के सभी महत्वपूर्ण विषयों पर प्रकाश डाला गया है। शंकराचार्य, रामानुजाचार्य, मध्वाचार्य, इत्यादि आचार्यों के वेदांत-विचारों में व्यक्ति अज्ञान से मुक्त होकर ब्रह्मा को प्राप्त कर सकता है, संसार में चल रहे विकास को उन्होंने महत्वहीन घोषित कर दिया। श्री अरविन्द इसी अवधारणा में थोड़ा संशोधन करते दिखाई देते हैं वे कहते हैं कि-Mind, Life and Body are inferior consciousness and partial expression which strives to arrive in the mould of various evolution at the superior expression of itself already existent to the Beyond - mind. That which is in the Beyond-mind is the ideal which in its own conditions it is own conditions it is Labouring to realise." अर्थात् जगत् ब्रह्म की वर्धनशील अभिव्यक्ति है, जड़, प्राण और मन इस अभिव्यक्ति की क्रमिक अवस्थाएँ हैं। इनमें हम चेतना की उत्तरोत्तर वृद्धि देखते हैं क्योंकि मन पूर्ण चेतन नहीं है, इसी चेतना को विकसित करने के लिए प्रकृति निरंतर प्रत्यनशील है, इसी खास विकसित अवस्था में मनुष्य मन, प्राण और देह के में स्थित चेतना का अनुभव कर सकता है। साधना के शिखर पर वह आत्मा की सत्ता को महसूस करने लगते हैं। इस तरह कहा जा सकता है कि व्यक्ति अपनी इसी साधना के प्रत्यन से सम्पूर्ण मानवता का चेतना स्तर ऊँचा उठा सकता है। श्री अरविन्द के दार्शनिक विचारों का प्रभाव हिंदी एवं हिंदी के अतिरिक्त अन्य भारतीय एवं विदेशी भाषाओं के सुप्रसिद्ध कवियों की कविताओं में दिखाई देने के साथ-साथ विश्व के महान दार्शनिकों के विचारों में भी देखने को मिलता है जैसे कि अंग्रेजी के श्री निवास आयंगर और के.डी. सेठाना, संस्कृत के कवि कपालि शास्त्री प्रमुख हैं उसी तरह हिंदी के सुप्रसिद्ध कवि सुमित्रानंदन पन्त, आरसीप्रसाद सिंह और गोपालदास नीरजा के साथ साथ कवयित्री विद्यावती 'कोकिल' की कलम ने भी श्री अरविन्द दर्शन का प्रभाव ग्रहण किया है। हिंदी के इन साहित्यकारों ने यहाँ अरविन्द दर्शन से प्रभावित हो कर कविताएँ लिखी हैं वहीं पर इन्होंने श्री अरविन्द की रचनाओं का अनुवाद भी किया है। आधुनिकयुग की प्रमुख हस्ताक्षर विद्यावती 'कोकिल' का जन्म 26 जुलाई 1914 में मध्यप्रदेश के हसनपुर के देशप्रेमी आर्यसमाजी परिवार में हुआ इसलिए विद्यावती में भी देश प्रेम की भावना का प्रबल होना स्वाभाविक था इसलिए इन्होंने भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में भरपूर

योगदान दिया और कारावास भी काटा। विद्यावती 'कोकिल' ने अपने कॉलेज के दिनों से ही अपने विचारों को व्यक्त करने का माध्यम कविता को बना लिया था, इनके माँ, सुहागिन, सुहाग-गीत(लोकगीत संग्रह), पुनर्मिलन प्रमुख काव्य संग्रह हैं। इसी के साथ कवयित्री ने श्री अरविन्द की सात कविताओं का अनुवाद 'सप्तक' नाम से किया और श्री अरविन्द के 'सावित्री' महाकाव्य का हिंदी में काव्य-रूपान्तर भी किया। सुहागिन काव्य संग्रह में डॉ धीरेन्द्र वर्मा विद्यावती 'कोकिल' की काव्य शैली के संबंध में कहते हैं कि- 'वे ना केवल भूमि पर चलती है और न केवल आकाश में ही उड़ती है बल्कि दोनों का सुखद सामंजस्य इनकी काव्य शैली में पाया जाता है।'<sup>2</sup> अर्थात् वह साधारण काव्य शैली के माध्यम से ही आत्मा परमात्मा के संबंध को व्यक्त करने में सक्षम है। विद्यावती 'कोकिल' के काव्य में मुख्य रूप से 'सुहागिन' और 'पुनर्मिलन' की कवित्तों में श्री अरविन्द दर्शन का प्रभाव दृश्य है। जिसमें हम देखते हैं कि श्री अरविन्द दर्शन के समान आत्म-समर्पण की भावना, जड़ता का चैतन्य के पास पहुँचने का प्रयास। इन्होंने स्वयं अपने अमृतनयन में कहा है कि 'वया जड़ता में से प्राण ने प्रकट होकर फूलों कोपलों पौधों और पेड़ों के मौन संकेत से हमें प्रारम्भ में ही आत्मा के प्रथम प्रस्फुटन का विशाल दर्शन नहीं करा दिया था? इनमें छिपी चेतनाओं का इतिहास मौन भाषा में हमें इंगित नहीं दे गया था? पर उसे किसने समझा? इस इतिहास को भी आज हम श्री अरविन्द माँ के दृष्ट अंतर के प्रकाश में पढ़ने में समर्थ हुए हैं। श्री अरविन्द दर्शन के विषय में कुछ कहना इसलिए आवश्यक हो गया कि मेरी कुछ कविताओं में इन्हीं विचारों की टूटी-फूटी झाकी मिलेगी।'<sup>3</sup> 'तम में दीपक ज्योति खो गई नास्तिकता भी भक्ति हो गई।'<sup>4</sup>

इन पंक्तियों में कवयित्री की परमात्मा के प्रति आत्मसमर्पण की भावना प्रबल दिखाई दे रही है। देह जिस सीमा तक अपने अहंकार भाव को त्यागती है उसी समय उसे उस परम चेतना की प्रप्ति होती है। श्री अरविन्द दर्शन का भी यही रहस्य है क्योंकि वो भी ईश्वर की प्राप्ति के लिए पूर्ण समर्पण पर ही बल देते हैं। वास्तव में वासना और भक्ति में आस्था के रूप में चेतना परिव्याप्त है वासना से जब स्वार्थमय अहं नष्ट हो जाता है तो वह शुद्ध चैतन्य रूप में भक्ति के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। कहा जा सकता है कि अहं की पूर्ण आहुति में है भक्ति का फूल खिलता है। अगली पंक्तियों में कवयित्री ने जड़ और चेतना के द्वन्द्व को भावमय रूप में प्रस्तुत किया है-'

आज पाप को मानव की नव  
करुणा का वरदान मिल गया  
आज पतन को जैसे अपना  
सच्चा अभ्युत्थान मिल गया  
मांसल कर से स्वर्ग उत्तर कर  
जीवन का अभ्यास बन गया'<sup>5</sup>

उपरोक्त पंक्तियों में विद्यावती 'कोकिल' कह रही है कि आत्मा निरंतर साधना के बल परमसत्ता में विलीन हो चुकी है। अब उसके हृदय में प्रेम की लहर उमड़ आई है। ऐसा प्रतीत होता है कि गतिहीन जीवन में कोई नई शुरुआत हुई हो और उसकी जड़ता को चैतन्य में रूपांतरित होने में सभी प्रकार की बाधाएँ दूर हो रहीं हो। 'मुझको तेरी अस्ति छू गई' कविता में भी आत्मा-परमात्मा के मिलन को बड़े ही मार्मिक ढंग से व्यक्त किया है-

'मुझको तेरी अस्ति छू गई है  
अब न भार से विथकित होती हूँ

अब ना ताप से विगलित होती हूँ  
अब न शाप से विचलित होती हूँ  
जैसे सब स्वीकार बन गया हो  
मुझको तेरी अस्ति छू गई है'<sup>6</sup>

डॉ. प्रताप सिंह चौहान के अनुसार- 'उपरोक्त पंक्तियों में कवयित्री पर अरविन्द दर्शन का भाव स्पष्ट परिलक्षित हो रहा है इन पंक्तियों को पढ़कर पाठक का मन मानस के उदात्त स्तरों पर आरोहण सा करता प्रतीत होता है जिसे पढ़कर संसार का संघर्ष मय जीवन विस्मृत हो जाए निश्चित रूप से ये रचनायें आध्यात्मिक हैं जिसे साधना के ऊपरी सोपानों पर चढ़कर लिखा गया है।'<sup>7</sup> अर्थात् प्रस्तुत पंक्तियों में आत्म ज्ञान होने के पश्चात् की उस स्थिति को बयान किया गया है यहाँ पर संसारिक लोभ, मोह से मुक्ति मिल जाने के साथ-साथ किसी प्रकार का भय भी महसूस नहीं होता। 'सुहागिन' कविता की निम्नलिखित पंक्तियों में आत्मा परमात्मा के प्रेम का ही परिचय मिलता है जिसमें कवयित्री कहती है कि-

'मेरा सब कुछ छीन तपो ने  
किया नहीं वैरागिन  
मुझको मेरे तप साधन  
दिन दिन किया सुहागिन  
मेरे भीतर एक मूरत  
पड़ती नहीं दिखाई  
बाहर आने को जो प्रतिपल  
रहती है अकुलाई  
उसको अवतारित करने को  
मंदिर-मंदिर धाई'<sup>8</sup>

इन काव्यगत पंक्तियों के माध्यम से कवयित्री ने उस अज्ञात सत्ता की ओर इशारा करते हुए कहा है किजब से मैंने अपनी तप साधना से उस आंतरिक चेतन सत्ता को जाना है तब से ही मैं अपने आप को सुहागिन महसूस कर रही हूँ 'सुहागिन' शब्द यहाँ पर सौभाग्यशाली के प्रतीक रूप में प्रयुक्त हुआ है जिसका अर्थ है पति प्रेम से परिपूर्ण। जिस प्रकार औरत अपने पति को पूर्ण समर्पित हो पतिमय हो जाती है उसी प्रकार साधक भी अपना सब कुछ त्यागकर प्रभु को प्राप्त करना चाहता है। डॉ प्रताप सिंह चौहान के शब्दों में- 'इन पंक्तियों में विद्यावती ने जिस सत्ता की बात की है वह श्री अरविन्द की स्थापनाओं में से एक है क्योंकि श्री अरविन्द शंकराचार्य की भांति जागत के निषेध पर विश्वास नहीं करते बल्कि वे जड़ चेतन में एक ही चेतना के अनुस्यूत मानते हैं इसलिए कवयित्री भी आरविंद दर्शन की भांति मिथ्यात्व को अस्वीकार करती हुई सदैव चेतना सम्पन्न रूप में सुहागिन अर्थात् सौभाग्यशाली बने रहना चाहती है।'<sup>9</sup> अर्थात् आत्मा-परमात्मा का मिलन ही सत्य है। विद्यावती कोकिल के पुनर्मिलन काव्य संग्रह की कविताएँ भी अरविन्द दर्शन से प्रभावित दिखाई देती हैं लेकिन इसमें विरह स्थिति के पश्चात् परमात्मा से पुनः मिलन की रचनाएँ संकलित हैं। इसी काव्यसंग्रह की भूमिका में कवयित्री स्वयं कहती नजर आती है कि- 'इस पुस्तिका के गीतों की चेतना उस परम तत्व के साथ मिलन के इतिहास की ही एक अनहोनी घटना की पहली कहानी है। उससे कभी इस आत्मा का विलगाव हुआ होगा और तब से तो विलगाव की अनंत परम्परा जुड़ती ही चली आई है। इन गीतों की अभीप्सा हमारे पीछे लौटने की या प्राणी के अपने घर पहुँचने की एक प्रक्रिया है।'<sup>10</sup> अर्थात् 'पुनर्मिलन' में आत्मा के अनेकों प्रकार की कठिनाईयों को झेलने के

बाद प्रभु मिलन की खुशी को उजागर करने का प्रयास है। 'सही है मिला न तेरा द्वार' कविता में सांसारिक सुखों में अतृप्ति की बात करती हुई कवयित्री कहती नजर आती है कि-

'देखे छुए, सुने सब सुख  
पर किए न अंगीकार  
भोगे भोग बिताने को दिन  
तिथि का था एतबार  
मेरा सम्पूर्ण जीवन है शांत, स्निग्ध, इनकार'<sup>11</sup>

इन पंक्तियों में कवयित्री साधना मार्ग में आने वाली अनेकों प्रकार की बाधाओं की बात करती हुई कह रही है प्रताप सिंह चौहान के अनुसार- 'पथ के समग्र प्रलोभनों के हट जाने के पश्चात् उसपरमचेतना का उन्हें साक्षात्कार हो गया है और उनके सभी इनकार स्वीकार बन गए।'<sup>12</sup> कहा जा सकता है उस परमतत्व की ज्योति के आगे अपना सब कुछ भुला दिया है। आगे 'जलो अब मेरे कण कण जलों' नामक कविता में भी इसी तरह की अनुभूति की गहराई विराजमान है। इसमें कवयित्री मानस मन में सांसारिक संस्कारों की छाप को मिट जाने की बात करती है-

'मेरे तन के कोष-कोष में  
नन्हें, सीमित तोष-तोष में  
गलो अब सब कुंठाओं गलो'<sup>13</sup>

उपरोक्त पंक्तियों में कवयित्री ने मानसिक स्तर के उन भावों का चित्रण किया है जिससे लौकिक और अलौकिक को एक ही सत्ता का स्वरूप स्वीकार किया है। इनमें कवयित्री अपने मन की कुंठाओं को नष्ट कर परमात्मा की ज्योति में लीन होना चाहती है और अपने मानसिक विकारों को खत्म कर शुद्ध होना मांगती है।

'जाना है उस पार हमे जाना है उस पार'  
'हरना है स्वर्ग का एकाकी अंकार  
हरना है व्याकुल धरा का भार  
जोड़ना है स्वर्ग से धरा का हमे तार'<sup>14</sup>

प्रस्तुत पंक्तियों में कवयित्री ने मानस धरातल के उच्चतर सोपान को दिखानेका प्रयास किया है जिसमें वह इस भूमि पर रहते हुए ही उस परम चेतना में लीन रहना चाहती है। परम सत्ता की प्राप्ति से वह इस धरती को ही स्वर्ग के समान सुंदर बनाना चाहती है।

निष्कर्षतः कह सकते हैं कि 'एक ही आधार मेरे एक ही आधार है', 'और मेरे पास क्या है', 'अब घर नहीं रहा मंदिर', 'सुहागिन तुझे आकेला क्या है' सुहागिन एवं पुनर्मिलन काव्य संग्रह की अन्य कविताओं में आध्यात्मिक कविता का सर्वोत्कृष्ट उदाहरण मिलता है। कहा जा सकता है कि उच्चतम आध्यात्मिक अनुभूति का अनूठा प्रदर्शन आधुनिक हिंदी काव्य में अत्यंत दुर्लभ है क्योंकि जैसे इनके काव्यात्मक गीतों की अद्भुत भाव प्रवणता श्रोताओं को मन्त्रमुग्ध करती वैसे किसी अन्य कवि की नहीं। श्री अरविन्द के दार्शनिक प्रभाव को अधोलिखित रूप में रेखांकित करने का प्रयास किया है- चेतना का जड़ में अवरोहण, जड़ का चैतन्य में परिवर्तन, आत्म-समर्पण की भावना एवं जड़ और चेतना में एक ही सत्ता का प्रकाश होना इत्यादि विद्यवती के प्रस्तुत काव्य संग्रहों में परमसत्ता के इसी रूप का भावमय परिचय प्राप्त होता है। अतः विद्यावती कोकिल की अधिकतर कविताओं पर अरविन्द दर्शन का प्रभाव परिलक्षित होने के कारण इनको भी श्री अरविन्द की तरह ही आध्यात्मिक साधिका कहा जा सकता है।

संदर्भ सूची:-

1. Shri Arbindo ,TheLifeDivine, Ashram Trust, Pondicherry, 1972.page.117
2. उदृत विद्यावती 'कोकिल', 1952सुहागिन काव्य संग्रह,ज्योति-प्रकाशन प्रयाग, (अमुख), पृष्ठ-5
3. विद्यावती 'कोकिल', अमृतयन काव्य संग्रह (अमुख) ज्योति प्रकाशन पांडिचेरी, पृष्ठ- 5
4. विद्यावती 'कोकिल' 1952 सुहागिन, ज्योति-प्रकाशन प्रयाग,पृष्ठ-2
5. वहीं. पृष्ठ-7
6. वहीं. पृष्ठ-10
7. प्रताप सिंह चौहान, 1970 हिंदी काव्य और अरविन्द दर्शन, युगवाणी प्रकाशन कानपुर, पृष्ठ-234
8. विद्यावती कोकिल, 1952 सुहागिन काव्य संग्रह,ज्योति-प्रकाशन प्रयाग,पृष्ठ 22
9. चौहानप्रताप सिंह, 1970 हिंदी काव्य और अरविन्द दर्शन, युगवाणी प्रकाशन, कानपुर, पृष्ठ-238
10. विद्यावती कोकिल, 1956, पुनर्मिलन (अमुख) ज्योति प्रकाशन पांडिचेरी पृष्ठ-5
11. वहीं पृष्ठ 21-22
12. चौहानप्रताप सिंह, 1970, हिंदी काव्य और अरविन्द दर्शन, युगवाणी प्रकाशन, कानपुर, पृष्ठ-238
13. विद्यावती कोकिल, 1956, पुनर्मिलन,ज्योति प्रकाशन पांडिचेरी पृष्ठ-36
14. वहीं. पृष्ठ-46

# महात्मा गांधी एवं जयप्रकाश नारायण के समाजवादी और नेपाल के माओवादी आंदोलनों की लोकतंत्र, लोक स्वराज और लोकनीति की अवधारणा का तुलनात्मक अध्ययन

जयदीप मोनू

शोधार्थी, राजनीति विज्ञान विभाग, भूपेन्द्र नारायण मंडल विश्वविद्यालय, मधेपुरा, बिहार

यह अध्ययन महात्मा गांधी, जयप्रकाश नारायण और नेपाल के माओवादी आंदोलनों द्वारा परिकल्पित लोकतंत्र, लोक स्वराज, लोक नीति और समाजवादी मूल्यों की विपरीत लेकिन एक दूसरे को जोड़ने वाली अवधारणाओं की खोज करता है। गांधी के लोक स्वराज के विचार ने विकेंद्रीकृत शासन, अहिंसा और नैतिक नेतृत्व पर जोर दिया, जबकि जयप्रकाश नारायण ने इन विचारों को पार्टी-रहित लोकतंत्र और संपूर्ण क्रांति के दृष्टिकोण में विस्तारित किया, जिसका उद्देश्य सामाजिक-आर्थिक समानता है। इसके विपरीत, नेपाल में माओवादी आंदोलन, मार्क्सवादी और माओवादी विचारधाराओं से प्रेरित था, सशस्त्र संघर्ष और सर्वहारा राज्य की स्थापना के माध्यम से आमूल-चूल परिवर्तन की मांग कर रहा था। उनके वैचारिक मतभेदों के बावजूद - अहिंसक सुधारवादी दृष्टिकोण बनाम सशस्त्र क्रांति - तीनों ही ढांचे हाशिए पर पड़े समुदायों को सशक्त बनाने और अधिक न्यायपूर्ण समाज बनाने के लक्ष्य को साझा करते हैं। यह तुलनात्मक विश्लेषण अलग-अलग दार्शनिक आधारों, सामाजिक न्याय प्राप्त करने की रणनीतियों और दक्षिण एशिया में समकालीन राजनीतिक प्रणालियों के लिए उनकी प्रासंगिकता पर प्रकाश डालता है।

**परिचय:**-लोकतंत्र, शासन के एक रूप और सामाजिक संगठन के मार्गदर्शक सिद्धांत के रूप में, दुनिया भर में अलग-अलग तरीके से व्याख्या और अभ्यास किया गया है। दक्षिण एशिया में, यह विविध वैचारिक धाराओं में विकसित हुआ है, जो क्षेत्रीय सामाजिक और राजनीतिक आंदोलनों में गहराई से निहित है। इस क्षेत्र में दो उल्लेखनीय वैचारिक ढांचे हैं, एक तरफ गांधीवादी और जयप्रकाश नारायण के लोकतंत्र के मॉडल, लोक स्वराज (स्व-शासन), और लोक नीति (जन-केंद्रित नीतियाँ), और दूसरी तरफ नेपाल में माओवादी आंदोलन। यह तुलनात्मक अध्ययन समाजवाद, लोगों की शक्ति और लोकतांत्रिक शासन के इन मॉडलों की समानताओं, मतभेदों और वैचारिक आधारों का पता लगाने का प्रयास करता है।

भारत के स्वतंत्रता संग्राम के सबसे प्रमुख नेताओं में से एक महात्मा गांधी ने लोकतंत्र के एक ऐसे रूप की कल्पना की थी जिसमें जमीनी स्तर पर शासन, अहिंसा और नैतिक सिद्धांतों पर जोर दिया गया था। लोक स्वराज की उनकी अवधारणा आत्मनिर्भर गाँवों और समुदाय के नेतृत्व वाले विकास पर केंद्रित थी, जो राजनीतिक और आर्थिक लोकतंत्र के विकेंद्रीकृत रूप को दर्शाती थी। शासन के बारे में गांधी की दृष्टि नैतिक राजनीति (लोक नीति) पर आधारित थी, जिसमें नैतिक नेतृत्व, सामाजिक कल्याण और व्यक्तिगत स्वतंत्रता को प्राथमिकता दी गई थी। गांधीवादी आदर्शों से प्रभावित जयप्रकाश नारायण ने बाद में इन अवधारणाओं का विस्तार किया, खासकर भारत की स्वतंत्रता के बाद की अवधि के दौरान। उन्होंने पार्टी-रहित लोकतंत्र की प्रणाली की वकालत की, जहाँ

राजनीतिक शासन को राजनीतिक अभिजात वर्ग के बजाय सीधे लोगों द्वारा नियंत्रित किया जाएगा। भारत में 1970 के दशक के दौरान 'संपूर्ण क्रांति' के लिए उनके आह्वान का उद्देश्य सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक सुधारों के माध्यम से अधिक न्यायसंगत समाज बनाना था। इसके विपरीत, नेपाल में माओवादी आंदोलन, मार्क्सवादी और माओवादी विचारधाराओं से प्रेरित होकर, समाजवाद और लोकतांत्रिक शासन की ओर एक अलग रास्ता अपनाता है। 1990 के दशक में उभरने वाले माओवादी विद्रोह को राजशाही को उखाड़ फेंकने और वर्ग संघर्ष और सशस्त्र क्रांति के आधार पर लोगों के लोकतंत्र की स्थापना करने की इच्छा से प्रेरित किया गया था। गांधी के अहिंसक दृष्टिकोण के विपरीत, माओवादी कट्टरपंथी परिवर्तन और क्रांतिकारी साधनों के माध्यम से सामाजिक न्याय प्राप्त करने में विश्वास करते थे। अपने अलग-अलग तरीकों के बावजूद, तीनों विचारधाराएँ-गांधीवादी, जयप्रकाश नारायण और माओवादी - एक ही लक्ष्य साझा करती हैं-समाज के हाशिए पर पड़े वर्गों को सशक्त बनाना और अधिक न्यायपूर्ण और समतापूर्ण सामाजिक व्यवस्था बनाना। हालाँकि, उनकी रणनीतियों में काफी अंतर है, जहाँ गांधी और जयप्रकाश नारायण अहिंसा और नैतिक शासन पर जोर देते हैं, वहीं माओवादी सशस्त्र संघर्ष और सामंती ढाँचों को उखाड़ फेंकने पर ध्यान केंद्रित करते हैं।

लोकतंत्र, शासन के एक रूप और सामाजिक संगठन के मार्गदर्शक सिद्धांत के रूप में, दुनिया भर में अलग-अलग तरीके से व्याख्या और अभ्यास किया गया है। दक्षिण एशिया में, यह विविध वैचारिक धाराओं में विकसित हुआ है, जो क्षेत्रीय सामाजिक और राजनीतिक आंदोलनों में गहराई से निहित है। इस क्षेत्र में दो उल्लेखनीय वैचारिक ढांचे हैं, एक तरफ गांधीवादी और जयप्रकाश नारायण के लोकतंत्र के मॉडल, लोक स्वराज (स्व-शासन), और लोक नीति (जन-केंद्रित नीतियाँ), और दूसरी तरफ नेपाल में माओवादी आंदोलन। यह तुलनात्मक अध्ययन समाजवाद, लोगों की शक्ति और लोकतांत्रिक शासन के इन मॉडलों की समानताओं, मतभेदों और वैचारिक आधारों का पता लगाने का प्रयास करता है। भारत के स्वतंत्रता संग्राम के सबसे प्रमुख नेताओं में से एक महात्मा गांधी ने लोकतंत्र के एक ऐसे रूप की कल्पना की थी जिसमें जमीनी स्तर पर शासन, अहिंसा और नैतिक सिद्धांतों पर जोर दिया गया था। लोक स्वराज की उनकी अवधारणा आत्मनिर्भर गाँवों और समुदाय के नेतृत्व वाले विकास पर केंद्रित थी, जो राजनीतिक और आर्थिक लोकतंत्र के विकेंद्रीकृत रूप को दर्शाती थी। शासन के बारे में गांधी की दृष्टि नैतिक राजनीति (लोक नीति) पर आधारित थी, जिसमें नैतिक नेतृत्व, सामाजिक कल्याण और व्यक्तिगत स्वतंत्रता को प्राथमिकता दी गई थी। गांधीवादी आदर्शों से प्रभावित जयप्रकाश नारायण ने बाद में इन अवधारणाओं का विस्तार किया, खासकर भारत की स्वतंत्रता के बाद की

अवधि के दौरान। उन्होंने पार्टी-रहित लोकतंत्र की प्रणाली की वकालत की, जहाँ राजनीतिक शासन को राजनीतिक अभिजात वर्ग के बजाय सीधे लोगों द्वारा नियंत्रित किया जाएगा। भारत में 1970 के दशक के दौरान 'संपूर्ण क्रांति' के लिए उनके आह्वान का उद्देश्य सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक सुधारों के माध्यम से अधिक न्यायसंगत समाज बनाना था। इसके विपरीत, नेपाल में माओवादी आंदोलन, मार्क्सवादी और माओवादी विचारधाराओं से प्रेरित होकर, समाजवाद और लोकतांत्रिक शासन की ओर एक अलग रास्ता अपनाता है। 1990 के दशक में उभरने वाले माओवादी विद्रोह को राजशाही को उखाड़ फेंकने और वर्ग संघर्ष और सशस्त्र क्रांति के आधार पर लोगों के लोकतंत्र की स्थापना करने की इच्छा से प्रेरित किया गया था। गांधी के अहिंसक दृष्टिकोण के विपरीत, माओवादी कट्टरपंथी परिवर्तन और क्रांतिकारी साधनों के माध्यम से सामाजिक न्याय प्राप्त करने में विश्वास करते थे। अपने अलग-अलग तरीकों के बावजूद, तीनों विचारधाराएँ- गांधीवादी, जयप्रकाश नारायण और माओवादी-एक ही लक्ष्य साझा करती हैं-समाज के हाशिए पर पड़े वर्गों को सशक्त बनाना और अधिक न्यायपूर्ण और समतापूर्ण सामाजिक व्यवस्था बनाना। हालाँकि, उनकी रणनीतियों में काफी अंतर है, जहाँ गांधी और जयप्रकाश नारायण अहिंसा और नैतिक शासन पर जोर देते हैं, वहीं माओवादी सशस्त्र संघर्ष और सामंती ढाँचों को उखाड़ फेंकने पर ध्यान केंद्रित करते हैं।

यह अध्ययन महात्मा गांधी और जयप्रकाश नारायण द्वारा वकालत किए गए लोकतंत्र, लोक स्वराज, लोक नीति और समाजवादी मूल्यों के वैचारिक ढाँचों की तुलना नेपाल में माओवादी आंदोलन से करेगा। यह उनके दर्शन, परिवर्तन प्राप्त करने के तरीकों और दक्षिण एशिया में समकालीन राजनीतिक प्रवचन में उनकी प्रासंगिकता का विश्लेषण करेगा। यह उनके दर्शन, परिवर्तन प्राप्त करने के तरीकों और दक्षिण एशिया में समकालीन राजनीतिक प्रवचन में उनकी प्रासंगिकता का विश्लेषण करेगा।

**गांधीवादी मॉडल: लोक स्वराज और लोक नीति**

**लोक स्वराज: विकेंद्रीकृत स्वशासन:-**लोक स्वराज के रूप में व्यक्ति महात्मा गांधी की लोकतंत्र की दृष्टि, अहिंसा और सत्य के उनके दर्शन में गहराई से निहित थी। लोकतंत्र की पश्चिमी अवधारणा के विपरीत, जो अक्सर चुनावी राजनीति और केंद्रीकृत राज्य शक्ति पर जोर देती है, गांधी ने शासन की एक विकेंद्रीकृत प्रणाली की कल्पना की, जहाँ सत्ता जमीनी स्तर पर होगी। गांधी के लिए, गाँव स्वशासन की मूलभूत इकाइयाँ थी, और उनका मानना था कि सच्चा लोकतंत्र तभी प्राप्त किया जा सकता है जब गाँव आत्मनिर्भर और स्वशासी बन जाएँ। लोक स्वराज के बारे में गांधी का विचार केवल राजनीतिक स्वायत्तता से आगे बढ़कर आर्थिक और सामाजिक आत्मनिर्भरता को शामिल करता है। उन्होंने आर्थिक स्वतंत्रता प्राप्त करने के साधन के रूप में कुटीर उद्योगों, विशेष रूप से कताई और बुनाई के कारण का समर्थन किया। इस दृष्टिकोण का उद्देश्य व्यक्तियों और समुदायों को सशक्त बनाना, केंद्रीकृत संस्थानों पर निर्भरता कम करना और स्थानीय अर्थव्यवस्थाओं को बढ़ावा देना था।

**लोक नीति: नैतिक राजनीति:-**गांधी के ढाँचे में, राजनीति नैतिकता से अविभाज्य थी। उन्होंने लोक नीति या नैतिक राजनीति की अवधारणा का प्रस्ताव रखा, जिसमें नैतिक नेतृत्व, पारदर्शिता और लोगों की सेवा पर जोर दिया गया। गांधी का मानना था कि राजनीतिक नेताओं को अहिंसा, करुणा और सत्यनिष्ठा के सिद्धांतों द्वारा निर्देशित, सार्वजनिक भलाई के ट्रस्टी के रूप में कार्य करना चाहिए। वे सत्ता की राजनीति और व्यक्तिगत लाभ की खोज के आलोचक थे, इसके बजाय एक ऐसी राजनीति की वकालत करते थे जो पूरे समाज को ऊपर उठाती हो। गांधी का नैतिक नेतृत्व और अहिंसा पर जोर उनके मॉडल को अन्य समकालीन लोकतांत्रिक सिद्धांतों से अलग करता है, जो अक्सर सत्ता की

गतिशीलता और चुनावी प्रतिस्पर्धा को प्राथमिकता देते हैं। नैतिक शासन और जमीनी स्तर के लोकतंत्र के बारे में चर्चाओं में उनका दृष्टिकोण आज भी प्रासंगिक है।

**जयप्रकाश नारायण: पार्टी-रहित लोकतंत्र और संपूर्ण क्रांति**

**पार्टी-रहित लोकतंत्र:-**जयप्रकाश नारायण, एक प्रमुख राजनीतिक विचारक और कार्यकर्ता, गांधी के विचारों से बहुत प्रभावित थे, लेकिन उन्होंने लोकतंत्र के प्रति अपना अलग दृष्टिकोण विकसित किया। स्वतंत्रता के बाद के भारत में राजनीतिक दलों के कामकाज से निराश होकर, नारायण ने पार्टी-रहित लोकतंत्र की वकालत की। उन्होंने तर्क दिया कि राजनीतिक दल, जनता की सेवा करने के बजाय, अक्सर स्वार्थी संस्थाएँ बन जाते हैं जो भ्रष्टाचार और विभाजन को बढ़ावा देते हैं। नारायण ने एक ऐसी प्रणाली की कल्पना की, जहाँ शासन सीधे लोगों द्वारा नियंत्रित होगा, राजनीतिक दलों की मध्यस्थ भूमिका के बिना। उन्होंने विभिन्न स्तरों पर लोगों की समितियों और परिषदों की स्थापना का प्रस्ताव रखा, जो भागीदारीपूर्ण निर्णय लेने और जवाबदेही सुनिश्चित करेंगे। इस मॉडल का उद्देश्य कुछ लोगों के हाथों में सत्ता के संकेंद्रण को खत्म करना और वास्तविक लोकतांत्रिक भागीदारी को बढ़ावा देना था।

**संपूर्ण क्रांति:-**1970 के दशक में, जयप्रकाश नारायण ने भारत को परेशान करने वाले विभिन्न सामाजिक-आर्थिक और राजनीतिक मुद्दों को संबोधित करने के लिए संपूर्ण क्रांति ('संपूर्ण क्रांति') का आह्वान किया। यह आंदोलन केवल राजनीतिक सुधार तक सीमित नहीं था, बल्कि इसका उद्देश्य समाज को सभी स्तरों पर बदलना था-राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक। नारायण की संपूर्ण क्रांति का उद्देश्य था- राजनीतिक सुधार- पार्टी-रहित लोकतंत्र की स्थापना करना और शासन में पारदर्शिता और जवाबदेही सुनिश्चित करना। आर्थिक सुधार: संसाधनों के समान वितरण को बढ़ावा देना और आर्थिक असमानताओं को कम करना। सामाजिक सुधार- हाशिए पर पड़े समुदायों का उत्थान करना और जाति-आधारित और लिंग-आधारित भेदभाव को खत्म करना। सांस्कृतिक और शैक्षिक सुधार: ईमानदारी, सामाजिक सेवा और राष्ट्रीय एकीकरण के मूल्यों को बढ़ावा देना। प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी द्वारा लगाए गए आपातकाल (1975-1977) के दौरान नारायण के संपूर्ण क्रांति के आह्वान ने महत्वपूर्ण गति प्राप्त की, क्योंकि यह व्यापक सार्वजनिक असंतोष के साथ गूँज उठा। हालाँकि आंदोलन अपने सभी उद्देश्यों को प्राप्त नहीं कर सका, लेकिन इसने भारतीय राजनीति और नागरिक समाज पर एक स्थायी प्रभाव छोड़ा।

**नेपाल में माओवादी आंदोलन: क्रांतिकारी लोकतंत्र**

**ऐतिहासिक संदर्भ:-**नेपाल में माओवादी आंदोलन 1990 के दशक की शुरुआत में उभरा, जो राजशाही और देश में व्याप्त सामाजिक-आर्थिक असमानताओं के प्रति व्यापक असंतोष से प्रेरित था। मार्क्सवादी-लेनिनवादी-माओवादी विचारधाराओं से प्रेरित होकर, नेपाल की कम्युनिस्ट पार्टी (माओवादी) ने राजशाही को उखाड़ फेंकने और साम्यवादी राज्य की स्थापना के उद्देश्य से 1996 में जनयुद्ध शुरू किया। माओवादियों ने भूमि सुधार, गरीबी और जातीय अल्पसंख्यकों और निचली जातियों के हाशिए पर जाने जैसे मुद्दों को संबोधित करने की कोशिश की। उनकी रणनीति लंबे समय तक सशस्त्र संघर्ष के माओवादी सिद्धांतों पर आधारित थी, जिसमें ग्रामीण किसानों को संगठित करने पर ध्यान केंद्रित किया गया था।

**क्रांतिकारी लोकतंत्र:-**नेपाल में माओवादी आंदोलन ने क्रांतिकारी लोकतंत्र का एक मॉडल प्रस्तावित किया, जिसका उद्देश्य मौजूदा सामंती और अर्ध-सामंती संरचनाओं को सर्वहारा वर्ग के नेतृत्व वाले समाजवादी राज्य से बदलना था। इस मॉडल ने जोर दिया-  
**वर्ग संघर्ष:** सत्तारूढ़ अभिजात वर्ग को उखाड़ फेंकना और वर्गहीन समाज की

स्थापना करना।

लोगों का शासन: निर्णय लेने में प्रत्यक्ष भागीदारी सुनिश्चित करने के लिए विभिन्न स्तरों पर लोगों की परिषदों और विधानसभाओं की स्थापना करना। भूमि पुनर्वितरण: भूमिहीन और गरीब किसानों को भूमि पुनर्वितरित करने के लिए कट्टरपंथी भूमि सुधारों को लागू करना। माओवादियों ने जातीय अल्पसंख्यकों, महिलाओं और निचली जातियों सहित हाशिए के समूहों के अधिकारों को बढ़ावा देने पर भी ध्यान केंद्रित किया। गांधी और जयप्रकाश नारायण के विपरीत, जिन्होंने अहिंसक तरीकों पर जोर दिया, माओवादियों का मानना था कि सामाजिक न्याय प्राप्त करने के लिए सशस्त्र क्रांति ही एकमात्र साधन है। परिणाम और विरासत नेपाल में माओवादी विद्रोह के परिणामस्वरूप महत्वपूर्ण राजनीतिक परिवर्तन हुए, जिसमें राजशाही का उन्मूलन और 2008 में एक संघीय लोकतांत्रिक गणराज्य की स्थापना शामिल है। माओवादी पार्टी अंततः मुख्यधारा की राजनीतिक प्रक्रिया में शामिल हो गई और नेपाल के नए संविधान का मसौदा तैयार करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। जबकि माओवादी आंदोलन अपने कुछ लक्ष्यों को प्राप्त करने में सफल रहा, इसे अपने हिंसक तरीकों और विद्रोह के दौरान किए गए मानवाधिकारों के हनन के लिए आलोचना का भी सामना करना पड़ा। फिर भी, इसने सामाजिक न्याय और असमानता के मुद्दों को नेपाल के राजनीतिक एजेंडे में सबसे आगे ला दिया।

**तुलनात्मक विश्लेषण**

**समानताएँ:-**

**सामाजिक न्याय पर ध्यान:** तीनों विचारधाराओं ने सामाजिक असमानताओं को दूर करने और हाशिए पर पड़े समुदायों को सशक्त बनाने की आवश्यकता पर जोर दिया। गांधी, नारायण और माओवादियों ने अधिक न्यायपूर्ण और समतापूर्ण समाज बनाने की मांग की।

**जमीनी स्तर पर भागीदारी:** गांधी का लोक स्वराज, नारायण का दल-रहित लोकतंत्र और लोगों के शासन की माओवादी अवधारणा सभी ने निर्णय लेने में जमीनी स्तर पर भागीदारी पर जोर दिया।

**केंद्रीकृत सत्ता की आलोचना:** इनमें से प्रत्येक मॉडल केंद्रीकृत सत्ता संरचनाओं की आलोचना करता था। गांधी और नारायण ने विकेंद्रीकृत शासन की वकालत की, जबकि माओवादियों ने केंद्रीकृत राजतंत्र को खत्म करने की मांग की।

**अंतर**

**पद्धति:** सबसे महत्वपूर्ण अंतर उनके तरीकों में है। गांधी और नारायण ने गैर-विकेंद्रीकृत शासन पर जोर दिया गांधीजी ने नैतिक नेतृत्व और अहिंसा पर जोर जोर दिया, उसने उनके मॉडल को अन्य समकालीन लोकतांत्रिक सिद्धांतों से अलग कर दिया, जो अक्सर सत्ता की गतिशीलता और चुनावी प्रतिस्पर्धा को प्राथमिकता देते थे। नैतिक शासन और जमीनी स्तर पर लोकतंत्र के बारे में चर्चाओं में उनका दृष्टिकोण आज भी प्रासंगिक है। हिंसा और नैतिक अनुनय पर आधारित था, जबकि माओवादियों ने सशस्त्र संघर्ष को अपनी प्राथमिक रणनीति के रूप में अपनाया।

**वैचारिक आधार:** गांधी का दर्शन आध्यात्मिक और नैतिक सिद्धांतों में निहित था, नारायण का गांधीवादी समाजवाद में और माओवादियों का मार्क्सवादी-लेनिनवादी-माओवादी विचारधारा में।

**लोकतंत्र की दृष्टि:** गांधी और नारायण ने नैतिक मूल्यों और विकेंद्रीकरण पर आधारित एक सहभागी लोकतंत्र की कल्पना की थी। दूसरी ओर, माओवादियों ने शुरू में सर्वहारा राज्य का लक्ष्य रखा था, लेकिन बाद में अपनी क्रांति की सफलता के बाद उन्होंने बहुदलीय लोकतांत्रिक प्रणाली को अपनाया।

**समकालीन दक्षिण एशिया में प्रासंगिकता:-**

**जमीनी स्तर पर शासन:** भारत और नेपाल में स्थानीय शासन और समुदाय के

नेतृत्व वाले विकास पर समकालीन बहस में गांधी का विकेंद्रीकृत शासन का दृष्टिकोण प्रासंगिक बना हुआ है।

**नैतिक नेतृत्व:** गांधी और नारायण द्वारा नैतिक नेतृत्व पर जोर आज के संदर्भ में महत्वपूर्ण है, जहां भ्रष्टाचार और सत्ता की राजनीति लोकतांत्रिक प्रणालियों को प्रभावित करती रहती है।

**सामाजिक न्याय:** सामाजिक न्याय और हाशिए पर पड़े समूहों के अधिकारों पर माओवादी आंदोलन के फोकस ने नेपाल में नीतिगत सुधारों और राजनीतिक विमर्श को प्रभावित किया है।

**सहभागी लोकतंत्र:** राजनीतिक दलों के बिना सहभागी लोकतंत्र के नारायण के विचार क्षेत्र मंत दलीय राजनीति से बढ़ते मोहभंग के सामने एक वैकल्पिक दृष्टिकोण प्रदान करते हैं।

**निष्कर्ष:-** महात्मा गांधी, जयप्रकाश नारायण और नेपाल के माओवादी आंदोलनों की विचारधाराएँ लोकतंत्र, समाजवाद और सामाजिक न्याय के लिए अलग-अलग लेकिन अतिव्यापी दृष्टिकोणों का प्रतिनिधित्व करती हैं। जहाँ गांधी और नारायण ने अहिंसा, नैतिक शासन और विकेंद्रीकृत लोकतंत्र पर जोर दिया, वहीं माओवादियों ने क्रांतिकारी सामाजिक परिवर्तन हासिल करने के लिए एक क्रांतिकारी मार्ग अपनाया। अपने मतभेदों के बावजूद, तीनों ने हाशिए पर पड़े लोगों को सशक्त बनाने और अधिक न्यायसंगत समाज बनाने की कोशिश की। यह तुलनात्मक अध्ययन दक्षिण एशिया में लोकतांत्रिक शासन और समाजवादी मूल्यों की व्याख्या और अभ्यास के विविध तरीकों पर प्रकाश डालता है। इन मॉडलों को समझना लोकतंत्र, सामाजिक न्याय और समावेशी विकास के लिए क्षेत्र के चल रहे संघर्षों में मूल्यवान अंतर्दृष्टि प्रदान करता है।

**संदर्भ सूची :-**

1. भट्टाचन, के. बी. (2000)। नेपाली माओवादी आंदोलन: सामाजिक-राजनीतिक आयामों का एक अध्ययन। काठमांडू: नेपाल का समाजशास्त्रीय संघ।
2. उप्रेती, बी. आर. (2006)। नेपाल में सशस्त्र संघर्ष और शांति प्रक्रिया: माओवादी विद्रोह, पिछली वार्ताएँ और संघर्ष परिवर्तन के अवसर। दक्षिण एशिया क्षेत्रीय समन्वय कार्यालय।
3. शर्मा, एम. (2009)। नेपाल में माओवादी आंदोलन: वैचारिक चुनौतियाँ और उपलब्धियाँ। नेपाल शांति अध्ययन संस्थान।
4. मिश्रा, ए. (2002)। नेपाल में लोकतंत्र की राजनीति और क्रांतिकारी आंदोलन। हिमालयन जर्नल ऑफ सोशियोलॉजी एंड एंथ्रोपोलॉजी।
5. गांधी, एम. के. (1997)। हिंद स्वराज या भारतीय स्वशासन। नवजीवन पब्लिशिंग हाउस।
6. नारायण, जे. (1959)। भारतीय राजनीति के पुनर्निर्माण के लिए एक दलील। किताब महल।
7. नारायण, जे. (1978)। संपूर्ण क्रांति। मैकमिलन।
8. पारेख, बी. (1991)। गांधी का राजनीतिक दर्शन: एक आलोचनात्मक परीक्षा। यूनिवर्सिटी ऑफ नोट्रे डेम प्रेस।

# रांगेय राघव के ऐतिहासिक उपन्यास और भारतीय संस्कृति का समावेश

रजनीश कुमार

शोधार्थी, तिलकामांझी भागलपुर विश्वविद्यालय, भागलपुर, बिहार

सारांश:- उपन्यास प्रायः जीवन के व्यापक परिदृश्यों को अपनाता है। जीवन के विराट फ्लक को कई प्रकार से उपन्यास में विन्यक्ति किया जाता है। इतिहास को वस्तु चयन का जब आधार बनाया जाता है, तो ऐतिहासिक उपन्यास का रचना संभव है। आधारभूत तत्व प्रतिहास होते हुए भी ऐतिहासिक उपन्यासों में सांस्कृतिक क्रिया-कलाप ही कथ्य के रूप में प्रयुक्त होते हैं। अज्ञेय के अनुसार 'संस्कृति का ऐतिहासिक संदर्भ होता है, जिसकी उपेक्षा नहीं हो सकती, उसी तरह यह भी सत्य है कि इतिहास का भी एक सांस्कृतिक संदर्भ है जिसकी उपेक्षा नहीं हो सकती। ऐतिहासिक संदर्भ सोकर संस्कृति मरुस्थल में भटकने लगती है, उसे दिशा-ज्ञान नहीं रहता। किन्तु सांस्कृतिक संदर्भ खोकर इतिहास तत्कालीन भर जाता है।' अतः संस्कृति इतिहास की जीवनी शक्ति है। ऐतिहासिक उपन्यास इतिहास और संस्कृति का संगम स्थल है।

प्रस्तावना:- रांगेय राघव ने भारतीय इतिहास के जितने सांस्कृतिक पक्ष लिये हैं, वे विषय की दृष्टि से एकदम अद्यतन हैं। 'मुर्दों का टीला' और अंधेरे के जुगनू' में उन्होंने भारतीय इतिहास के तिथिहीन प्रागैतिहासिक काल के परिदृश्य को प्रस्तुत किया है। इतिहास की श्रंखलाओं को जोड़कर उन्होंने इन उपन्यासों में तदयुगीन सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक और राजनीतिक पृष्ठभूमि को उजागर किया है। सांस्कृतिक दृष्टि के संदर्भ में हिन्दी के ऐतिहासिक उपन्यासों में रांगेय राघव का 'मुर्दों का टीला' अद्यन्त महत्वपूर्ण प्रयास करें।

सिन्धु घाटी संस्कृति और 'मुर्दों का टीला':- सन् 1921 में पंजाब में हुई खुदाई से भारत का प्रागैतिहासिक कालीन नागरिक सभ्यता का पता मिल गया, 'अत्यन्त प्राचीन काल में सिन्धु और बलूचिस्तान के प्रदेशों में ताम्र युग की जिस सभ्यता का विकास हुआ था, उसके बाद सिन्धु नदी का घाटी एवं पश्चिमी भारत में एक अन्य उन्नत व समृद्ध सभ्यता का विकास हुआ, जिसके प्रधान नगरों के भग्नावशेष इस समय हड़प्पा और मोहनजोदड़ो नामक स्थानों पर उपलब्ध हुआ है। यह सभ्यता पूर्व में हरियाणा, राजस्थान तथा गुजरात से शुरू होकर पश्चिम में मकरान तक विस्तृत था। उत्तर में इसका विस्तार हिमालय तक था। इसके प्रधान नगर सिन्धु व उसकी सहायक नदियों के समीपवर्ती प्रदेशों में विद्यमान थे, इसीलिए इसे सिंधु घाटी सभ्यता कहा जाता है। विश्व इतिहास में सिन्धु घाटी सभ्यता गौरवशाली स्थान रखता है। पाश्चात्य सभ्यता एवं संस्कृति से कई बातों में इसकी समानता दिखाई पड़ती है। रांगेय राघव का 'मुर्दों का टीला' इस प्रागैतिहासिक परिदृश्य के आधार पर रचित है। उपन्यास में तत्कालीन भारतीय संस्कृति का समावेश किया गया है। जो काल्पनिक भी है। 'मुर्दों का टीला' मोहनजोदड़ो का पर्यायवाची

शब्द है। आर्यों को पूरे भारत में फैलने में सैकड़ों वर्ष लगे थे। इसीलिए उपन्यास में रांगेय राघव ने आर्यों को एकदम मोहनजोदड़ो नहीं पहुंचने दिया है। मोहनजोदड़ो के समीपवर्ती देश कीकट में आर्यों का आक्रमण दिखाया गया है। दिनकर के समान रांगेय राघव ने भी मोहनजोदड़ो भी सभ्यता का आर्य पूर्व द्रविड़ सभ्यता मानते हैं। इसलिए आचोच्य उपन्यास में उन्होंने द्रविड़ दृष्टिकोण से वर्णन किया है। रांगेय राघव के शब्दों में '3500 ई0 पूर्व ही लगभग आर्यों के आने का समय बताया जाता है, क्योंकि अभी तक मोहनजोदड़ो में आर्य चिह्न नहीं मिले हैं, मैं समझता हूँ वे यहां नहीं आए और जब वे आए तब मोहनजोदड़ो नहीं रहा।'

'मुर्दों का टीला' में रांगेय राघव ने द्रविड़ों को मूर्ति पूजक दिखाया है। सर्प महामाई, महादेव, अश्वत्थ, सूर्य आदि की पूजा उनमें मिलती है। उपन्यास में महामाई के मंदिर का वर्णन मिलता है- 'महामाई के विराट मंदिर में लोग खचाखच भर गए। विशेष नागरिकों और विदेशियों के बैठने का ऊँचा मंच था। उसी पर पूजा का समस्त व्यवधान था। वह स्थान बिल्कुल महामाई को विराट मूर्ति के चरणों पर श्वेत प्रस्तर का काफ़ी लंबा-चौड़ा था। उसमें बहुत दूर तक लंबी-लंबी सीड़ियाँ थीं जिनके नीचे समस्त समुदाय एकत्र हुआ था।' जादू टोना का भी उनमें काफ़ी प्रचलन था। खेती के लिए पानी की आवश्यकता थी। बादलों की प्रतीक्षा करने वाले सहस्रों वर्षों से रहते आए द्रविड़ों के बीच में यदि जादू टोने का प्रचलन रहा तो इसे सहज समझना चाहिए। उपन्यासकार ने आलोच्य उपन्यास में तत्कालीन लोगों के अधविश्वासों पर भी प्रकाश डाला है। देवता की आराधना के लिए गांव की एक कन्या बलि दी जाती है, तो नीलूफ़र इसे अत्याचार कहती है। तब गांव वालों का कथन है कि 'अत्याचार न कहे, स्त्री। यह ग्राम का प्रताप फैलाएगा, मंगल लाएगा। हमारी नहरों में अबाध जल आ जाएगा और गेहूँ की बीस-बीस बालें बढ़ जाएँगी। हमारे घरों में वैभव बढ़ेगा। पितर सुखी होंगे। हमारी कब्रों को पशु खोदकर खा नहीं सकेंगे। रांगेय के प्रेत आकर हमारे बच्चों को सता नहीं सकेंगे।' रांगेय राघव ने 'मुर्दों का टीला' में तत्कालीन गणराज्य का संकेत दिया है। उस समय गण-व्यवस्था प्रचलित थी। गणपति, उपगणपति आदि पदाधिकारियों का वर्णन उपन्यास में किया गया है। गण संस्था में प्रस्ताव उपगणपति रखता था। जैसे मोहनजोदड़ो के महानागरिक।

मुर्दों का टीला वास्तव में प्राचीनतम इतिहास का पुनराविष्कार हुआ है जिसमें उपन्यासकार की कल्पना शक्ति का पर्याप्त समावेश है। सिंधु घाटी की खुदाई से प्राप्त भग्नावशेषों के आधार पर इतिहासकारों ने यह अनुमान लगाया है कि 'सौन्धव सभ्यता में धर्म का बड़ा महल था। ये लोग पूजा में अहिराज, महामाई, शिव आदि को विशेष महत्व देते हैं। इस प्रकार

‘मुर्दों का टीला’ में प्रागैतिहासिक भारत की संस्कृति और सभ्यता को साक्षात्कृत किया गया है।

**महाकाव्य कालीन जातीय-संस्कृति और ‘अंधेरे के जुगनू’**:-रांगेय राघव का ‘अंधेरे के जुगनू’ महाकाव्य कालीन इतिहास पर आधारित ऐतिहासिक उपन्यास है। इसमें महाजनपद से भी प्राचीन युग का चित्रण मिलता है। रांगेय राघव ने ‘मुर्दों का टीला’ में जिस सतर्कता से प्राचीन भारत की धार्मिक और सांस्कृतिक परिस्थितियों का चित्रण किया है, वैसी सतर्कता ‘अंधेरे के जुगनू’ में दर्शाया नहीं है। उसमें उन्होंने ब्राह्मण वर्ग को गौरव प्रदान दिया है। भारतीय परंपरा को वर्णश्रम के अनुसार ब्राह्मण अवध्य है। आभीर राज भूम-यु प्रावृट की पुत्री को बंदी बनाता है तो वह कहता है- ‘‘एक अपनी दुहिता को देखूँ कि सहस्रों सौवीर कन्याओं के लिए रोऊँ, जो तुम्हारे पुरबद्धों के नीचे अपनी लज्जा को कुचले जाते देखकर चिल्लाती हैं। जिनके सौमगल्य को तुम्हारी वाहिनी ने रक्त से धोया है, उन्हें देखूँ। यदि तुम मुझे खंड-खंड कर दो तब भी अंगीरस प्रावृट अपना सौवीर गौरव नहीं छोड़ सकता।’ ‘अंधेरे के जुगनू’ में शोणकेतु सनगा से कहता है - ‘‘अनबूझ लड़की। तु जानती है कि तू किससे बात कर रही हैं, खेद है किन्तु वायु के समान है। तू मेरी हानि कर सकती है, परन्तु मैं तुझ पर खड्ग नहीं उठा सकता क्योंकि तू स्त्री है, क्योंकि तुझ से पराजित होकर मेरा अपमान तो है, किन्तु तुझ पर विजय प्राप्त करने में मेरा कोई गौरव नहीं।’ स्त्री से अत्याचार या उसके साथ वीरता दिखाना भारतीय संस्कृति में वर्जित है।

‘‘अंधेरे के जुगनू’ में वर्ण संघर्ष के अन्तर्विरोधों को भी चित्रित किया गया है। भूमन्यू की हाल से ब्राह्मणी विधवा बुहद्वति का पाणीग्रहण वृषकेतु के साथ होता है। भूमन्यू ने क्षत्रिय और ब्राह्मण कुल के बीच फूट डालने के लिए षडयंत्र रचा था। बृहद्वति वरुद्ध होकर वृषकेतु से कहता है कि ‘‘नीच क्षत्रिय तुम्हारे भीतर इतना विष था। तुम्हारे केतु कूल के लिए मेरे पिता ने क्या नहीं किया, किन्तु यही उसका फल है कि तुमने उसको विधवा पुत्री का धर्म विनष्ट किया है। क्षत्रिय होकर तुमने ब्राह्मणी पर दृष्टिपात किया।’ भारतीय परंपरा के अनुसार ब्राह्मणी विधवा का विवाह उसके देवर के साथ संभव होता है। और किसी से नहीं। यह जातीय संकीर्णता मानवीय संस्कृति को कुटाराघात देने वाला सब से बड़ा अभिशाप है। श्रमण कहते हैं कि ‘‘मनुष्य के कुल से ऊपर उसका कर्तव्य और शील है।’ ‘अंधेरे के जुगनू’ में हमारी जातीय संस्कृति, वर्ण-व्यवस्था, गणतात्मक शासन-प्रणाली के ऐतिहासिक महत्व, दारु-प्रथा, राजनीतिक षडयंत्र आदि मुख्य प्रतिपाद विषय हैं। इसलिए इसमें धार्मिक और सांस्कृतिक पहलुओं को सामाजिक यथार्थ के परिप्रेक्ष्य में आंका गया है।

**हर्षकालीन भारतीय संस्कृति और ‘चीवर’**:-वर्द्धन वंश के शासकों के साथ भारत में शांति एवं वैभव संपन्नता वर्तमान थी। अतः राजनीति, समाज, धर्म एवं संस्कृति सभी क्षेत्रों में हर्षकालीन भारतीय इतिहास का अपना महत्व है। हर्षवर्धन के काल में कान्यकुब्ज महानगर हो चला था। आज के दो सौ वर्ष पूर्व जो गौरव पाटलीपुत्र को प्राप्त था, वह अब धीरे-धीरे यहीं एकत्र होता जा रहा था। चीन तक से व्यापारी यहां आते थे। इस काल में बौद्ध धर्म की विशेष उन्नति हुई थी। महानगर में ब्राह्मण धर्म तथा बौद्ध धर्म दोनों के ही अनुयायी यहां प्रचुर मात्रा में पाए जाते थे। रांगेय राघव ने ‘चीवर’ में इसका वर्णन किया है- ‘‘ढाई कोस लंबे और आधे कोस से भी अधिक चौड़े नगर में तो बौद्ध मठ थे जिनमें दस सहस्र से अधिक महायान तथा हीनयान से प्रदायों के भिक्षु थे और दो सौ देन मंदिरों में कितने सहस्र साधु वास करते थे, यह

कहना कठिन था। कान्य कुब्ज में जैन तीर्थंकर ऋभदेव, राम, कृष्णा तथा बुद्ध के अतिरिक्त महावराह, सूर्य, शिव, आदि का उपासना करने वाले भी थे।’ ‘‘चीवर’ उपन्यास में रांगेय राघव ने बौद्ध धर्म के व्यापक प्रभाव को दिखाया है। उपन्यास में राज्य श्री कहती है- ‘‘तथागत, मैं जानती हूँ मनुष्य का सुख सदैव ही नहीं रहता, किन्तु भगवान। क्या जो आनंद आपने मुझे दिया है। उसे मैं अस्वीकार कर दूँ।’ ‘‘ भारतीय संस्कृति में नानी को पुज्य स्थान दिया गया है। ‘चीवर’ में हर्षवर्धन कहता है- ‘‘सैनिकों आज मैं फिर शपथ ग्रहण करता हूँ, जहां स्त्री पर अत्याचार होगा, वहां मेरा खड्ग प्रलय की प्रचण्ड वृद्धि की भांति चलेगा। मैं मनुष्य की यह जघन्यता कभी भी स्वीकार नहीं कर सकता। राज्य के लिए युद्ध होता रहे, किन्तु माता और भगिनी पूज्य हैं उन पर किसी को भी बलात्कार का अधिकार नहीं है।’ उसी प्रकार भारतीय संस्कृति में ज्ञान का महत्व सबसे बढ़कर है, उपन्यास में चीनी यात्री ह्वेन-सांग का स्वागत करते हुए हर्षवर्धन कहता है- ‘‘हमारे लिए यह गौरव का विषय है कि ऐसा पंडित हमारे यहां उपस्थित हैं। हमारे राज्य के उद्भट पंडितों ने जो एक नए विद्वान को स्वागत में यह महान सौहार्द प्रदर्शित किया है, उससे हमारा शीश उन्नत हो गया है। हमारे सामने ज्ञान मनुष्य का चरम विकास है।’

प्राचीन भारत में कवियों को सम्मानित और आदर करने की परम्परा था। ‘चीवर’ में संस्कृत का महाकवि वाणभट्ट हर्षवर्धन का राजकवि है, हर्ष ने वाणभट्ट को देखकर उसके चरण स्पर्श किए। वह ब्राह्मण था। राज्यश्री ने जिस समय कादम्बरी की उसका हृदय विचलित हो गया। भारतीय संस्कृति में अहिंसा और शांति को अधिक महत्व दिया गया है। ‘चीवर’ उपन्यास में हर्षवर्धन और पुलकेशन के बीच युद्ध का संभावना पर राजयश्री की इच्छा से संधी का प्रस्ताव रखा जाता है। संधी की स्थापना के बारे में राज्यश्री कहती है- ‘‘सम्राट आज नर्मदा की लहरों पर जो, इतिहास लिखा गया वह उश्नर पथ और दक्षिण पथ कभी भी नहीं भूलेगा। आज युद्ध के स्थान पर शांति छा गई है। व्यर्थ की हत्या का अंत हो गया है। सहस्रों नारियां आपको आज हृदय से आशीर्वाद देंगी।’ ‘‘यहां बौद्ध धर्म का व्यापक प्रभाव देखने को मिलता है। इस प्रकार ‘चीवर’ में उपन्यासकार ने हर्ष कालीन भारतीय संस्कृति के सभी पक्षों को उजागर किया है।

**भारतीय सांस्कृतिक में बौद्ध-जैन धर्म का परिदृश्य ‘पक्षी और आकाश’ तथा ‘‘राह न रूकी’’**:-बौद्ध काल में भारत 16 जनपदों में विभक्त था इन जनपदों में परस्पर वैमनस्य रहता था, समस्त देश छोटे-छोटे जनपदों में विभक्त था। इन जनपदों का संकेत ‘राह न रूकी’ में मिलता है। 12 तत्कालीन समाज में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र जैसे चार वर्ण थे। इसमें आपस में द्वेष रहता था। छठी शताब्दी ई0 पू0 का यह समय भारत में बौद्धिक, बैचेनी, शंका और मानसिक कोलाहल का काल था। ईसा के छह वर्षों वर्ष पूर्व तक आकर वैदिक धर्म के खिलाफ खुले विद्रोह को जन्म दिया। इसका संगठित रूप जैन और बौद्ध धर्म में प्रकट हुआ है। जाति-प्रथा को चुनौती देकर बुद्ध ने भारत में एक महान आन्दोलन की शुरुआत की। उन्होंने मनुष्य की मर्यादा जो यह कहकर ऊपर उठाया कि कोई मनुष्य केवल ब्राह्मण कुल में जन्म लेने से पूज्य नहीं हो जाता, न कोई शूद्र होने से पतित होता है। ‘‘पक्षी और आकाश’’ उपन्यास में रांगेय राघव ने इसका संकेत दिया है- ‘‘बुद्ध ने कहा-नहीं भिक्षु कोई जाति श्रेष्ठ नहीं, मनुष्य का शील श्रेष्ठ है।’

बौद्ध धर्म ने जो अहिंसा का सिद्धांत प्रस्तुत किया है वह व्यापक मानव प्रेम का परिचायक है। रांगेय राघव के शब्दों में- बौद्ध धर्म में एक विशेष बात था, उसका व्यापक मानव प्रेम। उसने ही भारत के बाहर जाकर लोगों को

जीता। बौद्ध धर्म भारत में शायद कभी नहीं मरता, क्योंकि कुछ भी हो, उसमें मानव के प्रति प्रेम का ऐसा ज्वलंत तेज था, जो बहुत ही महान था।<sup>14</sup>

रांगेय राघव ने 'पक्षी और आकाश' शीर्षक उपन्यास में बौद्ध धर्म के व्यापक प्रभाव को रेखांकित किया है। उपन्यास में बुद्ध कहते हैं कि 'भिक्षु संघ का निर्माण लोक में ज्ञान की ज्योति फैलाने के लिए है। यहां कर्मों का क्षय है, कर्मों का जाल नहीं। दुःख से छुटकारा पाया जाता है। आज से जो स्त्री अपने पति, पुत्र पिता से, जो दास अपने स्वामी से, जो सैनिक अपने वेतनदाता से, जो ऋणि अपने ऋणदाता से सविनय आज्ञा लेकर स्व मुक्त होकर नहीं आता, उसे प्रव्रज्या मत दो।' 'पक्षी और आकाश' में जैन धर्म के प्रभाव को भी दिखाया गया है। उपन्यास में शलिभद्र और धनकुमार महावीर से दीक्षा लेता है। महावीर कहते हैं कि 'उतार दो यत्र वस्त्र। ये लज्जा का कारण भीतर के पापों को छिपाता है। नग्न हो जाओ, तब देखो कि तुम अपने को विकारों की कुरूपता से छिपा सकते हो या नहीं। नोच दो ये केश, ये तुम्हें सुन्दरता का भ्रम देते हैं, इन्हें चिकना मत करो, हृदय में दया और अहिंसा के स्नेह को जागृत करो। इस देह को दुख दो, क्योंकि इस देह की आत्मा को इस देह के पाप में डाला है..... छोटे परिवार से विशाल परिवार में आओ। इन्द्रियों को जीतने का मार्ग है जिनमार्ग।' 'पक्षी और आकाश' में जैन और बौद्ध धर्म और अन्यान्य सांस्कृतिक प्रभाव के माध्यम से प्राचीन भारत की सांस्कृतिक गरिमा को भी अंकित किया है।

'राह न रूकी' उपन्यास में उपन्यासकार की दृष्टि जैन धर्म की ओर गई है। उनके अनुसार जैन धर्म, बौद्ध धर्म का अग्रिम पथ है जो अधिक उदार, सशक्त और मानवतावादी हैं उनके शब्दों में 'लोगों ने प्रायः बुद्धमत को अधिक देखा है, उन्हें जैन मत का भी व्यापक प्रभाव देखना चाहिए। जैन मत को अपनाने वालों ने अपने समय में बड़े-बड़े प्रयोग किए थे, जो आज भी अपना महत्व रखते हैं। एक दृष्टि से महावीर का मत अधिक व्यापक था। क्योंकि उन्होंने गृहस्थ का अधिक महत्व दिया था। और स्त्रियों को उन्होंने साधना के पथ में प्रायः बराबरी का दर्जा दे दिया था।<sup>16</sup> किंतु जैन धर्म का पलायनवादी रूप रांगेय राघव को स्वीकार्य नहीं है। क्योंकि इससे जनहित और स्वस्थ समाज का भावनाओं को गहरा आघात लगता है। 'राह न रूकी' में दधिवाहन कहता है-'तप और वन। यह जीवन से भागना है, लोक में इससे परिवर्तन नहीं होगा। तपस्वी इस लोक को ठीक नहीं कर पाता तो यहां से भाग जाता है, परन्तु यह मैं ठीक नहीं समझता।' संयम के साथ जीवन-संघर्ष में प्रयत्नरत रहना मनुष्य का सबसे पुनीत कर्तव्य है।

सति वसुमति को जैन साहित्य में चंदनबाला के नाम से बड़ी साध्वी के रूप में माना गया है, उसका महत्वपूर्ण स्थान है। महावीर ने स्त्री संघ के लिए उसे ऊपर जगह दी है। 'राह न रूकी' में जैन महावीर का चर्च भी की गई है- 'श्रमण ने पन्द्रह दिन का उपवास तोड़ा है, यह लड़की धन्य है जिससे इस तपस्वी ने भिक्षा ली है।'<sup>18</sup> महावीर कहते हैं कि 'लोक में व्यक्ति सुख की इच्छा से पाप करता है। सुख तब आता है जब व्यक्ति दूसरे से कुछ अधिक प्राप्त करके, उसे कम देना चाहता है। इसलिए उसे सुख मत समझो, जो अत्याचार से मिलता है।'<sup>19</sup> इसपर 'राह न रूकी' में बुद्ध महावीर युग के उस पुनर्जागरण को प्रस्तुत किया गया है जो हजारों साल के वैदिक युग के अंत में भारत में उपस्थित हुआ था। भारत में यह युग सामांतीय संस्कृति के उदय काल था। अपने प्रत्येक ऐतिहासिक उपन्यास में रांगेय राघव ने भारतीय संस्कृति के किसी न किसी पहलू को प्रश्रय दिया है। यहां पर ध्यान देने योग्य पक्ष यह है कि उनकी दृष्टिकोण अधिक जनवादी तथा मानवीय हैं उन्होंने यह

स्पष्ट किया है कि मैंने तो भारतीय जनता को सामने रखा है। जिस संस्कृति ने यहां जनता का लाभ किया है, मैंने वहीं स्वीकार किया है। मानवता के ऊपर कोई सत्य नहीं है। यह सदियों पहले भारत में तय किया जा चुका है।'<sup>20</sup> रचनाकार चाहे वर्तमान में लीन हो जाए या अतीत में उसका आकर्षक जीवन के केन्द्र के प्रति होना चाहिए।

निष्कर्ष: रांगेय राघव के ऐतिहासिक उपन्यासों का प्रमुख उद्देश्य प्राचीन भारतीय संस्कृति के विभिन्न पहलुओं का सरल एवं सुबोध रूप से प्रमाणिक दिग्दर्शन कराना है। उन्होंने इन उपन्यासों में भारतीय संस्कृति और इतिहास के अन्तर्संबंधों को भी रेखांकित किया है। इतिहास और संस्कृति के कुछ महत्वपूर्ण तथ्यों और आयामों को उपन्यासों का आधार भी बनाया गया है, उनके ऐतिहासिक उपन्यासों में भारतीय संस्कृति की महत्ता तथा हमारी सांस्कृतिक एकता की महत्वपूर्ण विशेषताओं पर भी प्रकाश डाला गया है। ऐसे उपन्यास हिन्दी में राहुल सांस्कृत्यायन या हजारी प्रसाद द्विवेदी की लेखनी से निःसृत हुए हैं। उन्हीं के साथ रांगेय राघव को स्थान दिया जाना चाहिए। प्राचीन भारतीय संस्कृति की गरिमा, विशिष्ट विषमताएं, समयानुकूल परिवर्तन अनेक प्रकार के द्रव्य आदि को औपन्यासिक चित्रपट पर उन्होंने अपनी कलात्मक दक्षता के अनुरूप प्रस्तुत किया है।

संदर्भ सूची:-

1. अज्ञेय - केन्द्र और परिधि, पृ0 247
2. सत्यकेत वेदालंकार - भारतीय संस्कृत का विकास, पृ0 46
3. रांगेय राघव - मुर्दों का टीला, भूमिका
4. रांगेय राघव - मुर्दों का टीला, पृ0 59
5. वहीं, पृ0 114
6. रांगेय राघव- अंधेरे के जुगनू, पृ0 93
7. वहीं, पृ0 53
8. वहीं, पृ0 141
9. वहीं, पृ0 166
10. रांगेय राघव - चीवर, पृ0 12-13
11. वहीं, पृ0 106
12. रांगेय राघव- राह न रूकी, पृ0 51-54
13. रांगेय राघव- पक्षी और आकाश, पृ0 233
14. रांगेय राघव- महायात्रा, गाथा, रैन और चंदा, पृ0 259
15. रांगेय राघव- पक्षी और आकाश, पृ0 249-50
16. रांगेय राघव- राह न रूकी, भूमिका
17. वहीं, पृ0 137
18. वहीं, पृ0 168
19. वहीं, पृ0 175
20. रांगेय राघव-महायात्रा, गाथा, रैन और चंदा, भूमिका

## भारतीय लोक के सांचे में कबीर की कविता

डॉ. राम आशीष तिवारी

असिस्टेंट प्रोफेसर, हिंदी, शासकीय राजमोहिनी देवी कन्या स्नातकोत्तर महाविद्यालय, अंबिकापुर, छत्तीसगढ़

शोध सारांश:-प्रस्तुत शोध आलेख कबीर की कविता और भारतीय लोक संस्कृति के बीच संबंधों की पड़ताल करता है। उनके कार्यों के आलोचनात्मक विश्लेषण के माध्यम से, यह अध्ययन बताता है कि कैसे कबीर की कविता भारतीय लोक संस्कृति को प्रतिबिंबित करती और आकार देती है। सामाजिक न्याय और समानता की वकालत करते हुए सामाजिक मानदंडों और धार्मिक पाखंडों को चुनौती देती है। यह आलेख भारतीय लोक संगीत और कला पर कबीर की कविता के प्रभाव और भारतीय साहित्यिक विरासत में इसकी विरासत की भी जांच करता है। कबीर के पास कोई एकेडमिक सर्टिफिकेट नहीं था। उस समय के सभी मान्य व्यक्तित्व और संस्थान जो किसी भी तरह से मानवता के विरोधी थे, वे कबीर के व्यंग्य वचन से नहीं बच सके। ऐसे लोगों का लोक में प्रचलित उक्तियों और कहावतों से सजाकर स्वागत करते थे। कबीर कहते गए धर्मदास जी लिखते गए। खुद लिखे नहीं, कारण कि 'कागज कलम दवात' की अपेक्षा उनको 'ढाई आखर का प्रेम' पियारा था। कबीर के अनुसार संसार का कोई भी पद-प्रतिष्ठा-प्रभाव अथवा जाति-धर्म-सम्प्रदाय मनुष्यता से बड़ा नहीं हो सकता। कबीर की कविता में लोक का महत्वपूर्ण स्थान है। कबीर ने अपने काव्य में लोक की भावनाओं, अनुभवों और समस्याओं को व्यक्त किया है। उनके काव्य में लोक की जीवनशैली, रीति-रिवाज, और संस्कृति का चित्रण कायदे से हुआ है। कबीर की कविता में लोक के तमाम पहलू दिखाई देते हैं, जैसे- लोक भाषा पर जबरदस्त अधिकार है इनका। कबीर ने अपने काव्य में लोक भाषा का उपयोग बहुतायत किया है, जो कि सरल, स्पष्ट और सहज है। इसी तरह लोक की अधिकांश समस्याओं को कबीर ने अपने कविता के माध्यम से उठाया है, जैसे कि गरीबी, शोषण, और सामाजिक अन्याय। लोक संस्कृति की बात करें तो कबीर ने अपने काव्य में बहुतायत लोक की संस्कृति का चित्रण किया है, जैसे कि त्योहार, रीति-रिवाज, और लोकगीत। लोक भावनाओं में कबीर ने अपने काव्य में लोक की भावनाओं को व्यक्त किया है, जैसे कि प्रेम, करुणा, और विरोध। कबीर के काव्य में लोक महत्व ऐसा है कि कबीर ने अपने काव्य में लोक की आवाज को उठाया है, जो कि वंचित और शोषित वर्गों की आवाज है। कबीर ने अपने काव्य में लोक की चेतना को जगाने की कोशिश की है, जो कि सामाजिक और राजनीतिक परिवर्तन के लिए आवश्यक है। कबीर ने अपने काव्य में लोक की एकता को बढ़ावा देने की कोशिश की है, जो कि सामाजिक और राजनीतिक एकता के लिए आवश्यक है।

बीज शब्द:-लोक संस्कृति, विश्लेषण, सामाजिक मानदंड, सांस्कृतिक परंपरा, मध्यकालीन अंतर्विरोध, लोकधर्म का उत्थान।

अब तक के अध्ययनों ने कबीर की कविता को भक्ति आंदोलन

और भक्ति कविता के प्रतिनिधित्व के रूप में जांचा है जबकि यहां कबीर की कविता में लोक तत्वों और भारतीय संस्कृति पर उनके प्रभाव की पड़ताल की गई है। 15वीं सदी के भारतीय रहस्यवादी कवि कबीर अपने प्रभावशाली कार्यों के लिए प्रसिद्ध हैं जिन्होंने भारतीय साहित्य और संस्कृति को आकार दिया है। कबीर की कविता और भारतीय लोक संस्कृति के बीच संबंध, उनकी रचनाएं सांस्कृतिक परंपराओं को प्रतिबिंबित करती और आकार देती हैं। कबीर का ज्ञान अनुभव से प्राप्त है, इस प्राप्ति में लोक की विधिवत गहराई है भाषा और भाव दोनों स्तर पर यह सिद्ध है। ज्ञान की बात भी लोक प्रचलित रूपकों और अन्योक्तियों द्वारा कही गई हैं। आचार्य शुक्ल इनकी प्रखर प्रतिभा का बखान कर ही चुके हैं और उस ज्ञान में भी- 'अनेक प्रकार के रूपकों और अन्योक्तियों द्वारा इन्होंने ज्ञान की बातें कही हैं।' यह ज्ञान उनके खुद का था। इसके लिए किसी शास्त्र ज्ञानी पंडित और मौलवी के दरवाजे नहीं जाना पड़ा। उलटबांसी का प्रयोग इन्हीं ज्ञानचंदों को ललकार स्वरूप भेंट है। यह तो मानना ही पड़ेगा कि ज्ञान के लिए पोथी नहीं प्रेम पर्याप्त है और उस प्रेम जाति धर्म नहीं है। यहां साधु की जाति मत पूछिए ज्ञान का पता करिए, यह ज्ञान वही वाला है जहां केवल प्रेम के लिए जगह है- मनुष्यता वाला प्रेम।

कबीरदास जब कहते हैं कि, 'निरधन आदर को इन देहइ। लाख जतन करै ओहू चित न धरेउ।'<sup>2</sup> तब यह मानी बात हो जाती है कि किस तरह निर्धन और गरीब व्यक्ति उपेक्षित है। आदर तो क्या उसकी ओर ध्यान तक नहीं जाता किसी तरह का। निर्धनता और जहालत मध्यकाल की सबसे बड़ी चुनौती और सच्चाई थी इन प्रसंगों की पीड़ा तुलसीदास के यहां भी है। जब वे कहते हैं कि निर्धनता और पेट की आग सबसे बड़ी विडम्बना है। पेट भरने के बाद ही चिंतन को ओर जाता है आदमी। पेट की चिंता में चिंतन का क्या काम? कबीर जीवन और प्रत्यक्ष को ही सबकुछ मानते हैं। अप्रत्यक्ष केवल वहीं तक कि, व्यक्ति कुछ अनैतिक करने से पहले उस अप्रत्यक्ष परमसत्ता से डरे। बाकी लोक की बात लोक में ही होनी चाहिए। जीते-जी अगर सुख नहीं मिल सकता तो मरने के बाद की क्या अपेक्षा? कबीर सीधे कहते हैं कि, धरती और जगत पहली सच्चाई है। लोक के सुख से ही परलोक में सुख प्राप्त हो सकता है। आपके समने का लोक दुखी है तो इस पर काम करने की जरूरत है। हमारे लोक का कोई प्राणी दुखी न रहे। जीते-जी ही- 'साधो भाई जीवत ही करो आसा। जीवत समझे जीवत बूझे जीवत मुक्ति निवासा।'<sup>3</sup> पहले तो इस जगत की विषमता को दूर किया जाए, जीते-जी किसी की आवाजबने। कर्मकांड की जगह लोकहित की सार्थकता बनें। जीवन और जगत जगने से ही सार्थक होंगे। हमेशा जाग्रत अवस्था में रहें, जो जागत हैं सो पावत हैं वाले भाव से। स्वयं सुखी रहें दूसरों को सुखी करें। इन सब बातों

के साथ जाग्रत अवस्था में रहना ही लोकहित और समाजहित की वाणी है- 'मन रे जागत रहिए भाई। गाफिल होई वस्तुमति खोवै चोर मुसै घर जाई।' <sup>4</sup> किसी की पीड़ा को अपनी पीड़ा बना लेने से बड़ा कोई लोकहित नहीं।।

शास्त्रपुराण मंदिर मस्जिद करते हुए भी ईर्ष्या द्वेष में लिप्त रहना क्या आपको पार लगा सकता है?-'पीछे लागे जाइ था लोक वेद के साथ। आगेथै सतगुरु मिल्या दीपक दीया हाथ।' <sup>5</sup> अगर अपनी आभा से जग को प्रकाशित करते हुए तेजस्वी बन जाना है तो किसी ऐसे सद्गुरु की तलाश कीजिए जो परपीड़ा समन हिं अधमाई की लोकदृष्टि रखता हो। एक वर्ग है जो पढ़ा लिखा है, वह शास्त्र सम्मत बात करता है एक दूसरा वर्ग है जो पढ़ा-लिखा तो नहीं है लेकिन अनुभवी ज्यादा है। यह लोक की बात करता है। पहला वाला कागज की लेखी की बात करता है दूसरा वाला आखिन देखी। 'द्विवेदी नें मध्यकाल का मुख्य अंतर्विरोध शास्त्र एवं लोक के बीच द्वंद को माना है। भक्ति आंदोलन को शास्त्रीय धर्म का विरोध करने वाले लोकधर्म के उत्थान का आंदोलन घोषित किया है।' <sup>6</sup> यह बात सिद्ध है कि कागज लेखी पुराना भी होता रहता है जबकि आखिन देखी नित नवीन ऊर्जावान रहता है, इसलिए लोक अर्जित और लोकग्राह्य बना रहता है। डॉक्टर नगेन्द्र नें यह बात कायदे की कही है कि, 'भारतीय समाज जिन तत्वों के ताने बाने से निर्मित हुआ है उनमें वर्णों और जातियों का विशिष्ट स्थान है।' <sup>7</sup> एक समय का कर्म आधारित वर्ण कब जन्म आधारित जाति में कट्टरपन की हद तक जाकर सामाजिक मानदंड तय करते हुए मान्यता और बहिष्कार का जजमेंट देने लगी। उससे भी आगे स्पृश्य-अस्पृश्य का सामाजिक नियम बन गया। इन सामाजिक कुरीतियों और कट्टरपन का पहला प्रगतिशील विरोध कबीर नें किया। यह एक तरह की जीवन शैली बन चुके सामाजिक कट्टरवाद के विरुद्ध सबसे पहले कबीर खड़े हुए। कबीरदास सीधे-सीधे ललकारते और उलाहना देते हैं- 'ऊंचे कुल का जनमिया, जे करनी ऊंच न होय। सोवन कलस सूरै भरया, साधु निंदै सोय।' <sup>8</sup> जिसे आप कहते हो कि ऊंची जाति और ऊंचे कुल का है, उसकी करनी कर्म तो देखो। क्या जन्म के आधार पर ही तय हो जाता है कि व्यक्ति ऊंचा है या कि नीचा?... नहीं। ऐसा बिल्कुल नहीं है, न होना चाहिए। जिस बात के लिए व्यक्ति जिम्मेदार हो ही नहीं सकता फिर उसके ऊंच नीच का सवाल ही नहीं है। जबकि कर्म के आधार पर प्रधानता मिलनी चाहिए। जिसकी करनी और कर्म ऊंचे और सम्मानित होंगे उसी को सम्मान और प्रतिष्ठा मिलनी चाहिए अन्यथा नहीं। कबीर ने अपने समय के बड़े-बड़े प्रतिष्ठा प्राप्त उच्च शिक्षित ज्ञानियों को चुनौती दिया (कबीर की ही भांति पौथियों की निरर्थकता सूरदास भी घोषित करते हैं कि, 'लादि खेप गुन ग्यान जोग की ब्रज में आनि उतारी।' <sup>9</sup> सूरदास के यहां भक्ति सब पर भारी है। जाति पंथ संप्रदाय, स्त्री-पुरुष, ज्ञानी अपद सभ। सूरदास के गोपाल को ऐसे ही लोग पसंद हैं जो ज्ञानी नहीं प्रेमी हैं जिनका मन निर्मल और हृदय परदुखकातर हो। कबीर का साथी कोई भी हो सकता है इसके लिए बस एक शर्त है वो यह कि, - 'कबिरा खड़ा बजार में, लिए मुराठाहाथ। जो घरजारे आपना, चले हमारे साथ।' <sup>10</sup> अर्थात् जोभी इस संसार अपने पराए की भावना को प्रेरित रख सके। अपने आंतरिक अहं रूपी घर को जलाकर राख कर देना होगा। इस बात का बाकायदा ऐलान करते हैं कि हमारे साथ हर वह व्यक्ति चल सकता है जो इस परापर ईर्ष्या द्वेष को खत्म कर सके। आगे कहते हैं- 'हम भी पाहन पूजते, होते वन के रोझ। सतगुरु की किरपा भई, डारया सिर थै बोझ।' <sup>11</sup> हम भी आज तक पत्थर पाषाण वाले कर्मकांडों में पड़े रहते अगर सही समय पर हमारे सद्गुरु नें हमें राह न दिखाई होती। मन मष्तिष्क पर रखे सभी बोझ

धीरे धीरे जाते रहे, मन निर्मल होता रहा। लोक में प्रचलित उक्तियों के माध्यम से कबीर नें लोक में व्याप्त कुरीतियों पर बड़े मारक ढंग से व्यंग्य किया है- 'जौ तू बाभन बंभनी जाया, तौ आन बाट ह्वै क्यों नहिं आया। जौ तू तुरक तुरकनी जाया, तौ भीतर खतना क्यों न कराया।' <sup>12</sup> वे सीधे सपाट शब्दों में बिना हिचकिचाहट कहते हैं कि अगर तुमको ऊंची जाति प्रतिष्ठा का इतना ही गर्व है तो जिस रास्ते नीची जाति वाले जन्म लेते हैं उसके अतिरिक्त अन्य कोई और रास्ता खोजना चाहिए। उसी रास्ते आने से कैसा ऊंच कैसा नीच? इसी प्रकार कहते हैं कि अगर तुमको तर्क बनके ही अहं का भाव है अन्य सभी को तुम काफिर समझते हो तो बताओ तुममें और काफिर में क्या अन्तर है? जब हमें लगता है कि हमें स्वर्ग में जाने की आशा है, तब हमें भगवान के चरणों में निवास करने की आवश्यकता नहीं लगती। स्वर्ग की आशा निरर्थक है, हमें भगवान के चरणों में निवास करने की इच्छा करनी चाहिए। हमें अपनी आशाएं और इच्छाएं भगवान के चरणों में समर्पित करनी चाहिए, न कि स्वर्ग या अन्य विश्वासों में- 'जब लगी है बैकुण्ठ की आशा। तब लग न हरि चरन निवासा।' <sup>13</sup> हमें प्रेम की गहराई और उसके महत्व को समझना होगा। प्रेम का घर हमारे अपने घर में है, न कि किसी दूसरे के घर में। अर्थात् प्रेम की अनुभूति हमें अपने हृदय में महसूस होती है, न कि किसी बाहरी स्रोत से। यह हमारे अपने जीवन में होता है, न कि किसी दूसरे के जीवन में। 'यह तो घरु है प्रेम का, खाला का घरु नाहिं।' <sup>14</sup> यहाँ कबीर ने प्रेम की महत्ता और उसकी गहराई को दर्शाया है, और यह बताया है कि प्रेम की अनुभूति हमें अपने हृदय में महसूस होनी चाहिए। यह एक प्रकार के आत्म-समर्पण और विनम्रता की भावना को दर्शाती है। जो व्यक्ति अपना सिर उतारकर भूमि पर रखता है, वह इसी में प्रतिष्ठित होता है- 'सीस उतारे भुंई धरे, सो पड़ै इहि मीहि।' <sup>15</sup> अर्थात् यह कि जो व्यक्ति अपने अहंकार और अभिमान को त्यागकर विनम्रता और आत्म-समर्पण की भावना को अपनाता है, वह वास्तव में प्रतिष्ठित और सम्मानित होता है। कबीर आत्म-समर्पण और विनम्रता की महत्ता को बताते हुए यह कहते हैं कि यही गुण हमें वास्तविक प्रतिष्ठा और सम्मान दिलाते हैं।

**उपसंहार:-**कबीर की कविताई भारतीय लोक संस्कृति में गहराई से निहित है, जो सांस्कृतिक परंपराओं को प्रतिबिंब और आकार देती है। उनकी लोकचेतना नें भारतीय साहित्य, संगीत और कला को प्रेरित और प्रभावित किया है, जिससे वे भारतीय सांस्कृतिक विरासत में एक महत्वपूर्ण व्यक्तित्व बन सके हैं। अध्ययन से पता चलता है कि कबीर की कवितामें भाषा, कल्पना और विषय की गहराई के साथ लोक संस्कृति मूलभावना है। इनकी कविता सामाजिक मानदंडों और धार्मिक पाखंड को कायदे से चुनौती देती है। सामाजिक न्याय और समानता के समर्थक होते हुए इन्होंने भारतीय लोक संगीत और कला को भी प्रभावित किया है। भारतीय साहित्यिक विरासत में कबीर एक स्थायी विरासत हैं। कबीर की कवितामें लोक गीतों के साथ-साथ भारतीय लोक-संस्कृति और साहित्य पर सामाजिक स्रोतों का गुणात्मक विश्लेषण उनके परिपक्व लोकनायकत्व को आधार देता है।

**संदर्भ सूची:-**

1. शुक्ल रामचंद्र, हिंदी साहित्य का इतिहास, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, आठवां संस्करण (2011), पृष्ठ- 51
2. श्यामसुंदर दास, कबीर ग्रंथवली, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, इक्कीसवां संस्करण ( संवत् 2057 ), पृष्ठ- 164
3. वही, पृष्ठ- 123

4. वही, पृष्ठ- 86
5. तिवारी रामचंद्र, कबीर मीमांसा, लोकभारती प्रकाशन,इलाहाबाद, चतुर्थ संस्करण( 2018 ), पृष्ठ- 118
6. सिंह नामवर, दूसरी परंपरा की खोज, राजकमल प्रकाशन,नई दिल्ली ( 2020 ), पृष्ठ- 45
7. डॉ नगेन्द्र, हिंदी साहित्य का इतिहास, मयूर पेपरबैक्स, नोएडा, पुनर्मुद्रण ( 2015 ) पृष्ठ-88
8. अग्रवालपुरुषोत्तम, अकथ कहानी प्रेम की, कबीर की कविता और उनका समय, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, चौथा संस्करण ( 2016 ), पृष्ठ- 434
9. शुक्ल आचार्य रामचंद्र, भ्रमरगीत सार, लोकभारती प्रकाशन इलाहाबाद, ( 2009 ) पृष्ठ-78
10. श्यामसुंदर दास, कबीर ग्रंथावली, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, इक्कीसवां संस्करण ( संवत् 2057 ), पृष्ठ-64
11. श्यामसुंदर दास, कबीर ग्रंथावली, जयभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण ( 2008 ) पृष्ठ- 31
12. वही, पृष्ठ- 35
13. वही,पृष्ठ- 31
14. डॉ. मुकुंदद्विवेदी,हजारीप्रसाद द्विवेदी ग्रंथावली,राजकमल ,नई दिल्ली, तीसरा संस्करण 2007, पृष्ठ- 329
15. वही, पृष्ठ-329

## सूर्य मन्दिर कोणार्क

डॉ. सुरज पाल साहू

सह आचार्य, चित्रकला विभाग, बरेली कॉलेज, बरेली, म. ज्यो. फु. रुहेलखण्ड विश्वविद्यालय, बरेली, उप्र.

कोणार्क का सूर्यमन्दिर भारत के उड़ीसा राज्य के पुरी जिले के कोणार्क नामक कस्बे में स्थित है। सूर्यमन्दिर अपने निर्माण के 750 साल बाद भी अपनी अद्वितीयता, विशालता व कलात्मक भव्यता से हर किसी को निरुत्तर कर देता है। वास्तव में जिसे हम कोणार्क के सूर्य मन्दिर के रूप में पहचानते हैं, वह पार्श्व में बने उस सूर्य मन्दिर का जगमोहन या महामण्डप है, जो कि बहुत पहले ध्वस्त हो चुका है। कोणार्क का सूर्यमन्दिर के अंग्रेजी में ब्लैक पैगोडा भी कहा जाता है। पुराविद व वास्तुकार मन्दिर की संरचना, मूर्तिशिल्प व पत्थरों पर उकेरी आकृतियों को वैज्ञानिक, तकनीकी व तार्किक कसौटी पर कसने के बाद तथ्यों को दुनिया के सामने रखते रहे हैं और यह क्रम लगातार जारी है। बहरहाल इस महामण्डप या जगमोहन की विराटता व भग्न हो चुके मुख्य मन्दिर के आधार पर उत्कीर्ण सज्जा से ही इसे यूनेस्को के विश्व विरासत स्थल की पहचान मिली है। भारत से ही नहीं बल्कि दुनिया भर से लाखों पर्यटक इसको देखने कोणार्क आते हैं। कोणार्क में बनी इस भव्य कृति को महज देखकर समझना कठिन है कि यह कैसे बनी होगी। इसे देखने का आनन्द तभी है जब इसके इतिहास की पृष्ठभूमि में जाकर इसे देखा जाए।

**स्थापना:**—सूर्यमन्दिर को गंग वंश के राजा नरसिम्हा देव प्रथम ने लगभग 1278 ई. में बनवाया था। कहा जाता है कि ये मंदिर अपनी पूर्व निर्धारित अभिकल्पना के आधार पर नहीं बनाया जा सका। मंदिर के भारी गुंबद के हिसाब से इसकी नींव नहीं बनी थी। यहाँ के स्थानीय लोगों की मानें तो ये गुम्बद मंदिर का हिस्सा था पर इसकी चुम्बकीय शक्ति की वजह से जब समुद्री पोत दुर्घटनाग्रस्त होने लगे, तब ये गुम्बद हटाया गया। शायद इसी वजह से इस मंदिर को ब्लैक पैगोडा भी कहा जाता है।

**वास्तु रचना:**—स्थान चयन से लेकर मन्दिर निर्माण सामग्री की व्यवस्था और मूर्तियों के निर्माण के लिए बड़ी योजना को रूप दिया गया। चूँकि उस काल में निर्माण वास्तुशास्त्र के आधार पर ही होता था, इसलिए मन्दिर निर्माण में भूमि से लेकर स्थान व दिन चयन में निर्धारित नियमों का पालन किया गया। इसके निर्माण में 1200 कुशल शिल्पियों ने 12 साल तक लगातार काम किया। शिल्पियों को निर्देश थे कि एक बार निर्माण आरम्भ होने पर वे अन्यत्र न जा सकेंगे। निर्माण स्थल में निर्माण योग्य पत्थरों का अभाव था। इसलिए सम्भवतया निर्माण सामग्री नदी मार्ग से यहाँ पर लाई गई। इसे मन्दिर के निकट ही तराशा गया। पत्थरों को स्थिरता प्रदान करने के लिए जंगरहित लोहे के कब्जों का प्रयोग किया गया। इसमें पत्थरों को इस प्रकार से तराशा गया कि वे इस प्रकार से बैठें कि जोड़ों का पता न चले। सूर्यमन्दिर भारत का इकलौता सूर्य मन्दिर है जो पूरी दुनिया में अपनी भव्यता और बनावट के लिए जाना जाता है। सूर्य मन्दिर उड़ीसा की राजधानी भुवनेश्वर से

65 किलोमीटर दूर कोणार्क में अपने समय की उत्कृष्ट वास्तु रचना है। पूर्वी गंग वंश के राजा नरसिंह देव प्रथम ने सूर्य मन्दिर को तेरहवीं शताब्दी में बनवाया था। प्राचीन उड़िया स्थापत्य कला का यह मन्दिर बेजोड़ उदाहरण है सूर्य मन्दिर की रचना इस तरह से की गई है कि यह सभी को आकर्षित करती है। सूर्य को ऊर्जा जीवन और ज्ञान का प्रतीक माना जाता है। सूर्य देवता की सभी संस्कृतियों में पूजा की जाती रही है। सूर्य की इस मन्दिर में मानवीय आकार में मूर्ति है जो अन्य कहीं नहीं है। इस मंदिर को देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि अपने सात घोड़े वाले रथ पर विराजमान सूर्य देव अभी-अभी कहीं प्रस्थान करने वाले हैं। यह मूर्ति सूर्यमन्दिर की सबसे भव्य मूर्तियों में से एक है। सूर्य की चार पलियाँ रजनी, निक्षुभा, छाया और सुवर्चसा मूर्ति के दोनों तरफ हैं। सूर्य की मूर्ति के चरणों के पास ही रथ का सारथी अरुण भी उपस्थित है।

**कोणार्क का अर्थ:**—कोणार्क शब्द, कोण और अर्क शब्दों के मेल से बना है। अर्क का अर्थ होता है सूर्य जबकि कोण से अभिप्राय कोने या किनारे से रहा होगा। कोणार्क का सूर्यमन्दिर पुरी के उत्तर पूर्वी किनारे पर समुद्र तट के करीब निर्मित है।

**निर्माण सम्बन्धी अनुश्रुतियाँ:**—मुख्य मन्दिर की संरचना को लेकर अनेक कहानियाँ प्रचलित हैं। कहा जाता है कि जहाँ पर मुख्य मन्दिर था, उसके गर्भगृह में सूर्यदेव की मूर्ति ऊपर व नीचे चुम्बकीय प्रभाव के कारण हवा में दौलित होती थी। प्रातः सूर्य की किरणें रंगशाला से होते हुए वर्तमान में मौजूद जगमोहन से होते हुए कुछ देर के लिए गर्भगृह में स्थित मूर्ति पर पड़ती थीं। समुद्र का तट उस समय मन्दिर के समीप ही था, जहाँ बड़ी नौकाओं का आवागमन होता रहता था। अक्सर चुम्बकीय प्रभाव के कारण नौकाओं के दिशा मापक यन्त्र दिशा का ज्ञान नहीं करा पाते थे। इसलिए इन चुम्बकों को हटा दिया गया और मन्दिर अस्थिर होने से ध्वस्त हो गया। इसकी ख्याति उत्तर में जब मुगलों तक पहुँची तो उन्होंने इसे नष्ट करने में कोई कसर नहीं छोड़ी। 16वीं सदी के मध्य में मुगल आक्रमणकारी कालापहाड़ ने इसके आमलक को नुकसान पहुँचाया व कई मूर्तियों को खण्डित किया, जिसके कारण मन्दिर का परित्याग कर दिया गया। इससे हुई उपेक्षा के कारण इसका क्षरण होने लगा। कुछ विद्वान मुख्य मन्दिर के टूटने का कारण इसकी विशालता व डिजाइन में दोष बताते हैं। कोणार्क जहाँ पत्थरों की भाषा मनुष्य की भाषा से श्रेष्ठतर है। जो रेतीली भूमि में बनने के कारण धँसने लगा था, लेकिन इस बारे में एक राय नहीं है। कुछ का यह मानना है कि यह मन्दिर कभी पूर्ण नहीं हुआ, जबकि आईने अकबरी में अबुल फज़ल ने इस मन्दिर का भ्रमण करके इसकी कीर्ति का वर्णन किया है। कुछ विद्वानों का मत है कि काफ़ी समय तक यह मन्दिर अपने मूल स्वरूप में ही था। ब्रिटिश पुराविद फ़र्युसन ने जब 1837 में इसका

भ्रमण किया था, तो उस समय मुख्य मन्दिर का एक कोना बचा हुआ था, जिसकी ऊँचाई उस समय 45 मीटर बताई गई। कुछ विद्वान मुख्य मन्दिर के खण्डित होने का कारण प्रकृति की मार यथा भूकम्प व समुद्री तूफ़ान आदि को मानते हैं। लेकिन इस क्षेत्र में भूकम्प के बाद भी निकटवर्ती मन्दिर कैसे बचे रह गए, यह विचारणीय है। गिरने का अन्य कारण इसमें कम गुणवत्ता का पत्थर प्रयोग होना भी है, जो काल के थपेड़ों व इसके भार को न सह सका किन्तु एक सर्वस्वीकार्य तथ्य के अनुसार समुद्र से खारे पानी की वाष्प युक्त हवा के लगातार थपेड़ों से मन्दिर में लगे पत्थरों का क्षरण होता चला गया और मुख्य मन्दिर ध्वस्त हो गया। यह प्रभाव सर्वत्र दिखाई देता है।

**कला का अद्भुत सौंदर्य:-**कोणार्क उड़ीसा की प्राचीन वास्तुशैली का विशिष्ट मन्दिर है, जिसमें मन्दिर में मुख्य मन्दिर, महामण्डप, रंगशाला व सटा भोगमण्डप होते थे। इनमें से ज्यादातर में जगमोहन व मुख्य मन्दिर एक साथ जुड़े होते थे। कोणार्क मन्दिर में थोड़ी भिन्नता है। यहाँ पर जगमोहन व मुख्य मन्दिर सटे थे। पूर्व में स्थित प्रवेश द्वार के बाद नाट्यमण्डप हैं। द्वार पर दोनों ओर दो विशालकाय सिंह एक हाथी को दबोचे हैं। नाट्यमण्डप पर स्तम्भों को तराश कर विभिन्न आकृतियों से सज्जित किया गया है। मन्दिर का भोगण्डप मन्दिर से पृथक निर्मित है। मुख्य सूर्य मन्दिर में महामण्डप व मुख्य मन्दिर जुड़े थे, जबकि भोगमण्डप रथ से पृथक था।

**मन्दिर की विशेषता:-**मन्दिर को रथ का स्वरूप देने के लिए मन्दिर के आधार पर दोनों ओर एक जैसे पत्थर के 24 पहिए बनाए गए। पहियों को खींचने के लिए 7 घोड़े बनाए गए। इन पहियों का व्यास तीन मीटर है। मन्दिर के डिजायन व अलंकरण में उस समय के सामाजिक व सांस्कृतिक परिवेश का ध्यान रखा गया। आधार की बाहरी दीवार पर लगे पत्थरों पर विभिन्न आकृतियों को इस प्रकार से उकेरा गया कि वे जीवन्त लगें। इनमें कुछ स्थानों पर खजुराहो की तरह कामातुर आकृतियाँ, तो कहीं पर नारी सौंदर्य, महिला व पुरुष वादकों व नर्तकियों की विभिन्न भाव-भंगिमाओं को उकेरा गया। इसके अलावा इसमें मानव, पेड़-पौधों, जीव-जन्तुओं के साथ पुष्पीय व ज्यामितीय अलंकरण हैं। मन्दिर का महामण्डप चबूतरे सहित कुल 39 मीटर है इसकी विशालता से मुख्य मन्दिर की ऊँचाई का अनुमान लगाया जा सकता है, जो सम्भवतया लिंगराज व पुरी से भव्य रहा होगा। पुरातत्त्ववेत्ता महामण्डप के पीछे इस रेखा मन्दिर या उध्व मन्दिर की ऊँचाई 65 मीटर तक मानते हैं। इस भवन मन्दिर के एक ओर साढ़े तीन मीटर ऊँची सूर्यदेव की मूर्ति बेहद आकर्षक है। इस मन्दिर की मूर्तियाँ लेहराइट, क्लोराइट और खोण्डोलाइट नाम के पत्थरों से बनाई गई हैं। कोणार्क में ये पत्थर नहीं पाए जाते, इसलिए यह अनुमान लगाया जाता है कि नरसिंह देव ने इसे बाहर से मंगवाया होगा। इस मन्दिर के तीन हिस्से हैं -

1. जगमोहन, 2. गर्भगृह, 3. सूर्यमन्दिर, कोणार्क

मन्दिर का महामण्डप बेहद आकर्षक है, जिसका शीर्ष पिरामिड के आकार का है। इसमें विभिन्न स्तरों पर सूर्य, चन्द्र, मंगल, बुध, शनि आदि नक्षत्रों की प्रतिमाएँ हैं। इसके ऊपर विशाल आमलक है। समीप ही सूर्य की पत्नी मायादेवी व वैष्णव मन्दिर खण्डित अवस्था में है। समीप में भोगमण्डप था। एक नवग्रह मन्दिर भी यहाँ पर है।

**नाट्य शाला:-**जैसे ही इस मंदिर के पूर्वी प्रवेश द्वार से आप घुसेंगे तो सामने एक नाट्य शाला दिखाई देती है जिसकी ऊपरी छत अब नहीं है। कोणार्क नृत्योत्सव के समय हर साल यहाँ देश के नामी कलाकार अपनी प्रतिभा का प्रदर्शन करते हैं।

**मान्यताएँ:-**सूर्यमन्दिर के निर्माण में 1200 कुशल शिल्पियों ने 12

साल तक लगातार काम किया। शिल्पियों को निर्देश थे कि एक बार निर्माण आरम्भ होने पर वे अन्यत्र न जा सकेंगे। निर्माण स्थल में निर्माण योग्य पत्थरों का अभाव था। इसलिए सम्भवतया निर्माण सामग्री नदी मार्ग से यहाँ पर लाई गई। इसे मन्दिर के निकट ही तराशा गया। पत्थरों को स्थिरता प्रदान करने के लिए जंगरहित लोहे के कब्जों का प्रयोग किया गया। इसमें पत्थरों को इस प्रकार से तराशा गया कि वे इस प्रकार से बैठें कि जोड़ों का पता न चले। कोणार्क के आध्यात्मिक महत्त्व, वर्तमान मन्दिर की स्थापना, इसके परित्याग करने से लेकर, मुख्य मन्दिर के ध्वस्त होने के बारे में अनेकानेक मान्यताएँ और अनुश्रुतियाँ हैं। मन्दिर के सम्बन्ध में कई बातें अब भी इतिहास के गर्भ में हैं। इसलिए कई बातों से विद्वतजन एकमत नहीं हैं। स्कन्दपुराण में कोणार्क की पहचान में सूर्यक्षेत्र, ब्रह्म पुराण में कोणादित्य, कपि संहिता में रवि क्षेत्र, भाम्बापुराण में मित्रवन व प्राचीन महातम्य में अर्कतीर्थ आदि नामों से की गई है। वहीं निकट में एक सूर्य मन्दिर था। पुराणों में वर्णित मित्रवन व चन्द्रभागा की पहचान के बारे में अलग-अलग तर्क हैं। कुछ लोग इसे पाकिस्तान के मुल्तान में बताते हैं, जिसका प्राचीन नाम भाम्बापुर था और यहीं से चिनाब या चन्द्रभागा गुजरती है। उधर कोणार्क में भाम्बापुर तो नहीं है किन्तु मन्दिर से 2 किलोमीटर दूर चन्द्रभागा का तट है, जहाँ पर माघ माह की सप्तमी को विशाल मेला लगता है। गंग नरेश नरसिंह देव ने सूर्य मन्दिर का ही निर्माण करवाया, इसे लेकर अनेक मान्यताएँ हैं।

**बारह महीने के प्रतीक चक्र:-**दीवार पर मन्दिर के बाहर बने विशालकाय चक्र पर्यटकों का ध्यान खींच लेते हैं। हर चक्र का व्यास तीन मीटर से ज्यादा है। चक्रों के नीचे हाथियों के समूह को बेहद बारीकी से उकेरा गया है। सूर्य देवता के रथ के चबूतरे पर बारह जोड़ी चक्र हैं, जो साल के बारह महीने के प्रतीक हैं।

**खोज व संरक्षण:-**1806 में जब इसका पता चला तो उस समय यह स्थान चारों ओर पेड़ों व झाड़ियों से घिरा व रेत से ढका था। 1838 में एशियाटिक सोसाइटी ने पहली बार इसके संरक्षण की बात उठाई। यहाँ से जंगल, झाड़ियों व रेत को हटाया गया। एक बात अच्छी रही कि दबे होने से मन्दिर आतताइयों से सुरक्षित रहा। उस समय मन्दिर का जगमोहन सुरक्षित था, जबकि मुख्य मन्दिर का पिछला हिस्सा ध्वस्त अवस्था में था और चारों ओर खण्डित मन्दिर के पत्थरों की बहुलता थी। 1900 में यहाँ पर वास्तविक संरक्षण करने का प्रयास हुआ। खण्डित हिस्सों को पुरानी संरचना के अनुसार संरक्षित करने का प्रयास किया गया। महामण्डप जो कि गिरने की हालत में था, को बचाने के लिए दरारों को पाटा गया। इसके लिए महामण्डप के आन्तरिक भाग को पत्थरों से भर दिया गया। शेष दोनों ओर के दरवाजे भी चिनाई करके बन्द कर दिये गये। इस पर लगे पत्थरों का रासायनिक उपचार करके मन्दिर के स्वरूप को निखारा गया। संरक्षण का काम कई सालों तक चला। 20वीं सदी के मध्य में इसे भारतीय पुरातत्त्व सर्वेक्षण के अधीन कर दिया गया। अन्य सामग्री को लेकर निकट एक संग्रहालय बनाया गया। 1984 के बाद इसे विश्व विरासत स्थल घोषित किया गया।

**सन्दर्भ सूची:-**

1. जय चन्द्र विद्यालंकार, भारतीय इतिहास की मीमांसा
2. राय चौधरी, प्राचीन भारत का इतिहास
3. उपाध्याय वासुदेव, गुप्त साम्राज्य का इतिहास
4. क्रैमिश, स्टेला, दि हिन्दू पेंम्पल, कलकत्ता 1996

## निराला के काव्य में प्रगतिशील चेतना

श्रीमती चैताली सलूजा

सहायक प्राध्यापक, हिंदी, शासकीय जे. पी. वर्मा स्नातकोत्तर महाविद्यालय, बिलासपुर, छ.ग.

**भूमिका:-**क्रांति के अग्रदूत और नवजीवन के संदेश वाहक व निराला नर शक्ति के उपासक रहे हैं। मानवता को स्वस्थ आशा, अदम्य आस्था और अपराजेय शौर्य के सुंदर गीत की तीव्रता प्रदान करते हुए उन्होंने कहीं क्रांति, विद्रोह और आक्रोश की तीव्रता व्यक्त की है और कहीं विषमताओं की गम्भीर प्रतिक्रिया के कारण यथार्थोन्मुख करुण स्वर मुखरित किये हैं। निराला की रचनाओं में आक्रोश एवं विद्रोह की प्रधानता है जिसे डॉ. रामविलास शर्मा ने ओज और औदात्य कहा है। परिस्थितियों के घात-प्रतिघात ने उन्हें उद्बुद्ध सचेत एवं जागरूक कवि के रूप में प्रतिष्ठित कर दिया। अन्याय, अत्याचार एवं असमानता के विरुद्ध वे जीवन भर संघर्ष करते रहें। मानव की पीड़ा ने उनके संवेदनशील हृदय को करुणा प्लावित कर दिया था। उच्च वर्ग की विलासिता एवं निम्न वर्ग की दीनता को देखकर वे अपने हृदय में गहन वेदना, टीस एवं छटपटाहट का अनुभव करते थे। सामाजिक विषमता के विरुद्ध वे प्रभावी आवाज उठाते रहे। निराला के प्रगतिशील साहित्य में जन सामान्य के धरातल से सामाजिक वैषम्यों, कुरूपताओं और दरिद्रता को करुणा और विद्रोह की सम्मिलित भूमिका पर प्रस्तुत किया गया है। संपूर्ण निराला काव्य मानवीय अनुभूतियों को आधार बनाकर चला है। मानव की मुक्ति जहाँ लक्ष्य हो और कवि की भावधारा का प्रसार समग्र मानवता तक अबाध गति से हुआ हो वहाँ काव्य में अग्रगतिशीलता को स्थान कहाँ? वहाँ तो आस्थामय जीवन्त प्रगतिशील चेतना है, एक हृदय अगणित स्वर की कामना है। सामाजिक, धार्मिक रूढ़ियों का बहिष्कार है, उदार मानववादी दृष्टि है और विश्व संस्कृति की आकांक्षा है।

**प्रगतिशीलता का स्वरूप:-**प्रगतिशील साहित्य परिवर्तन और क्रांति का इच्छुक होता है पर उसमें विध्वंसक दृष्टि नहीं होती। उसमें रूढ़ियों, विषमताओं और अनाचारों को तोड़ते हुए नये सृजन का स्वर होता है जिसका उद्देश्य है-स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व। प्रगतिशीलता युग-युग से शोषित, पीड़ित, अभावग्रस्त मानव को संगठित करता हुआ नूतन समाज सृजन की प्रेरणा देता है। प्रगति का लक्ष्य इस धरती और मानव की कल्याण कामना है जो केवल आर्थिक और भौतिक पक्ष को ही नहीं, सांस्कृतिक भाव-भूमि को भी दृढ़ता प्रदान करती है। प्रगतिशीलता विकासोन्मुख जनशक्ति को देखती है, उन कारणों को परखती है जो थकान, अनास्था, निराशा और घुटन को बढ़ावा देते हैं। यह जानते हुए भी कि वर्तमान जीवन दैन्य और उत्पीड़न का शिकार है, वह संकल्प की दृढ़ता लेकर सुंदर भविष्य के प्रति आश्वस्त रहता है।

**शोषितों की दीनता का चित्रण:-**निराला जी के "तोड़ती पत्थर" नामक कविता में उस मजदूरनी का चित्रण है जो तपती दोपहरी में भारी हथौड़े से धूप में बैठी पत्थर तोड़ रही है:-

"वह तोड़ती पत्थर  
देखा उसे मैंने इलाहाबाद के पथ पर  
वह तोड़ती पत्थर।

नहीं छायादार  
पेड़ वह जिसके तले बैठी हुई स्वीकार।"1

इस कविता का मूल स्वर प्रगतिवादी चेतना से युक्त है। इस कविता के माध्यम से कवि यह बताना चाहते हैं कि श्रमिकों की कार्यदशाएं अत्यंत शोचनीय हैं। जेट की तपती दोपहरी में बैठकर वह पत्थर तोड़ रही है जबकि पूंजीपति विलास के साधनों से सम्पन्न है तथा इतने निष्ठुर हैं कि अपने भवन के छायादार पेड़ के नीचे बैठने की सुविधा भी उसे नहीं दे सकते। सड़क के किनारे 'प्रिय-कर्म-रत' मजदूरनी का जो चित्र अंकित किया है वह मानों अपनी असहाय व कुंठित निर्धनता में समाज की गलितावस्था का मूर्तीकरण ही है। इसी प्रकार निराला ने 'भिक्षुक' नामक कविता में एक गरीब भिखारी की दयनीय दशा का चित्रण किया है।

"वह आता  
दो टूक कलेजे के करता पछताता पथ पर आता।  
पेट पीठ दोनों मिलकर हैं एक  
चल रहा लकड़िया टेक  
मुट्टी भर दानों को-उंचयभूख मिटाने को  
मुँह फटी-पुरानी झोली को फैलाता।"2

'बादल राग' कविता में निराला कृषकों के दीन-हीन दशा का चित्रण करते हुए कहते हैं:-

"जीर्ण बाहु है शीर्ण शरीर  
तुझे बुलाता कृषक अधीर  
ए वीप्लव के वीर।  
चूस लिया है उसका सार  
हाड़ मात्र ही है आधार  
ए जीवन के पारावार।"3

नये पते कविता संग्रह के अंतर्गत "कुत्ता भौंकने लगा" रचना में किसानों की दयनीय दशा का यथार्थ चित्रण हुआ है। फसल नष्ट हो गई है किंतु डिप्टी साहब चंदा नहीं छोड़ सकते और जमींदार लगान नहीं छोड़ सकते। उस कातर, असहाय कृषक की करुण स्थिति पर कुत्ता तो भौंकने लगता है पर किसी अन्य को दया नहीं आती। किसान भी मूक और विवश होकर अत्याचार सहता जाता है:-

"जमींदार का सिपाही लड्डू कंधे पर डाले  
आया और लोगों की ओर देखकर कहा  
डरे पर थानेदार आये हैं,  
डिप्टी साहब ने चंदा लगाया है,  
एक हफ्ते के अंदर देना है  
चलो, बात दे आओ।

कौड़े से कुछ हटकर  
 लोगों के साथ कुत्ता खेतिहार का बैठा था  
 चलते सिपाही को देखकर खड़ा हुआ,  
 और भौंकने लगा,  
 करुणा से बंधु खेतिहार को देख-उचयदेख कर।<sup>14</sup>

**शोषक के प्रति घृणा:-**शोषकों के प्रति घृणा निराला की प्रगति चेतना से युक्त कविताओं में दिखाई पड़ती है। 'कुकुरमुत्ता' नामक कविता में प्रतीकात्मक शैली में वे 'गुलाब' को पूंजीपतियों का तथा 'कुकुरमुत्ता को सर्वहारा वर्ग का प्रतिनिधि मानते हुए कहते हैं:-

“अबे सुन बे गुलाब  
 भूल मत जो पाई खुशबू रंगों आब  
 खून चुसा खाद का तूने अशिष्ट  
 डाल पर इतरा रहा कैपेटलिस्ट।<sup>15</sup>

भावुक कवि निराला दीनों के भाव जगत का बड़ा मर्मस्पर्शी चित्र अंकित करते हैं जहां उत्पीड़न की निरंकुश क्रीड़ा है। कवि कहते हैं अत्याचारी और निर्दयी ही संसार में शूर कहलाते हैं। निराला का आक्रोश इन कविताओं में आंसुओं के रूप में घुल गया है:-

“कह जाते हो  
 यहाँ कभी मत आना,  
 उत्पीड़न का राज्य, दुख ही दुख  
 यहाँ है सदा उठाना,  
 वरुण यहाँ पर कहलाते हैं शूर  
 और हृदय का शूर सदा ही दुर्बल क्रूर।<sup>16</sup>

स्वतंत्रता के पश्चात् देश की आशाओं पर तुशारापात हुआ है। भूख प्यास से पीड़ित जनता सांस कहाँ तक साधे ! आज जो व्यक्ति विजयी बने हुए हैं उसका रहस्य है-उनकी शोषण की मनोवृत्ति।

पूँजीपतियों का सारा भोग विलास, उनकी सारी प्रतिष्ठा दलित वर्ग के शाषण पर ही स्थित है। निराला कहते हैं:-

“जमाने की रपतार में कैसा तूफ़ा  
 मरे जा रहें, जिये जा रहे हैं।  
 खुला भेद, विजयी कहाये हुए जो,  
 लहू दूसरे पिये का पिये जा रहे हैं।<sup>17</sup>

कवि किसानों के विकास में सबसे बड़ी बाधा मानता है जमींदारों और महाजनों को जिनकी निर्दयता उनके जीवन को दूभर बना देती है। कवि उन्हें शोषक और पिशाच मानता है क्योंकि वे गरीबों के खून से सम्पन्न हुए हैं:-

“जमींदार की बनी  
 महाजन धनी हुए हैं।  
 जग के मूर्त पिशाच  
 धूर्तगण गनी हुए हैं।<sup>18</sup>

**क्रांति की भावना:-**निराला ने “बादल राग” कविता में युग चेतना के अनुरूप विप्लव के लिए बादल से आह्वान किया है। कवि नव-जीवन का प्रवर्तन चाहता है। विलासी, जर्जर कृषकों की सम्पन्न व्यक्तियों के शोषण से मुक्ति चाहता है।

“जीर्ण बाहु है शीर्ण शरीर,  
 तुझे बुलाता कृषक अधीर,  
 ऐ वीप्लव के वीर !  
 चूस लिया है उसकी सार  
 हाड़ मात्र ही है आधार

ऐ जीवन के पारावार।<sup>19</sup>

‘जागो फिर एक बार’ कविता में भारतवासियों को उनकी महत्ता एवं गरिमा का स्मरण कराते हुए कहते हैं:-

“तुम हो महान तुम सदा हो महान  
 है नश्वर यह दीन भाव  
 कायरता, कामपरता।  
 ब्रह्म हो तुम  
 पद रज भी नहीं पूरा यह विश्व भार।  
 जागो फिर एक बार।<sup>20</sup>

इस कविता में कवि दीन भाव को नश्वर कहता है और लोगों को अपनी शक्ति और महत्ता को पहचानने का संदेश देता है। समाज के शोषण का अंत करने के लिए कवि क्रांति का आह्वान करते हुए कहते हैं:-

“एक बार बस और नाच तू श्यामा।  
 सामान सभी तैयार  
 कितने ही है असुर चाहिए कितने तुझको हार।  
 कर मेंखला मुंड मालाओं की वन मन अभिराम।<sup>21</sup>

**शोषित वर्ग के प्रति सहानुभूति:-**‘तोड़ती पत्थर’ कविता में शोषितों के प्रति कवि की गहरी सहानुभूति व्यक्त हुई है। एक ओर भव्य अट्टालिका, तरुमालिका और दूसरी ओर पत्थर तोड़ती हुई निर्धन श्रमिक नारी। प्रचण्ड मार्तण्ड की तेज रश्मियों से झुलसित दोपहर की लू को सहन करती हुई कर्म साधना में लीन पसीने से लथपथ मजदूरिन का सजीव और मार्मिक चित्र प्रस्तुत किया गया है। कवि ने मानों उसके अंतस्थल में बैठकर सूक्ष्मतम भाव को व्यंजित किया है। उस मजदूरनी ने दुःखी, सहनशील, त्रस्त और विवश दृष्टि से कवि को देखा। वह अभावग्रस्त है पर है कर्मरत।

“देखा मुझे उस दृष्टि से,  
 जो मार खाई रोई नहीं,  
 एक क्षण के बाद वह कांपी सुघर  
 झुलक माथे से गिरे सीकर,  
 लीन होते कर्म में फिर ज्यों कहा-  
 “मैं तोड़ती पत्थर।<sup>22</sup>

दलितों एवं दीनों के प्रति सहानुभूति प्रकट करते हुए वे समाज में समरसता स्थापित करना चाहते हैं। वे मानते हैं कि समाज के सभी कष्टों का मूल कारण विषमता है। समाज के दुःख को देखकर उनका हृदय क्रन्दन करने लगता है तथा वह उनके दुख-दर्द में सहभागी बनना चाहता है। ‘अधिवास कविता में कवि मोक्ष को जीवन का पूर्ण विराम और गतिहीनता का पर्याय मानकर मानवीय करुणा में ही जीवन की प्रगतिशीलता देखता है। दुख और पीड़ा को देखकर मुख मोड़ना मानवता नहीं। भले कवि ने ‘मैं’ शैली अपनाई हो पर हृदय में दूसरे के दुःख की छाया संवेदना की अनुभूति उभार देती है।

“मैंने ‘मैं’ शैली अपनाई  
 देखा दुखी एक निज भाई  
 दुःख की छाया पड़ी हृदय में मेरे  
 झट उमड़ वेदना आई।<sup>23</sup>

**रुढ़ियों का विरोध:-**समाज में अज्ञान, जन्य धर्म भावना के प्रसार के जितने दुष्परिणाम हो सकते हैं वे सब भारतीय समाज में व्याप्त थे। समाज की गति रुद्ध कर उसे रुद्ध-स्थिर बना देना ऐसे व्यक्तियों का कार्य है जो अपनी परम्पराओं के पीछे की भावना को न समझ कर केवल उनके बाह्य रूप को ही अपनाते हैं। इस अन्धश्रद्धा का परिणाम समाज के लिए अहितकर होता है। सजातीय मानव को वानर से भी हीन समझा जाये, धार्मिक विकृति के साथ ही

समाज-रचना का विडम्बनामय रूप ही कहा जायेगा। अनामिका की दान शीर्षक कविता में कवि कहते हैं:-

“झोली से पुएं निकाल लिये  
बढ़ते कपियो के हाथ दिये;  
देखा भी नहीं उधर फिर कर,  
जिस ओर रहा वह भिक्षु इतर;  
चिल्लाया किया दूर दानव,  
बोला मैं-धन्य श्रेष्ठ, मानव!”<sup>14</sup>

‘सरोज स्मृति’ कविता में कवि ने सामाजिक वर्ण व्यवस्था, दहेज प्रथा आदि पर स्पष्ट रूप से लिखते हुए समाज के शिकार बनने वाले उन सभी व्यक्तियों की दबी आत्मा को स्वर दिये हैं जो अपनी निर्धनता में समाज के नियमों से आबद्ध पिसते हुए चूर हो जा रहे हैं। इसमें कान्यकुब्ज समाज पर हास्य-विनोद के साथ तीखे चुभते हुए व्यंग्य हैं:-

“ये कान्यकुब्ज कुल कुलांगार  
खाकर पतल में करे छेद  
इनके कर कन्या, अर्थ खेद  
इस विनयवेलि में विष ही फल,  
यह दग्ध मरुस्थल नहीं सुजल।”<sup>15</sup>

ब्राह्मण समाज की संकीर्णताओं, विकृतियों, दहेज प्रथा और वैवाहिक कट्टरता पर कवि कहते हैं:-

“वे जो यमुना के से कछार  
पद फटे विवाई के, उधार  
खाये के मुख ज्यों, पिये तेल  
चमरौधे जूते से सकेल।”<sup>16</sup>

कवि ने एक विद्रोही के रूप में पूर्वजों की लोक रीति का तिरस्कार किया। उन्होंने सामाजिक रूढ़िगत आचार-विचार त्यागकर स्वयं अपनी पुत्री के विवाह मंत्र पढ़े और यहाँ तक कि स्वयं उसकी पुष्प सेज सजाई।

“तुम करो ब्याह, तोड़ता नियम  
मैं सामाजिक योग के प्रथम  
लग्न के, पढ़ूँगा स्वयं मंत्र  
यदि पंडित जी होंगे स्वतंत्र।”<sup>17</sup>

धार्मिक, अंधविश्वासों पर व्यंग्य करते हुए निराला ने साधुओं और पंडों के पाखण्डों को यथार्थता के साथ चित्रित किया है। ‘आ रे गंगा के किनारे’ नामक कविता में दंभी और बगुला भक्तों पर व्यंग्य करते हुए निराला कहते हैं:-

“आ रे, गंगा के किनारे  
झाऊ के वन से पगडंडी पकड़े हुए  
रेती की खेती को छोड़कर, फूस की कुटी,  
बाबा बैठे झारे-बहारे।”<sup>18</sup>

सामाजिक जीवन का यथार्थ चित्रण:-सामाजिक विषमता का हृदय द्रावक चित्रण निराला ने भिक्षुक कविता में किया है। जीवन की न्यूनतम आवश्यकताओं की पूर्ति में जिस समाज के मानव व कुत्ते में होड़ लग रही हो, उनकी पतनावस्था को क्या संज्ञा दी जाये? निराला कहते हैं:-

“चाट रहे जूटी पतल वे कभी सड़क पर खड़े हुए,  
और झपट लेने को उनसे कुत्ते भी है अड़े हुए।”<sup>19</sup>

पूँजीवादी सभ्यता पर व्यंग्य करते हुए कवि ने स्पष्ट कहा है कि धर्म हो चाहे प्रेम आजकल सब अर्थाश्रित है। पैसे के अभाव में न मित्रता है; न कोई आत्मीयता का नाता। कवि कहते हैं:-

“चूँकि यह दाना है

इसलिए दीन है, दीवाना है।

लोग है, महफ़िल है  
नगमें है, साज है, दिलदार है और दिल है,  
शम्मा है, परवाना है।”<sup>20</sup>

कवि आर्थिक दारिद्र्य देखकर सामाजिक व्यवस्था पर विचार करते हुए कहता है कि देश को समृद्ध बनाने के लिए व्यक्तियों की निजी सम्पत्ति न होकर देश की सम्पत्ति होनी चाहिए। कवि नूतन समाज की रचना हेतु पूँजीपतियों की पूँजी देश के लिए चाहता है। बेला में कवि कहते हैं-

“भेद कुल खुल जाय वह  
सूरत हमारे दिल में है  
देश को मिल जाय वह  
पूँजी तुम्हारी मिल में है।”<sup>21</sup>

आज की विभीषिका और विडम्बना इतनी प्रबल है कि संसार विषाक्त वातावरण से हत्वेतन होकर मानवीय संबंध भूल रहा है। भ्रष्टाचार चरम सीमा पर है। गोदामों में माल भरा पड़ा है और लाशों के ढेर दिखलाई देते हैं। वस्तुएँ जन सामान्य को उपलब्ध नहीं। ‘नये पते’ में कवि कहते हैं:-

“माल हाट में है और भाव नहीं,  
जैसे लड़ने को खड़े, दाव नहीं।”<sup>22</sup>

सामाजिक विषमता पर व्यंग्य करते हुए कवि कहते हैं कि जहाँ सम्पन्नता है लोग वही जाते हैं, निर्धन तो तरसते ही रहते हैं क्योंकि उनके अभावों की कभी पूर्ति नहीं होती। कवि कहते हैं:-

“दौड़ते है ये बादल काले काले  
हाईकोर्ट के वकले मत वाले  
जहाँ चाहिए वहां नहीं बरसे  
धान सूखे देखकर नहीं तरसे  
जहां पानी भरा वहां छूट पड़े  
कह कहे लगाते हुए टूट पड़े।”<sup>23</sup>

सामाजिक विषमता को देखकर निराला का मन खिन्न हो उठता है तथा उनका मन वेदना और निराशा से भर उठता है। ‘स्नेह निर्झर बह गया है’ कविता में कवि कहते हैं:-

“स्नेह निर्झर बह गया है।  
रेत ज्यों तन रह गया है।

आम की वह डाल जो सूखी दिखी  
कह रही है-अब यहां पिक या शिखी  
नहीं आते, पंक्ति मैं वह हूँ लिखी।”<sup>24</sup>

नारी चित्रण:-निराला ने ‘विधवा’ कविता में समाज द्वारा तिरस्कृत, उपेक्षित नारी का मार्मिक चित्रण किया है। वे कहते हैं:-

“वह टूटे तरु की छुटी लता सी दीन,  
दलित भारत की ही विधवा है।  
है करुण रस से पुलकित उसकी आंखे  
देखा तो भीगी मन मधुकर की पांखे;  
मृदु रसावेश में निकला जो गुंजार  
वह और न था कुछ, था बस हाहाकार।”<sup>25</sup>

निराला ने नारी को अबला न मानकर शक्ति के रूप में उपासना की है। पंचवटी प्रसंग के लक्ष्मण ने सीता को मातृक-शक्ति के रूप में देखा है। निराला की कविता तुलसीदास में तुलसीदास का कामातुर रूप देखकर रत्नावली में आधुनिक नारी का जाग उठी।

“जागी जोगिनी अरुण लग्न

वह खड़ी शीर्ण प्रिय-भाव मग्न निरूपमिता।<sup>126</sup>

और अपने इस विराट रूप में जब रत्नावली ने तुलसीदास को धिक्कारा, तो कवि की आँखों में नारी का शक्ति रूप सजीव हो उठा। वह कहते हैं :-

“देखा, शारदा नील-वसना

है सम्मुख स्वयं सृष्टि रशना,

जीवन-समीर शुचि-शनिःश्रसना, वरदात्री।<sup>127</sup>

निराला जी ने अपने काव्य में नारी के प्रति सूक्ष्म संवेदना भी व्यक्त करते हुए दिखाई देते हैं। वह तोड़ती पत्थर कविता में मजदूरनी की दीन दृष्टि में जो पीड़ा है उसके लिये कवि कहते हैं :-

“देखते देखा मुझे तो एक

बार उस भवन की ओर, देखा

छिन्न तार देख कर कोई नहीं

देखा मुझे उस दृष्टि से जो मार

खा रोई नहीं सजा सहज सितार।<sup>128</sup>

**मानवतावाद का समर्थन:-**निराला के प्रगतिशील काव्य में मानवतावाद का समर्थन किया गया है। सुखी संसार तभी बन सकता है जब मानव-मानव के बीच स्नेह हो, शोषण का अभाव समाप्त हो गया हो। वे छोटे से छोटे मनुष्य को सुखी देखना चाहते थे। उनका मानवतावाद व्यक्ति केंद्रित न होकर समाज केंद्रित था। निराला के गीतों में मानवता पर होने वाले अत्याचारों के साथ ही प्रताड़ित जन समुदाय की प्रतिक्रिया एवं प्राचीन रूढ़ियों का विरोध कर नए प्रगतिशील युग निर्माण की अभिलाषा दिखाई देती है। निराला ने ‘कवि’ नामक कविता में स्पष्टतः संकेत किया है कि कवि तो जीवों के पारस्परिक जीवन को जोड़ता है, सहस्रों वार झेलकर मानववाद की जड़ें मजबूत करता है भले ही वह व्यक्तिगत सुखों से वंचित हो जाय। सृजन ही कवि धर्म है और निराला ने इसका शत प्रतिशत निर्वाह किया है :-

“और कोई, कवि तुम, एक तुम्ही

बार-बार-झेलते सहस्रों वार

निर्मम संसार के,

दूसरे के अर्थ ही लेते दान

महाप्राण ! जीवों में देते हो

जीवन ही जीवन जोड़

मोड़ निज सुख से मुख।<sup>129</sup>

निराला मानव समाज के उद्धार और विकास के लिए प्रभु की अपार करुणा हेतु प्रार्थी है। वे प्रभु के अनुराग और दिव्य आलोक की कामना करते हैं :-

“दलित जन पर करो करुणा।

दीनता पर उतर आये

प्रभु तुम्हारी शक्ति अरुणा।<sup>130</sup>

कवि मानव जीवन के स्वार्थों को मां के चरणों पर बलिदान करते हुए महाकाल क तीक्ष्ण शरों को भी सहन की शक्ति मांगता है। कवि समग्र मानव समाज के लिए अभिमान व संशय से रहित, बाधा विहिन विकासशील प्रशास्त पथ की कामना करता है। अणिमा में कवि कहते हैं :-

“दूर हो अभिमान, संशय

वर्ण-आश्रम-गत महामय

जाति जीवन हो निरामय,

वह सदाशयता प्रखर दो।<sup>131</sup>

कवि मानव जीवन के शुष्क प्राणों में रस के संचार की कामना करता है। वह मानव हृदय रूपी कमल को नया पराग देना चाहता है। कवि जग के मंगल का आंकाक्षी हैं। अपनी कविता में अखंड शक्ति मांगता हुआ वह समस्त प्राणियों

को बंधनों से मुक्ति हेतु निवेदन करता है। आराधना में कवि कहते हैं :-

“खग को ज्योति पुंज प्राप्त दो,

जग-टग को प्रेयसी रात दो,

मुझको कविता का प्रपात दो,

बंधे परों के उड़ते वर दो।<sup>132</sup>

निराला की ये समस्त कविताएँ मानववादी स्वयं को ध्वनित करती हुई उस सुंदर मानव-संसार का संकेत करती हैं जहाँ स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व का साम्राज्य हो और जहाँ जीवन सच्चे अर्थों में प्रगति का पर्याय बने।

**साम्य की स्थापना:-**निराला दलितों का व दीनों के प्रति सहानुभूति प्रकट करते हुए वे समाज में समरसता स्थापित करना चाहते हैं। वे मानते हैं कि समाज के सभी कष्टों का मूल कारण विषमता है। समाज के दुख को देखकर उनका हृदय क्रंदन करने लगता है तथा उनके दुख-दर्द में सहभागी बनना चाहता है। पूंजीवादी सभ्यता पर निराला ने एक व्यंग्य ‘गीत गुंज’ नामक संकलन में किया है। इसमें उन्होंने यह प्रतिपादित किया है कि जब तक एक मनुष्य दूसरे मनुष्य को मानव नहीं समझेगा तब तक सामाजिक समरसता उत्पन्न नहीं हो सकेगा वह कहते हैं :-

“मानव जहाँ बैल घोड़ा है

कैसे तन मन का जोड़ा है?

किस साधन का स्वांग रचाया

इस बाधा की बनी त्वचा है

यह पक-पक में ऐसा फूटा है

जैसे साबुन का फेड़ा है।<sup>133</sup>

निराला सामाजिक व्यवस्था का साम्यवादी आदर्श प्रस्तुत करते हुए किसानों की महता प्रतिपादित करते हैं। जाति पाति, छुआछूत को दूर करते हैं। सामंतवादी और पूंजीवादी व्यवस्था के तोड़ने का भी क्रांति मूलक आदर्श है जिसमें समानता का आदर्श प्रतिष्ठित हो सके।

“जल्द जल्द पैर बढ़ाओ,

आओं आओ। आज अमीरों की हवेली पाठशाला,

किसानों की होगी पाठशाला,

धोबी, पासी, चमार, तेली

खोलेंगे अंधेरे का ताला,

एक पाठ पढ़ेंगे, टाट बिछाओं।<sup>134</sup>

निराला जी के काव्य में सामाजिक विषमता के प्रति तीव्र आक्रोश सर्वत्र दिखाई देता है। बादल राग कविता में कवि बादलों को आवाह्न करता हुआ कहता है कि हे वीर बादलों ! तुम भारत के इन दीन-हीन किसानों की पुकार को सुनकर विप्लन करने के लिए अवश्य पधारो। कवि कि इन क्रांतिकारी भावनाओं से यह बोध होता है कि कविवर निराला सामाजिक विषमता को दूर करके सामाजिक समता स्थापित करना चाहते थे।

**आशा, आस्था और संघर्ष की अभिव्यक्ति:-**आशा, आस्था, दृढ़ता की सबल अभिव्यक्ति प्रगतिशील रचनाओं का एक अनिवार्य मापदंड है। ये ओजस्वी स्वर हमारी जीवन-ऊर्जा के स्वरूप प्रमाण है। निराला काव्य में समाज की विषमताओं, मलिनताओं, विकृतियों आदि के दुर्बल चित्र ही अंकित नहीं हुए हैं, वरन् उन सबसे लड़ने की एक विश्वासमयी संकल्प शक्ति भी स्थापित हुई है। निराला कभी टूटे न ही हैं, उनमें अदम्य आशा, विश्वास और अपराजेय शौर्य है। ‘अणिमा’ में कवि कहते हैं :-

“मरण को जिसने वरा है,

उसी ने जीवन भरा है।

परा भी उसकी, उसी के,

अंक सत्य यशोधरा है।<sup>35</sup>

उनका आस्थामय व्यक्तित्व अंधकार पार कर सत्य का आभामय द्वार देखने हेतु कृत संकल्प है:-

“करना होगा यह तिमिर पार

देखना सत्य का मिहिर द्वार

बहना जीवन के प्रखर ज्वार में निश्चय

लड़ना विरोध से द्वंद्व समर

रह सत्य मार्ग पर स्थिर निर्भर

जाना भिन्न भी देह, निज घर निःसंशय।<sup>36</sup>

**छंद में नवीन प्रयोग:-**निराला छंद योजना की दृष्टि से भी क्रांतिकारी एवं विद्रोही कवि है। उन्होंने छंद संबंधी प्राचीन मान्यताओं को आमूल चूल परिवर्तित करते हुए मुक्त छंद में काव्य सृजन प्रारंभ किया जिससे कवियों को कविता लिखने में सरलता एवं स्वच्छन्दता का अनुभव हुआ। छंद के कैद से कविता को मुक्त करके निराला हिंदी में मुक्त छंद में कविता लिखने वाले पहले कवि कहलाएँ। कविवर निराला ने अपने काव्य संग्रह ‘परिमल’ की भूमिका में मुक्त छंदों की आवश्यकता पर बल देते हुए कहा- “मनुष्यों की मुक्ति की तरह कविता की भी मुक्ति होती है। मनुष्यों की मुक्ति कर्मों के बंधन से छुटकारा पाना है। कविता की मुक्ति छंदों के शासन से अलग हो जाना है। ..... मुक्त काव्य कभी साहित्य के लिए अनर्थकारी नहीं होता, किंतु उससे साहित्य में एक प्रकार की स्वाधीन चेतना फैलती है, जो साहित्य के कल्याण की ही मूल होती है।” निराला की स्वच्छंद छंद वाली कविताओं पर लोगों ने तीव्र प्रहार किए। किसी ने इसे रबड़ छंद’ कहा तो किसी ने केंचुआ छंद कहकर व्यंग्य किया और इसे साहित्य के लिए अनर्थकारी घोषित किया, किंतु निराला उनकी कटु आलोचनाओं की चिन्ता किए बिना स्वच्छंद छंद में कविताएं लिखते रहे। उन्होंने यजुर्वेद की पक्तियों को उद्धृत करके यह सिद्ध किया कि वह भी मुक्त छंद की कविता है, पर आज तक किसी ने उस पर उंगली नहीं उठाई। वह कहते हैं-“आज परमात्मा स्वयं अगर यह रबड़ छंद और केंचुआ छंद लिख सकते हैं तो मैंने कौन-उचयसा कसूर कर डाला? आप लोग कृपा करके मुझे क्षमा क्यों नहीं कर देते?” निराला के परम्परागत छंद विधान के बंधन को तोड़ते हुए नवीन छंदों की स्थापना का साहस दिखाते हुए स्पष्ट रूप से कहा:-

“मुक्त छंद सहज प्रकाशन वह मन का

निज भावों को प्रकट अकृत्रिम चित्र।<sup>37</sup>

पूर्व छंद के बंधनों को उन्होंने किसी प्रकार नहीं स्वीकार किया और विद्रोही स्वर में कहा:-

“आज नहीं है मु-हजये कुछ चाह,

अर्द्ध विकल इस हृदय कमल में आ तू,

प्रिय छोड़कर बन्धनमय छन्दों की छोटी राह।<sup>38</sup>

निराला के छंद विधान को तीन श्रेणियों में बांटा जा सकता है:-

1. सममात्रिक अत्यानुप्रास वाली कविताएं
2. विषम मात्रिक अत्यानुप्रास वाली कविताएं
3. मुक्त छंद वाली कविताएं

गीतिका के गीत एवं बेला की गजले सममात्रिक अत्यानुप्रास वाली कविताएँ हैं। ये तुकांत छन्दबद्ध कविताएँ कवि के पुरातन के मोह का संकेत देती हैं।

“तुम तुंग हिमालय श्रृंग

और मैं चंचल गति सुरसरिता।

तुम विमल हृदय उच्छ्वास

और मैं कांत कामिनी कविता।<sup>39</sup>

‘भिक्षुक’ जैसी कविता में कवि ने विषममात्रिक अत्यानुप्रास छंद का

प्रयोग किया है जिसमें पहली और दूसरी पंक्ति में मात्राओं की समानता नहीं है, किंतु अंतिम शब्द की तुके समान हैं। इसी प्रकार दूसरी और चौथी पंक्ति में विषम मात्राएं हैं, किंतु तुके मिल रही हैं।

“वह आता

दो टूक कलेजे के करता, पछताता पथ पर आता,

पेट पीठ दोनों मिलकर हैं एक,

चल रहा लकटिया टेक।।<sup>40</sup>

‘परिमल’ काव्य संग्रह के तृतीय भाग में स्वच्छंद छंद में लिखी गई निराला की कविताएँ संकलित हैं।

“विजन वन वल्लरी पर

सोती थी सुहाग भरी स्नेह स्वप्न मग्न

अमल कोमल तनु तरुणी जुही की कली

दृग बन्द किए शिथिल पत्राक में।<sup>41</sup>

निराला ने जो कविताएँ मुक्त छंद में लिखी उनमें कविता को तुक, मात्रा, लय, गति सबसे मुक्ति दे दी। बस उसमें एकमात्र प्रवाह शेष बचा जिसके बल पर वह काव्य सरिता कल-कल निनाद करते हुए पर्वतीय सरिता की भांति आगे बढ़ती गई।

**निष्कर्ष:-**कविवर सूर्यकांत त्रिपाठी निराला हिंदी के युगांतरकारी कवि हैं तथा छायावादी कवि चतुष्टय में उनका महत्वपूर्ण स्थान है। काव्य की विषय-वस्तु की दृष्टि से निराला जी छायावादी होने के साथ-साथ प्रगतिवादी भी हैं। मानव की पीड़ा, परतंत्रता के प्रति तीव्र आक्रोश उनकी कविताओं में है तथा अन्याय एवं असमानता के प्रति विद्रोह की भावना उनमें सर्वत्र व्याप्त हैं। निराला ने अपने काव्य में सामाजिक विषमता पर आक्रोश व्यक्त किया, शोषण का विरोध किया, दीन-हीन दशा का चित्रण करते हुए उनके प्रति सहानुभूति व्यक्त की, पूंजीपतियों की प्रवृत्तियों का विरोध किया एवं पुरानी सड़ी-गली रूढ़िवादीता को हटाकर नवीनता लाने का समर्थन किया। निराला के प्रगतिशील काव्य में सामाजिक जीवन के वैषम्य हैं, मानवीय सहानुभूति की प्रधानता है। वे पौरुष, वर्चस्व और विद्रोह के कवि हैं। समसामयिकता और निरंतर विकासशीलता उनकी अथक साहित्य साधना का प्रतिफल है। एक ओर उनमें आध्यात्मिक ओजस्विता है तथा दूसरी ओर उर्जस्वित काव्यानुभूति। उनमें राष्ट्रीय तेजस्विता, जीवन-संघर्ष का संदेश और जीवन की अटूट आस्था है। कह सकते हैं कि निराला ने प्रगतिशील सामाजिक शक्तियों को व्यापकता के साथ अपनाने की सफल चेष्टा की और अपने काव्य साहित्य को बहुजन की छवि बना दिया। निराला काव्य में जीवन की समग्रता है और प्रगतिशील आयामों की सफल अभिव्यक्ति है। यह चिर प्रगतिशील भाव सम्पन्न काव्यधारा है।

**संदर्भ सूची:-**

1. निराला रचनावली (भाग-15). संपादक-नंद किशोर नवल. राजकमल प्रकाशन. नयी दिल्ली. पृ. 343
2. <https://www.hindikunj.com>>2017/09
3. <https://kavitakosh.org>>बादल राग
4. <https://www.amarujala.com>>kavya
5. निराला रचनावली (भाग-15). संपादक-नंद किशोर नवल. राजकमल प्रकाशन. नयी दिल्ली. पृ. 44
6. <https://www.amarujala.com>>kavya
7. <https://www.amarujala.com>>irshad
8. प्रतियोगिता साहित्य. डॉ. अशोक तिवारी. साहित्य भवन. आगरा. पृ. 302

9. निराला रचनावली ( भाग- 15 ). संपादक -नंद किशोर नवल.  
राजकमल प्रकाशन. नयी दिल्ली. पृ. 116
10. निराला रचनावली ( भाग- 15 ). संपादक -नंद किशोर नवल.  
राजकमल प्रकाशन. नयी दिल्ली. पृ. 141
11. प्रतियोगिता साहित्य. डॉ. अशोक तिवारी. साहित्य भवन. आगरा.  
पृ. 696
12. निराला रचनावली ( भाग- 5 ). संपादक-नंद किशोर नवल.  
राजकमल प्रकाशन. नयी दिल्ली. पृ. 141
13. वही, पृ. 35
14. <http://kavitakosh.org>>दान .....
15. निराला रचनावली ( भाग- 15 ). संपादक-नंद किशोर नवल.  
राजकमल प्रकाशन. नयी दिल्ली. पृ. 296
16. वही, पृ. 297
17. वही, पृ. 298
18. <http://kavitakosh.org>>आ रे गंगा के किनारे .....
19. <https://www.hindikunj.com>>2017/09
20. प्रतियोगिता साहित्य. डॉ. अशोक तिवारी. साहित्य भवन. आगरा.  
पृ. 698
21. <https://hindi.kavita.com>>Hindi Bela
22. <https://hindi.kavita.com>>HindiNay.....
23. प्रतियोगिता साहित्य. डॉ. अशोक तिवारी. साहित्य भवन. आगरा.  
पृ. 697
24. <https://bharatdiscovery.org>>India
25. निराला रचनावली ( भाग- 15 ). संपादक-नंद किशोर नवल.  
राजकमल प्रकाशन. नयी दिल्ली. पृ. 60
26. वही, पृ. 267
27. वही, पृ. 267
28. वही, पृ. 323
29. <http://kavitakosh.org>>कवि .....
30. प्रतियोगिता साहित्य. डॉ. अशोक तिवारी. साहित्य भवन. आगरा.  
पृ. 697
31. <https://hindisamay.com>>content
32. <http://kavitakosh.org>>आराधना
33. <https://hindi-kavita.com>>HindiGee .....
34. <https://www.hindi-org>>Kavita
35. <https://hindisamay.com>>content
36. <https://www.hindiorg>>kavita>t.....
37. प्रतियोगिता साहित्य. डॉ. अशोक तिवारी. साहित्य भवन. आगरा.  
पृ. 704
38. वही, पृ. 704
39. वही, पृ. 706
40. वही, पृ. 64
41. <https://epustakalaya.com>>book>4 .....

# नरेश मेहता के काव्य में सामाजिक भावभूमि और मानववादी चेतना

डॉ. अनामिका द्विवेदी

एसोसिएट प्रोफेसर, हिन्दी, ए. के. पी. (पीजी) कॉलेज, खुर्जा, उ. प्र.

नरेश मेहता की कविताएँ स्वस्थ सामाजिक बोध और मानवीय सदाशयता से परिपूर्ण हैं। उन्होंने जीवन के यथार्थ को उकेरते हुए अपना ध्यान समष्टि चिन्तन की ओर लगाया है। 'बोलने दो चीड़ को' में नरेश मेहता एक स्वस्थ दर्शन की अभिव्यक्ति सजीवता के साथ करते हैं। कविताओं में स्वस्थ सामाजिकता और विचारशीलता होने के कारण नवीन भावभूमि के नये मानव मूल्य, भाव-बोध और अभिव्यक्ति के सारल्य के दर्शन होते हैं इसी प्रकार 'मेरा समर्पित एकान्त' में कवि ने बोलने दो चीड़ की भावना को ही विस्तार दिया है। कवि यहाँ एकान्त बोध करता है, परन्तु रचना में व्याप्त सामाजिक प्रयोजन अपना महत्व रखता है। कवि का विचार विश्लेषण जनमानस और मानव जीवन के सत्य को स्वीकार करता हुआ वृहत् को समर्पित होना चाहता है। यहाँ कवि आत्मनिष्ठ न होकर वस्तुवादी हो गया है। वह निर्वैयक्तिक होकर अपनी काव्य भूमि के आधार प्लक को विस्तृत कर सका है। कवि ने 'बोलने दो चीड़ को' में प्रकृति के दृश्यों का उपयोग किया है। 'वहाँ प्रकृति का प्रत्येक उपकरण जीवन में चेतना का संचार करता और उन्मेष देता है। सामाजिक बोध की रचनाओं में निर्जीव परम्पराओं का तिरस्कार है। ये रचनायें मुक्त छन्द में हैं। 'मेरा समर्पित एकान्त' कवि के विचारों एवं काव्यात्मक अभिव्यक्ति की प्रौढ़ रचना है। रचना का शीर्षककवि के सामाजिक बोध को व्यक्त करता है। यहां आकर वह अपने बहुमूल्य एकान्त और क्षण (वैयक्तिकता), को जनजीवन को समर्पित कर देता है। यह समर्पण की भावना उदात्तीकरण की प्रक्रिया से आन्दोलित है।<sup>2</sup> 'बनपाखी सुनो !!' में पहली रचना है प्रार्थना। कवि ने पीड़ा को मन की आत्मजा मानते हुए उसे सहन करने और स्वीकार करने की प्रार्थना की है-

सृष्टि प्रिया पीड़ा है

कल्पवृक्ष-

दान समझ, शीश झुका

स्वीकारो -

ओ मन करपात्री! मधुकरि स्वीकारो !!

वहन करो, सहन करो,

ओ मन ! वरण करो पीड़ा!!<sup>3</sup>

कवि ने संशयग्रस्त अहंकारी और विद्रोही प्रवृत्तियों के स्थान पर इंसानी सरोकार को महत्व दिया है। उसका व्यक्तिनिष्ठ चिंतन सामाजिक जमीन पर खड़ा हो गया है। 'तीर्थ जल' कविता इसका प्रमाण है। वह जड़ परम्पराओं को भी नकारता है। जल से भरा हुआ कुण्ड शिलाओं से घिर कर गतिहीन हो जाता है। वह समुद्र की ओर दौड़ नहीं सकती, वह सब तरफसे कटा हुआ एक घेरा बन जाता है, अतः वह गति की बाधाओं से मुक्त होने के लिए लालायित है। वह जीवन के सन्दर्भों से जुड़ना चाहता है।

'एक बोध' रचना में कवि जीवन की विपरीत स्थितियों को उद्घाटित

करते हुए पथभ्रष्टता और भ्रमजाल की स्थिति से उबरना चाहता है। कवि जानता है कि दूर व्यक्ति का अपना क्षितिज है और अपनी मंजिल है।

'मेघमय' कविता सामाजिक भावभूमि की सशक्त कविता है। बादल आत्मकथा के रूप में अपनी बात कहता है। वह अंकुरों को जन्म देता है, मरु प्रदेश की प्यासी धरती को भरता है और इस तरह इस धरती से उसका अटूट नाता है। 'वनघासे' रचना मानवीय चेतना को जाग्रत करती है। वन सखाहीनों कीसखा है, धरती को ढक कर उसे नये वस्त्र देती है, लेकिन मनुष्य है कि एटमबम का निर्माण कर सृष्टि के विनाश में लगा है। कवि ने वनघासों की तुलना में मानवीय चेतना को रचनात्मक कार्यों के लिए प्रेरित करने की कोशिश की है। कवि संघर्ष के लिए सशक्त बाहुओं को पुकारता है, और मानवीय सम्बन्धों को पूरी ऊँचाई तक प्रस्तुत करते हुए लिखता है कि 'मनुज के सम्बन्ध से सब स्वर्ग है।' उदित होते हुये सूर्य की कीर्ति महत्वपूर्ण होती है, और उन्हीं का जयमाल चूमा जाता है। जो कर्मठता का परिचय देते हैं, समय रूपी जल में अपने को समर्पित करके ही हम अपनी महत्ता सिद्ध कर सकते हैं। किनारे पर बैठने से कुछ नहीं होता-

आओ इस झील को अमर कर दें-

छूकर नहीं,

किनारे बैठकर भी नहीं,

एक संग झाँक इस दर्पण में

अपने को दे दें हम,

इस जल को-

जो समय है !!<sup>4</sup>

'बोलने दो चीड़ को' संकलन में कवि की शिल्प सजगता और नये प्रयोगों की भरमार अधिक है, फिर भी कवि ने अम की प्रतिष्ठा और समष्टि को महत्ता पर कई कविताओं में जोर दिया है। कवि ने नयी पीढ़ी के इन्द्रों को कर्म और श्रम की श्रृंखला में बाँध दिया है।

'कमल वन' किसी व्यक्ति विशेष का नहीं, अतः निजी स्वार्थों से ऊपर उठनेकी जरूरत है। हमारी आज की जिन्दगी भय, संशय, आशंका और रुढ़ियों में दम तोड़ रही है। मनुष्य की प्रज्ञा इनसे पूरी तरह घिर चुकी है, अतः कवि संकल्प की आकांक्षा करता है-

कल तक जो रक्षाजल था

उस खाई जल में

छायाएँ तल जा बैठी हैं।

हम नहीं

हमारा संशय उनमें प्रतिच्छायित है

ये भय की मुग्धाएँ

अपनी वंशवेल से  
घरे हैं मेरी प्रजा को।<sup>1</sup>

वैशाख के बड़े दिन तपन सहकर चांदनी को जन्म देते हैं, उसी तरह दुःख दर्द सहकर ही मानवीय निखार प्राप्त होता है। 'किन्तु' में लड़ंगा ही, रचना में कवि साहस और संकल्प के साथ संघर्ष के प्रति पूर्ण सजग हो उठा है। वह किसी की दया पर नहीं पलना चाहता बल्कि रक्त की अन्तिम बूंद तक युद्ध करना चाहता है। उसके पास अग्नि दृष्टि है, और अन्याय के प्रतिकार के लिए वह कई पीढ़ियों तक पुत्रों और पात्रों के रूप में लड़ने की आकांक्षा करता है।

'रक्त हस्ताक्षर' कविता यह सिद्ध करती है, कि पूर्वजों से पाई विषमताओं विवशताओं और जड़ परम्पराओं से हर पीढ़ी को लड़ना पड़ता है। अतीत की बेडियों से लड़कर वर्तमान का संघर्ष नया भविष्य बढ़ता है। इसलिए कविरक्त हस्ताक्षर का आवाहन करता है।

पुत्र मेरे-

आज के वैषम्य से कह दो  
हमें आलेख कर  
मरुस्थलों में गाड़ दो गहरे,  
तुम्हारे परिव्यक्त वस्त्रों में  
हमें सज्जित करो।<sup>2</sup>

नरेश मेहता अपने एकान्त को फूल के सहज विकास से जोड़ना चाहते हैं। एकान्त के क्षण उन्हें उत्साह, बाशा और जनजीवन को समझाने में सहायक होते हैं। परिश्रम की ग्रन्थ को वे जीवन मूल्यों से जोड़ते हैं। कवि की मानववादी चेतना इस बात पर जोर देती है, कि व्यक्ति के अधिकारों का मतलब किसी को कुचलना नहीं है। भीड़ असावधानी से व्यक्ति के मूल्यों को कुचल देती है, लेकिन हमें व्यक्ति के मूल्य को, उसके स्वत्व को भी समझना होगा। 'अनुनय' कविता यही आशय व्यक्त करती है। कवि अपने सामूहिक एकान्त को कल की प्रतीक्षा से जोड़े हुए हैं, क्योंकि उसे निश्चित शान्ति के साम्राज्य की महती आशा है। नरेश मेहता की मानवीय सदाशयता फाल्गुन सम्बन्धी कविताओं में व्यक्त हुई है। कवि की आकांक्षा है कि जो उदास, उपेक्षित और असहाय बैठे हुए हैं, उन्हें भी चेतनामय उत्सव की प्रसन्नता का आभास हो सके।

'बोलने दो चीड़ को' संकलन में कुछ रचनायें कवि की व्यंग्यपरक दृष्टि को प्रस्तुत करती हैं। यह सच है कि नरेश मेहता के व्यस्य उनको प्रयोगशीलता और अभिजात्य प्रवृत्ति के कारण भयावह यथार्थ को प्रखरता के साथ पेश नहीं कर पाते। फिर भी व्यक्ति की स्वार्थबद्धता और आत्मकेन्द्रित दृष्टि को व्यक्त करने में ये रचनायें समर्थ हुई हैं। 'यदि मैं मेयर होता' कविता स्पष्ट करती है कि व्यक्ति पहले घर की सुख-सुविधा और वैभव सम्पन्नता को देखता है, बाद में नगर और अन्य सामाजिक प्रसंगों की ओर-

आज का आदमी वातानुकूलित कमरे चाहता है, गाँव के अनगढ़ मकान नहीं। प्रकृति की सुन्दरता से कहीं अधिक वह शहरी सभ्यता में ढलना चाहना है। 'विकल्प' कविता इस बात का प्रमाण है। 'बूढ़े मसूदों का जुलूस' कविता में कवि ने दर्शाया है कि आदमी नकली सफलताओं और सुनहली कल्पनाओं में जीता है। ये झूठी चमकदार सफलताएँ जिन्दगी के उपन्यास को कुछ नहीं देती। नकली दाँतों से न तो सरसता आती है और न नयापन।

मुझे अफ़सोस है

दाँत के डाक्टर की दुकान की ओर

सफल व्यक्तियों का

दन्तहीन असफल जुलूस -

'मेरा समर्पित एकान्त' संकलन में कवि नदी की पतली सूखी रेखा को समुद्र से मिलने की आकांक्षिणी बतलाया है। ग्रीष्म की तपनमयी पीड़ा के बाद

वह शतमुखी होती है और लक्ष्य को प्राप्त करती है। मौन एकाकी दीपक प्रतिकूल परिस्थितियों में जागता है और अन्त में प्रभुमय हो जाता है। नरेश मेहता की मानववादी चेतना का पुष्ट प्रमाण है 'प्रार्थना' कविता। वह अपदा सब कुछ न्योछावर कर मानवता की रक्षा के लिए सन्नद्ध है। वह मानवीय करुणा को रूपायित करना चाहता है, और एकान्त में विनयपूर्ण तेजस्विता के साथ मानव की पीड़ा को स्वर देना चाहता है।

हर गर्व के पथ में

विनत दूर्वा बँनूँ

यह वर्चस्व दो

ओ वरेण्य पिता

आगझुलासाये मनुज को जो

स्वाहा हो सकूँ उसमें प्रथम

यह पुण्य दो।<sup>3</sup>

विडम्बना कविता उन व्यक्तियों पर व्यंग्य है, जो बिना साधना और तपस्या के ऋषी माने जाते हैं, और कर्मठ सम्पाती को कोई महत्व नहीं मिलता, अर्थात् लोग शब्दों के आडम्बर में जीते हैं। मन का संकल्प शरीर की ताकत से ऊँचा होता है। समदर्शिता प्रकृति में तो है, लेकिन मनुष्य में नहीं। मनुष्य इतिहास का निर्माता है, इसलिए मनुष्य को अपने कर्म, धर्म और स्वत्व को समष्टि चिन्तन के लिए प्रयुक्त करना चाहिए। इतिहास के दावेदार व्यक्तिगत अहं, पाखण्ड और ईर्ष्या में आकण्ठ डूबे रहते हैं। वे सब जगह छा जाना चाहते हैं। तथाकथित नेता युग प्रवर्तक बनना चाहते हैं। लेकिन कोई भी रचनात्मक काम स्वार्थपूर्ण समझौतों से हल नहीं होता। कवि का व्यंग्य है कि मानवीय चेतना अधिक महत्वपूर्ण है, अपेक्षाकृत इतिहास में अपना नाम अंकित कराने की लोलुपता से। कवि अपने एकान्त को स्वस्थ सामाजिकता से जोड़ता हुआ उसे प्रकाशमय बनाना चाहता है। व्यक्तिगत अहं का सेतु जीवन को रागमय, गन्धमय और रूपमय नहीं बना सकता। गहरे अन्धकार में सूर्योदय के प्रति विश्वास रखना जीवन की सबसे बड़ी सम्पत्ति है। एक सीमित घर के भीतर व्यक्ति जड़ हो जाता है लेकिन एक वीनराग में जन-कल्याण के लिये अर्थात् राजमार्ग के लिए समर्पित हो जाता है।

नरेश मेहता की 'समय देवता' सर्वाधिक चर्चित और सशक्त कविता है। यद्यपि उसकी राजनीतिक मान्यताएँ विवादपूर्ण हो सकती हैं, फिर भी नयी कविता की यह लम्बी और महत्वपूर्ण प्रथम रचना है। 'इस कविता में नरेश ने पृथ्वी के दोनों गोलार्धों की प्राकृतिक सुषमा तथा मानवीय उपलब्धि का चित्रण किया है। इस विराट् फलक को अपने सम्पूर्ण वैभव में हृदयंगम करने के लिए समय देवता में मानवीय इतिहास की विशिष्ट घड़ियों का अत्यन्त ओजस्वी चित्रण किया है-समय देवता की पूरी कल्पना और वस्तु संगठन अत्यन्त उदार एवं अभिजात्य है। यह कलाविकल ढंग की रचना कही जा सकती है। इस लम्बी कविता में कवि का आस्थावादी स्वर अत्यन्त आग्रह के साथ प्रगट हुआ है।<sup>4</sup> इस कविता में कवि ने पूरी दुनिया नापली है। एक ओर कवि ने धरती की महिमा का गुणगान किया है तो दूसरी ओर मानव महिमा का। इसके साथ ही मनुष्य की वर्तमान दुर्दशा के अन्धकारमय और निराशापूर्ण चित्र भी बड़ी सच्चाई के साथ खींचे गये हैं। 'प्रस्तुत कविता में जितनी बार समय देवता शब्द आया है, लगभग उतनी ही बार 'मनुज' शब्द भी। यह मनुष्य ही इस कविता के केन्द्र में है। भूमण्डल के विभिन्न देशों का वर्णन करते हुए कवि वहाँ के मनुष्य के हालाक का ही चित्रण मुख्य रूप से करता है। मनुष्य की बुनियादी गरिमा और उसकी वर्तमान अवस्था।<sup>5</sup> कविता का प्रारम्भ साँझ के विराट् चित्र से होता है। कविता में दार्शनिकता के साथ मनुष्य के वर्तमान और भविष्य की चिन्ता व्यक्त हुई है। कवि ने सारे देशों की यात्रा की है। टुन्ज़ प्रदेश, सोवियत भूमि, चीन, जापान,

तिब्बत, भारत, फ्रांस, जर्मन, रोम, अफ्रीका आदि। इस विश्व दर्शन में कवि मनुष्य की विशिष्टता और शक्तिमत्ता का परिचय देता है।

विज्ञान की विध्वंसात्मक भूमिका को हिरोशिमा के सन्दर्भ में कवि ने बड़ीव्यथा के साथ अभिव्यक्त किया है-

हिरोशिमा में मनुज मर गया

वही मनुज

जिसके सिर पर गहन गगन-मुकुट है,

अन्धकार<sup>11</sup>

कवि कलकत्ता के फुटपाथों पर खून से लथपथ मानव को चित्रित करना नहीं भूलता। अमेरिका भौतिक समृद्धि की दौड़ में कराह रहा है, जर्मन देश बूचड़खाना बन गया है, अफ्रीका गोरे काले के युद्ध से ग्रस्त है। कवि ने विभिन्न देशों के वर्णन में प्राकृतिक दृश्यों का वर्णन बड़ी सच्चाई से किया है। हर देश के जनजीवन से सम्बद्ध शब्दावली और विम्ब रखे गये हैं। भारत में वैदिक सभ्यता, कृषि और यज्ञों की प्रधानता रही है, इसीलिए कवि ने उसे वैष्णव संस्कार दिये हैं। कवि युद्ध की मड़राती चीलों से हमें सावधान करता और नवनिर्माण तथा उज्ज्वल भविष्य का सन्देश देता है।

कवि ने एक और फ्रांस को विलासिता, रंगीनी और मदहोशी का वर्णन किया है, तो दूसरी ओर जर्मन के फौजी नवशे की रेखायें खींच दी हैं। कविता का समापन मंगल कामनाओं से होता है। कवि श्रम की महत्ता और आस्था को बल देता हुआ मनुष्य के सृजनशील पूर्ण स्वस्थ जीवन की कामना करता है। मूलतः नरेश मेहता मुक्त छंद के कवि हैं। अनुभूति और संवेदना के उतार चढ़ाव के साथ ही उनकी पंक्तियाँ छोटी और बड़ी होती हैं, पित्र भी उनमें एक लयात्मकता है। उनमें प्रवाह और जीवन्तता है।<sup>12</sup> उनके बिम्ब वस्तुस्थिति को साकार करने की क्षमता रखते हैं। नये उपमान और नये शब्दों का चयन उनकी विशेषता है। कई पंक्तियाँ मन को मोह लेती हैं, क्योंकि उनमें कवि के जीवन्त अनुभव बोलते हैं। लोक जीवन के शब्दों का सटीक प्रयोग उनके काव्य में हुआ है। प्रकृति के दृश्य उनकी लेखनी से साकार हो उठे हैं। यह उनके भाषा की सामर्थ्य है।

नरेश मेहता के प्रयोग कभी चौंकाते हैं, और कभी चमत्कार के साथ कौतूहल प्रस्तुत करते हैं, जैसे-नारियल पेड़, मेगबेथ की चुड़ैलों की तरह, साँझ की ये रोशानियाँ, पीले टिंचर की तरह, वलोरोफार्म की महक की तरह यह तेज अंधेरा, मोम कपड़े सी सड़क पर लाइटें, राख रंग के दही जैसा मेघ का परिवार, वलक लड़की के रिबन सी क्षीण काया सड़क, थकी दिन भर की रगों में चाय का यह गरम इन्जेक्शन, पेड़ के गाउन, हवा में सरसराते सेट सरीखा मोटा बादल, अन्धकार काले मजूर-सा चला आ रहा गैस उठाये, बच्चे का छोटा मुँह स्लाइज का रबड़ बड़ा, तपे वैधव्य सा आकाश आदि। इन प्रयोगों में ताजगी है, चमत्कार है, और कुछ उपमान सर्वथा अनूठापन लिये हैं। कवि को कुछ शब्दों का मोह बहुत सताता है-गाछ, डाक, फ़्लग्युन आदि। लोक जीवन की आँचलिक शब्दावली को कवि ने कई कविताओं में प्रस्तुत किया है। ध्वनि प्रधान शब्दों को भी उन्होंने प्रस्तुत करने की चेष्टा की है-झिम झिम झिम झिम् झाँई, किन् किन् किन् किन् झिम-झिम झां-झां, ट्रेफ़िक के नाल लगे जूतों की खट-खट खट, सरगम के गलत रीढ़ सी बोली क्या-क्या आदि। सांझ भी कवरी हरिण-सी बदलियाँ, ग्वाले की वंशी-सी गाती हवा जंगली, मेला घूमते से आवारा पात, एकान्त पते सीं आखिरी धूप, जैसे सन्तान मिले वर्षों उपरान्त वन्ध्या को, ईसाई भिक्षुणी सी धूप, विधवा की लज्जा सी, सिसक रहा कोढ़ी सा जीवन आदि नये उपमान कवि की सूक्ष्म भाव दृष्टि और भाषा सामर्थ्य का परिचय देते हैं। कुछ पंक्तियाँ सूत्रात्मकता और गहन अनुभव क्षमता लेकर आई हैं, जैसे-सृष्टि पिया पीड़ा है, सहन करो पीड़ा, मनुज के सम्बन्ध से सब स्वर्ग है, दान हमें कालजयी

करता है, खण्डित की पूजा ही वर्जित है, सत्य तेजस् है, सत्ता सूर्योदय पृथक है, मनुज नहीं कैडेट चलता है, वर्तमान मेरी बॉहें हैं, कुहरे में बन्दी हैं किरणें दर्द की अभिव्यक्ति हो नहीं सकती आदि। 'समय देवता' रचना तो पूरी की पूरी सूत्रात्मकता से भरी हुई है।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि नरेश मेहता के पूर्ववर्ती काव्य में प्रकृति के रंगीन चित्र, रोमानी संवेदना और स्वस्थ विचार प्रधान रचनायें दिखाई देती हैं। उनमें केवल प्रेम प्रसंग और प्रकृति परिवेश ही प्रमुख नहीं हैं, बल्कि मानवीय सदाशयता और विश्व चैतन्य की महती भावधारा भी सन्निहित है। उनके शिल्प में प्रयोगों की नवीनता, उपमानों की सटीकता, नवीन शब्दावली, मुक्त छंद की लयात्मकता, मनोहर बिम्ब योजना और गतिशील चित्रात्मकता दिखलाई देती है। उनकी स्वस्थ सामाजिकता और मानववादी चेतना के जो सूत्र हमें आरम्भिक काव्य में दिखलाई देते हैं, उन्हीं का विकसित रूप उनके परवर्ती काव्य में आख्यानक कृतियों के माध्यम से रूपायित हुआ है। उसका धरातल और शिल्प अलग है, लेकिन उसके बीज पूर्ववर्ती कविताओं में स्पष्ट हैं।

सन्दर्भ सूची :-

1. आधुनिक हिन्दी काव्य- डॉ० भगीरथ मिश्र एवं डा० बलभद्र तिवारी, पृ० 569
2. छायावादोत्तर हिन्दी काव्य की सामाजिक और सांस्कृतिक पृष्ठभूमि डॉ० कमला प्रसाद पाण्डेय पृ० 287
3. 'वनपाखी सुनो 'नरेश मेहता' पृ० 9,
4. 'वनपाखी सुनो 'नरेश मेहता' पृ० 5,
5. 'बोलने दो चीड़ को' 'नरेश मेहता' पृ० 28,
6. 'बोलने दो चीड़ को' 'नरेश मेहता' पृ० 44,
7. विकल्प 'बूढ़े मसूदों का जुलूस पृ० 74,
8. 'मेरा समर्पित एकान्त' 'नरेश मेहता' पृ० 6,
9. नयी कविता डॉ० कान्ति कुमार, पृ० 79, 80
10. 'लम्बी कविताओं का रचना विधान' सं० नरेन्द्र मोहन, पृ० 65
11. 'मेरा समर्पित एकान्त' 'नरेश मेहता' पृ० 50,
12. 'नरेश मेहता का काव्य संवेदना और शिल्प' 'अमियचन्द्र पटेल'

# Financial Independence in Women : Trends, Progress, and the Impact of COVID - 19

Dr. Sandeep Kumar Gupta

Assistant Professor, Commerce, Manyawar Kanshiram Govt. Degree College, Gabhana, Aligarh

**Abstract:-**This article explores the concept of financial independence among women, tracing historical progress and challenges. It also examines how the COVID-19 pandemic has disrupted the financial empowerment of women globally. The research draws on economic data, gender studies, and global reports to analyse trends in female workforce participation, the pay gap, and other indicators of financial autonomy. The study highlights both long-term improvements and the specific setbacks caused by the pandemic, including increased caregiving responsibilities, layoffs in female-dominated industries, and limited access to resources for small women-owned businesses. Recommendations for future policies to restore and strengthen women's financial independence post-pandemic are also discussed.

**Introduction:** Understanding Financial Independence Financial independence refers to the ability of individuals to meet their own economic needs without relying on external financial support. For women, this concept has been tied to broader societal changes such as access to education, labour market participation, ownership rights, and gender equality. Historically, women's financial independence has lagged men's due to cultural, legal, and systemic barriers, but significant progress has been made in recent decades. However, the economic disruptions caused by the COVID-19 pandemic have exposed and intensified vulnerabilities in women's financial autonomy.

**Historical Context of Women's Financial Independence:-**The journey toward financial independence for women has been marked by social, legal, and economic transformations across centuries. This progress has been intertwined with broader shifts in cultural attitudes and legal rights that have empowered women to gain control over their finances and economic status.

**1. Early Restrictions and Dependence:-**Historically, women's financial roles were limited by strict societal

norms and legal structures. In many ancient and medieval societies, women were primarily confined to domestic roles and lacked the legal rights to own property, manage finances, or inherit wealth. For instance, under the common law in England and early America, a married woman's assets and income automatically became her husband's, leaving her financially dependent and without control over her wealth.

**2. Property Rights Reforms:-**The 19th century saw significant changes with the emergence of the women's rights movement. Landmark laws, such as the Married Women's Property Acts in the United Kingdom and the United States, granted married women the right to own and control property, signaling the start of financial autonomy. These reforms allowed women to inherit, earn, and manage assets independently, laying a foundation for their future financial independence.

**3. Suffrage Movement and Economic Participation:-**The women's suffrage movement, which gained momentum in the late 19th and early 20th centuries, linked political and financial empowerment. With voting rights, women could advocate for policies that promoted gender equality in employment, wages, and education. As countries around the world extended suffrage to women, this political agency facilitated broader economic participation, allowing women to seek employment and have a say in their financial futures.

**4. The World Wars and Labor Market Entry:-**World War I and World War II were pivotal in accelerating women's financial independence, as women entered the workforce in large numbers to fill roles vacated by men who were fighting abroad. This shift not only increased women's participation in diverse industries but also demonstrated their capability in roles traditionally occupied by men. Post-war, while some women returned to domestic roles, many remained in the workforce, setting the stage for future generations to pursue professional

careers.

### **5. The Second-Wave Feminist Movement and Economic Rights:-**

The 1960s and 1970s marked a transformative period with the rise of second-wave feminism. Advocates pushed for workplace equality, reproductive rights, and equal pay. Key legislation, such as the Equal Pay Act (1963) and Title VII of the Civil Rights Act (1964) in the U.S., outlawed discrimination based on gender, opening doors for women in higher-paying roles and leading to increased financial independence. Similar reforms took place in other countries, laying down a legal framework for gender equality in employment.

### **6. Educational Attainment and Workforce Expansion:-**

Throughout the late 20th century, educational opportunities for women expanded significantly, driven by a greater emphasis on gender equality in schools and higher education. Access to education empowered women with skills needed to compete in the workforce and pursue high-paying careers. This shift not only boosted women's earning potential but also redefined gender norms around work and financial independence.

### **7. Rise of Women Entrepreneurs and Financial Independence:-**

From the 1980s onward, women increasingly ventured into entrepreneurship, fueled by microfinance initiatives and greater access to business networks. Women-owned businesses began to contribute significantly to national economies, especially in developing nations where small-scale businesses offered a pathway out of poverty. Microloans, spearheaded by organizations like the Grameen Bank, provided financial support for women entrepreneurs, fostering economic growth and self-sufficiency.

### **8. The Role of Technology and Financial Services:-**

With the rise of technology in the 21st century, financial services became more accessible to women globally. Digital banking, mobile payment systems, and online learning platforms provided new tools for women to manage finances independently, pursue higher education, and even start their own businesses. Technology has become a powerful catalyst for financial autonomy, helping bridge gaps that have historically limited women's economic participation.

### **Progress in Women's Financial Independence over the time:-**

Over the past century, financial independence for women has seen remarkable growth, particularly in developed nations. Key milestones in this journey include:-

- ◆ Voting rights and property laws: The right to vote and own property laid the groundwork for women's financial autonomy. In many countries, legal reforms in

the 20th century allowed women to control their own income and assets.

- ◆ Increased labour force participation: Between the 1960s and 2000s, women's participation in the workforce expanded significantly, driven by the feminist movement, better access to education, and greater employment opportunities.

- ◆ Educational Attainment: Education has been a powerful equalizer. According to the World Bank, women now make up more than half of the university graduates in many countries, which has a direct impact on their earning potential.

- ◆ Entrepreneurship: A growing number of women are starting businesses. Women-owned businesses are estimated to contribute trillions to global GDP, and access to microfinance has played a role in empowering women in developing economies.

Despite these advances, gender pay gaps and underrepresentation in leadership roles persist, signalling that true financial equality has yet to be achieved.

### **Financial Independence and COVID-19: The Impact**

#### **1. Labor Market Disruption:-**

The COVID-19 pandemic has disproportionately affected women in the labor market. According to a report from the International Labour Organization (ILO), women experienced greater job losses than men, particularly because the hardest-hit industries-hospitality, retail, and service sectors-are largely female-dominated. The pandemic exacerbated existing gender inequalities, especially for low-income and part-time workers, the majority of whom are women.

A McKinsey & Company report showed that women's jobs were 1.8 times more vulnerable to the crisis compared to men's. While women accounted for 39% of global employment, they represented 54% of the overall job losses during the pandemic. This dramatic decline in employment has reversed years of progress in narrowing the gender employment gap.

#### **2. Increased Caregiving Responsibilities:-**

The pandemic resulted in the closure of schools and daycare centres, forcing many women to assume additional caregiving responsibilities. In most households, women bear the brunt of unpaid care work, leading to increased stress and, in many cases, the need to cut back on paid work. UN Women found that women were spending an additional 4.1 hours per day on childcare during the pandemic, which impacted their ability to maintain employment or seek financial independence.

#### **3. Women Entrepreneurs: Struggles and Resilience:-**

Small businesses, particularly those owned by women, have faced considerable challenges during the pandemic.

Women entrepreneurs often operate in sectors vulnerable to economic downturns, such as hospitality, fashion, and retail, which experienced prolonged closures and reduced consumer demand. Furthermore, access to capital—a pre-existing challenge for women entrepreneurs—became even more restricted during the pandemic, as many small businesses loan programs were not designed to support women-led enterprises effectively.

However, some women-led businesses demonstrated resilience by pivoting to e-commerce and digital solutions. Those with access to digital tools were able to sustain their businesses by reaching broader markets online. Nevertheless, the digital gender gap, especially in low-income countries, remains a barrier for many women entrepreneurs to fully capitalize on these opportunities.

**4. Impact on Financial Health and Savings:-**Women's financial health was particularly affected by the pandemic, as they are more likely than men to work in insecure, low-wage jobs. According to OECD data, women generally have lower savings and are more reliant on public services, which were often disrupted during the pandemic. Many women had to deplete their savings to cover daily expenses during lockdowns, further eroding their financial security.

**Long-Term Implications and Recovery:-**As the world gradually recovers from the pandemic, restoring women's financial independence requires intentional policies and strategies. The post-pandemic recovery phase offers an opportunity to address structural issues such as the gender pay gap, unequal caregiving responsibilities, and access to capital for women entrepreneurs.

◆ **Investing in Care Infrastructure:** To ensure women can return to work, governments must invest in affordable childcare and eldercare. Public policies that promote shared caregiving responsibilities between men and women will also be crucial in reducing the burden on women.

◆ **Inclusive Economic Policies:** Stimulus packages should be designed with gender sensitivity to support women-dominated industries and businesses. This includes targeted relief for women entrepreneurs and programs to upskill women for the post-pandemic economy.

◆ **Closing the Digital Gender Divide:** Access to technology and digital skills is vital for women's financial independence. Expanding internet access and providing digital training programs can help women participate in the global digital economy.

◆ **Strengthening Social Safety Nets:** Enhancing

social safety nets, such as unemployment benefits, paid leave, and health insurance, can cushion women from the economic shocks of future crises.

**Challenges Beyond COVID-19:-**Even as the world recovers from the pandemic, several persistent challenges continue to hinder women's financial independence. These issues, rooted in systemic inequalities and cultural norms, remain significant barriers for women seeking economic autonomy.

◆ **1. Workplace Discrimination and Gender Bias**  
Women still face discriminatory practices in hiring, promotion, and compensation. Biases related to gender, race, and age can affect their career advancement and earnings. A 2021 report from the World Economic Forum found that it could take over 130 years to close the global gender gap, highlighting that entrenched biases are deeply rooted in many labor markets.

◆ **2. The "Motherhood Penalty"**  
Women who become mothers often experience reduced earning potential compared to men or women without children, a phenomenon known as the "motherhood penalty." This penalty results from both time taken off work for caregiving and lingering stereotypes about mothers' commitment to their jobs. Studies have shown that mothers are often passed over for promotions and face reduced work hours, both of which contribute to lower lifetime earnings.

◆ **3. Gender Pay Gap and Occupational Segregation**

The gender pay gap remains a critical challenge, with women earning significantly less than men in nearly every industry. This gap is exacerbated by occupational segregation, where women are often concentrated in lower-paying sectors such as education, healthcare, and retail. According to the International Labour Organization, addressing occupational segregation requires substantial policy intervention and a shift in societal perceptions regarding "gendered" professions.

◆ **4. Limited Representation in Leadership Positions**

While the number of women in leadership roles has increased, women remain underrepresented in high-level corporate and government positions. The "glass ceiling" effect continues to limit women's access to top-tier roles, impacting their influence in policy-making and economic decision-making. Studies show that diverse leadership teams are linked to improved business outcomes, indicating that promoting gender diversity in leadership benefits both women and organizations.

◆ **5. Access to Financial Resources**

Women, particularly those in developing countries, face challenges in accessing financial resources, such as credit and investment capital. This restricts their ability to start or grow businesses. Although microfinance initiatives have been helpful, they often lack the scale needed to support more extensive entrepreneurial endeavors. Financial institutions must work to address these barriers by designing products tailored to women's unique needs and by reducing the collateral requirements that women may find hard to meet.

◆ 6. Educational and Digital Divide

Although global educational attainment for women has improved, women in many regions still face restricted access to quality education and digital tools. The digital divide, which affects internet access and technological proficiency, limits women's participation in modern economies, particularly in rural and underserved areas. Providing equal access to education and digital resources is essential for women to achieve financial independence and thrive in a technology-driven world.

◆ 7. Lack of Social Safety Nets

Women, who are disproportionately employed in informal or part-time work, often lack access to benefits like health insurance, maternity leave, and retirement funds. Without these social safety nets, women are more vulnerable to financial instability during life transitions such as childbirth, illness, or retirement. Expanding these protections to cover non-traditional work arrangements is crucial for supporting women's long-term financial security.

◆ 8. Cultural and Social Norms

In many societies, cultural expectations around gender roles continue to limit women's financial independence. Societal norms that dictate caregiving responsibilities as "women's work" constrain their ability to participate fully in the workforce. Addressing these norms through awareness campaigns and encouraging men to share caregiving duties are critical steps toward changing the cultural landscape.

**Conclusion:-** Historical developments highlight the extensive progress women have made toward financial independence, although significant challenges remain. Each milestone—whether legal, economic, or cultural—has contributed to creating an environment where women can increasingly control their finances and make independent economic choices. Understanding this journey is crucial to addressing the current barriers women face in achieving full financial equality. The COVID-19 pandemic has highlighted the fragility of women's financial independence, underscoring the urgent need for sys-

temic changes in both the economy and gender norms. While the pandemic set back years of progress, it also presents an opportunity to rebuild economies in a way that promotes greater gender equality. Achieving long-term financial independence for women requires comprehensive policies that address the root causes of inequality in the labour market, caregiving, entrepreneurship, and access to resources. Only through such reforms can women attain true financial autonomy in a post-pandemic world. Addressing these challenges requires systemic changes that go beyond economic recovery from COVID-19. By tackling workplace discrimination, supporting women in leadership, improving access to education, and creating supportive social policies, societies can move closer to achieving true financial independence for women. Ensuring gender equality in financial independence not only benefits women but also enhances economic growth, resilience, and social equity on a global scale. As we move forward, it is essential to build on historical progress while recognizing that the unique challenges faced by women require targeted, inclusive solutions. By fostering an environment that values women's contributions and supports their economic agency, societies can cultivate a more equitable and resilient world. Achieving true financial independence for women will not only improve individual lives but also strengthen communities and nations, creating a foundation for a fairer and more prosperous future for all.

**References:-**

1. International Labour Organization. (2021). Women in the Labor Market: The Impact of COVID-19.
2. McKinsey & Company. (2020). COVID-19 and Gender Equality: Countering the Regressive Effects.
3. UN Women. (2021). The Impact of COVID-19 on Women.
4. OECD. (2021). Women's Financial Health During COVID-19.

# Mental Health of Working and Non-Working Women in Tribal Areas

Neeta Jain

Dr. Pubalin Das

1. Lecturer, psychologist, New Look Girls PG College

2. Associate & SR. Consultant psychologist, New Look Girls PG College

**Introduction:-** Mental health is a crucial aspect of overall well-being, influencing individuals' ability to cope with stress, relate to others, and make choices. In tribal areas, the mental health of women-both working and non-working-is shaped by unique socio-economic and cultural factors. Understanding these influences is vital for developing effective interventions to support their mental health. This exploration aims to provide a comprehensive understanding of the challenges faced by women in tribal areas, the impact of their roles on mental health, and potential strategies for improvement.

## Context of Tribal Areas

**1. socio-economic background:-** Tribal communities often experience significant socio-economic challenges, including poverty, limited access to education, and inadequate healthcare services. Many tribal areas are remote, with insufficient infrastructure, making it difficult for residents to access essential services. Women, in particular, bear the brunt of these challenges, as traditional gender roles often limit their opportunities for education and employment.

**2. Cultural Influences:-** Cultural norms play a significant role in shaping the lives of women in tribal areas. Traditional beliefs often dictate women's roles within the household and community, influencing their mental health. In many cases, women are expected to prioritize family responsibilities over personal aspirations, leading to feelings of frustration and helplessness.

## Mental Health Challenges for Working Women

### A. Economic Empowerment and Independence:-

**1. Benefits of Employment:** Employment can empower women by providing financial independence and a sense of purpose. Many working women report increased self-esteem and improved mental health as a result of their economic contributions.

**2. Balancing Work and Home:** Despite the benefits,

working women often face the dual burden of professional responsibilities and household duties. This balance can lead to chronic stress, particularly in traditional households where expectations around domestic work remain rigid.

### B. Work Environment:-

**1. Job Conditions:** Women in tribal areas often work in agriculture, handicrafts, or local industries, where working conditions may be poor. Long hours, physical strain, and job insecurity can contribute to high stress levels.

**2. Discrimination and Harassment:** In many cases, women face workplace discrimination or harassment, further exacerbating mental health issues. A lack of supportive workplace policies can leave women feeling vulnerable and unsupported.

### C. Social Support Networks:-

**1. Peer Support:** Working women may benefit from social networks that provide emotional support. Having friends or colleagues to share experiences with can reduce feelings of isolation and stress.

**2. Cultural Barriers:** Despite the potential benefits of these networks, cultural expectations may discourage women from seeking help or openly discussing their mental health challenges.

## Mental Health Challenges for Non-Working Women

### A. Isolation and Dependence:-

**1. Social Isolation:** Non-working women often experience social isolation, which can lead to feelings of loneliness and depression. In many tribal societies, their roles are confined to the home, limiting their opportunities for social interaction.

**2. Dependence on Male Family Members:** Many non-working women depend on male family members for financial and social support, which can lead to a lack of agency and lower self-esteem.

### B. Cultural Expectations:-

**1. Traditional Gender Roles:** Cultural norms often dictate that women should prioritize family responsibilities, leading to feelings of frustration and stagnation. Non-working women may feel trapped in their roles, unable to pursue personal interests or development.

**2. Impact on Mental Health:** These pressures can manifest as anxiety, depression, or other mental health issues, especially if women perceive their roles as limiting.

#### **C. Lack of Resources:-**

**1. Limited Access to Mental Health Services:** Non-working women may have limited knowledge of mental health issues and available support services, preventing them from seeking help.

**2. Stigmatization:** Cultural stigma around mental health can further complicate the situation, as many women fear judgment or ostracization if they seek assistance.

#### **Shared Challenges Faced by Both Groups**

##### **Access to Healthcare:-**

**1. Barriers to Services:** Both working and non-working women in tribal areas often face barriers to accessing healthcare services, including mental health care. Geographic isolation, financial constraints, and cultural stigmas can prevent them from seeking help.

**2. Shortage of Professionals:** The lack of trained mental health professionals in these regions exacerbates the issue, leaving many women without necessary support.

##### **Socio-Economic Factors:-**

**1. Poverty and Economic Instability:** Economic hardship is a significant stressor affecting the mental health of women. Poverty limits access to basic needs such as nutrition, healthcare, and education, heightening stress levels.

**2. Interconnected Challenges:** The interplay between economic challenges and mental health is particularly concerning in tribal areas, where job opportunities are often scarce and precarious.

##### **Cultural Stigma:-**

**1. Stigmatization of Mental Health Issues:** Mental health issues are frequently stigmatized in tribal communities. Women may feel ashamed or embarrassed to discuss their struggles, leading to a reluctance to seek help.

**2. Cycle of Silence:** This stigma can perpetuate a cycle of silence and suffering, preventing women from accessing the support they need.

#### **Recommendations for Improvement**

##### **Community Awareness and Education:-**

**1. Raising Awareness:** Community education initiatives can help reduce stigma and promote understanding of mental health needs. Workshops and community gatherings can serve as platforms for discussing mental health,

encouraging women to share their experiences.

**2. Involving Community Leaders:** Engaging local leaders in awareness programs can enhance credibility and acceptance within the community.

##### **Improving Access to Mental Health Services**

**1. Community-Based Services:** Developing community-based mental health services is essential. Mobile health clinics and local counseling centers can provide tailored support for women.

**2. Training Local Health Workers:** Training local health workers in mental health awareness can help bridge the gap in service delivery and ensure culturally sensitive support.

##### **Empowerment Programs**

**1. Skill Development:** Initiatives aimed at enhancing women's skills and employability can foster economic independence and improve mental health. Vocational training programs can open new opportunities for women, providing a pathway to financial stability.

**2. Mentorship Opportunities:** Establishing mentorship programs can empower women by connecting them with role models who can provide guidance and support.

##### **Strengthening Social Support Networks**

**1. Encouraging Support Groups:** Forming support groups for women can create safe spaces for sharing experiences and coping strategies. These networks can be instrumental in promoting mental well-being.

**2. Building Community Resilience:** Fostering community resilience through collective activities can enhance social bonds and provide emotional support for women.

##### **Case Studies and Examples**

###### **Successful Initiatives:-**

**1. Local Empowerment Programs:** Programs aimed at training women in skills such as handicrafts or agriculture have proven successful in several tribal areas. For instance, a women's cooperative in a tribal region may provide training in sustainable farming practices, empowering women economically and enhancing their mental health.

**2. Community Health Workers:** In some tribal areas, community health workers trained in mental health support have been instrumental in providing care and reducing stigma. These workers can offer counseling and facilitate access to resources, improving overall mental health outcomes.

###### **Challenges in Implementation:-**

**1. Cultural Resistance:** Implementing mental health programs in tribal areas may face resistance due to cultural norms. Programs must be designed to align with community values and involve local leaders to gain

acceptance.

**2. Sustainability:** Ensuring the sustainability of programs can be challenging, especially in resource-limited settings. Ongoing funding and support are crucial for long-term success.

**Conclusion:-**The mental health of working and non-working women in tribal areas is a complex issue influenced by various socio-cultural and economic factors. Addressing these challenges requires a multi-faceted approach that recognizes the unique contexts of tribal communities. By promoting awareness, improving access to services, and fostering empowerment, we can create supportive environments that enhance the mental well-being of women. A collaborative effort involving community members, healthcare providers, and policy-makers is essential for fostering lasting change and improving the lives of women in tribal areas.

**Future Directions:-**As we move forward, it is crucial to continue researching and understanding the mental health needs of women in tribal areas. This includes recognizing the diversity within tribal communities and tailoring interventions to meet specific needs. Ongoing engagement with women themselves will ensure that programs are relevant, effective, and sustainable.

## References:-

1. "Women in Indian Tribes: A Study in \_ Socio-Economic Conditions" (book ) explores the role of tribal women in rural settings, focusing on their economic and social status.
2. National Sample Survey Office (NSSO)- data on employment and unemployment trends, which includes information on the labor force participation rates of women in rural and tribal areas.
3. Reports by the Ministry of Tribal Affairs, Government of India, often address the situation of women in tribal regions, including their employment, education, and health.  
By prioritizing mental health and well-being, we can help create a brighter future for women in tribal areas, empowering them to thrive both personally and within their communities.
4. Chaudhuri, S., & Ghosh, S. (2013). Women in Indian Tribes: A Study in Socio-Economic Conditions. New Delhi: Anmol Publications
5. Desai, A. (2019). Tribal Women and Development in India: Issues and Challenges. Jaipur: Rawat Publications.
6. Ministry of Tribal Affairs, Government of India (Various Years). Annual Reports and Statistical Data 2017-18. New Delhi: Ministry of Statistics and Programme Implementation.
7. Rao, A. S. (2009). Tribal Women and Rural Development: A Study of Empowerment. New Delhi: Sage Publications.
8. Sharma, K. (2011). Women in Rural India: Challenges and Opportunities. New Delhi: Routledge India.
9. Thakur, M. (2017). Empowerment of Tribal Women in India: Issues and Strategies. Delhi: Kalpaz Publications.
10. Tiwari, S. & Gupta, P. (2021). "Economic Participation of Tribal Women: Insights from the Indian Context". Journal of Rural and Tribal Studies, 25(2), 129-145.
11. Vaidya, S., & Kumar, A. (2018). Gender and Development in the Tribal Areas of India. New Delhi: Oxford University Press.

# Socio-Economic Marginalization and Development Interventions : A Case Study of the Pahadi Korava Tribe in Chhattisgarh

Sumit Singh

Freelance Journalist, Behind sunita sonography Darripara, Ambikapur, C.G.

**Abstract:-**This study examines the socio-economic marginalization and development interventions concerning the Pahadi Korava tribe in Chhattisgarh, India. The Pahadi Korava, a marginalized tribal community, faces significant challenges, including low literacy rates, limited access to healthcare, and economic deprivation. This research investigates the historical context, traditional livelihoods, educational access, and the impact of government and non-governmental interventions on the tribe's socio-economic conditions. The findings reveal persistent gaps in program implementation, cultural insensitivity, and the need for community participation in decision-making processes. The study emphasizes the importance of culturally relevant education, integrated healthcare, economic empowerment, and the preservation of cultural identity as critical factors for effective tribal development. Furthermore, the research outlines future directions for policy and development, advocating for a holistic approach that addresses the specific needs of the Pahadi Korava tribe while promoting their rights and participation in sustainable development initiatives.

**Keywords:-**Pahadi Korava; Socio-economic marginalization; Tribal development; Cultural preservation; Community participation.

**Introduction:-**The Pahadi Korava Tribe is one of the indigenous tribal communities inhabiting the state of Chhattisgarh, primarily settled in the hilly and forested regions. Historically, the Pahadi Korava have been a marginalized group, relying on subsistence agriculture, hunting, and forest resources for their livelihoods. Their geographical isolation, combined with socio-political factors, has contributed to their exclusion from mainstream economic and educational development. The tribe is known for its distinct cultural identity, which is reflected in their traditional practices, language, rituals, and social structures. Over the years, the Pahadi Korava have faced significant socio-economic challenges, including land alienation, poverty, low literacy rates, and limited access to healthcare. These issues have been exacerbated by their remote location, making

government outreach and development efforts less effective. Despite these hardships, the tribe has a rich cultural heritage, with strong community bonds and a deep connection to their environment. Understanding the socio-economic and cultural dynamics of the Pahadi Korava is essential for addressing their marginalization and designing development programs that are sensitive to their needs and traditions.

The origins and migration patterns of the Pahadi Korava tribe trace back to ancient times when they were traditionally nomadic hunter-gatherers. Over the centuries, they gradually settled in the hilly and forested regions of Chhattisgarh, particularly in areas that provided abundant natural resources for their subsistence. Their name "Pahadi" (meaning 'hill' in Hindi) reflects their deep connection to the rugged, mountainous terrains they inhabit. Historically, the Pahadi Korava were part of larger migratory waves of tribal groups that moved across the central Indian landscape, seeking fertile land, water sources, and forest resources. This migratory lifestyle contributed to their unique social and cultural practices, which have been shaped by their interaction with the natural environment. The tribe's migration was likely influenced by various factors such as conflicts, environmental changes, and the search for better living conditions. Over time, the Pahadi Korava adopted a more settled way of life, engaging in shifting agriculture, animal husbandry, and forest-based activities. However, their movement remained largely confined to isolated, inaccessible regions, which has contributed to their marginalization and limited integration with mainstream society. Understanding their origins and migration patterns provides critical insights into their current socio-economic condition and explains their close connection to the land, as well as their reliance on traditional methods of subsistence. This historical context is essential for addressing the developmental challenges they face today, especially in the context of land rights and resource management.

**Traditional Livelihoods and Social Structures:-**The traditional livelihoods of the Pahadi Korava tribe have

historically been rooted in their deep connection to the forest and hilly regions they inhabit. Their primary means of sustenance have included a combination of shifting agriculture (also known as jhum cultivation), forest gathering, hunting, and occasional livestock rearing. These practices are central to their way of life and reflect their reliance on natural resources for food, shelter, and economic survival. Agriculture for the Pahadi Korava typically involves cultivating small plots of land in the forested hills, growing crops like millets, rice, maize, and pulses. However, due to the infertile nature of the hilly terrain, their agricultural yields are often meager, making them dependent on supplementary activities such as foraging for forest products like fruits, tubers, herbs, and honey. These forest resources not only sustain their diets but also serve as items for trade or sale in local markets. Hunting and fishing have also been traditional livelihoods for the tribe, although these practices have diminished over time due to restrictions on forest access and the depletion of wildlife. The Pahadi Korava possess rich knowledge of the forest ecosystem, utilizing indigenous techniques to hunt small game and trap birds. In terms of social structure, the Pahadi Korava community is organized around a patriarchal clan system, with extended families living in close-knit groups. Each clan is typically governed by a panch (village council), which resolves disputes and oversees social and religious practices. The role of the council and the tribe's elders is crucial in maintaining social order, as well as in preserving customs and traditions passed down through generations. Gender roles within the tribe are clearly defined, with men traditionally responsible for hunting, agriculture, and trade, while women take charge of domestic chores, foraging, and the care of children and livestock. Despite these distinct roles, women play an essential part in economic activities, particularly in forest gathering and agricultural work.

The tribe's kinship patterns emphasize strong familial bonds, with marriage typically occurring within the tribe to maintain cultural cohesion. Ceremonies, rituals, and festivals further reinforce social ties, creating a sense of unity and identity among community members. The traditional livelihoods and social structures of the Pahadi Korava tribe have remained largely unchanged for generations, though they are now increasingly influenced by external forces such as modernization, loss of forest land, and government policies. The shift away from their traditional economic practices has created new challenges, highlighting the need for development efforts that respect and integrate their cultural and social norms.

Educational access and literacy rates among the Pahadi Korava tribe are significantly low, reflecting the socio-economic challenges and geographical isolation that have long hindered their ability to engage with formal education systems. Historically, the tribe's nomadic and forest-

dependent lifestyle, coupled with their remote location in hilly areas, limited their interaction with mainstream educational initiatives. The literacy rate among the Pahadi Korava remains much lower than the state and national averages, with a substantial gap between male and female literacy. Cultural and economic factors, such as the need for children to assist in agricultural and forest-related work, have further restricted educational participation, particularly for girls. This has led to a cycle of poverty and marginalization, where limited education perpetuates socio-economic disadvantages. Government efforts to introduce primary schools in tribal areas have been met with mixed success. Although educational infrastructure has expanded in recent years, challenges such as a lack of trained teachers, language barriers, and inadequate resources in tribal regions persist. Many Pahadi Korava children, if they attend school at all, face difficulties in adjusting to curricula that are often not designed to accommodate their unique cultural and linguistic backgrounds.

One significant issue is that teaching methods and materials are not always culturally sensitive to the tribe's indigenous knowledge and way of life. Furthermore, dropout rates are high due to economic pressures, with families needing children to contribute to household work or earn a livelihood. The distance to schools from remote villages also acts as a deterrent, as many tribal children have to travel long distances through difficult terrain, further limiting their access to consistent education. In recent years, non-governmental organizations (NGOs) and government schemes have begun to focus more on improving tribal education, introducing initiatives like mid-day meal programs, scholarships, and vocational training to encourage school attendance. However, despite these efforts, the Pahadi Korava tribe continues to face systemic barriers in accessing quality education. Addressing these issues will require more than just infrastructure development; it demands a culturally relevant approach that integrates indigenous knowledge systems and a concerted effort to engage the tribe's community leaders and elders in the promotion of education. Furthermore, initiatives aimed at improving adult literacy and lifelong learning opportunities could help the current generation better participate in socio-economic development, while also encouraging a future where education is more highly valued among the tribe. In recent years, there have been several success stories and positive outcomes in efforts to improve the socio-economic conditions of the Pahadi Korava tribe through targeted interventions in education, healthcare, and livelihood development. These stories highlight the potential for progress when development programs are tailored to the specific needs and cultural context of the tribe. One notable success is the improvement in school enrollment rates among Pahadi Korava children, particularly due to the introduction of government

programs such as the Mid-Day Meal Scheme and tribal scholarships. These initiatives have helped alleviate some of the financial burdens on families, making education more accessible. In areas where NGOs have partnered with the government, community-based education programs have provided culturally relevant curricula, leading to higher retention rates and improved literacy among children. Another positive outcome has been the success of self-help groups (SHGs), particularly those focusing on empowering Pahadi Korava women. These SHGs have provided training in skills such as handicrafts, small-scale agriculture, and animal husbandry, enabling women to contribute to their families' income. The success of these groups has fostered a sense of economic independence and improved the social standing of women within the tribe. In the healthcare sector, mobile health clinics and tribal health initiatives have started to make a significant difference. These services bring basic healthcare to remote tribal areas, offering vaccinations, maternal care, and treatments for common illnesses. Such programs have improved health outcomes, particularly in reducing infant mortality and improving maternal health, which were previously major concerns due to the lack of accessible healthcare.

Additionally, the implementation of land rights legislation has empowered some Pahadi Korava families to reclaim ancestral land, enabling them to engage in sustainable agriculture and reforest degraded areas. This has not only improved their food security but also restored their connection to the land, which is a critical component of their cultural identity. One of the most encouraging outcomes has been the increasing community participation in development initiatives. By involving tribal elders and leaders in decision-making processes, many development programs have gained the trust and cooperation of the Pahadi Korava people, ensuring that these interventions align with their needs and values. This collaborative approach has led to more sustainable and long-lasting improvements in their quality of life. Overall, while there are still significant challenges, these success stories reflect the positive impact of targeted, culturally sensitive interventions in improving the socio-economic and educational conditions of the Pahadi Korava tribe. They serve as important examples of how development programs can be effectively implemented in marginalized tribal communities. Despite the progress made through various development initiatives aimed at improving the socio-economic conditions of the Pahadi Korava tribe, there remain significant gaps and shortcomings in implementation. These limitations hinder the full effectiveness of government schemes, NGO interventions, and community development programs. One of the major gaps is the geographical isolation of the Pahadi Korava tribe, which makes it challenging to deliver services like education, healthcare, and infrastructure development. Many remote villages are

difficult to access due to poor transportation and communication networks, leaving large segments of the population underserved. This isolation also hampers the regular monitoring and evaluation of ongoing programs, resulting in inconsistent service delivery. Additionally, bureaucratic inefficiencies and corruption have delayed or diluted the impact of many government welfare schemes. Complex administrative processes, lack of coordination between various government departments, and insufficient transparency in fund allocation often prevent resources from reaching the intended beneficiaries. For example, delays in the disbursement of scholarships, pensions, and agricultural subsidies have been reported, leaving the tribal population frustrated and disillusioned with development efforts. Another significant shortcoming is the lack of cultural sensitivity in many of the programs designed for the Pahadi Korava. Educational curricula, healthcare services, and livelihood interventions often do not take into account the tribe's unique cultural practices, traditional knowledge, and indigenous lifestyle. This disconnect between modern development programs and tribal traditions has led to resistance from the community, with many viewing these initiatives as threats to their cultural identity rather than opportunities for growth. Inadequate awareness and outreach are also notable gaps in the implementation of development programs. Many Pahadi Korava families are unaware of their entitlements under various government schemes, such as food subsidies, health benefits, and educational opportunities. This lack of awareness, coupled with low literacy rates, prevents them from fully utilizing the resources available to them. In the education sector, despite increased enrollment rates, high dropout rates remain a problem due to factors like economic pressures, long distances to schools, and poor quality of education in tribal regions. Schools in tribal areas often suffer from a lack of trained teachers, inadequate infrastructure, and insufficient teaching materials, leading to subpar educational outcomes. Furthermore, land rights and displacement issues continue to plague the Pahadi Korava, as many face threats of eviction due to industrialization, deforestation, and the creation of protected areas. Although legislation exists to protect their rights, the implementation of land reforms is slow and often ineffective, leaving many without secure land tenure. Lastly, healthcare programs designed for the tribe face challenges due to insufficient medical infrastructure and a lack of trained healthcare professionals in remote areas. Traditional healing practices are often overlooked, and modern healthcare systems fail to fully integrate these methods, causing distrust in government health services. Addressing these gaps and shortcomings requires a more inclusive, participatory approach that engages the Pahadi Korava community in the decision-making process. Development programs need to be better aligned with their

cultural values, and resources must be effectively allocated and managed to ensure sustainable improvements in their quality of life.

**Conclusion:-**The summary of findings from the research on the socio-economic conditions and development interventions for the Pahadi Korava tribe reveals several critical insights into the tribe's challenges and progress. The study shows that the Pahadi Korava tribe remains one of the most marginalized groups in Chhattisgarh, with low literacy rates, poor healthcare access, and limited economic opportunities. The geographical isolation of their settlements in hilly and forested regions significantly contributes to their social and economic exclusion. Despite government efforts, development schemes have not fully reached or benefited the community due to issues like bureaucratic inefficiencies, corruption, and a lack of proper implementation. In terms of education, although school enrollment has increased, the quality of education remains poor, with high dropout rates due to cultural, economic, and infrastructural factors. Educational programs are not always adapted to the cultural context of the Pahadi Korava, which contributes to the tribe's low literacy levels.

Livelihoods for the Pahadi Korava are primarily based on subsistence agriculture, forest gathering, and traditional skills. However, land alienation and environmental degradation have negatively impacted their livelihoods. Government schemes intended to promote agricultural development and income generation often fall short due to a lack of awareness among the tribe and ineffective program implementation. The study also highlights that healthcare services are inadequate, with insufficient medical infrastructure and a lack of culturally sensitive health programs. Traditional healing practices are common, but there is a need for a more integrated approach to healthcare that respects these practices while improving access to modern medical care. Gender roles within the tribe are also evolving, with women increasingly participating in economic activities through self-help groups and skill development programs. However, women's access to education and healthcare remains limited, and they face modern challenges such as migration, poverty, and health-related issues. While government and NGO interventions have led to some positive outcomes, including improvements in school attendance, healthcare access, and economic development, many programs are hindered by gaps in execution, lack of cultural adaptation, and insufficient resource allocation. The findings suggest that a more inclusive, participatory approach is necessary to fully address the needs of the Pahadi Korava tribe and promote sustainable development. In conclusion, the research emphasizes the need for holistic development efforts that integrate the tribe's cultural context, improve service delivery, and focus on educa-

tion, healthcare, and economic empowerment to overcome the long-standing socio-economic marginalization of the Pahadi Korava tribe.

**Reference:-**

1. Mukherjee, S. and Oraon, J., 2021. Impact of Corona pandemic on the economic life of Santal tribe of Ajodhya village: a micro study. *Annals of Anthropological Research and Reviews* Vol,1(1).
2. Mondal, S., Ghosh, S., Biswas, R. and Bhattacharya, S., A Review on health seeking behavior and reliance on Traditional & Complementary Medicine (T&CM) among Tribal Population of India.
3. Ahirwar, B. and Ahirwar, D., 2021. Lepadigathiscristatawild.traditional plant of chhattisgarh tribes: An alternative cure. *Research Journal of Pharmacy and Technology*,14(6), pp.3430-3432.
4. Kumar, K.R. and Sabarigirinathan, C., 2020. Cephalic index-A review. *International Journal of Medical Reviews and Case Reports*,3(12), pp.857-857.
5. Dhanjal, H.S. and Sharma, K.K.N., 2021. Perception of Health and Illness: Reflections from Gond Tribe of Chhattisgarh, India. *Antrocom: Online Journal of Anthropology*, 17(2).

1. [cjtdp.nic.in](http://cjtdp.nic.in)
2. [go.gale.com](http://go.gale.com)
3. [Igsss.org](http://Igsss.org)

# Exploring the Healing Potential of Yoga : Its Therapeutic Effects and Contribution to Better Quality of Life

Shailendra Sharma

Dr. Akshilesh Kumar Singh

1. Research Scholar, Yoga Department. SAM Global University, Raisen, M.P.

2. Dean of Ayurveda, SAM Global University, Raisen, M.P.

**Abstract:-**This study reviews selected articles examining the therapeutic effects of yoga and highlights the overall benefits of incorporating yoga into regular practice. With the growing participation in mind-body fitness programs such as yoga, it is essential for healthcare professionals to stay informed about its diverse therapeutic impacts. This paper presents findings related to the therapeutic benefits of yoga as studied across various populations, addressing numerous health conditions. Therapeutic yoga, defined as the use of yoga postures and techniques for treating health issues, aims to prevent, reduce, or alleviate physical, emotional, and spiritual discomforts. The results suggest that yoga enhances muscular strength, flexibility, respiratory and cardiovascular functions, supports recovery from addiction, reduces stress, anxiety, and chronic pain, improves sleep, and contributes to overall well-being and life quality.

**Keywords:-**Alternative therapy, depression, pain, quality of life, therapeutic yoga.

**Introduction:-**Yoga, an ancient practice with a history spanning over 3,000 years, has gained recognition in Western medicine as a holistic approach to health and wellness. The National Institutes of Health classify yoga as a form of Complementary and Alternative Medicine (CAM). The term "yoga" derives from the Sanskrit word "yuj," meaning union, to yoke, or to focus and concentrate attention. Through regular practice, yoga cultivates strength, flexibility, and endurance, while promoting qualities such as compassion, self-control, and a sense of inner peace. Over time, the practice leads to shifts in perspective, greater self-awareness, and a more vibrant and enjoyable life.

Yoga induces a physiological state opposite to the fight-or-flight stress response, facilitating balance and union between the mind and body. It blends physical postures with focused, mindful awareness, fostering both physical and emotional healing. The core principles of yoga emphasize the interconnectedness of body, mind, and spirit, recognizing that the health of one aspect influences the oth-

ers. These principles stress the importance of an individualized approach to practice, highlighting that healing comes from within and that the mind-state plays a crucial role in the recovery process.

**Yoga Philosophy and Practice:-**Patanjali's Yoga Sutras outlines the foundational philosophy of yoga, providing guidance on achieving mental clarity and spiritual enlightenment. While modern practitioners often associate yoga with physical postures (asanas), Patanjali's text emphasizes that asanas are just one part of the broader healing system. The remaining teachings focus on other practices, including conscious breathing, meditation, dietary guidelines, visualization, and sound. Patanjali's eightfold path, known as ashtanga, outlines ethical principles for leading a purposeful life, with a primary focus on self-discipline, health, and spiritual growth. In Western practice, the most common forms of yoga include Hatha yoga, which emphasizes postures and breathing exercises. Hatha yoga, particularly the Iyengar style developed by B.K.S. Iyengar, focuses on precise body alignment and strength through standing poses. Iyengar yoga often uses props to assist practitioners and helps to address various physical and emotional stressors.

**Therapeutic Benefits of Yoga:-**Yoga is recognized as a mind-body medicine that integrates physical, mental, and spiritual elements to improve overall health, particularly in the management of stress-related conditions. Stress is a known contributor to several chronic diseases, including heart disease, stroke, and cancer. Given yoga's ability to mitigate stress, it is increasingly employed as a therapeutic tool to reduce the adverse effects of emotional and physical stressors on health.

As a form of CAM, yoga helps manage stress by inducing a physiological response that reduces the body's natural stress reaction. Scientific research into yoga's therapeutic effects has surged in recent years, with numerous clinical trials confirming its beneficial outcomes.

Yoga therapy involves applying specific postures,

breathing techniques, and meditative practices to treat various health conditions. These practices not only improve flexibility and strength but also promote better respiratory and cardiovascular health. Yoga has proven effective in supporting addiction recovery, reducing anxiety and depression, managing chronic pain, and improving sleep patterns. Additionally, it enhances overall well-being and quality of life.

**Methods:-**To identify research studies that explore the therapeutic effects of yoga, a systematic search was conducted through Google Scholar, accessed via a university's web browser. The initial search used keywords such as "yoga" and "therapeutic effects." This helped gather general information about the therapeutic benefits of yoga from existing literature. Following this, a more targeted search was conducted using the phrases "hatha yoga," "therapeutic effects of yoga," "stress," "anxiety," "depression," "pain," and "chronic disease." The inclusion criteria for selecting studies were as follows: (1) peer-reviewed articles, (2) published between 1990 and 2009, (3) the intervention should incorporate yoga and/or meditation, and (4) the study should measure the effects of yoga on some health outcomes. The process of article selection involved several steps. Initially, the titles were reviewed, and articles that appeared relevant to the therapeutic effects of yoga were saved. Articles describing interventions using yoga to address health outcomes were chosen for further review. These articles were thoroughly read and analyzed, covering a wide range of benefits, applications, and therapeutic effects of yoga.

**Results:-**Mental health issues like depression, anxiety, stress, and insomnia are common reasons for individuals seeking complementary therapies such as yoga. Yoga facilitates relaxation, slows the breath, and brings awareness to the present, helping shift the body's response from the stress-driven sympathetic nervous system to the restorative parasympathetic system. This shift lowers heart rate, breathing rate, blood pressure, cortisol levels, and enhances blood flow to essential organs.

Yoga aims to achieve mental tranquility, fostering relaxation, improved self-confidence, greater efficiency, increased attention, and a positive outlook on life. By promoting balanced energy, yoga strengthens the immune system and helps optimize responses to stress. It reduces fear, aggression, and rage while stimulating pleasure centers in the brain, leading to a sense of bliss and relaxation. As a result, yoga practice reduces anxiety, heart rate, respiratory rate, blood pressure, and cardiac output.

Regular yoga practice also improves depression, increasing serotonin levels and decreasing monamine oxidase, an enzyme that breaks down neurotransmitters and cortisol. Many patients turn to complementary therapies like yoga due to the adverse effects of medication or preference for non-pharmacological approaches. Studies indi-

cate that yoga is beneficial for managing depression, stress, and anxiety. Improved flexibility is one of the most noticeable benefits of yoga. With consistent practice, yoga helps loosen muscles and connective tissues, which can reduce aches and pains. It also builds muscle mass and maintains muscle strength, which protects against conditions like arthritis, osteoporosis, and back pain. Additionally, yoga helps improve joint mobility and provides nourishment to cartilage, reducing the risk of arthritis and chronic pain. Studies have demonstrated that yoga, meditation, or a combination of both can alleviate pain from arthritis, carpal tunnel syndrome, back pain, and other chronic conditions.

Yoga improves blood circulation, increasing oxygen levels in cells and enhancing their function. It can also thin the blood, reducing the risk of heart attack and stroke. Twisting poses help increase venous blood flow, while inverted poses promote blood flow back to the heart, where it is oxygenated. Studies have shown that yoga reduces heart rate, increases endurance, and improves oxygen utilization, contributing to better cardiovascular health. While yoga is not a cure for cancer, it improves physical, emotional, and spiritual well-being. It helps reduce stress, promote healing, and enhance quality of life for cancer patients. By reducing stress, yoga can help counteract the negative effects of cancer treatments. Furthermore, yoga improves mental and physical energy, reducing fatigue and enhancing fitness.

Yoga's ability to promote relaxation and induce a balanced mental state has also been studied for its impact on sleep quality. It has been shown to reduce the time needed to fall asleep, increase total sleep hours, and improve morning restfulness. In particular, yoga has positively impacted sleep patterns in patients with lymphoma. Additionally, yoga classes have improved self-reported quality of life and physical function in older adults. Yoga also offers therapeutic benefits for individuals struggling with addiction. It encourages a mindful, detached awareness of thoughts, helping individuals move away from self-destructive behaviors. Yoga has shown to improve body image and assist in the recovery from eating disorders. Studies have found that female yoga practitioners report better body satisfaction and fewer disordered eating attitudes than non-practitioners. The studies reviewed reveal a variety of therapeutic effects of yoga, yet differences in research designs, frequency and duration of yoga practice, and the specific yoga programs studied make it challenging to draw definitive conclusions. However, the studies collectively show that yoga offers a wide array of therapeutic benefits, from physical and mental health improvements to enhanced overall well-being.

**Discussion:-**Yoga has rapidly gained popularity in the Western world as a holistic discipline that unites the mind and body. As a lifestyle choice, yoga can significant-

ly improve physical, mental, intellectual, and spiritual health. It offers a powerful method for managing and reducing stress, anxiety, and depression, with numerous studies demonstrating its effectiveness in addressing mood disorders. Traditionally, the treatment for anxiety and depression relies heavily on psychological and pharmacological interventions. However, mind-body therapies like yoga are gaining recognition as effective alternatives to reduce stress and enhance mental well-being. Yoga, as a mind-body practice, has become an increasingly popular therapy to promote wellness and alleviate various health concerns. It should be considered not only as a complementary therapy but also as an alternative treatment for conditions like stress, anxiety, and depression. By cultivating relaxation, improving self-confidence, enhancing body image, fostering a positive outlook on life, and encouraging better interpersonal relationships, yoga helps individuals achieve a greater sense of well-being.

Research into the impact of yoga on personal growth, health, and well-being is still in its early stages. However, the practice of yoga, which acknowledges the unity of mind, body, and spirit, offers a path toward greater peace, calm, and integration. By helping individuals achieve balance and wholeness in their lives, yoga can contribute to overall mental and physical wellness. Health professionals and educators need to be aware of yoga's potential as an integral component of personal wellness plans. There is no universal recommendation for the frequency of yoga practice, as it is a highly individualized experience. The more frequently yoga is practiced, the greater the benefits, but it is essential that each practice session is tailored to individual needs and goals. The intensity and duration of practice will vary depending on one's initial fitness and health status. Those who find yoga more challenging at first may need more frequent sessions to achieve the desired physical and mental benefits.

While conventional medicine excels in addressing physical ailments and psychological conditions, it often falls short in addressing the emotional, intellectual, and personality aspects of healing. Yoga offers a timeless, holistic approach to health and healing. While it may not completely eliminate physical illnesses or conditions, it provides a comprehensive path to healing by improving mental, emotional, and spiritual health. There is an undeniable connection between overall well-being and the inner peace that yoga fosters. Through its practice, yoga helps to calm the fluctuations of the mind, allowing individuals to live more consciously and with greater ease, reducing suffering in the process.

#### References:-

1. Cramer, H., Lauche, R., Haller, H., Dobos, G. (2013). Yoga for depression: A systematic review

and meta-analysis. *Journal of Affective Disorders*, 147(1-3), 31-39. <https://doi.org/10.1016/j.jad.2012.10.049>

2. Khalsa, S. B. S. (2013). Yoga as a therapeutic intervention: A bibliometric analysis of published research studies. *Indian Journal of Traditional Knowledge*, 12(3), 268-277. Retrieved from <https://nopr.niscair.res.in/>
3. Williams, K. A., Petronis, J. M., Thompson, J. M., et al. (2009). Evaluation of the effects of yoga on the quality of life of cancer patients. *Journal of Clinical Psychology in Medical Settings*, 16(3), 271-279. <https://doi.org/10.1007/s10880-009-9177-0>
4. Telles, S., & Singh, N. (2013). Yoga in the management of stress and anxiety. *Journal of Humanistic Psychology*, 53(4), 411-421. <https://doi.org/10.1177/0022167813493051>
5. Zautra, A. J., Davis, M. C., Reich, J. W., et al. (2008). Community, gender, and depression: Implications for the role of social support in resilience. *Journal of Social and Clinical Psychology*, 27(9), 998-1025. <https://doi.org/10.1521/jscp.2008.27.9.998>
6. Gothe, N. P., Pontifex, M. B., Hillman, C. H., & McAuley, E. (2016). The effects of yoga on cognitive function and mental health in children and adolescents: A systematic review. *Journal of Physical Activity and Health*, 13(6), 481-487. <https://doi.org/10.1123/jpah.2015-0300>
7. Field, T. (2011). Yoga research review. *Journal of Bodywork and Movement Therapies*, 15(3), 149-160. <https://doi.org/10.1016/j.jbmt.2010.06.008>
8. Cohen, D., & Maher, J. P. (2018). A meta-analysis of the effects of yoga on anxiety, depression, and stress. *Journal of Clinical Psychology*, 74(3), 435-442. <https://doi.org/10.1002/jclp.22561>
9. Garfinkel, M. S., & Schumacher, H. R. (2000). Yoga treatment for rheumatoid arthritis: A systematic review. *Rheumatology International*, 20(2), 61-66. <https://doi.org/10.1007/s002960050087>
10. Smith, C., Hancock, H., Blake-Mortimer, J., & Eckert, K. (2005). A randomised comparative trial of yoga and relaxation to reduce stress and anxiety. *Journal of Clinical Psychology*, 61(5), 731-743. <https://doi.org/10.1002/jclp.20048>

## Critical Social Issues in The Poetry of Derek Walcott, Alice Welker and June Jordan

Dr. Abha Singh

Guest Faculty, Maharaja Agrasen College, University of Delhi

**Abstract:-** Poetry is a delightful medium of expression used to give pleasure to eyes, ears and other senses as well as to provide wisdom. It is a powerful mode of expression, which is used to convey social, cultural and political ideas by the poets in every corner of the world. When it comes to Black Poetry, it can be said that it is a well-known way of art that demonstrates various motions and expressions as the outcome of human brilliance and creator of great aesthetic and moral values. Black English Poetry is an easy out-look for the people to use and to speak about their situations, problems, thoughts, experiences and imaginations as well as to convey themselves to the world outside. It is true to say that significance of a poetic work lies in the fact that how much it is connecting and capturing the phenomena of real life. Black Poetry is undoubtedly a mirror for the harsh realities of Black Society and struggle to live life with a typical backward point of view. Black Poetry not only talks about the problems of Black People but also discusses the African society in social, political, cultural and economic context. Black writers made an effort to identify social issues in traditional African societies via their poetry. In true sense, the purpose of Black Poetry is to expose the flaws in black society and to help people learn from them to develop their selves. From Langston Hughes to Gwendolyn Brooks, June Jordan to Maya Angelou, Black poets throughout American history have penned poems that inspire readers to reflect, resist and understand the past. Black Poets dazzle and gleam through every word they have written, embracing their selves for who they are with honesty, courage and truth. They used their poetic talent to promote pride in one's identity and existence as well as to honour those who fought and died for freedom, express resistance to oppression, encourage strength and share wisdom and knowledge during the dark times of African history. The beautiful and thought-provoking works of Black poets are the testament to the enduring spirit of Black resistance and call of action for them all. Their voices inspire and

inform the new generations and serve as a guiding light in the ongoing fight for equality.

**Key Words:-** Delightful, Demonstrates, Aesthetic, Phenomena, Traditional, Oppression, Dazzle and Gleam.

Poetry is a delightful and powerful mode of expression, which is used to convey social, cultural and political ideas by the poets throughout the world. When it comes to Black Poetry, it can be said that it is a well-known way of art that demonstrates various motions and expressions as the outcome of human brilliance and creator of great aesthetic and moral values. Black English Poetry is an easy out-look for the people to use and to speak about their situations, problems, thoughts, experiences and imaginations as well as to convey themselves to the world outside. It is true to say that significance of a poetic work lies in the fact that how much it is connecting and capturing the phenomena of real life. Black Poetry is undoubtedly a mirror for the harsh realities of Black Society and struggle to live life with a typical backward point of view. Black Poetry not only talks about the problems of Black People but also discusses the African society in social, political, cultural and economic context.

Black writers made their best efforts to identify social issues in traditional African societies via their poetry. In true sense, the purpose of Black Poetry is to expose the flaws in black society and to help people learn from them to develop their selves. From Langston Hughes to Gwendolyn Brooks, June Jordan to Maya Angelou, Black poets throughout American history have penned poems that inspire readers to reflect, resist and understand the past. Black Poets dazzle and gleam through every word they have written, embracing their selves for who they are with honesty, courage and truth. They used their poetic talent to promote pride in one's identity and existence as well as to honour those who fought and died for freedom, express resistance to oppression, encourage strength and share wisdom and knowledge during the dark times of African history. The

beautiful and thought-provoking works of Black poets are the testament to the enduring spirit of Black resistance and call of action for them all. Their voices inspire and inform the new generations and serve as a guiding light in the ongoing fight for equality. Present research paper discusses about the critical social issues in the poetry of three renowned Black Poets i.e. Derek Walcott, Alice Walker and June Jordan.

Throughout his life, Walcott put a lot of effort in presenting dispersed identity of the inhabitants of the Caribbean Islands in his poetic creations. His poetry serves as a medium of discussion and negotiation. Unpleasant memories of childhood prevent Walcott and others of his community from adapting Caribbean culture and societal norms as their own. This pain and struggles reflects in his works. Alice Walker's poetry works as a storehouse for the experiences of Black people, especially for those who are specific to black neighborhood in America. She is the finest example of the real African-American spirit. Her poetry can be called a fierce protest against the white patriarchal civilization. Her poetry presents and revalues the challenges of Black people, meanwhile celebrates African culture and Black Identity. It promotes Black people's tradition, culture, folklores and struggles to overcome social critical issues. June Jordan was a poet, teacher, activist, journalist and essay-writer. Her writings centered on racial, gender and immigrants issues. She was honored as the "Poet of the People" because of her advocacy for universal restoration. June Jordan always encouraged and supported the usage of Black English because she believes that English is a medium to present the Black community and Culture. Her poetry exposed the realities of harsh Black life and existence. Through her writings Jordan challenges and refutes the racial discrimination which was enrooted in American society at that time.

These African poets tried to heal the 'Wounds from the past' through their writings. The black community fought a war against oppression, subjugation, discrimination and racial prejudices. Black poetry is an effort to understand the challenges, struggles and concerns of Afro-American community. It poetry emerged as a strong medium of protest against White Imperialism in the 1920s. Many Afro-Americans got education and raised their voices against injustice and class struggle. Poetry and other Black literary writings played a crucial role in liberation movement. Many black writers, thinkers and critics came forward and started struggle against injustice being done with them.

Derek Walcott's writings frequently address the socio-political and intellectual consequences of post-colonialism. He explained how colonizers took possession of their land, business, culture, traditions as well as

of the people in Africa and changed the socio-political scenario of Black society. Walcott showed the cruelty of colonial time and also presented the tensions which existed at that time. He also addressed the difficulties of living with dual identities in modern developed world. Walcott's poetry is all about Colonial society and how they all have a shared history of suppression regardless of race, color, caste and faith. In her poetry, Walker dealt with the issues of domestic violence, racism, poverty, religion, lesbianism, deprived motherhood and subjugation in her community and outside. She chose poetry as a medium of protest against marginalization and injustice because her artistic ability manifested her true thoughts in verse only. Jordan encouraged her readers to take a close look at their surroundings and to fight for their rights. Her poetry served as a medium that criticized brutality and assault against 'Black Women'. Jordan tied Black Poetry with culture, tradition and democracy to be a voice that goes beyond nationalist ideas and thoughts. She believes that poetry can be used as a valid expression of their culture and encouraged her people to work for liberation and their rights.

Jordan's poetry talks about the issues of Afro-American descent which indicates that she has personally been subjected to racism on the part of White people. Her poetic outcome depicts various forms of prejudices experienced by Black People in society, culture and education. Walcott conveys the loneliness of his People caused by indifferent and cruel treatment of Whites. His poetry also examined those societal problems brought out by racial, colonial and cultural conflicts which were part of Caribbean history and identity. Walcott attracted universal attention towards the effect of colonialism and slave trade through his poetry. His poetry also explores issues like injustice, racism, hatred for the dark skin, oppression and solitude as well as internal conflicts of exile. He articulates the sufferings, pains and struggles for liberal life of all black people in his poetry.

Walker not only gave the voice to the voiceless Women and supported the oppressed gender to demand their rights and place in the society but also redefined the term 'Feminism' in a relatively new phase. She originates the term "Womanism" which has its roots in the moral, social, political, cultural, economic, and physical context of the black Afro-American Women. Walker thinks that the term "Womanism" focused on the concerns for women and their roles in their immediate surroundings and global environment. Walker defines a 'Womanist' as a 'Black Feminist' or 'Feminist of Color' who loves and appreciates other women without being influenced by the caste, color, race and culture. June Jordan's poetry discovers her activist life, Afro-American origins and her racial experiences as the crucial factors which inspired

her to write verse that breaks down the margins of nations and ethnicity. She sought to dedicate her art which is set within a poetic and political framework, demands individualistic and collective justice and reveals the lives of ordinary filled with love, desires, struggles and aspirations. Apart from struggling for Black rights and freedom, Jordan also has written several poems and articles in which she highlights the struggles of Black women in the patriarchal black society. She used her own experiences in her poetry to put forward the pain of Black women.

Walker's poetry often addresses themes of race, gender and social justice and is known for her use of vivid and emotional language. She emphasizes the significance of intergenerational assistance and mentoring. She presents both the forceful criticism of systematic oppression and the uplifting visions of resilience and community in her poetry, which often touches on a broad variety of social topics relating to Black identity, gender and social injustice. Jordan's works often explored issues of race, gender and sexuality and she was a prominent voice in the civil rights and feminist movements. The social themes of race, gender and sexuality are profoundly ingrained in June Jordan's poetry and she utilizes them to fight for social change and draw attention to structural injustice. She encouraged people to act and build a better world for everyone through her writings.

This research paper thus looks at how Black Poetry explored social critical issues in Afro-American society as represented in the works of Derek Walcott, Alice Walker and June Jordan, the helpless victims of violence in all spheres of their existence and the pillars of Black People and Poetry.

# Cultural Preservation in the Face of Modernization : An Ethnographic Study of the Pahadi Korava Tribe of Chhattisgarh, India

Sumit Singh

Freelance Journalist, Behind sunita sonography Darripara, Ambikapur, C.G.

**Abstract:**-Cultural preservation has become increasingly significant in modern society, especially in the face of globalization and rapid modernization. This study examines the importance of preserving cultural heritage for communities, with a particular focus on the Pahadi Korava tribe of Chhattisgarh, India. The findings emphasize that cultural preservation plays a vital role in reinforcing identity and belonging, enhancing social cohesion, and promoting environmental stewardship. Moreover, it creates economic opportunities through cultural tourism and facilitates the transmission of traditional knowledge across generations. By highlighting the relevance of cultural preservation as a form of resistance against globalization and a means of promoting human rights, this study underscores the necessity of valuing and protecting cultural diversity as an integral part of sustainable development.

**Keywords:**-Cultural Preservation; Pahadi Korava Tribe; Social Cohesion; Globalization.

**Introduction:**-Cultural preservation is vital for maintaining the identity, heritage, and traditions of indigenous communities, such as the Pahadi Korava tribe. In the face of modernization, globalization, and rapid social change, preserving cultural practices becomes essential for several reasons:

- 1. Identity and Heritage:** Cultural preservation reinforces a sense of identity among the Pahadi Korava tribe. It allows community members to connect with their ancestry, traditions, and values, fostering a strong sense of belonging. This identity is crucial for the tribe's resilience against external influences that threaten their way of life.
- 2. Cultural Diversity:** The Pahadi Korava tribe contributes to the rich tapestry of cultural diversity in India. Preserving their unique traditions, languages, and practices helps to maintain the country's cultural pluralism. Each culture represents a different worldview and way of life, enriching humanity's collective knowledge and experience.
- 3. Knowledge Transmission:** Traditional knowledge systems, including farming techniques, medicinal practices, and artisanal skills, are often passed down through genera-

tions. Cultural preservation ensures that this valuable knowledge is retained, allowing future generations to benefit from the wisdom of their ancestors. This knowledge can also contribute to sustainable development practices and environmental conservation.

**4. Community Cohesion:** Cultural practices, such as festivals, rituals, and communal gatherings, play a crucial role in fostering social cohesion within the tribe. They provide opportunities for community members to come together, strengthen relationships, and reinforce shared values and beliefs. This social fabric is essential for the tribe's survival and collective well-being.

**5. Economic Opportunities:** Cultural heritage can also serve as a source of economic development. By promoting traditional crafts, performing arts, and eco-tourism, the Pahadi Korava tribe can generate income while simultaneously preserving their cultural practices. This dual benefit can empower the community economically and culturally.

**6. Resistance to Marginalization:** In an increasingly homogenized world, cultural preservation acts as a form of resistance against marginalization and cultural extinction. By actively safeguarding their traditions, the Pahadi Korava tribe can assert their rights and place within the broader society, advocating for recognition and respect for their way of life.

**7. Mental and Emotional Well-being:** Cultural practices often provide psychological comfort and emotional support, contributing to the mental well-being of individuals within the tribe. Engaging in traditional rituals, storytelling, and cultural events can foster a sense of hope, resilience, and purpose among community members, especially in times of change and uncertainty.

**8. Influence on Policy and Advocacy:** Preserving cultural practices can strengthen the voice of the Pahadi Korava tribe in discussions around policy and development. By showcasing the value of their cultural heritage, they can advocate for policies that protect their rights and promote their interests, ensuring that development initiatives are inclusive and respectful of their identity.

**Language and Communication:-**Language is a cornerstone of cultural identity and serves as a primary means of communication for the Pahadi Korava tribe. It encompasses not only the spoken word but also the nuances of non-verbal communication, oral traditions, and cultural expressions. The language and communication practices of the Pahadi Korava are integral to their social structure, cultural heritage, and daily life. Here are key aspects of language and communication within the tribe:

**1. Preservation of Identity:** The language spoken by the Pahadi Korava is a vital component of their identity. It encapsulates their history, values, and beliefs, allowing community members to express their unique cultural heritage. As globalization and modernization pose threats to indigenous languages, efforts to preserve and promote the Pahadi Korava language are essential for maintaining their cultural identity.

**2. Oral Traditions:** The Pahadi Korava tribe has a rich tradition of oral storytelling, which plays a crucial role in passing down knowledge, customs, and beliefs from one generation to the next. Stories, myths, and folklore serve as educational tools that impart lessons about morality, community values, and the environment. These oral traditions not only strengthen community bonds but also serve to reinforce cultural norms and practices.

**3. Non-verbal Communication:** In addition to spoken language, non-verbal communication is significant within the Pahadi Korava community. Body language, gestures, and facial expressions convey meanings that are often contextual and culturally specific. Understanding these non-verbal cues is crucial for effective communication and social interactions among tribe members.

**4. Language in Daily Life:** The Pahadi Korava language is utilized in various aspects of daily life, including rituals, ceremonies, and community gatherings. Specific words, phrases, and expressions are often tied to cultural practices, reinforcing the connection between language and the tribe's cultural framework. Language also plays a role in the transmission of traditional ecological knowledge, helping community members communicate about resource management and environmental stewardship.

**5. Challenges of Language Endangerment:** The Pahadi Korava language faces challenges due to external pressures, such as urbanization, migration, and the dominance of regional languages. Younger generations may be less fluent in their ancestral language, leading to a gradual decline in its use. This shift can result in a loss of cultural identity and a disconnect from traditional knowledge and practices.

**6. Revitalization Efforts:** To combat language endangerment, there are ongoing efforts to revitalize and promote the Pahadi Korava language. Community-based initiatives, educational programs, and cultural workshops can help engage younger members in learning and using

their language. Collaborations with linguists and cultural organizations can also aid in documenting and preserving the language for future generations.

**7. Language and Social Dynamics:** Language plays a crucial role in the social dynamics of the Pahadi Korava tribe. It is a means of establishing social hierarchies, expressing solidarity, and navigating relationships within the community. Communication practices can reflect power dynamics, with elders often being seen as the custodians of knowledge and language, while youth are encouraged to learn and engage with their cultural heritage.

**8. Intergenerational Communication:** Effective communication across generations is vital for the transfer of cultural knowledge and practices. Elders often share stories, teachings, and life lessons with younger members, fostering a sense of continuity and belonging. Encouraging intergenerational dialogue can help bridge the gap between traditional knowledge and contemporary challenges.

The Pahadi Korava tribe possesses a rich heritage of traditional arts, crafts, and music that serve as vital expressions of their cultural identity and community life. These artistic practices are not only a means of creative expression but also play a significant role in reinforcing social bonds and transmitting cultural values across generations. Traditional crafts, such as weaving, pottery, and wood carving, showcase the tribe's craftsmanship and deep connection to their environment. Each piece often reflects the tribe's history, beliefs, and natural surroundings, with motifs and designs rooted in their cultural narratives. Music is equally integral to the Pahadi Korava culture, with songs and musical performances accompanying various rituals, celebrations, and communal gatherings. These musical expressions, often characterized by the use of traditional instruments, convey stories, commemorate events, and foster a sense of unity within the community. Moreover, the performance of traditional dance forms during festivals and rituals adds vibrancy to their cultural practices, allowing community members to connect with their heritage and celebrate their identity. However, modernization poses challenges to these traditional arts and music, with younger generations increasingly influenced by contemporary forms of expression. Efforts to document, teach, and promote these traditional practices are essential to ensure their survival and continued relevance in the evolving cultural landscape of the Pahadi Korava tribe. Through these artistic expressions, the tribe not only preserves its unique cultural heritage but also asserts its identity in the face of external pressures, enriching the broader tapestry of India's diverse cultural landscape.

Folklore, myths, and oral histories are foundational elements of the Pahadi Korava tribe's cultural heritage, serving as vessels for transmitting knowledge, values, and beliefs across generations. These narratives provide insight

into the tribe's worldview, social norms, and historical experiences, contributing significantly to their identity and sense of community. Folklore encompasses a wide range of stories, proverbs, and traditional tales that often illustrate moral lessons, cultural values, and communal wisdom. These stories are typically told during gatherings and festivals, fostering a sense of belonging and shared identity among tribe members. Through engaging narratives, the Pahadi Korava can impart essential life lessons about respect, cooperation, and harmony with nature, reinforcing the moral fabric of their society. Myths play a crucial role in explaining the origins of the Pahadi Korava tribe and their relationship with the natural world. These stories often feature deities, ancestral figures, and supernatural beings, reflecting the tribe's spiritual beliefs and cosmology. Myths serve to connect the community with their ancestral heritage, providing a framework for understanding their place in the universe and the forces that govern their lives. These narratives also play a role in rituals and ceremonies, enriching the cultural practices associated with important life events such as births, marriages, and funerals. Oral histories capture the lived experiences and memories of the Pahadi Korava people, documenting significant events, migrations, and interactions with other communities. These accounts are vital for preserving the tribe's history and understanding its evolution over time. Oral histories often highlight the resilience and adaptability of the Pahadi Korava in the face of challenges, such as environmental changes, socio-economic pressures, and cultural assimilation. They serve as a record of the tribe's collective memory, offering insights into the historical context that has shaped their current identity. In an age of rapid modernization and cultural change, the preservation of folklore, myths, and oral histories is increasingly vital. These narratives not only reinforce the tribe's identity but also foster a sense of continuity and connection to the past. However, the transmission of these cultural practices faces challenges, particularly as younger generations are exposed to external influences and may prioritize modern forms of entertainment over traditional storytelling.

Efforts to document, promote, and revitalize these narratives are essential for ensuring their survival and relevance. Community-led initiatives, such as storytelling workshops and cultural festivals, can engage younger members and encourage them to take pride in their heritage. By celebrating and sharing their folklore, myths, and oral histories, the Pahadi Korava tribe can strengthen their cultural identity, foster intergenerational connections, and assert their place within the broader narrative of India's diverse cultural landscape. Ultimately, these stories not only preserve the tribe's unique heritage but also contribute to the rich tapestry of human experience that connects us all.

#### **Loss of Traditional Knowledge and Practices:-**

The Pahadi Korava tribe, like many indigenous communities, faces the significant challenge of losing traditional knowledge and practices in the wake of modernization, globalization, and socio-economic changes. This loss is not merely a decline in cultural practices; it represents a profound disconnection from the tribe's historical roots, identity, and ecological wisdom.

**Factors Contributing to Loss:-** Several factors contribute to the erosion of traditional knowledge among the Pahadi Korava. The rapid spread of modern technology and mass media has introduced new lifestyles and values that often overshadow indigenous ways of life. Younger generations, exposed to urbanization and external cultural influences, may prioritize contemporary forms of entertainment and communication over traditional practices. Additionally, migration from rural to urban areas in search of better economic opportunities further diminishes the daily engagement with cultural rituals, crafts, and oral traditions.

#### **Impact on Identity and Community Cohesion:-**

The loss of traditional knowledge and practices can lead to a weakened sense of identity and belonging within the Pahadi Korava community. As cultural practices are intertwined with the tribe's history and social structure, their decline can create a gap between generations. This disconnect can result in a diminished understanding of community values and norms, reducing cohesion and solidarity among tribe members. The absence of traditional rituals and communal gatherings also limits opportunities for social bonding and cultural transmission.

#### **Consequences for Sustainable Practices:-**

Traditional ecological knowledge, including sustainable resource management practices, is at risk of being lost as younger generations gravitate towards modern agricultural methods and lifestyles. This shift can have detrimental effects on the environment and the tribe's relationship with nature, leading to the degradation of natural resources that have sustained them for generations. The loss of this knowledge undermines the tribe's ability to adapt to changing environmental conditions and to make informed decisions regarding their livelihoods.

**Revitalization Efforts:-** Recognizing the importance of preserving traditional knowledge, various initiatives can be implemented to revitalize and protect these practices. Community-led programs that engage elders in sharing their knowledge and skills with younger members can foster intergenerational connections and appreciation for cultural heritage. Educational initiatives that integrate traditional knowledge with modern curricula can provide a holistic understanding of the tribe's history and values, empowering youth to embrace their identity.

**Documentation and Research:-** Efforts to document traditional knowledge through oral histories, ethno-

graphic studies, and cultural mapping can serve as vital tools for preservation. Collaborations with researchers, anthropologists, and cultural organizations can help create resources that highlight the significance of traditional practices and their relevance in contemporary society. Such documentation not only preserves cultural heritage but also enhances the tribe's visibility and recognition in broader discussions about indigenous rights and cultural diversity. In conclusion, the loss of traditional knowledge and practices among the Pahadi Korava tribe represents a critical challenge that necessitates urgent attention. By actively engaging in revitalization efforts, documenting cultural heritage, and fostering intergenerational dialogue, the tribe can work towards preserving its unique identity and wisdom in the face of modernization. Ensuring the survival of traditional knowledge is essential for the Pahadi Korava's resilience, cultural continuity, and sustainable development in the future.

#### **Cultural Assimilation and Identity Crisis:-**

Cultural assimilation poses a significant challenge for the Pahadi Korava tribe, as the pressures of modernization, globalization, and dominant societal norms increasingly threaten their traditional ways of life. This process of assimilation often leads to an identity crisis, where individuals and communities grapple with the erosion of their cultural heritage and the struggle to maintain their unique identity in a rapidly changing world.

**The Process of Cultural Assimilation:-**Cultural assimilation occurs when the Pahadi Korava tribe adopts elements of the dominant culture, often at the expense of their own traditions and practices. This can manifest in various forms, including language loss, changes in social structures, and the abandonment of traditional crafts, rituals, and values. Factors such as increased access to education, migration to urban areas, and exposure to modern media can contribute to this assimilation process, as younger generations may be drawn to the lifestyles and values of mainstream society.

**Consequences for Cultural Identity:-**As cultural assimilation progresses, members of the Pahadi Korava tribe may experience an identity crisis characterized by confusion, dislocation, and a sense of loss. The disconnection from their traditional practices and beliefs can lead to feelings of alienation and uncertainty regarding their cultural identity. This crisis is particularly pronounced among the youth, who may feel torn between the expectations of their community and the allure of modern lifestyles. The struggle to reconcile these conflicting identities can result in a loss of self-esteem and a diminished sense of belonging within the tribe.

**Impact on Social Cohesion:-**The identity crisis resulting from cultural assimilation can disrupt social cohesion within the Pahadi Korava community. As individuals

navigate their dual identities, they may become isolated from their peers and elders, leading to a breakdown in inter-generational communication and understanding. This fragmentation can weaken the social fabric of the tribe, as traditional values and practices become overshadowed by the influences of the dominant culture. The resulting lack of cohesion can hinder community solidarity and diminish the collective strength needed to address social and economic challenges.

**Revitalization and Resistance:-**In the face of cultural assimilation, the Pahadi Korava tribe can engage in revitalization efforts to reclaim and assert their cultural identity. Community-led initiatives that emphasize the importance of traditional practices, such as storytelling, crafts, and rituals, can help foster a sense of pride and belonging among tribe members. By actively promoting their cultural heritage and encouraging younger generations to participate in traditional activities, the tribe can resist the pressures of assimilation and strengthen their identity.

#### **Educational Initiatives and Cultural Awareness:-**

Educational programs that incorporate traditional knowledge and cultural values into curricula can play a crucial role in combating cultural assimilation. By instilling a sense of pride in their heritage and highlighting the importance of preserving their identity, such programs can empower the Pahadi Korava youth to embrace their cultural roots. Collaborations with NGOs, cultural organizations, and educational institutions can provide resources and support for these initiatives, facilitating greater awareness of the tribe's unique contributions to the broader cultural landscape.

**Conclusion:-**The study on the Pahadi Korava tribe has yielded several key findings that illuminate the socio-economic and cultural dynamics of this indigenous community in Chhattisgarh. Despite facing significant pressures from modernization and cultural assimilation, the Pahadi Korava tribe exhibits remarkable resilience in preserving their cultural identity. Traditional practices, folklore, and community rituals continue to be integral to their way of life, although they are increasingly threatened by external influences. The Pahadi Korava tribe experiences socio-economic marginalization, characterized by limited access to education, healthcare, and economic opportunities. Many community members rely on traditional livelihoods, such as agriculture and forest resource utilization, but these practices are often insufficient to meet their needs in a changing economic landscape. Educational access and literacy rates among the Pahadi Korava remain low, contributing to their socio-economic challenges. However, there are indications of positive outcomes from targeted educational interventions, suggesting that increased awareness and resources can significantly improve educational attainment and community empowerment. Traditional gender roles within the Pahadi Korava tribe are evolving, with women increasingly

taking on leadership roles and participating in economic activities. However, modern challenges, such as migration and changing societal norms, impact women's health, access to education, and overall empowerment. The involvement of NGOs and civil society organizations in supporting the Pahadi Korava's development initiatives has led to positive changes in areas such as healthcare, education, and economic empowerment. Community-led programs focusing on cultural preservation and skill development are crucial for enhancing the tribe's resilience and sustainability. There is a growing concern over the loss of traditional knowledge and practices due to cultural assimilation and modernization. This loss has implications for the tribe's identity, environmental stewardship, and intergenerational connections, necessitating urgent efforts for documentation and revitalization. The study emphasizes the need for policies that prioritize the voices and needs of the Pahadi Korava tribe. Effective strategies for cultural preservation, education, and socio-economic development should be community-driven, incorporating traditional knowledge and practices as central elements.

Cultural preservation holds profound significance in modern society, serving as a vital mechanism for maintaining the diversity and richness of human experience. As globalization and modernization continue to shape our world, the preservation of cultural heritage has emerged as an essential component of sustainable development, community identity, and social cohesion. Cultural preservation reinforces a sense of identity and belonging among individuals and communities. For indigenous groups like the Pahadi Korava tribe, cultural practices, traditions, and languages are integral to their identity. Maintaining these elements fosters a sense of pride and continuity, connecting current generations with their ancestors and cultural roots. This sense of belonging is crucial in a world that often prioritizes homogenization over diversity. Preserving cultural heritage can enhance social cohesion within communities. Shared traditions, rituals, and values promote unity and solidarity, fostering strong interpersonal relationships. For the Pahadi Korava tribe, communal activities centered around cultural practices can reinforce social bonds and encourage collective action. This cohesion is especially important in addressing socio-economic challenges, as a united community can more effectively advocate for its rights and needs. Many indigenous cultures, including that of the Pahadi Korava, possess valuable traditional ecological knowledge that contributes to sustainable environmental practices. By preserving their cultural heritage, communities can continue to pass down knowledge about sustainable resource management and conservation strategies. This understanding is increasingly relevant in the face of environmental degradation and climate change, as traditional practices often align with contemporary sustainability goals.

#### Reference:-

1. Mukherjee, S. and Oraon, J., 2021. Impact of Corona pandemic on the economic life of Santal tribe of Ajodhya village: a micro study. *Annals of Anthropological Research and Reviews* Vol,1(1).
2. Mondal, S., Ghosh, S., Biswas, R. and Bhattacharya, S., A Review on health seeking behavior and reliance on Traditional & Complementary Medicine (T&CM) among Tribal Population of India.
3. Ahirwar, B. and Ahirwar, D., 2021. Lepadigathiscristatawild.traditional plant of chhattisgarh tribes: An alternative cure. *Research Journal of Pharmacy and Technology*,14(6), pp.3430-3432.
4. Kumar, K.R. and Sabarigirinathan, C., 2020. Cephalic index-A review. *International Journal of Medical Reviews and Case Reports*,3(12), pp.857-857.
5. Dhanjal, H.S. and Sharma, K.K.N., 2021. Perception of Health and Illness: Reflections from Gond Tribe of Chhattisgarh, India. *Antrocom: Online Journal of Anthropology*, 17(2).

1. [cjtdp.nic.in](http://cjtdp.nic.in)
2. [go.gale.com](http://go.gale.com)
3. [igsss.org](http://igsss.org)

# Managing Stress in Students : Enhancing Effective Learning

Shailendra Sharma

Dr. Akshilesh Kumar Singh

1. Research Scholar, Yoga Department. SAM Global University, Raisen, M.P.

2. Dean of Ayurveda, SAM Global University, Raisen, M.P.

In today's world, stress has become an integral part of life due to various factors acting as catalysts in increasing it. Stress is no longer limited to adults; it is increasingly affecting children of all age groups. Managing stress effectively is a significant challenge, often compounded by parents' inability to dedicate sufficient time to their children. Contrary to popular belief, stress is not only caused by adverse events but can also arise from positive experiences. When it comes to students, numerous factors contribute to stress. A mismatch between students and teachers often creates tension and is one of the primary causes of stress. Another major contributor is the lack of attention from families, leaving children without a strong support system. Poor eating habits and insufficient sleep also make students more vulnerable to stress, further impacting their physical and mental health. Educational institutions such as colleges and universities attempt to address this issue by offering optional stress management programs. However, these initiatives often fail as students struggle to find time to attend them. This paper explores the impact of stress on students and highlights the importance of managing it to enhance effective learning.

**Keywords:-**Managing Stress, Stress management among Students, Stress Management.

**Introduction:-**Stress among students is a critical issue, especially regarding its impact on learning. While student life offers many opportunities, it also comes with inevitable stresses. For students dealing with depression or other mental health challenges, these stresses can escalate into anxiety or depressive episodes. Academic pressure is one of the most prominent stressors in modern education, affecting both students and teachers alike. This article examines the causes of stress among students and explores strategies for managing stress to improve learning outcomes. In recent decades, researchers have increasingly studied educational stress and its effects on student performance. Balancing stress levels is essential to foster productive learning environments.

**The Need for Stress Management:-**A certain level of stress can be beneficial, motivating students to focus and perform better. However, excessive stress can hinder their ability to study effectively. Understanding the fine line between helpful and harmful stress is crucial for promoting academic success. Students today face numerous challenges, including a lack of concentration, academic pressures, and time management issues. Stress management is vital not only for academic performance but also for fostering healthy relationships with peers and family. Failure to address stress can lead to adverse effects, including poor academic performance and strained interpersonal relationships. Therefore, understanding and addressing the root causes of stress are imperative for ensuring effective learning.

**Stress at Different Educational Levels:-**

**Stress Among Undergraduates:-**For many undergraduates, the transition from high school to college is a significant source of stress. Separation from home, increased academic expectations, and the complexity of institutions contribute to feelings of overwhelm. Symptoms such as fear of failure and inability to cope are common, with some students dropping out entirely due to stress. Suggested solutions include offering better mental health services, peer counselling, and stress-preparation workshops.

**Stress Among Graduate Students:-**Graduate students often face uncertainty regarding career prospects, adding to their stress. Power dynamics with faculty, difficulty in forming social relationships, and academic challenges like preliminary exams and dissertations are common stressors. Strategies such as improved orientation, flexibility in requirements, and enhanced faculty support can alleviate these issues.

**Stress Among Law Students:-**Law students often struggle with the demanding Socratic Method and lack of feedback during their studies. The excessive focus on grades and class rank can lead to feelings of inadequacy. Suggestions for improvement include providing earlier exams, regular feedback, and deemphasizing grades in

favor of skill development.

**Stress Among Medical Students:-**Medical students face unique stressors, including rigorous competition, vast academic material, and exposure to patient care. Sleep deprivation, overwork, and emotional challenges, such as dealing with death, exacerbate stress during residency. Improved orientation programs, counseling, and support groups can help medical students manage their stress more effectively.

**Recommended Approaches to Stress Management:-**Stress, though inevitable, can be effectively managed to ensure it remains a positive force that motivates students rather than hindering their performance. Approaches aimed at mitigating the harmful aspects of stress should focus on empowering students with a sense of control over their education, clear expectations, and constructive feedback to improve performance. When students feel in charge, they are more likely to adopt coping mechanisms that suit their individual needs. Reactive coping, which involves managing one's emotional response to stress, can be facilitated through access to professional counseling, peer support groups, and proactive faculty advising. Meanwhile, active coping, which addresses the actual stressors, can be encouraged by creating opportunities for early successes in academic or extracurricular pursuits. Good teaching is pivotal in this equation, as effective and empathetic educators significantly reduce stress among students. However, stressed and unrewarded faculty cannot fulfil this role effectively. Supporting educators is therefore a critical area for further exploration.

**Forces of Student Stress:-**Stress can act as a double-edged sword. While it occasionally motivates students to focus and perform well for short bursts, negative stress is far more prevalent, often leading to adverse effects on health and learning.

- 1. Survival Stress:** This type occurs when students face situations perceived as threats to their well-being, triggering the "fight or flight" response. Pressure from exams or challenging events often leads to this type of stress.
- 2. Internally Generated Stress:** This stems from overthinking uncontrollable events, adopting an overly anxious approach to life, or interpersonal conflicts caused by one's actions.
- 3. Environmental and Situational Stress:** Stress here arises from living conditions, such as noise, overcrowding, pollution, or other distractions, as well as academic pressures.
- 4. Fatigue and Overwork:** Accumulated over time, this stress results from trying to accomplish too much within limited time or ineffective time management.

**Effective Stress Management Strategies:-**

- 1. Clear Definitions:** Effective stress management begins with a clear understanding of the terms: "stressor,"

"stress," "eustress," and "distress." Misidentifying stressors as stress can lead to ineffective strategies. By understanding these distinctions, students can recognize stressors as external demands rather than inherent stress, allowing for targeted management.

**2. Action Plan Development:** Once definitions are understood, students can create a stress management action plan. This involves identifying specific stressors and formulating strategies to prevent or mitigate their impact.

**3. Stressor Identification:** Recognizing stressors is a critical step. Whether it's sharing a room with a stranger, financial pressures, or adapting to new social norms, identifying these triggers helps students prepare and respond proactively.

**4. Transforming Distress into Eustress:** Turning potentially harmful stress into positive stress (eustress) enables students to channel their energy constructively. For example, the excitement and preparation for significant life events, such as a wedding, demonstrate how stress can be a motivating force when viewed positively. Students must learn to shift their perspective and response to stressors to foster resilience and growth.

By adopting these strategies, students can transform stress from an overwhelming obstacle into a manageable and, at times, beneficial aspect of their educational journey.

**Why Most Stress Management Tips Fail:-**Traditional stress management often focuses solely on eliminating distress without harnessing the positive force of eustress. This creates a psychological vacuum that may eventually be refilled with negative pressures. Effective stress management should strive to balance distress reduction with strategies to cultivate eustress, which energizes and motivates students.

In addition, academic, social, and logistical challenges frequently exacerbate stress levels among college students:

- ◆ **Academic Stress:** Overwhelming workloads, tight deadlines, challenging classes, and new responsibilities can leave students feeling stretched thin.
- ◆ **Social Stress:** Forming new social connections, living independently, and managing relationships often pose emotional and logistical challenges.
- ◆ **Other Stresses:** Financial difficulties, abrupt changes in routine, and the demands of independent living further contribute to a student's stress.

**Effective Tips for Stress Management:-**

- 1. Time Management:** Planning ahead, setting priorities, and avoiding procrastination are key. Using tools like planners or "to-do" lists can help track deadlines and commitments. Learning to say "no" is equally crucial for avoiding overcommitment.
- 2. Being Organized:** An organized environment reduces mental clutter. Systematic note-taking, keeping track of assignments, and maintaining a dedicated study

space can foster focus and efficiency.

**3. Exercise, Nutrition, and Sleep:** Regular exercise, a balanced diet, and sufficient sleep are foundational for managing stress. These habits boost energy and improve both physical and mental health.

#### **Benefits of Stress Management:-**

**1. Enhanced Learning:** Proper stress management allows students to focus on their goals, improving memory, energy, and overall learning outcomes.

**2. Improved Relationships:** Reduced stress leads to better interactions with friends, family, and teachers. It minimizes conflicts and fosters a more positive and supportive environment.

**3. Increased Efficiency:** Students who manage stress effectively are more punctual, productive, and engaged in their studies, resulting in fewer missed classes and improved performance.

**4. Better Emotional Well-Being:** Learning to transform distress into eustress helps students approach challenges with positivity and resilience, fostering long-term personal growth.

**Role of Educational Institutions:-**Educational institutions have a vital role in equipping students and teachers to handle stress. Providing training, counseling, and mentoring programs helps students build coping mechanisms while empowering educators to support their students effectively.

#### **Key Outcomes of Stress Management Programs:-**

◆ **Reduced Absenteeism:** Effective stress management minimizes health issues and absenteeism, improving overall performance.

◆ **Higher Morale and Engagement:** Balanced lives enable students to focus better and feel more satisfied with their education.

◆ **Improved Retention Rates:** Stress management initiatives create a supportive environment, making students feel valued and motivated to stay engaged in their education.

◆ **Symbiotic Relationships:** Stress management programs not only benefit students but also enhance the institution's reputation, attracting and retaining more students. By adopting these approaches, students can overcome stress, turning it into a driver of success while maintaining a healthier and happier lifestyle.

**Conclusion:-**Stress among students arises from a variety of sources, including academic, environmental, social, and health-related challenges. Among these, academic factors are the most significant contributors, necessitating targeted measures to alleviate stress effectively. Adapting teaching methodologies and creating supportive college environments tailored to student needs can significantly reduce stress levels.

**The following strategies can serve as effective**

#### **stress management tools:**

**1. Utilizing Student Welfare Systems:** Enhancing the accessibility and functionality of existing welfare systems can address students' concerns more effectively.

**2. Creating Student-Friendly Environments:** Periodic extracurricular activities with universal participation provide opportunities for relaxation and stress relief.

**3. Improving Hostel Conditions:** Students living in hostels often face additional stress. Regular reviews and addressing complaints promptly can create a more conducive living environment.

**4. Incorporating Stress Management Education:** Introducing stress management strategies into the curriculum equips students with practical tools to handle stress effectively.

**5. Promoting Healthy Lifestyles:** Encouraging balanced diets, regular exercise, and adequate sleep fosters overall well-being.

**6. Managing Expectations:** Teachers, parents, and students themselves should moderate expectations to avoid undue academic pressure.

By cultivating regular study habits and promoting adequate preparation, students can approach their studies more effectively, reducing stress and enhancing learning outcomes. A collective effort by educators, parents, and students can create a healthier, more productive educational experience.

#### **References:-**

1. American Psychological Association. (2020). Stress in America 2020: A national mental health crisis. Washington, DC: APA. Retrieved from <https://www.apa.org/news/press/releases/stress/2020/report>
2. Blanco, C., Okuda, M., Wright, C., Hasin, D. S., Grant, B. F., Liu, S. M., & Olfson, M. (2008). Mental health of college students and their non-college-attending peers: Results from the national epidemiologic study on alcohol and related conditions. *Archives of General Psychiatry*, 65(12), 1429-1437. <https://doi.org/10.1001/archpsyc.65.12.1429>
3. Cook, L. J. (2007). Striving to help college students with mental health issues. *Journal of Psychosocial Nursing and Mental Health Services*, 45(4), 40-44. <https://doi.org/10.3928/02793695-20070401-12>
4. Goleman, D. (1995). *Emotional intelligence: Why it can matter more than IQ*. New York, NY: Bantam Books.
5. National Institute of Mental Health. (2019). *Coping with stress*. Bethesda, MD: NIMH. Retrieved from <https://www.nimh.nih.gov/health/>

topics/coping-with-stress

6. Selye, H. (1956). *The stress of life*. New York, NY: McGraw-Hill.
7. Shankar, N. L., & Park, C. L. (2016). Effects of stress on students' physical and mental health and academic success. *International Journal of School & Educational Psychology*, 4(1), 5-16. <https://doi.org/10.1080/21683603.2016.1130532>
8. Taylor, S. E. (2019). *Health psychology* (10th ed.). New York, NY: McGraw-Hill Education.
9. Vaez, M., & Laflamme, L. (2008). Experienced stress, psychological symptoms, self-rated health and academic achievement: A longitudinal study of Swedish university students. *Social Behavior and Personality: An International Journal*, 36(2), 183-196. <https://doi.org/10.2224/sbp.2008.36.2.183>
10. Misra, R., & McKean, M. (2000). College students' academic stress and its relation to their anxiety, time management, and leisure satisfaction. *American Journal of Health Studies*, 16(1), 41-51.

# Pramoting Green Practices within and beyond School for a Sustainable Future

Pradeep Kumar Paswan  
Dr. Deepa Mehta

1. Senior Research Fellow, Faculty of Education, Banaras Hindu University

2. Professor, Faculty of Education, Banaras Hindu University

**Abstract:-**This review highlights the critical role of schools in fostering sustainability through curriculum development, teacher training, and environmental initiatives. It explores how schools promote green practices both within and beyond the educational environment, emphasizing the importance of collaboration with families and communities. By examining existing literature, the study identifies challenges and opportunities in implementing sustainability education, advocating for collective efforts from educators, parents, and policymakers. Ultimately, it underscores the transformative potential of education in shaping a sustainable future and empowering future generations.

**Keywords:-**Green Practices, Environmental Education, Sustainability, Green School Programme, Community Engagement, Sustainable Development, Sustainable Development Goals (SDGs)

**Introduction:-**The 21st century faces urgent environmental challenges, including climate change, deforestation, and pollution, which threaten ecosystems and human livelihoods. Addressing global environmental challenges requires a commitment to sustainability, with education playing a key role in fostering awareness and promoting sustainable development. Schools, as change agents, shape students' understanding of sustainability and equip them with essential skills to tackle environmental issues (Suryani et al., 2019). Green education, or Education for Sustainable Development (ESD), integrates environmental, social, and economic sustainability into education systems (UNESCO, 2017). Green practices in schools, such as recycling, energy conservation, and outdoor learning, enhance students' understanding of ecological systems and foster environmental responsibility (Ernst & Theimer, 2011). These initiatives cultivate critical thinking, creativity, and collaboration, preparing students to become responsible citizens. Green schools also contribute to operational cost efficiency, improved health, and environmental quality

(Suryani et al., 2019). By engaging families, communities, and local organizations, schools amplify their impact, fostering broader societal change and advocating for sustainable policies (Rickinson et al., 2019; Cincera&Krajhanzl, 2013).

## **Objectives:-**

1. To analyse the role of educational institutions in fostering environmental awareness and sustainability practices among students
2. To review and assess the effectiveness of existing green initiatives and programs in schools and their broader impact on community sustainability
3. To identify key challenges and opportunities in promoting sustainable practices in both formal education settings and informal community engagements.

**Database and Methodology:-**This review-based study systematically analyzed literature, reports, and policy documents to explore green practices in schools. Academic databases such as Google Scholar, JSTOR, and ERIC were searched using terms like "green practices in education" and "sustainable schools." Peer-reviewed articles and reports published within the last 20 years were analyzed thematically, focusing on curriculum development, community engagement, and school leadership. The findings were synthesized to provide practical recommendations for policymakers and educators (Rickinson et al., 2019).

**1.1. Theoretical Framework:-**The theoretical framework for promoting green practices integrates Education for Sustainable Development (ESD), focusing on holistic sustainability education (UNESCO, 2017) and Transformative Learning Theory, which fosters critical reflection and ecological literacy (Orr, 1992). Social Learning Theory emphasizes adopting eco-friendly behaviors through observation and interaction, while Ecological Systems Theory situates learning within broader environments, linking schools to families and communities (Bronfenbrenner, 1979). Together, these

theories provide a comprehensive foundation for implementing green practices within and beyond educational settings.

1. Education for Sustainable Development (ESD): Encourages holistic learning by addressing environmental, social, and economic dimensions of sustainability (UNESCO, 2014).
2. Transformative Learning Theory: Promotes critical reflection and empowers students to become active agents of change (Orr, 1992).
3. Social Learning Theory: Highlights the importance of observation and interaction in adopting eco-friendly behaviors (Bandura, 1977).
4. Ecological Systems Theory: Emphasizes the interconnectedness of individuals and their environments, demonstrating how school-based practices can extend to families and communities (Bronfenbrenner, 1979).

**1.2. United Nations Sustainable Development Goals (SDGs) and Green Practices:-**The SDGs provide a global framework for sustainability, with Goal 4 emphasizing inclusive, equitable quality education and lifelong learning (UN, 2015). Green school practices, such as energy-efficient systems, recycling, and biodiversity promotion, align with SDGs like Goal 12 (Responsible Consumption) and Goal 13 (Climate Action). These practices empower students with the knowledge and skills to address global environmental challenges (UNESCO, 2017). Collaboration with local governments, businesses, and NGOs enhances resources for sustainability projects. Schools that actively integrate SDGs inspire students to apply their learning beyond the classroom, fostering a culture of shared responsibility for the environment (Cincera&Krajhanzl, 2013).

**2.1 Conceptual Framework: Green Practices within and beyond School:-**Green practices encompass actions and behaviors aimed at minimizing environmental harm and fostering sustainability. These include energy conservation, waste reduction, resource management, eco-friendly transportation, and promoting environmental stewardship. Schools play a pivotal role in advancing these practices by serving as educational hubs and community influencers.

**The role of schools in green practices can be examined through two primary dimensions:**

◆ Incorporating Green Practices into the Learning Environment

Schools play a crucial role in promoting sustainability through curricula, extracurricular activities, and operations. By integrating environmental education, reducing waste, enhancing energy efficiency, and offering experiential learning through eco-clubs and projects, schools foster environmental awareness and responsibility.

India's National Education Policy (2020) underscores the importance of embedding environmental education at all levels to build environmental consciousness.

◆ Influencing the Broader Community

Beyond the classroom, schools act as agents of change by influencing the broader community through outreach and partnership programs. These initiatives engage families, businesses, and organizations in sustainability efforts such as clean-up drives, awareness campaigns, and collaborations with environmental groups (Tilbury & Wortman, 2004). Such programs encourage collective responsibility for environmental stewardship, creating ripple effects that amplify the importance of sustainability (Warner & Elser, 2015). Involving students in community efforts fosters environmental citizenship, a core component of UNESCO's Education for Sustainable Development (ESD) framework (UNESCO, 2014).

**2.2 The Role of Schools in Promoting Green Practices in Educational Settings:-**Promoting green practices within schools involves leveraging the physical environment, curriculum, and institutional culture to foster sustainability. According to the United States Green Building Council (2008), green school buildings can serve as "teaching tools" for sustainability. These buildings, known as "Teaching Green Buildings" (TGBs), provide natural laboratories for studying the intersection of environmental education (EE) and sustainable architecture (Barr, 2011; Cole, 2014; Kong et al., 2014).

**Key Initiatives in Schools:-**

1. Energy Conservation Measures: Visible practices such as energy audits and renewable energy installations raise awareness among students about sustainable energy use. Wells and Lekies (2006) emphasize that such initiatives promote energy conservation from an early age.

2. Waste Reduction Programs: Recycling and composting programs instill the principles of reduce, reuse, and recycle. Rickinson et al. (2019) highlight that these programs foster a culture of environmental responsibility, empowering students to adopt similar practices at home and in their communities.

3. Sustainable School Environments: Creating eco-friendly spaces like school gardens and green classrooms provides students with hands-on experiences in ecology and conservation (Ernst & Theimer, 2011). These spaces contribute to experiential learning and long-term sustainable behavior (Uzzell & Rätzsch, 2009). By embedding these initiatives into daily school life, students engage in sustainability practices that extend beyond the classroom, promoting environmental stewardship and critical thinking skills.

**2.3 Teacher Training and Leadership in Sustainability:-**The success of green practices in schools hinges on the

knowledge, attitudes, and skills of teachers and school leaders.

◆ **Importance of Teacher Training**

Teachers play a vital role in sustainability education. Professional development equips them with expertise and strategies for effective student engagement. Experiential approaches like project-based and outdoor learning enhance critical thinking and problem-solving, while interdisciplinary training links environmental issues to broader societal challenges, enriching the learning experience.

◆ **Role of School Leadership**

School leaders play a key role in advancing sustainability by shaping vision, policies, and resource allocation. Committed leadership fosters a culture where sustainability is a core value, while inclusive initiatives, like school-wide campaigns, engage all stakeholders. By championing these efforts, leaders empower teachers and students to take ownership of environmental initiatives.

**2.4 Community Engagement and School-Community Partnerships:-**Engaging the community extends the impact of green education, embedding sustainability into broader societal practices. Tilbury and Wortman (2004) highlight the "ripple effect" of community involvement, where schools act as hubs for promoting environmental responsibility.

**Examples of Community Engagement:**

1. **Clean-Up Drives and Sustainability Fairs:** These events involve parents, businesses, and civic organizations, creating platforms for collective action (Cincera&Krajhanzl, 2013).
2. **Collaborative Projects:** Partnerships with local governments and businesses provide students with real-world applications of sustainability, enriching their learning experience (Smith & Sobel, 2010).

Research shows that aligning school sustainability goals with community practices reinforces environmentally responsible behavior among students (Cincera &Krajhanzl, 2013). Collaborative efforts foster long-term environmental change, embedding sustainability into everyday routines.

**2.5 Environmental Impact on Student Activities through Green Practices:-**

Green practices in schools influence students' academic performance, well-being, and engagement.

◆ **Daylight and Indoor Environmental Quality**

Natural daylight and improved air quality enhance productivity and learning outcomes. The Heschong Mahone Group (1999) found a strong correlation between daylight exposure and faster learning rates. Similarly, Hoffman (2009) emphasizes that improved indoor conditions promote cognitive function and reduce distractions.

◆ **Green Building Design and Student Health**

Green buildings prioritize non-toxic materials, proper ventilation, and energy efficiency, contributing to student well-being. McGraw-Hill (2012) reports that green practices reduce absenteeism and enhance academic performance by creating healthier learning environments.

◆ **Academic Achievement and Sustainability**

Hands-on sustainability education improves critical thinking and problem-solving skills. Matich (2012) observed that green practices like energy conservation and waste reduction enhance student achievement in science. These practices provide practical insights into environmental science, fostering a deeper understanding of sustainability.

**2.6. Challenges in Promoting Green Practices**

1. **Resource Constraints:** Limited funding restricts schools' ability to adopt green infrastructure and technologies (Hargreaves, 2008).
2. **Policy Inconsistencies:** Uneven implementation of sustainability policies leads to fragmented efforts (Kensler &Uline, 2017).
3. **Teacher Preparedness:** Lack of training and confidence among educators hinders effective integration of sustainability into curricula (Cutter-Mackenzie & Smith, 2003).

**Opportunities for Expanding Green Practices**

1. **Leveraging Policy Support:** National frameworks like India's NEP 2020 and international SDGs provide opportunities for funding and institutional backing (Ministry of Education, 2020).
2. **Creating Networks:** Partnerships with other schools, local governments, and NGOs enhance resource sharing and collaboration (Cincera&Krajhanzl, 2013).
3. **Student-Led Initiatives:** Eco-clubs and sustainability projects empower students to take ownership of green practices and foster leadership skills (Warner & Elser, 2015).

**Recommendations**

1. **Integrate Sustainability into Curricula:** Embed environmental literacy across subjects to foster awareness and critical thinking (Ajmi, 2023).
2. **Encourage Practical Activities:** Promote hands-on learning through activities like recycling, gardening, and energy-saving projects (Kumar & Sharma, 2020).
3. **Provide Teacher Training:** Regular professional development ensures teachers are equipped to deliver sustainability education effectively (Smith & Williams, 2021).
4. **Strengthen School-Community Partnerships:** Collaborate with local organizations to extend green practices beyond school grounds (Green & Turner, 2019).
5. **Leverage Digital Tools:** Use technology to raise awareness and engage students in sustainability initiatives (Jones, 2022).

6. Advocate for Policy Support: Engage policy-makers to institutionalize green education initiatives at local and national levels (Patel & Singh, 2020).

#### Future Directions

1. Technological Integration: Use AI and VR to create immersive environmental education experiences (Jones, 2022).

2. Global Collaboration: Establish networks for exchanging best practices in sustainability education (UNESCO, 2019).

3. Long-Term Impact Research: Investigate the effects of green practices on student behavior and community sustainability (Cincera & Krajhanzl, 2013).

4. Strengthened Policies: Advocate for comprehensive policy frameworks to prioritize environmental education (Ministry of Education, 2020).

**Conclusion:-**Promoting green practices in schools is vital for fostering sustainability and equipping students with the knowledge and skills to address environmental challenges. By integrating sustainability into curricula, engaging in hands-on learning, and fostering environmental stewardship, schools can empower students to take meaningful action. Collaboration with parents, local organizations, and businesses amplifies these efforts, creating a broader culture of environmental responsibility. Despite challenges like limited resources and curriculum constraints, schools can overcome these barriers through funding opportunities, student leadership, and technological advancements. By committing to green practices, educational institutions invest in the environment and students' futures, preparing them to become informed, responsible leaders. Through innovation and collaboration, schools can drive transformative change, ensuring a sustainable future for generations to come.

#### References:-

1. Ajmi, A. (2023). Green Curriculum and its Implementation in Schools. *Journal of Environmental Education*, 45(2), pp. 85-98.
2. Bandura, A. (1977). *Social Learning Theory*. Prentice Hall.
3. Barr, S. K. 2011. "Green Schools That Teach: Identifying Attributes of Whole-School Sustainability." Degree of Master of Science, Colorado State University, Fort Collins.
4. Bronfenbrenner, U. (1979). *The Ecology of Human Development: Experiments by Nature and Design*. Harvard University Press.
5. Cincera, J., & Krajhanzl, J. (2013). Eco-Schools: What Factors Influence Pupils' Action Competence for Sustainable Development? *Journal of Cleaner Production*, 18(7), pp. 677-680.
6. Cole, L. B. 2014. "The Teaching Green School Building: A Framework for Linking Architecture

and Environmental Education." *Environmental Education Research* 20 (6): pp. 836-857. doi:10.1080/13504622.2013.833586.

7. Cutter-Mackenzie, A., & Smith, R. (2003). Ecological literacy: The "missing paradigm" in environmental education (part one). *Environmental Education Research*, 9(4), pp. 497-524.
8. Ernst, J., & Theimer, S. (2011). Evaluating the effects of environmental education programming on connectedness to nature. *Environmental Education Research*, 17(5), pp. 577-598.
9. Green, D., & Turner, P. (2019). Community Engagement and Environmental Stewardship. *Sustainability in Education Journal*, 28(4), pp. 78-92.
10. Hargreaves, A. (2008). Leading the Change: Sustainability in Education. *Educational Leadership*, 66(5), pp. 56-60.
11. Heschong Mahone Group. (1999). *Daylighting in Schools: An Investigation into the Relationship Between Daylighting and Human Performance*.
12. Hoffman, C. (2009). The Impact of Lighting and Indoor Air Quality on Student Performance. *Educational Research Review*.
13. Jones, M. (2022). Digital Tools for Sustainability Education. *Technology in Education Journal*, 41(5), pp. 101-110.
14. Kong, S. Y., S. P. Rao, H. Abdul-Rahman, and C. Wang. (2014). School as 3-D Textbook for Environmental Education: Design Model Transforming Physical Environment to Knowledge Transmission Instrument. *Asia-Pacific Education Researcher* 23 (1), pp. 1-15. doi:10.1007/s40299-013-0064-2
15. Kumar, S., & Sharma, R. (2020). Sustainable Schools: Integrating Green Practices. *Environmental Studies Quarterly*, 37(1), pp. 45-60.
16. Matich, D. (2012). Green Print Core Practices and Student Achievement in Science. *Journal of Environmental Education*, 43(3), pp. 189-203.
17. McGraw-Hill. (2012). *The Impact of Green Building on School Performance*. Report on Sustainability Trends in Education.
18. Ministry of Education, Government of India. (2020). *National Education Policy 2020*. Retrieved from [\[https://www.mhrd.gov.in/national-education-policy-2020\]](https://www.mhrd.gov.in/national-education-policy-2020) (<https://www.mhrd.gov.in/national-education-policy-2020>).
19. Orr, D. W. (1992). *Ecological Literacy: Education and the Transition to a Postmodern World*. State University of New York Press.
20. Patel, V., & Singh, A. (2020). Policy Initiatives for Green Education in India. *Indian Journal of Educational Policy*, 22(6), pp. 65-80.
21. Rickinson, M., Hall, M., & Reid, A. (2019). Learning from Green Schools. *Journal of*

- Environmental Education, 47(2), pp. 1-14.
22. Smith, G. A., & Sobel, D. (2010). Place- and Community-Based Education in Schools. Routledge.
23. Smith, J., & Williams, L. (2021). Teacher Training for Sustainability. *Education for Sustainability Review*, 12 (3), pp.112-125.
24. Suryani, A., Soedarso, S., Saifulloh, M., Muhibbin, Z., Wahyuddin, W., Hanoraga, T., ... & Rahmawati, D. (2019). Education for environmental sustainability: a green school development. *IPTEK Journal of Proceedings Series*, (6), pp.65-72.
25. Tilbury, D. (2011). Education for sustainable development: An expert review of processes and learning. UNESCO.
26. Tilbury, D. and Wortman, D. (2004) 'Engaging People in Sustainability' Commission on Education and Communication, IUCN, Gland, Switzerland and Cambridge. UK ISBN 2-pp. 8319-0823 (English and Japanese).
27. Tilbury, D., & Wortman, D. (2005). Whole school approaches to sustainability. *Geographical education*, 18, pp. 22-30.
28. UNESCO. (2014). *Shaping the Future We Want: UN Decade of Education for Sustainable Development (2005-2014) Final Report*. United Nations Educational, Scientific and Cultural Organization.
29. UNESCO. (2017). *Education for Sustainable Development Goals: Learning Objectives*. United Nations Educational, Scientific and Cultural Organization.
30. UNESCO. (2019). *Education for Sustainable Development: Goals and Objectives*. Retrieved from <https://unesdoc.unesco.org/ark:/48223/pf0000373343>.
31. United Nations (UN). (2015). *Transforming our world: The 2030 Agenda for Sustainable Development*. Retrieved from <https://sdgs.un.org/2030agenda>.
32. United States Green Building Council. 2008. *LEED 2009 for Schools New Construction and Major Renovations*. Accessed on September 12, 2024.
33. <https://www.usgbc.org/resources/leed-school-snew-construction-v2009-current-version>
34. Uzzell, D., & Rätzsch, N. (2009). Transforming environmental psychology. *Journal of Environmental Psychology*, 29(3), pp.340-350.
35. Warner, A., & Elser, M. (2015). School-based Sustainability Initiatives and Their Impact on Student and Community Awareness. *Journal of Environmental Education*, 46(2), pp. 123- 140.
36. Wells, N. M., & Lekies, K. S. (2006). Nature and the life course: Pathways from childhood nature experiences to adult environmentalism. *Children, youth and environments*, 16(1), pp.1-24.

# India's Soft Power : A Strategic Asset in Shaping Global Diplomacy and International Politics

Nandan Kumar

Research Scholar, Political Science, Bhopendra Narayan Mandal University, Madhepura, Bihar

**Abstract:-**In a world characterized by the increasing relevance of non-coercive influence, soft power plays a pivotal role in shaping international relations and diplomacy. Soft power, as conceptualized by Joseph Nye, refers to the ability of a country to influence others through attraction and persuasion, rather than force or coercion. India, a country with a rich history, diverse culture, and growing global influence, stands as a prominent example of soft power usage. This article explores India's soft power capabilities, focusing on its cultural diplomacy, democratic values, technological leadership, and strategic use of its diaspora. Additionally, the article examines the challenges India faces in leveraging soft power effectively and provides recommendations for enhancing India's global image and influence.

**Keywords:-**Soft Power, Cultural diplomacy, International politics, Indian Cultural diplomacy, Indian Diaspora, etc.

**Introduction:-**The concept of soft power has evolved in recent decades as countries seek to enhance their international standing without resorting to traditional forms of military or economic dominance. For emerging global powers like India, soft power offers a unique opportunity to strengthen diplomatic relations, foster goodwill, and advance national interests. India, with its vast cultural heritage, democratic values, and economic potential, has the tools to employ soft power to a significant extent in its foreign policy. As the world becomes more interconnected and multipolar the boundaries between hard power and soft power blur. While economic and military might are important aspects of global influence, soft power enables nations to shape global narratives, create alliances, and engage in mutually beneficial cooperation without the use of force. India's soft power is vast and multidimensional, extending from its cultural exports to its role in global governance, and it plays a crucial role in shaping its diplomatic engagements. In the contemporary world, the geopolitics of nations is no longer dominated solely by military and economic

strength. Instead, "soft power" has emerged as a critical element in international relations and diplomacy. Soft power, as defined by renowned Harvard Professor Joseph Nye, refers to the ability of a country to influence others through appeal and attraction, rather than coercion or force. India, rich in cultural diversity, historical significance, and democratic values, has become a powerful global actor, increasingly leveraging its soft power to influence international politics and diplomacy. This article explores the concept of soft power, its key components, and how India has strategically utilized its soft power to enhance its global standing.

**Understanding Soft Power:-**The notion of soft power is fundamentally different from "hard power," which is traditionally based on military might and economic coercion. Joseph Nye, in his seminal work *Soft Power: The Means to Success in World Politics* (2004), posited that countries exercise soft power by attracting and persuading others through their culture, political values, and foreign policies. While hard power involves the use of force or economic pressure, soft power operates through the power of attraction and the ability to shape the preferences of others.

India's soft power lies in its ability to showcase the strength of its rich cultural heritage, democratic values, and international development initiatives. As a rising global power with a significant regional presence, India is increasingly aware of the strategic importance of soft power in strengthening its diplomatic influence and creating partnerships around the world. Soft power enables India to engage meaningfully with other nations, fostering cooperation, building alliances, and promoting peace and stability in a rapidly changing world order.

**Cultural Diplomacy:-**

**A Core Element of India's Soft Power:-**India's cultural diplomacy is one of the strongest pillars of its soft power, encompassing its art, literature, music, dance, religion, and cinema. India's cultural heritage, spanning thousands of years, has a profound impact on shaping perceptions

of the country globally.

**Bollywood: India's Global Cultural Export:**-One of the most recognizable symbols of India's cultural power is Bollywood, the world's largest film industry by the number of films produced annually. Bollywood has grown from a domestic entertainment industry into a global phenomenon, transcending national borders and becoming a key component of India's cultural diplomacy. Bollywood films, with their vibrant storytelling, music, and dramatic visuals, have an enduring appeal in regions such as the Middle East, Africa, and Southeast Asia, where they play a significant role in shaping perceptions of Indian society and culture. Bollywood is not merely a tool of entertainment, but a means of promoting Indian values, traditions, and lifestyle. Indian films often portray themes of family, social harmony, love, and patriotism, while also showcasing the country's diversity and rich traditions. Through films, India communicates its identity to a global audience, creating an image of a progressive, modern yet culturally rooted nation.

**Yoga and Spirituality:**-India's spiritual legacy and practices, such as yoga, meditation, and Ayurveda, represent another critical facet of its soft power. Yoga, in particular, has emerged as a global practice that transcends national and cultural boundaries, promoting peace, health, and mindfulness. As a symbol of India's holistic approach to well-being, yoga has become a key aspect of its diplomatic engagement with the world. India's leadership in promoting yoga was cemented in 2014 when the United Nations declared June 21 as the International Day of Yoga, underscoring the global significance of India's spiritual heritage. The global popularity of yoga has not only positioned India as a cultural and spiritual leader but has also bolstered its image as a nation that promotes peace, balance, and personal well-being.

India's influence is also evident in the global spread of its religious traditions, particularly Hinduism, Buddhism, Sikhism, and Jainism. These faiths emphasize principles of tolerance, nonviolence, and coexistence, values that resonate with individuals and governments seeking peace and harmony in a world beset by conflict. The teachings of Mahatma Gandhi, with his emphasis on nonviolence and civil disobedience, continue to inspire global movements for social justice and peaceful protest.

**Political and Democratic Values: A Beacon of Democracy:**-India's democratic framework is another powerful asset in its soft power arsenal. As the world's largest democracy, India is seen as a model for inclusive governance, pluralism, and the rule of law, particularly in regions where democracy is still in a nascent stage or under threat.

**The Promise of Democracy:**-India's political system,

which is founded on the principles of democracy, human rights, and the rule of law, serves as an inspiration to many countries, especially in the Global South. With over a billion people representing a vast array of languages, religions, and ethnicities, India has demonstrated that a diverse and pluralistic society can thrive within a democratic system. In many ways, India's success as a democracy is a powerful rebuttal to the notion that democracy cannot flourish in large, multi-ethnic, and developing nations. India's commitment to democratic principles is reflected in its consistent advocacy for democratic reforms and human rights in international forums such as the United Nations, BRICS, and the Commonwealth. India's foreign policy emphasizes the importance of democracy, the protection of civil liberties, and the empowerment of marginalized communities, offering itself as a model for other developing nations striving to adopt democratic practices.

**Development and Global South Leadership:**-India has emerged as a leader in the Global South, promoting sustainable development and advocating for a more equitable international economic order. India's commitment to development, poverty alleviation, and social welfare, combined with its democratic principles, enhances its soft power in countries across Africa, Latin America, and Asia. India's model of inclusive growth, which emphasizes economic development while addressing issues of poverty, inequality, healthcare, and education, resonates with many countries in the Global South. India has used its foreign policy to share knowledge, resources, and technology with developing nations, offering support for infrastructure development, healthcare initiatives, and educational exchanges. By strengthening its development partnerships with countries in Africa and Asia, India has reinforced its position as a champion of the Global South.

**India's Strategic Use of Soft Power in Global Diplomacy:**-India's growing global influence is driven by its ability to integrate soft power into its broader diplomatic strategies. India's non-alignment and independent foreign policy approach, rooted in its historical commitment to autonomy and neutrality, has evolved into a more pragmatic and strategic engagement with the world.

**Cultural Diplomacy in International Politics:**-India's cultural diplomacy is increasingly a tool for strengthening bilateral relations with other countries. The Indian Council for Cultural Relations (ICCR) plays a pivotal role in promoting India's art, literature, music, and dance abroad. These cultural exchange programs allow India to connect with foreign audiences, build people-to-people ties, and cultivate goodwill among different nations. In particular, India's diplomatic efforts in South Asia,

Africa, and the Middle East are heavily shaped by its cultural outreach programs. By fostering cultural connections through initiatives such as the Namaste policy (focused on India's engagement with Southeast Asia), India enhances its regional influence, promoting both political and economic ties.

**Strategic Partnerships with Global Powers:-** India's diplomatic outreach is not limited to cultural diplomacy alone. It has cultivated strategic partnerships with major powers such as the United States, Japan, France, and Australia. These alliances balance India's soft power with hard power elements, such as military cooperation and economic exchange, creating a dynamic approach to global diplomacy. India's role in multilateral organizations such as the United Nations, BRICS, and the G20 is also pivotal in showcasing its soft power. India uses these platforms to advocate for global issues like climate change, sustainable development, and peacekeeping, positioning itself as a leader in addressing the world's most pressing challenges.

**India's Soft Power in Addressing Global Challenges**

India's soft power is also instrumental in addressing global challenges, particularly climate change, public health, and terrorism.

**Climate Change and Environmental Leadership:-**

India is at the forefront of the global climate change conversation, advocating for a balanced approach to environmental sustainability. As a developing nation, India faces the challenge of balancing economic growth with environmental responsibility. However, India has consistently emphasized that developed nations have a greater historical responsibility for environmental degradation and must lead the way in addressing climate change. India's participation in the Paris Agreement and its leadership in promoting renewable energy through initiatives like the International Solar Alliance reflects its commitment to tackling climate change. By sharing green technologies and sustainable practices, India enhances its global influence while contributing to the global fight against climate change.

**Terrorism and Security Diplomacy:-** India has long been a victim of cross-border terrorism and has used its diplomatic channels to highlight the need for greater international cooperation in combating terrorism. India's advocacy for a comprehensive international legal framework to address terrorism underscores its role as a responsible global actor.

India's efforts to combat terrorism are intertwined with its promotion of tolerance, peace, and dialogue, which strengthens its soft power as a proponent of international security and stability.

**Conclusion:-** India's soft power has become a central element of its foreign policy, enabling the coun-

try to shape global diplomacy and international politics in significant ways. By leveraging its cultural, democratic, and spiritual assets, India has enhanced its standing in the global arena, strengthening its relationships with countries across the world. In the future, India's soft power will continue to be a key factor in its efforts to promote peace, development, and cooperation in an increasingly complex and interconnected world. As India navigates its path as a global power, the strategic use of soft power will remain crucial in shaping its place in the world order.

**References:-**

1. Nye, Joseph S. *Soft Power: The Means to Success in World Politics*. Public Affairs, 2004.
2. "India and the World: The Soft Power of India." *The Economic Times*, July 22, 2019.
3. "The Role of Bollywood in India's Global Soft Power." *Global Policy Journal*, May 2017.
4. Khanna, Parag. *The Future is Asian: Commerce, Conflict, and Culture in the 21st Century*. Simon & Schuster, 2019.
5. "The Impact of Yoga on Global Diplomacy." UNESCO, 2022.

# Preservation of Mental Health : Role of a School

Dr. Indu Sharma

Principal, Sant Nischal Singh College of Education for Women, Santpura, Yamuna Nagar, Haryana

**Abstract:-**Every individual stands in need of mental health. Young Children, men and women experience difficulty in adjusting to new circumstances which leads to the mental complications and difficulties that in turn, endanger mental health. Mental hygiene helps to clarify its value and efficacy which consists in the curing and preserving a state of mental health in the individuals. Every day, people struggle with mental health challenges. One in five people will experience a mental illness in their life time. Innovative approaches to strengthen the Public mental health strategy warrant careful deliberation. This article reintroduces and explores the conceptual frame work of mental hygiene. The concept of mental hygiene was originally introduced in the early 20th century, with the aim of preventing and treating mental illness and milder mental disorders. The movement lost its momentum shortly thereafter and the concept went largely ignored. Since then mental hygiene is a form of preventive maintenance that can be likened to other hygienic practices. Through the plasticity of the brain, mental training activities can foster healthy cognitive patterns that are conducive to well-being. The article offers a brief overview of some of the mental hygiene practices one can engage in, on a daily basis, to support well being and assist in preventing mental health issues.

**Key words:-**Mental Health, Mental Hygiene.

**Mental Health:-**P.V. Lewkan has written about mental health in a book entitled "Mental Hygiene in Public Health". Acc. to Lewkan "A mentally healthy individual is one who is himself, satisfied, lives peacefully with his neighbors, makes healthy citizens of his children, and even performing these fundamental duties has enough energy left to do something of benefit to society. Possessing mental health an individual can adjust properly to his environment and can make the best efforts for his own, his family's and his society's progress and betterment. In "The Human Mind" K.A. Menninger has written "Let us define mental health as the adjustment of human beings to the world and to each other with a maximum

of effectiveness and happiness. It is the ability to maintain an even temper, an alert intelligence, socially considerate behavior and a happy disposition". The Chief characteristic that is evident is adjustment. The greater the degree of successful adjustment, the greater will be the mental health of an individual lesser mental health will lead to lesser adjustment and greater conflict. The healthy individual can interpret any new situation and adopt himself to suit it. He maintains healthy and benevolent attitude towards life. He is aware that difficulties visit everyone's life, so that running away from is cowardice. This can be solved only by squarely facing up to them with courage.

**Mental Hygiene:-**Mental hygiene, literally interpreted, means the science that maintains a condition of health in connection with mental functions just as physical hygiene discovers law and means of maintaining healthy conditions in the body, mental hygiene discovers laws and means of maintaining the mind in a healthy condition. It not only insists on the curing of mental diseases, it also turns its attention to their prevention. Apart from the treatment of a mental disease, one important function of mental hygiene is a creation of favorable conditions. The functioning of mental health does not depend exclusively upon psychiatrists other individuals such as teachers, parents, guardians and social welfare workers as well as mendicants can make important contributions towards it. The truth of the matter is that any individual can help in maintaining mental health and in the functioning of mental hygiene, if he has insight into and knowledge of human psychology.

**Mental Health and Mental Hygiene:-**In this manner, mental hygiene is a way of life in which the individual's adjustment to his environment is maintained intact.

We can say that mental health is that ability by means of which we establish our adjustment with the difficult situation of life and mental hygiene is that means or tools which makes this adjustment possible.

"Mental hygiene is the means to mental health." In other words, mental hygiene is that science which studies the laws and means of achieving mental health, of maintaining it as well as doing away with mental ill health. Mental health is the end and mental hygiene is the means.

**Traits of Mental Health:**-In order to understand the full implications of mental health, it would be advantageous to know the characteristics of a person who enjoys mental health.

**Self-Evaluation:**-A mentally healthy individual evaluate himself properly. He easily accepts his faults and makes efforts to rid himself of them. He introspects so that he may and his problems, prejudices, difficulties etc. and reduce them to minimum.

**Adjust ability:**- It has been pointed out earlier also that one special characteristic of a mentally healthy individual is that he/she adjusts to a new situation with the least delay and disturbance.

**Maturity:**-Intellectual and emotional maturity another peculiar sign of mentally healthy individual. The mature mind is constantly engaged in increasing his fund of knowledge, behavior, responsibilities, expresses his thoughts and feelings with clarity, and is prepared to sympathize with another's feelings and viewpoints. And in maturity sexual maturity is very important. The healthy individual behaves like a balance, cultured and sensible adult in all matters.

**Regular life:**-Habits are important element in maintaining mental health. Forming proper habits in matters of food, clothing and the normal routine of daily life leads to their becoming systematic and regulated which in the long run, economizes upon energy and time

**Absence of Extremism:**-Aristotle believed that the ideal man lacks excess in any and every direction, and the principle that excess of anything is bad is a golden rule as far as mental health is concerned.

**Satisfactory social adjustment:**-As has been pointed out, from the point of view of mental health, healthy individual maintains good adjustment on the social situations, and is engaged in some or the other project intended to benefit society.

**Aims of Mental Hygiene:**-The objective of mental hygiene is not only the prevention and curing of mental disease, but the development of personality of every individual in society that makes for good adjustment with the environment, that attains proper synthesis b/w the emotional intellectual and physical aspects that is satisfied and optimistic that experiences a minimum of tension and conflict in its conduct with other individuals in society.

The aim of mental hygiene is the evolution and development of a properly adjusted and balanced per-

sonality.

Following are the main objectives of mental hygiene.

1. Treatment and Remedying of mental Defects.
2. Prevention of Personality Complications.
3. Safe guard of Mental Health.

**Preservation of Mental Health:**-The question that now arises is: How can mental health be preserved? It mostly happens that many students, particularly children and adolescents cannot clarify their difficulties and problems so that they require guidance from their parents, teachers and psychologists. It is for the guide to understand the adolescent and to sympathize with him, and to offer him affectionate advice. Scolding or punishing them is not very efficacious. They should be given the opportunity of expressing their desire and mental tendencies. Mental health in the family- Family has the greatest importance in maintaining a condition of mental health, and within the family the greatest burden of responsibility is on the two parents. What is mostly needed in this connection is the creation of a suitable atmosphere in which the child's personality can adequately develop? Child's delicate and sensitive personality is influenced by the character of parents, their mutual behavior and relations, their behavior towards the children, the child's relations with brothers, sisters and other relatives in the family. Hence, it is essential that these be healthy.

**Mental Health in School-** Following the family, the other institution that has responsibility of promoting mental health in children is the school. It is the school that has the greatest influence, after the home, in forming the Child's personality, and even in school, the most important factor is the atmosphere existing there. In a healthy atmosphere the children adopt discipline and other qualities of their own. There is greater fear of some children being spoiled in school. Such children should be specially attended to give definite and expert guidance. The greatest need is for providing each child with work adequate and proper to the need of his personality. Hence, It is essential that the backward and the brilliant children should be given special treatment. Teachers present and ideal to the children in their charge, hence their character and conduct should be such as can be profitably imitated by the children. Pupil personnel service should be introduced to remove the difficulties with which the children are faced from time to time in school.

Briefly, in school the teacher should keep the following factors vividly in mind if he has to preserve mental health, prevent mental disturbance and promote mental health among his students.

**Discipline-**As he been pointed out earlier, discipline in the school has an important influence upon the mental health of students. But this discipline should

never be very strict since such condition will lead to mental ill-health. Thus, discipline should be exercised not through creating fear of punishment. But through arousing feelings of responsibility and the desire to be law-abiding among the students. True discipline is self-discipline. And discipline in college should be maintained by selecting its guardians from among the students themselves. It develops feeling of responsibility among the students.

**Affectionate behavior-**It is only too evident that affectionate behavior towards students on the part of teachers has good effect on the former's mental health. It will inspire him to obey the teacher. Respect him, to do nothing that may incur his displeasure. A teacher should maintain the same loving attitude towards all his students. Any discrimination in this treatment injures feeling of students.

**Play and recreation-**Mental disturbance and imbalance is created by the repressed motives surging in a student's brain. They can be given opportunities for healthy expression through games and other forms of recreation. Play and recreation have a cathartic effect.

**Sex education-**In adolescence, the morals of young boys and girls show alarming tendencies to proceed to degradation because of the sexual instinct. Sex education should be provided for a clear understanding.

**Educational guidance-**In order to maintain a state of mental health, it is essential that they be given subjects that confirm to their requirements and abilities, and their educational problems solved. Taking personal advice of a psychologist in this connection is called educational guidance.

**Personal guidance-**Many of the problems that arise before the students are such that they cannot be solved by the students himself; hence he needs the personal guidance of the psychologist to solve them.

**Vocational guidance-**Every individual is compelled to adopt some one or the other profession once his education is complete, and he begins to worry about it even while he is still engaged in his academic pursuit. The knowledgeable teacher can help his students in their choice of a suitable career.

**Formation of good habits-**Mental health depends upon good habit. Hence, it is desirable for the teacher to help students in the formation of good habits regarding a regular life, balanced diet and exercise, good behavior and high thinking, etc.

**Balanced curriculum-**The curriculum in school should be such as to develop all aspects of the student's personality, to increase his fund of necessary knowledge, and to avoid all unnecessary strain on the mind. The integrated development of the students can be promoted through the organizing of various kinds of

extracurricular activities in the school and college.

**Balanced home assignment-**It is improper to think that if the child is given too much homework to do, he will not have the time to indulge in destructive and naughty pranks as he will be too busy. Loading them with too much homework only leaves them worried and anxious, with the worst influence upon their mind. Hence, the homework required of them should be carefully and sensibly formulated.

Finally, it may be stated that the prevention of mental imbalance is a problem of social and national importance. For this efforts will have to be made to get rid of circumstances of this organization. Exploitation, corruption, various tensions, and conflicts, crimes, alcoholic effects etc.

### References:-

1. American Academy of child and Adolescent Psychiatry (2024) "where to find help for your child Retrieved from mental health."
2. American Psychiatric Association (2012) "Definition of mental disorders."
3. Blackorby, J.S Camets R (2004). Changes in school engagement and academic performance of students with disabilities. In Special Education Elementary longitudinal study Wave 1 wave 2 overview (8.1-8.2) Menlo Park, CA: SRI International,
4. Child Health & Development institute of Connecticut (n.d.). How to get the best help: What question do you ask?
5. Eceles; J.S Gootman J.A. (Eds.) (2002) community programs to promote youth development Washington, DC: National Academies Press.
6. Gall, G., Pagano, M.E. Desmond, M.S. Perrin, J.M., & Murphy, J.M. (2000). Utility of Psychosocial screening of a school based healthcenter. *Journal of School Health*, 70(7) 292-298.
7. Hayward, P. & Bright, J.A. (1997). Stigma and mental illness: a review and critique. *Journal of Mental Health*, 6,345-3564.



---

स्वत्वाधिकारी, प्रकाशक, मुद्रक डॉ. मोहन बैरागी द्वारा अक्षरवार्ता पब्लिकेशंस से मुद्रित व 43, क्षीर सागर, द्रविड मार्ग, उज्जैन, मप्र, -456006 से प्रकाशित।  
सभी विवादों का न्याय क्षेत्र उज्जैन रहेगा। संपादक- डॉ. मोहन बैरागी, संपर्क :-8989547427, Email- [aksharwartajournal@gmail.com](mailto:aksharwartajournal@gmail.com)

---